माननीय एम॰ वाई॰ इकबाल, न्यायमूर्ति

राधेश्याम शर्मा एवं एक अन्य

बनाम

जगतेन्द्र प्रसाद जायसवाल एवं एक अन्य

Cr. M.P. No. 828 of 2005. Decided on 5th January, 2010.

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धाराएँ 144 एवं 145—धारा 144 के अधीन कार्यवाही को धारा 145 के अधीन कार्यवाही में परिवर्तित कर दिया गया–दंडाधिकारी द्वारा पारित आदेश को आधार उपदर्शित करना चाहिए कि शांति भंग होने की संभावना थी–जहाँ दंडाधिकारी केवल अपनी संतुष्टि का तथ्य न कि अपनी संतुष्टि का आधार, दर्ज करता है, वहाँ ऐसा आदेश विधि में मान्य नहीं ठहराया जा सकता है–अपनी संतुष्टि का आधार और कारण दर्ज किए बिना दंडाधिकारी द्वारा अस्पष्ट आदेश पारित किया गया–दंडाधिकारी द्वारा पारित आदेश की विधिसम्यतता और वैधता का परीक्षण करने के बजाय, भूमियों के संबंध में पक्षों के दावों पर निर्णय करने के लिए दंडाधिकारी को निर्देश देते हुए पुनरीक्षण प्राधिकारी अपनी अधिकारिता के परे गये–किसी पक्षकार के पक्ष में विवादित भूमि के संबंध में टाइटल का निर्णय करने की अधिकारिता दंडाधिकारी को नहीं है–आक्षेपित आदेश अपास्त–याचिका अनुज्ञात।

(पैरा 5 से 8)

अधिवक्तागण.–M/s Nawal Kishore Prasad, V.K. Sharma, For the Petitioners; M/s Arvind Kr. Singh, Anita Sinha, For the Opp. Parties.

आदेश

दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 482 के अधीन इस याचिका द्वारा याचीगण ने केस सं॰ 62 वर्ष 2003 में अनुमंडल दंडाधिकारी, चतरा द्वारा पारित दिनांक 14.11.2003 के उस आदेश जिसके द्वारा उन्होंने धारा 144 दं॰ प्र॰ सं॰ के अधीन कार्यवाही को दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 145 के अधीन कार्यवाही में बदल दिया है, के अभिखंडन हेतु और दिनांक 28.3.2005 के उस आदेश, जिस के द्वारा उक्त आदेश के विरुद्ध याचीगण द्वारा दाखिल पुनरीक्षण को अस्वीकार कर दिया गया था, के अभिखंडन हेतु भी प्रार्थना की है।

2. मामले के तथ्य संक्षेप में निम्नलिखित हैं:–

विरोधी पक्षकार-परिवादी, जिसने अनुमंडलीय दंडाधिकारी, चतरा के समक्ष दिनांक 17.9.2003 को याचिका दाखिल किया था, की प्रेरणा पर दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 144 के अधीन कार्यवाही प्रारंभ की गयी थी। विरोधी पक्षकार के अनुसार, वह संपत्ति का स्वामी है और याची-द्वितीय पक्षकार के हाथों शांति भंग होने की गंभीर आशंका है। विरोधी पक्षकार के अनुसार विभाजन मामला सं॰ 18 वर्ष 1934 के आधार पर प्रश्नगत भूमि उसके शांतिमय कब्जे में थी लेकिन याची-द्वितीय पक्षकार ने प्रश्नगत भूमि पर नींव खोदना शुरु किया जिसके परिणामस्वरुप स्थिति नियंत्रण से बाहर हो गया। अन्य पक्ष-याचीगण को नोटिस दिए जाने के बाद, दंडाधिकारी ने दिनांक 14.11.2003 के आदेश से इस कार्यवाही को दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 145 के अधीन कार्यवाही में बदल दिया। बेहतर अधिमूल्यन हेतु दिनांक 14.11.2003 का आदेश यहाँ इसमें नीचे उद्धृत किया जाता है।

"1. विद्वान अधिवक्ता के माध्यम से पक्षों को सुना गया और उनके कागजातों/दस्तावेजों को पढ़ा गया।

2. मैं इसे एक वास्तविक विवाद पाता हूँ और पाता हूँ कि विवादित भूमि हेतु पक्षों के बीच तनाव है।

3. संतुष्ट होने पर धारा 144 दं० प्र० सं०, धारा 145 दं० प्र० सं० में बदली जाती है।

4. तद्नुसार नोटिस जारी किया जाए।

5. यह एक अत्यधिक आवश्यक मामला है और इसे तीन महीने के भीतर निपटाया जाय।

6. दिनांक 21.11.2003 को पेश किया जाय।

3. उक्त आदेश से व्यथित होकर, याचीगण ने सत्र न्यायाधीश, चतरा के समक्ष दां॰ पुनरीक्षण सं॰ 66 वर्ष 2003 दाखिल किया। पुनरीक्षण न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि अनुमंडलीय दंडाधिकारी द्वारा पारित आदेश प्रकट करता है कि उन्होंने इस बात से संतुष्ट होने पर कि विवाद का परिणाम शांतिभंग में हो सकता है, कार्यवाही को दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 145 के अधीन उन्होंने कार्यवाही में बदल दिया। यहाँ यह उल्लिखित करना लाभप्रद है कि दोनों पक्षों ने प्रश्नाधीन भूमि पर टाइटल और कब्जा का दावा किया है। अत: पुनरीक्षण न्यायालय ने आदेश में अभिनिर्धारित किया कि अनुमंडलीय दंडाधिकारी गुणागुण पर मामले का निर्णय करेंगे। पुनरीक्षण न्यायालय के आदेश का पैराग्राफ 7 यहाँ इसमें नीचे उद्धृत किया जाता है:-

"7. आक्षेपित आदेश पारित कर एस० डी० एम० ने गुणागुण पर मामले का निर्णय नहीं किया है। एस० डी० एम० के न्यायालय के समक्ष अपने-अपने पक्ष में अपने-अपने बिन्दुओं को उठाने का अवसर दोनों पक्षों को मिला है। अभिवाक् जिसे पक्षों ने पुनरीक्षण याचिका में लिया है, वे एस० डी० एम० के समक्ष उठाए जा सकते है और विधि के अनुरुप एस० डी० एम० को मामले में निर्णय लेना चाहिए।''

4. मैंने याचीगण की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता, श्री नवल किशोर प्रसाद और विरोधी पक्षकार की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता, श्री अरविंद कुमार सिंह को सुना।

5. दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 145 विवाद के विषय के वास्तविक स्वामित्व के संबंध में अपने-अपने दावों का लिखित कथन दाखिल करने के लिए पक्षों को नोटिस जारी करने हेतु दंडाधिकारी को सशक्त करती है। इस शक्ति का प्रयोग केवल तब ही किया जा सकता है जब किसी पुलिस अधिकारी के रिपोर्ट से अथवा अन्य सूचना पाकर दंडाधिकारी संतुष्ट हैं कि विवाद से किसी भूमि या जल या इसकी चारदीवारी के सम्बन्ध में शांति भंग होने की संभावना है। ऐसे मामलों में, दंडाधिकारी को अपने संतुष्ट होने के आधारों का कथन करते हुए लिखित आदेश पारित करना होगा। इस धारा का उद्देश्य एक अथवा अन्य पक्षों के स्वामित्व को तब तक बरकरार रखते हुए जब तक कि किसी एक पक्ष का अधिकार विनिश्चित नहीं किया जाता है, शांति भंग होने से रोकना है। दंडाधिकारी द्वारा पारित आदेश को यह निष्कर्ष प्राप्त करने के आधारों को उपदर्शित करना ही होगा कि शांति भंग होने की संभावना है। जब दंडाधिकारी केवल अपनी संतुष्टि के तथ्य को, न कि अपनी संतुष्टि के आधार को दर्ज करता है, तब ऐसा आदेश विधि में मान्य नहीं ठहराया जा सकता है।

6. यहाँ इसमें पहले उद्धृत दंडाधिकारी द्वारा पारित अस्पष्ट आदेश के परिशीलन से यह स्पष्ट है कि अपनी संतुष्टि का कारण और आधार दर्ज किए बिना दंडाधिकारी ने केवल महसूस किया कि पक्षों के बीच विवादित भूमि को लेकर तनाव बना हुआ है। आदेश में शांतिभंग होने के अस्तित्व के बारे में कुछ भी नहीं कहा गया है। पुनरीक्षण प्राधिकारी ने दंडाधिकारी द्वारा पारित आदेश के विधि सम्मतता और वैधता का परीक्षण करने के बजाए दंडाधिकारी को भूमियों के संबंध में पक्षों के दावों पर निर्णय करने का निर्देश देकर अपनी अधिकारिता का उल्लंघन किया है। जैसा कि ऊपर कहा गया है कि किसी पक्षकार के पक्ष में विवादित भूमि के संबंध में टाइटल का निर्णय करने की अधिकारिता दंडाधिकारी को नहीं है।

7. पक्षों के विद्वान अधिवक्ता के निवेदनों पर विचार करके, यहाँ इसमें ऊपर चर्चा किए गए सिद्धान्तों पर दंडाधिकारी और पुनरीक्षण प्राधिकारी द्वारा पारित आक्षेपित आदेश विधि में की गयी गंभीर गलती से युक्त है।

8. अत: यह याचिका अनुज्ञात की जाती है और दंडाधिकारी एवं पुनरीक्षण प्राधिकारी द्वारा पारित आक्षेपित आदेशों को अपास्त किया जाता है।

माननीय अमरेश्वर सहाय, न्यायमूर्ति

युगल किशोर राय एवं अन्य

बनाम

झारखंड राज्य एवं अन्य

Writ Petition (Service) No. 145 of 2002. Decided on 17th December, 2009.

भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन एक आवेदन के मामले में।

सेवा विधि–नियुक्ति–पुनरीक्षित चयन सूची से नाम अपवर्जित कर दिए जाने के चलते याचीगण की नियुक्ति नहीं की गयी–मूल चयन सूची में याचीगण के नाम आए थे–नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन के आधार पर प्रत्यर्थीगण की कार्रवाई का विरोध–केवल नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों के आधार पर ही याचिका अनुज्ञात-आक्षेपित आदेश अभिखंडित–याची को नया अभ्यावेदन दाखिल करने की छूट दी गई–याचिका अनुज्ञात। (पैरा 5 से 7)

अधिवक्तागण.–Mr. Rupesh Singh, For the Petitioenrs; Ms. JC to Sr. SC-II, For the Respondents.

निर्णय

न्यायालय द्वारा.–पक्षों को सुना गया।

2. याचीगण की शिकायत केवल यह है कि यद्यपि उनके नाम मूल चयन सूची में शामिल थे जिसे दिनांक 9.7.2000 को प्रकाशित किया गया था लेकिन बाद में दिनांक 17.10.2001 को एक पुनरीक्षित चयन सूची प्रकाशित की गयी जिसमें याची सं॰ 1 से 3 अर्थात् युगल किशोर राय, सुरेश चन्द्र मांझी और नन्दलाल ठाकुर, के नाम उसमें सम्मिलित नहीं थे। यह प्रतीत होता है कि एक आदेश जैसा दिनांक 2.7.2002 के परिशिष्ट-10 में अंतर्विष्ट है, जारी किया गया था जिसके द्वारा याची सं॰ 1 से 3 को सूचित किया गया था कि चूँकि उनका नाम दिनांक 17.10.2001 के पुनरीक्षित चयन सूची में नहीं है, अत: उन्हें नियुक्त नहीं किया गया है। आगे यह प्रतीत होता है कि यद्यपि याची सं॰ 4 सनातन रवानी का नाम दिनांक 17.10.2001 के पुनरीक्षित चयन सूची में सम्मिलित किया गया था लेकिन उसे भी नियुक्त नहीं किया गया है क्योंकि उसका नाम चयन सूची में बहुत नीचे आया है।

3. याचीगण की शिकायत यह है कि कारण बताओ का कोई नोटिस जारी किए बिना और/अथवा नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों का अनुपालन किए बिना, उनके नाम दिनांक 17.10.2001 को प्रकाशित पुनरीक्षित चयन सूची से हटा दिये गये है, अत: इसे मान्य नहीं ठहराया जा सकता है।

4. प्रत्यर्थी सं॰ 2 और 3 की ओर से प्रतिशपथ पत्र दाखिल किया गया है जिसमें कथन किया गया है कि जिला स्तरीय चयन कमिटी के मुताबिक एक योजना बनायी गयी थी और तद्नुसार एक पैनल तैयार किया गया था। उपयुक्त उम्मीदवारों के नामों की सम्यक रूप से अनुशंसा की गयी थी

लेकिन बाद में यह पाया गया था कि उक्त सूची में इस तथ्य कि उनमें से केवल तीन को अधिक आयु (ओवर एज) के अंक दिए गए थे जबकि अन्यों को इस विशेषाधिकार से वंचित कर दिया गया था, सहित उम्मीदवारों के गुणागुण के संबंध में कतिपय त्रुटियाँ थी और इस कारण उक्त पैनल को रद्द कर दिया गया था और पूर्वोक्त त्रुटियुक्त पैनल के आधार पर कोई नियुक्ति नहीं की गयी थी। मेरिट के आधार स्थापना चयन कमिटी द्वारा पूर्वतर पैनल की त्रुटियों को दूर करने के बाद दिनांक 17.10.2001 को 132 उम्मीदवारों की एक अंतिम सूची प्रकाशित की गयी थी जिसमें याची सं॰ 1, 2 और 3 को कोई स्थान नहीं दिया गया था। लेकिन याची सं॰ 4 का नाम क्रमांक 70 पर था लेकिन चूँकि केवल 66 पद रिक्त थे, इसलिए क्रमांक 66 तक के उम्मीदवारों को नियुक्त किया गया था और याची सं॰ 4, जो क्रमांक 70 पर था, को नियुक्त नहीं किया जा सका था। प्रतिशपथ पत्र में कोई कथन नहीं किया गया है कि पुनरीक्षित चयन सूची में से याचीगण के नामों को हटाने से पहले उन्हें कारण बताओ नोटिस अथवा सुनवाई का अवसर दिया गया था।

5. प्रति शपथपत्र का प्रत्युत्तर दाखिल करके याचीगण ने पुनरीक्षित चयन सूची में अनेक विषमताओं और त्रुटियों को इंगित किया है। याचीगण द्वारा अपने प्रत्युत्तर में इंगित त्रुटियों को यहाँ इसमें नीचे उद्धृत किया जाता है:-

(i) प्रतिशपथ पत्र के परिशिष्ट-A में निर्दिष्ट की गयी एक मात्र त्रुटि केवल तीन व्यक्तियों को दिये गये आयु के अंक के बारे में है। अतः प्रति शपथ पत्र में प्रकथित किया गया है कि अंतिम पैनल में तात्पर्यित त्रुटि कतिपय उपयुक्त उम्मीदवारों को नहीं दिए गए आयु के अंक के कारण है जिन्हें इस विशेषाधिकार से वंचित कर दिया गया था। यह अंश अभिलेख में दिया हुआ है। लेकिन अत्यंत विनम्रतापूर्वक यह कथन और निवेदन किया जाता है कि पुनरीक्षित चयन सूची इस त्रुटि को दूर करके तैयार नहीं की गयी है बल्कि एक संपूर्ण पुनर्आकलन के बजाए और सही कहा जाए तो इंगित की गयी त्रुटि को सुधारने के नाम पर पूर्ण छल साधन किया गया है।

(ii) इससे इनकार और विवादित किया गया है कि पैनल रद्द कर दिया गया था। वस्तुतः स्वयं परिशिष्ट A कथन करता है कि पैनल त्रुटिपूर्ण था और इसे संशोधित करना जरुरी था। आगे परिशिष्ट-2 पठन करता है कि ''अतः उक्त पैनल को अंतिम रूप से प्रदर्शित पैनल नहीं समझा जाए।'' अतः यह स्पष्ट है कि दिनांक 9.7.2000 के पैनल को कभी रद्द नहीं किया गया था।

(iii) इससे इनकार और विवादित किया जाता है कि याचीगण ने प्रतिशपथ पत्र के परिशिष्ट-B में अंतर्विष्ट नोटिस प्राप्त किया था। परिशिष्ट-B एक सादा प्रोफार्मा है जिसे केवल प्रत्यर्थीगण की मनमानी कार्रवाई को ढंकने के लिए प्रस्तुत किया गया है। इससे इनकार और विवादित किया जाता है कि दिनांक 17.10.2001 को 132 उम्मीदवारों का नया पैनल कभी भी प्रदर्शित/प्रकाशित किया गया था। वस्तुतः सारी कार्रवाई गैर कानूनी, मनमानी है और उपयुक्त उम्मीदवारों को रोजगार पाने से वंचित करने और प्रभावशाली व्यक्तियों के चुनिन्दा उम्मीदवारों को रोजगार देने हेतु सर्वाधिक गुप्त तरीके से किया गया है।

(iv) इसे जोरदार तरीके से इंकार किया जाता है कि मेरीट के आधार पर दिनांक 17.10.2001 को स्थापना चयन कमिटी ने अंतिम पैनल प्रकाशित किया जैसा कि निम्नलिखित प्राख्यानों से प्रकट होगा कि तथाकथित सुधार किया गया पैनल मनमाना है और विधि की दृष्टि में मान्य ठहराने योग्य नहीं है।

(v) किसी भी सूरत में, यह कथन और निवेदन किया गया है कि जब एक बार प्रत्यर्थी सं॰ 2 ने नियुक्ति के लिए व्यक्तियों के नामों की अंतिम अनुशंसा कर दी है,

तो उक्त कमिटी उक्त पैनल को पुनरीक्षित करने हेतु अक्षम और पद कार्य निवृत्त हो गया है। किसी भी स्थिति में, पैनल में त्रुटियों में सुधार को हटाने का आदेश देने के लिए अथवा अनुशंसित उम्मीदवारों के अंतिम पैनल को प्रोविजनल पैनल में बदलने के लिए प्रत्यर्थी सं० 3 अर्थात् उप-कमिश्नर देवघर अक्षम थे और उन्हें अधिकारिता नहीं थी।

(vi) किसी भी स्थिति में, इस तथ्य की दृष्टि में कि याचीगण का नाम प्रत्यर्थी सं० 2 द्वारा अंतिम रुप से अनुशंसित किया गया था, उक्त पैनल के अनुरुप, जब और जैसे ही ऐसी नियुक्तियाँ की जानी हो, नियुक्ति किए जाने का अधिकार याचीगण को प्राप्त हो गया था। इसलिए, उक्त पैनल में याचीगण के स्थान को प्रभावित करते हुए पैनल के गठन में किये गये किसी परिवर्तन की स्थिति में याचीगण को व्यक्गित नोटिस अथवा सुनवाई का अवसर दिया जाना चाहिए था।

(vii) यह सुस्थापित विधि है कि नियुक्ति प्राधिकारी अनुशंसा प्राधिकारी की अनुशंसाओं को अंशतः स्वीकार अथवा अस्वीकार नहीं कर सकता है। वस्तुतः यह आदेश देते हुए कि प्रत्यर्थी सं० 2 द्वारा दिनांक 9.7.2000 को तैयार किये गये अंतिम पैनल को अनंतिम पैनल माना जाए, प्रत्यर्थी सं० 3 ने शक्ति का आभासी प्रयोग किया है और अनुशंसक निकाय द्वारा की गयी अनुशंसाओं को अंशतः अस्वीकृत कर दिया।

6. यहाँ इसमें ऊपर उद्धृत याचीगण द्वारा इंगित की गयी दुर्बलताओं का यह न्यायालय परीक्षण नहीं करने जा रहा है; बल्कि इस पर विचार करने हेतु प्रत्यर्थीगण पर छोड़ा जाता है।

7. यह रिट याचिका केवल इसी आधार पर अनुज्ञात की जा रही है क्योंकि याचीगण को यह सूचित करता हुआ कि उनका चयन नहीं किया गया है क्योंकि उनके नाम पुनरीक्षित चयन सूची में नहीं आये हैं, दिनांक 2.7.2002 का परिशिष्ट-10 जारी करने से पहले नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का अनुपालन किए बिना पारित किया गया था और इसलिए इसे अभिखंडित किया जाता है और जिलास्तरीय चयन कमिटी, देवघर के समक्ष इसके अध्यक्ष, उप-कमिश्नर, देवघर के माध्यम से आदेश की प्रति और समर्थित दस्तावेजों के साथ यदि है तो, अपने दावा और शिकायतें, जिन्हें इस रिट याचिका में उठाया गया है, के बारे में विस्तारपूर्वक कथन करते हुए नया अभ्यावेदन दाखिल करने की स्वतंत्रता याचीगण को दी जाती है। यदि याचीगण द्वारा ऐसा अभ्यावेदन दाखिल किया जाता है तब जिला स्तरीय चयन कमिटी को याचीगण द्वारा दाखिल अभ्यावेदन पर सही संदर्भ में विचार करना होगा और ऐसे अभ्यावेदन दाखिल करने की तिथि से आठ सप्ताह की अवधि के भीतर विधि के अनुरुप नया सकारण आदेश पारित करना होगा।

माननीय एम० वाई० इकबाल एवं प्रदीप कुमार, न्यायमूर्तिगण

न्यू इंडिया एश्योरेंस कं० लि०

बनाम

लालजान बीबी एवं अन्य

M.A. No. 322 of 2008; C.O. No. 3 of 2009. Decided on 4th January, 2010.

मोटर यान अधिनियम, 1988—धाराएँ 168 एवं 173—दुर्घटना में मृत्यु-मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण द्वारा 57,000/- रुपये का मुआवजा अधिनिर्णीत-मुआवजे की राशि में वृद्धि हेतु दावा-अपराधकारी वाहन पेट्रोलियम उत्पाद ढो रहा था जो परिसंकटमय माल के वर्ग के

अंतर्गत आता है–लेकिन मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण के समक्ष बीमा कम्पनी द्वारा ऐसा कोई बचाव नहीं किया गया–अधिकरण ने अभिप्रायात्मक आय लिया है क्योंकि मृतक 70 वर्ष का था–मुआवजा राशि का एक-तिहाई काटा नहीं जाना चाहिए था–मुआवजा राशि 75,000/- रुपयों तक बढ़ायी गयी। (पैरा 6, 9 से 12)

अधिवक्तागण.–Mr. G.C. Jha, For the Appellant; Mr. Ananda Sen, For the Respondents.

आदेश

त्रुटि संख्या 1 और 3 की फिलहाल अनदेखी की जाती है।

2. हमने बीमा कम्पनी की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री जी० सी० झा और प्रत्यर्थीगण एवं प्रत्याक्षेपियों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता, श्री आनन्द सेन को सुना।

3. यह अपील अपीलार्थी-बीमा कम्पनी द्वारा मुआवजा मामला सं० 191 वर्ष 2005 में अपर जिला न्यायाधीश-सह-मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और अधिनिर्णय के विरुद्ध दाखिल किया गया है जिसके द्वारा 70 वर्षीय मृतक की मृत्यु के लिए 57,000/- रुपये की राशि अधिनिर्णीत की गयी थी।

4. बीमा कम्पनी की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री झा ने आक्षेपित अधिनिर्णय का विरोध मुख्यत: इस आधार पर किया है कि अपीलार्थी-बीमा कम्पनी ने एक सर्वेक्षक प्रतिनियुक्त किया जिसने अपराधकारी वाहन के दस्तावेज को सत्यापित किया था और यह पता चला था कि ट्रक का उक्त रजिस्ट्रेशन नम्बर बजाज चेतक स्कूटर का था। उस आधार पर बीमा कम्पनी ने अपनी जिम्मेदारी से इनकार कर दिया।

5. मामले के तथ्य ये हैं कि अपराधकारी वाहन पेट्रोलियम उत्पाद ढो रहा था जो सड़क किनारे एक पेड़ से टकरा गया जिसके परिणामस्वरुप फटने की आवाज करके गैस टैंकर से गैस लीक हुआ जिससे छ: व्यक्तियों की मृत्यु कारित हुई।

6. अधिकरण के समक्ष बीमा कम्पनी द्वारा लिया गया एकमात्र बचाव यह है कि चूँकि वाहन पेट्रोलियम उत्पाद ढो रहा था जो परिसंकटमय माल के अंतर्गत आता है, अत: वाहन के स्वामी को अतिरिक्त प्रीमियम देना चाहिए था। बीमा कम्पनी द्वारा कभी भी ऐसा बचाव नहीं लिया गया था। अत: अपीलार्थी-बीमा कम्पनी को मुआवजा भुगतान करने का दायी पाते हुए अधिकरण ने आक्षेपित निर्णय पारित किया। यहाँ तक उल्लिखित करना लाभप्रद है कि अन्य दावा मामलों में भी अधिकरण ने अधिनिर्णय पारित किया था और ऐसे एक अधिनिर्णय के विरुद्ध अपीलार्थी ने इस न्यायालय के समक्ष एम० ए० सं० 269 वर्ष 2008 दाखिल किया था जिसे दिनांक 4.11.2009 को निम्नलिखित आदेश पारित कर खारिज कर दिया गया था:–

''आई० ए० सं० 3140 वर्ष 2009

परिसीमा मामलों में पक्षों के अधिवक्ता को सुना गया। अपील दाखिल करने में 57 दिनों का विलम्ब हुआ है जिसे स्पष्ट किया गया है। अत: याचिका अनुज्ञात की जाती है और अपील दाखिल करने में हुआ विलम्ब माफ किया जाता है।

आई० ए० निपटाया जाता है।

एम० ए० सं० 269 वर्ष 2008

अपीलार्थी-बीमा कम्पनी द्वारा यह अपील अधिकरण द्वारा पारित उस निर्णय और अधिनिर्णय को चुनौती देते हुए दाखिल किया गया है जिसके द्वारा मोटर वाहन दुर्घटना में एक नवजात शिशु के मृत्यु के लिए एक लाख रुपये की अपर्याप्त राशि अधिनिर्णीत की गयी है।

स्वीकृत तौर पर वाहन बीमा कम्पनी के साथ बीमाकृत था। लेकिन बीमा कम्पनी द्वारा लिया गया बचाव यह है कि वाहन पेट्रोलियम उत्पाद ढो रहा था जो परिसंकटमय माल के वर्ग में आता है, अतः वाहन के स्वामी को अतिरिक्त प्रीमियम का भुगतान करना चाहिए था।

स्वीकृत तौर पर, दुर्घटना से तृतीय पक्ष की मृत्यु कारित हुई और कम से कम तृतीय पक्ष पॉलिसी जारी करना बीमा कम्पनी के लिए आज्ञापक था।

चाहे जो भी हो, हम इन सारे विवादों में जाने का कोई कारण नहीं पाते हैं। अधिकरण द्वारा पारित निर्णय और अधिनिर्णय में इस न्यायालय के हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। अपील खारिज की जाती है।

जैसा अपीलार्थी-बीमा कम्पनी की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री झा ने प्रार्थना किया है, सांविधिक राशि को वापस लेने की अनुज्ञा दी जाती है।''

7. यह न्यायालय इस तथ्य पर न्यायपरक रूप से विचार करती है कि बीमा कम्पनी की यह प्रथा हो गयी है कि जब अधिकरण निर्णय पारित करता है और मुआवजा अधिनिर्णीत करता है, उसके बाद ही सर्वेक्षक प्रतिनियुक्त किया जाता है और अन्वेषण किया जाता है।

8. वर्तमान अपील में भी अतिरिक्त साक्ष्य देने के लिए कोई आवेदन दाखिल नहीं किया गया है।

9. मामले के उस दृष्टि में हम अधिकरण द्वारा पारित अधिनिर्णय में हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं पाते हैं। अपील खारिज की जाती है।

10. जहाँ तक प्रत्याक्षेप का संबंध हैं, हम पाते हैं कि अधिकरण ने अभिप्रायात्मक आय लिया है क्योंकि मृतक 70 वर्ष का था और अभिप्रयात्मक आय के आधार पर अधिकरण ने 75,000/- रुपयों का आकलन किया और एक-तिहाई काट कर भुगतान किया जाने वाला मुआवजा 7000/- रुपये की अतिरिक्त राशि सहित 50,000/- रुपये तय किया गया है।

11. मामले के तथ्यों पर विचार करते हुए, हमारा दृष्टिकोण यह है कि मुआवजा राशि का एक-तिहाई नहीं काटा जाना चाहिए था और दावेदारों को कम से कम 75000/- रुपयों की मुआवजा राशि मिलनी चाहिए थी। अपीलार्थी-बीमा कम्पनी को निर्देश दिया जाता है कि वह दावेदार को बढ़ायी गयी मुआवजा राशि का भुगतान करें।

12. जैसा अपीलार्थी-बीमा कम्पनी की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने प्रार्थना किया है कि दावेदारों को मुआवजा राशि के भुगतान में इसे सक्षम बनाने के लिए सांविधिक राशि वापस लेने की अनुज्ञा दी जाए।

माननीय डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति

आचार्य चंद्रदेव सिन्हा उर्फ चंद्रदेव सिन्हा एवं अन्य

बनाम

झारखंड राज्य

Cr. Rev. No. 488 of 2009. Decided on 18th December, 2009.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 290/295A/420/34—आम जनता की संवेदनाओं को ठेस कारित करना—आनन्द मार्ग द्वारा तांडव नृत्य—उन्मोचन की प्रार्थना अस्वीकृत—गवाह संगति में थे कि तांडव नृत्य का प्रदर्शन आश्रम के परिसर में, न कि सार्वजनिक रूप से, था और इसके लिए स्थानीय प्राधिकारी की पूर्वानुमति की अपेक्षा नहीं की जाती थी क्योंकि यह

उन दर्शकों तक सीमित था जिन्हें आनन्दमार्ग के सिद्धांतों में विश्वास है–प्रिन्ट मीडिया में प्रकाशित खबर पर सूचक ने विश्वास किया–अभिकथित अपराध के लिए याचीगण के विरुद्ध आरोप लगाने के लिए प्रथम दृष्टया सामग्री सामने लाने में अभियोजन विफल रहा–संज्ञान का आदेश अभिखंडित–दांडिक दायित्व से याचीगण को उन्मोचित किया गया–याचिका अनुज्ञात। (पैरा 4, 8 एवं 9)

निर्णयज विधि.–(1983)4 SCC 522—Referred to.

अधिवक्तागण.–Mr. Shankar Lal Agrawal, For the Petitioners; A.P.P., For the State.

डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति.–परसूडीह पी॰ एस॰ केस सं॰ 138 वर्ष 2005, तत्सम जी॰ आर॰ सं॰ 2282 वर्ष 2005, में श्री डी॰ रॉय, न्यायिक दंडाधिकारी, जमशेदपुर द्वारा दिनांक 5.5.2009 के आक्षेपित आदेश, जिसके द्वारा धाराएँ 290/295A/420/34 भा॰ दं॰ सं॰ के अधीन अभिकथित अपराध के लिए उनके उन्मोचन हेतु याचीगण की ओर से दाखिल याचिका अस्वीकृत कर दी गयी थी, के विरुद्ध वर्तमान दांडिक पुनरीक्षण दाखिल किया गया है।

2. संक्षेप में, अभियोजन का मामला यह है कि परसुडीह पुलिस थाना के प्रभारी अधिकारी अर्थात् सूचक ने दैनिक समाचार पत्र 'प्रभात खबर' में एक खबर छपी देखी कि आनन्दमार्गियों द्वारा एक तांडव नृत्य प्रस्तुत एवं आयोजित किया गया था और अपने हाथ में नर खोपड़ी और छुरा लिए हुए बच्चों द्वारा उक्त नृत्य प्रस्तुत किया गया था जिसकी तस्वीरें समाचार पत्र में प्रकाशित की गयी थी। सूचक ने अपने स्रोतों से पता किया कि दिनांक 15.10.2005 और उसके बाद वाले दिन यानी 16.10.2005 को 'आनन्द मार्ग' के जनसंपर्क सचिव सुनील आनन्द द्वारा जिला प्रशासन को अंधेरे में रखते हुए तांडव नृत्य आयोजित किया गया था और उसने प्रिन्ट मिडिया एवं इलेक्ट्रोनिक मीडिया से जुड़े व्यक्तियों को उस प्रोग्राम को कवर करने हेतु निमंत्रित किया था और तद्नुसार विभिन्न टी॰ वी॰ चैनलों पर इसे प्रसारित किया गया था। यह कथन किया गया था कि सर्वोच्च न्यायालय के आदेश द्वारा ऐसे प्रोग्राम विशेषत: तांडव नृत्य का प्रसारण निषेधित है। उक्त प्रोग्राम दिनांक 20.10.2005 से 23.10.2005 तक गोदरा में आनन्द मार्ग के आश्रम में दोहराया गया था जिसने प्रिन्ट मीडिया और इलेक्ट्रोनिक मीडिया का ध्यान आकृष्ट किया था और उस तरीके से आयोजकों ने विभिन्न मतावलम्बी व्यक्तियों की भावना को ठेस पहुँचाने का प्रयास किया था। आचार्य मानव मित्रानन्द अवधूत मुख्य कार्यकारी थे और आचार्य चन्द्रदेव और सुनील आनन्द के पर्यवेक्षण में नृत्य आयोजित किया गया था जो ऐसे संगठन के सक्रिय सदस्य थे और अपने कृत्य द्वारा उन्होंने अपराध किया है। तीनों नामित अभियुक्तों, जो यहाँ इसमें याचीगण है, और उनके सहयोगियों के विरुद्ध प्राथमिकी दर्ज की गयी थी।

3. याची की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने शुरू में ही निवेदन किया कि याचीगण निर्दोष थे और उनमें से किसी के भी विरुद्ध भा॰ दं॰ सं॰ की धाराएँ 290/295A/420/34 के अधीन अभिकथित अपराध की बात तो दूर कोई अन्य आरोप भी नहीं लगाया जा सकता है। धारा 290 भा॰ दं॰ सं॰ सार्वजनिक न्यूसेन्स से संबंधित है जिसे धारा 268 भा॰ दं॰ सं॰ के अधीन परिभाषित किया गया है।

4. विद्वान अधिवक्ता ने इंगित किया कि 'तांडव नृत्य' प्रस्तुत कर प्रदर्शकों ने कोई पब्लिक न्यूसेन्स कारित नहीं किया है क्योंकि इसे आश्रम में प्रस्तुत किया गया था जिसे सूचक ने भी माना है। न्यूसेन्स अपराध का मुख्य घटक यह है कि यह आम लोगों को हानि अथवा क्षोभ कारित कर सकता है अथवा उन लोगों को जो अगल-बगल रहते हैं अथवा संपत्ति काबिज किए हैं, को अनावश्यक हानि,

खतरा, रूकावट अथवा क्षोभ कारित करेगा। लेकिन वर्तमान मामले में, ऐसे तांडव नृत्य के विरुद्ध किसी ने भी किसी प्रकार की शिकायत नहीं की है जो आश्रम की परिधि तक सीमित था। अधिवक्ता ने प्रसिद्ध लैटिन उक्ति "*Sic Uteri Tuout Allienum Nun Laedes*" पर विश्वास किया है जिसका अर्थ है अपनी संपत्ति से उस तरीके से प्रसन्नता हासिल करो जो दूसरों के अधिकार को क्षति न करे।

5. भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 295A के अधीन अपराध के संबंध में, अधिनियम 29 वर्ष 1927 द्वारा अंत:स्थापित किया गया था जो कहता है कि जो कोई भी उच्चारित अथवा लिखित शब्दों द्वारा अथवा गानों द्वारा अथवा दृष्यमान प्रतिबिम्बों द्वारा अथवा अन्यथा किसी वर्ग की धार्मिक भावनाओं को आहत करने के जानबूझकर और द्वेषपूर्ण आशय से उस वर्ग के धर्म अथवा धार्मिक विश्वासों को अपमानित करता है अथवा अपमानित करने का प्रयास करता है, उसे ऐसी अवधि के कारावास जो तीन वर्षों तक बढ़ायी जा सकती है, अथवा जुर्माने अथवा दोनों के साथ सजा दी जाएगी। वर्तमान मामले में, याचीगण के विरुद्ध ऐसे अपराध के लिए मामला बनाने में अभियोजन विफल रहा अभियोजन यह सिद्ध करने में विफल रहा कि लिखित अथवा आशयपूर्ण शब्दों, निवेदनों, द्वारा अन्य समुदाय की धार्मिक भावनाओं को ऐसे प्रदर्शन ने आहत किया है अथवा यह कि याचीगण ने विभिन्न समुदायों की धार्मिक भावनाओं को अपमानित किया है अथवा अपमानित करने का प्रयास किया है। उस अपराध में विद्वान अवर न्यायालय द्वारा संज्ञान लिया जाना और तथ्यों और परिस्थितियों में धारा 295A लागू करना घोर अन्याय होगा क्योंकि अभिकथित अपराध करने में याचीगण की आपराधिक मन:स्थिति के बारे में केस डायरी में कोई सामग्री दर्शाने में अभियोजन विफल रहा।

6. धारा 420 भा॰ दं॰ सं॰ के संबंध में, अपने आश्रम के भीतर तांडव नृत्य के प्रदर्शन, प्रस्तुतीकरण के लिए स्थानीय प्रशासन से अनुज्ञा याचीगण ने स्वीकृत तौर पर इप्सित नहीं किया था क्योंकि यह अपेक्षित नहीं था क्योंकि यह आश्रम की चारदीवारी के परे किसी सार्वजनिक स्थल पर प्रस्तुत नहीं किया गया था। अन्यथा भी, तांडव नृत्य के प्रदर्शन अथवा प्रस्तुतीकरण हेतु स्थानीय प्रशासन से अनुज्ञा ईप्सित करने में विफलता भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 420 के अधीन अपराध के प्रावधानों को आकृष्ट नहीं करता है।

7. अंत में, विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि **1983 (4) SCC Page 522** में प्रकाशित सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विरचित विधि की प्रतिपादना को सूचक ने उद्धृत किया है और सूचक ने अभिकथन किया आनन्दमार्गियों का ऐसा प्रदर्शन निषेधित था। विधि की ऐसी प्रतिपादना पर विश्वास करते हुए, दांडिक पुनरीक्षण याचिका के पैराग्राफ-5 में किए गए प्राख्यान के आधार पर विद्वान अधिवक्ता ने स्पष्ट किया कि सर्वोच्च न्यायालय ने संप्रेक्षित किया था कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 25/26 के अधीन आनन्दमार्ग को कोई मौलिक अधिकार नहीं है क्योंकि यह सेबाईत होने के नाते हिन्दू का एक पंथ है इसलिए कुछ ऐसा करने के लिए जो कि मूल धर्म में प्रतिबंधित था उन अनुच्छेदों के अधीन उन्हें अधिकार नहीं था। सार्वजनिक दृष्टि में त्रिशूल, छुरा और जिन्दा साँप ढोने से आनन्दमार्गी प्रतिबंधित थे क्योंकि यह सार्वजनिक शांति भंग करेगा, सार्वजनिक व्यवस्था और प्रशांति को हानि पहुँचाएगा। लेकिन यह संप्रेक्षित किया गया था कि संबंधित प्राधिकारी से आवश्यक अनुज्ञा प्राप्त कर आनन्दमार्गी जुलूस निकाल सकते है और उन्हें त्रिशूल और खोपड़ी ढोने का हक है जबतक कि जुलूस शांतिपूर्ण है। वर्तमान मामले में धर्म, जाति अथवा भाषा के आधार पर हिंसा फैलाते याचीगण नहीं पाए गए थे। अत: उक्त तर्कों के आधार पर याचीगण का अभियोजन द्वेषपूर्ण, अनावश्यक है और अपास्त किए जाने योग्य है।

8. विद्वान ए॰ पी॰ पी॰ निवेदन करते हैं कि याचीगण, जो तांडव नृत्य के आयोजक थे, ने प्रदर्शन के लिए स्थानीय प्राधिकारी से पूर्व अनुज्ञा नहीं प्राप्त किया था और यह कि तांडव नृत्य के प्रदर्शन के टेलीकास्ट से निश्चित रूप से उपधारित किया जाएगा कि टेलीविजन के माध्यम से इसे आम दर्शकों

की उपस्थिति में प्रस्तुत किया गया था और इसलिए उनकी दांडिक जिम्मेदारियों से याचीगण को मुक्त नहीं किया जा सकता है। लेकिन विद्वान ए॰ पी॰ पी॰ ने स्वीकार किया कि भिन्न मतावलम्बी किसी व्यक्ति की धार्मिक भावना को चोट पहुँची है बैसा अभिकथन करते कोई शिकायत दर्ज नहीं किया गया है। प्रति शपथ पत्र के पैराग्राफ-9 के संबंध में, विद्वान ए॰ पी॰ पी॰ ने निवेदन किया कि याचीगण के विरुद्ध धारा 420 भा॰ दं॰ सं॰ लागू होती थी क्योंकि ऐसा नृत्य प्रस्तुत करने के लिए प्राधिकारी से पूर्व अनुज्ञा उन्होंने प्राप्त नहीं किया था।

9. मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों, पक्षों की ओर से प्रस्तुत तर्कों और केस डायरी में निर्दिष्ट सामग्रियों जिन्हें अभिलेख पर लाया गया है को देखते हुए मैं पाता हूँ कि धाराएँ 290/295A/420/34 भा॰ दं॰ सं॰ के अधीन अभिकथित अपराध के लिए याचीगण के विरुद्ध आरोप लगाने हेतु प्रथम दृष्टया सामग्री जुटाने में अभियोजन विफल रहा है। गवाह संगति में है कि तांडव नृत्य का प्रदर्शन आश्रम के परिधि के अंतर्गत था न कि सार्वजनिक दृष्टि में और इसके लिए स्थानीय प्राधिकारी की पूर्व अनुज्ञा अपेक्षित नहीं थी क्योंकि यह उन व्यक्तियों तक सीमित था जिनकी आस्था आन्दमार्ग के सिद्धान्त में है। सूचक ने प्रिन्ट मीडिया में प्रकाशित फोटोग्राफ सहित खबर पर विश्वास किया और ऐसा प्रदर्शन इलेक्ट्रोनिक मीडिया के माध्यम से टेलीकास्ट किया गया था। लेकिन तथ्य बना रहता है कि किसी सार्वजनिक स्थल अथवा सड़क पर नृत्य आयोजित नहीं किया गया था और प्रिन्ट अथवा इलेक्ट्रोनिक मीडिया में इसके कवरेज पर कोई अभिव्यक्त पाबंदी नहीं थी। जुलूस आयोजित करने हेतु माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कतिपय स्वतंत्रता दी थी और उन्हें त्रिशूल और खोपड़ी ढोने की अनुज्ञा थी लेकिन स्थानीय प्रशासन की अनुमति से। वर्तमान मामले में चूँकि यह स्वीकार किया गया था कि समस्त प्रदर्शन अथवा प्रस्तुतीकरण आश्रम की परिधि के अंतर्गत किया गया था, अत: मैं पाता हूँ कि दांडिक अभियोजन का सामना करने के लिए याचीगण के विरुद्ध धाराएँ 290/295A/420/34 भा॰ दं॰ सं॰ के अधीन घटक आकृष्ट नहीं होते हैं। मैं इस याचिका में गुणागुण पाता हूँ। तद्नुसार, परसूडीह पी॰ एस॰ केस सं॰ 138 वर्ष 2005 तत्सम जी॰ आर॰ सं॰ 2282 वर्ष 2005, में संज्ञान लेता दिनांक 5.5.2009 का आक्षेपित आदेश अपास्त किया जाता है। याचीगण को उनकी दांडिक जिम्मेदारियों से उन्मोचित किया जाता है।

10. तद्नुसार, यह याचिका अनुज्ञात की जाती है।

माननीय एम॰ वाई॰ इकबाल, न्यायमूर्ति

आजाद चन्द्र शेखर प्रसाद सिंह

बनाम

झारखंड राज्य

Cr. M.P. No. 584 of 2007. Decided on 21st December, 2009.

भारतीय दण्ड संहिता, 1860—धारा 379 सह-पठित विद्युत अधिनियम, 2003 की धारा 33/34—दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973— धारा 468—विद्युत चोरी–संज्ञान–परिसीमा के अवरोध का अभिवाक्–छपे हुए प्रपत्र में कुछ रिक्त स्थानों को भरते हुए मुख्य न्यायिक दण्डाधिकारी द्वारा यांत्रिक रूप से आदेश पारित किया गया था–न्यायिक विवेक का पूर्ण अनुपयोजन–इसके अलावे, याची को 2002 से ही मुकदमें में घसीटा जा रहा है–याची को पर्याप्त रूप से दण्डित

किया जा चुका है–कार्यवाही को जारी रखना उचित नहीं होगा–संज्ञान का आदेश अभिखण्डित–आवेदन अनुज्ञात। (पैरा 5 से 8)

अधिवक्तागण.–Mr. P.C. Tripathi, For the Petitioner; M/s. A.P.P., Rajesh Shankar, For the State.

आदेश

पक्षकारों की ओर से विद्वान अधिवक्तागण को सुना।

2. इस आवेदन के द्वारा, याची ने दिनांक 31.8.2005 के संज्ञान के आदेश को अभिखंडित करने के लिए प्रार्थना किया है जिसके द्वारा, मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, राँची ने विद्युत अधिनियम की धारा 33/34 एवं भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 379 के अन्तर्गत अपराध का संज्ञान लिया था।

3. तथ्य, जो विवादित नहीं थे, वे यह है कि सहायक अभियंता ने 4.3.2002 को प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज किया कि अन्य बातों के साथ साथ अभिकथन करते हुए कि दिनांक 2.3.2002 को उसके द्वारा जाँच की गई, उसने पाया कि याची टोका फंसाकर बिजली की चोरी कर रहा है। एक आपराधिक मामला दिनांक 4.3.2002 को दाखिल किया गया था एवं 31.8.2005 को संज्ञान का आक्षेपित आदेश पारित किया गया था।

4. याची की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता, श्री पी॰ सी॰ त्रिपाठी ने मुख्यत: इस आधार पर आक्षेपित आदेश का आलोचना किया कि दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 468 के अधीन प्रावधानों द्वारा संज्ञान लेने वाला यह आदेश वर्जित है चूँकि केस का संज्ञान तीन वर्षों की अवधि के बाद लिया गया है।

5. आक्षेपित आदेश के परिशीलन से, यह प्रत्यक्ष रूप से स्पष्ट है कि कतिपय रिक्त स्थानों को एक छपे फार्म में भरते हुए मुख्य न्यायिक दण्डाधिकारी द्वारा यांत्रिक आदेश पारित किया गया है। दण्डाधिकारी द्वारा पूर्णत: न्यायिक विचार का अनुपयोजन है। केबल इस आधार पर ही संज्ञान का आदेश विधि में कायम नहीं रखा जा सकता है।

6. यद्यपि पारिणामिक आदेश एक नये आदेश के लिए मामले को मजिस्ट्रेट के पास प्रतिप्रेषित करने का होगा, परन्तु वर्तमान मामले में मैंने प्राथमिकी से पाया कि याची के विरुद्ध लगाया गया अभिकथन यह है कि विद्युत चोरी के कारण, बोर्ड ने 5000/- रु॰ का नुकसान झेला है। श्री त्रिपाठी निवेदन करते हैं कि याची को जमानत पर मुक्त करते समय बोर्ड के समक्ष 5000/- रु॰ जमा किया जा चुका है।

7. पूर्वोक्त तथ्यों एवं इस तथ्य का भी ख्याल करते हुए कि याची को 2002 से मुकदमें में घसीटा गया है इस कार्यवाही का जारी रहना उचित नहीं होगा जबकि याची पर्याप्त रूप से दण्डित किया जा चुका है। इस कारण न्याय के हित में सभी आपराधिक कार्यवाहियों के साथ संज्ञान का आदेश भी अभिखंडित किया जाता है। यद्यपि, यह आदेश दूसरे वादों के लिए पूर्व दृष्टांत नहीं होगा।

8. यह याचिका तदनुसार अनुज्ञात किया जाता है।

माननीय डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति

प्रकाश प्रसाद स्वर्णकार

बनाम

झारखण्ड राज्य एवं अन्य

Cr. Rev. No. 749 of 2008. Decided on 10th December, 2009.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 147/323/504/341—उपहति एवं अपमान–दोषमुक्ति के विरुद्ध पुनरीक्षण–अभियुक्तों के विरुद्ध अभिकथित अपराध सम्मन विचारण की प्रकृति के थे और उनमें से प्रत्येक को आरोप का सार स्पष्ट किया गया था–अभियुक्तों के विचारण के संचालन के दौरान प्रक्रिया में किसी बड़ी त्रुटि अथवा विधि के किसी बिन्दु पर प्रकट गलती के परिणामस्वरुप घोर अन्याय दर्शाने में याची विफल रहा–दोषमुक्ति के निर्णय में हस्तक्षेप हेतु कोई आधार नहीं–पुनरीक्षण याचिका खारिज। (पैरा 5 से 7)

निर्णयज विधि.–AIR 1962 SC 1788—Relied upon.

अधिवक्तागण.–Mr. P.P.N. Roy, For the Petitioner; A.P.P., For the State; M/s Anil Kumar, Satish Kumar, Aman Kumar Gupta, Kumari Jagriti, For the O.P. No. 2 to 8.

डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति.–भा॰ दं॰ सं॰ की धाराएँ 147/323/504/341 के अधीन आरोप के लिए जी॰ आर॰ सं॰ 2960 वर्ष 2002, तत्सम टी॰ आर॰ सं॰ 128 वर्ष 2008 में दिनांक 3.5.2008 को श्री प्रकाश झा, न्यायिक दंडाधिकारी, प्रथम श्रेणी, हजारीबाग द्वारा पारित उनके दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश को अपास्त करते हुए दिनांक 10 जुलाई, 2008 को सत्र न्यायाधीश, हजारीबाग द्वारा दां॰ अपील सं॰ 70 वर्ष 2008 में अभिलिखित यहाँ इसमें वि॰ प॰ सं॰ 2 से 8 तक की दोषमुक्ति के निर्णय के विरुद्ध यह दांडिक पुनरीक्षण याचिका दाखिल की गयी है।

2. वर्तमान वि॰ प॰ सं॰ 2 से 8 के विरुद्ध याची की ओर से दाखिल परिवाद याचिका के विरुद्ध अभियोजन शुरू किया गया था जिसमें अन्य बातों के साथ अभिकथन किया गया था कि दिनांक 20.11.2002 को प्रातः लगभग 9.30 बजे जब वह अपने घर में स्वर्णाभूषण बना रहा था, वि॰ प॰ सं॰ 2 से 8 विधि विरूद्ध जमाव बनाते हुए जबरन उसके घर में घुस आए और उसे गाली देने लगे। वि॰ प॰ सं॰ 2 लखन प्रसाद के विरुद्ध अभिकथन किया गया था कि उसने परिवादी का गला घोटने का प्रयास किया जबकि वि॰ प॰ सं॰ 6 निरंजन प्रसाद ने उस पर 'फरसा' से प्रहार करने का प्रयास किया लेकिन परिवादी बच निकलने में कामयाब रहा। अभियुक्त जयबीर सोनार के उकसाने पर, अभियुक्त मनोज कुमार ने गवाह श्याम किशोर पर 'बल्लम' से प्रहार करने का प्रयास किया लेकिन उसे अन्य गवाह नन्द किशोर जो परिवादी का भाई है, द्वारा बचा लिया गया। इसी बीच परिवादी सूचक के भाईयों, उसकी माता, पत्नी, बहन, भाभी और नन्द किशोर की पत्नी ने मदद के लिए गुहार लगायी, लेकिन सारे अभियुक्तों ने लाठी से उसकी माता को मारा जिसके परिणामस्वरुप उसे अनेक उपहतियाँ हुई अन्य अभियुक्त प्रभात कुमार, संतोष कुमार और संजीत कुमार के विरुद्ध आरोप यह था कि उन्होंने परिवादी के घर का सारा सामान बिखेर दिया और सारे अभियुक्त परिवादी के कब्जे से आभूषण लेकर चले गए। घटना की जड़ में भूमि विवाद था और विरोधी पक्ष-अभियुक्त के सदस्य उसकी जमीन हथियाना चाहते थे और उन्हें पहले भी एक अन्य मामले में न्यायालय द्वारा दोषी अभिनिर्धारित किया गया था। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156 (3) के अधीन अभिलिखित आदेश के अनुसरण में, भारतीय दंड संहिता की धाराएँ 174/341/323/504 के अधीन अभिकथित अपराध के लिए दिनांक 4.12.2002 को रामगढ़ पी॰ एस॰ केस सं॰ 441 वर्ष 2002 के तौर पर मामला दर्ज किया गया था।

3. याची की ओर से उपस्थित विद्वान वरीय अधिवक्ता श्री पी॰ पी॰ एन॰ राय ने दिनांक 10 जुलाई, 2008 को अभिलिखित दांडिक अपील सं॰ 70 वर्ष 2008 में सत्र न्यायाधीश, हजारीबाग द्वारा पारित दोषमुक्ति के आक्षेपित आदेश का विरोध इस आधार पर किया है कि चश्मदीद गवाह अर्थात् अ॰ सा॰ 1 भुवनेश्वर प्रसाद, अ॰ सा॰ 2, देवनंदन सोनार, अ॰ सा॰ 3 श्याम किशोर वर्मा, अ॰ सा॰ 4 नंद

किशोर प्रसाद, अ॰ सा॰ 5 प्रकाश प्रसाद स्वर्णकार यानी स्वयं सूचक और अ॰ सा॰ 6 इरशाद अन्सारी के साक्ष्य के तात्विक अंश दोषमुक्ति का आदेश अभिलिखित करते समय अनदेखा और नजर अंदाज किया गया था यद्यपि उन्होंने पक्के तौर पर और लगातार कथन किया कि उन्होंने अभियुक्त को अंतर्ग्रस्त करते घटना को देखा था जिन्होंने सूचक, उसके भाई और माता पर प्रहार किया और परिवादी/सूचक के घर का दरवाजा तोड़कर गाली-गलौज की भाषा का प्रयोग किया। वे इस बारे में भी संगति में थे कि सारे अभियुक्तों, अर्थात् यहाँ इसमें वि॰ प॰ सं॰ 2 से 8 ने विधि विरूद्ध जमाव बनाते हुए कानून अपने हाथ में लेते हुए परिवादी के घर में घुस गए, घर के सदस्यों पर प्रहार किया और घरेलू सामान को बिखेर दिया। विद्वान सत्र न्यायाधीश यह विचार में लेने में विफल रहें कि पक्षों के बीच भूमि विवाद होने के कारण अभियुक्त इस विवाद के जड़ में थे जिन्होंने कानून अपने हाथ में लिया और परिवादी की निजी जिन्दगी और संपत्ति में प्रवेश की वजह से वे आक्रमणकारी थे और अभिलेख पर ऐसी सामग्रियाँ होने की दृष्टि में अभियुक्तगण की दोषमुक्ति घोर अन्याय होगी और इस लिए दांडिक अपील सं॰ 70 वर्ष 2008 में सत्र न्यायाधीश हजारीबाग द्वारा अभिलिखित दोषमुक्ति के निर्णय को अपास्त किया जा सकता है और मामले को पुनर्विचार हेतु वापस भेजने का समुचित आदेश तद्नुसार पारित किया जा सकता है।

4. वि॰ प॰ सं॰ 2 से 8 तक की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री अनिल कुमार ने याची के अधिवक्ता के प्रतिवाद का जोरदार विरोध किया और निवेदन किया कि सत्र न्यायाधीश द्वारा अपील में अभिलिखित निर्णय सुविचारित है और मामला यह नहीं था कि जिसमें अभियुक्तगण जो इसमें के वि॰ प॰ सं॰ 2 से 8 हैं की स्पष्ट दोषमुक्ति अधिनिर्णीत की गयी थी बल्कि उन्हें संदेह का लाभ देने के बाद दोषमुक्त किया गया था क्योंकि विद्वान सत्र न्यायाधीश ने अभिनिर्धारित किया था कि सारी संभावनाओं से परे अभियोजन मामला सिद्ध नहीं किया जा सका था। सत्र न्यायाधीश ने निम्नलिखित संप्रेक्षित किया:-

> *''यह प्रकट है कि समस्त गवाहों ने घटना स्थल और घटना के तरीके के बारे में अलग-अलग कथन किया है। परिवादी ने कथन किया कि उस पर टांगी से प्रहार किया गया था और मनोज ने उसके भाई पर बल्लम से प्रहार किया था लेकिन समस्त गवाहों ने कथन किया है कि उन पर घूंसे और मुक्के से प्रहार किया गया था। घटनास्थल भी निश्चित नहीं है। जहाँ सूचक ने कथन किया कि उसने कुआँ पर बैठे हुए घटना देखी लेकिन अन्य गवाहों ने कथन किया कि उन्होंने घटना घर के बाहर होती देखी। गवाहों में से कुछ ने कथन किया कि घटना घर के अंदर हुई थी। घटनास्थल और घटना के तरीके के बारे में महत्वपूर्ण विसंगतियाँ है। अतः मेरे विचार में अभियोजन का मामला संदेहास्पद है और युक्तियुक्त संदेह के परे मामला सिद्ध करने में अभियोजन विफल रहा है। तद्नुसार अपीलार्थीगण को संदेह का लाभ दिया जाता है और उन्हें उनके विरुद्ध लगाए गए आरोपों से दोषमुक्त किया जाता है।''*

5. यहाँ यह उल्लिखित करना अनावश्यक नहीं होगा कि अभियुक्तगण के विरुद्ध अभिकथित अपराध सम्मन विचारण की प्रकृति का था और उनमें से प्रत्येक को आरोप का सार बताया गया था। लेकिन याचीगण की ओर से उपस्थित अधिवक्ता कोई भी आधार दर्शाने में विफल रहे कि अपीलीय न्यायालय द्वारा किए गए संप्रेक्षण में अवैधता अथवा विशेष तत्वों पर अनियमितता थी अथवा उनके संप्रेक्षण में अभिलेख की गलती थी जो हस्तक्षेप की अपेक्षा करता है।

6. के॰ चिन्न स्वामी रेड्डी बनाम आंध्र प्रदेश राज्य एवं एक अन्य, AIR 1962 SC 1788 में प्रकाशित मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने संप्रेक्षित किया:–

''यह सत्य है कि निजी पक्षों की प्रेरणा पर, भले ही राज्य ने अपील करना सही नहीं समझा हो, उच्च न्यायालय को पुनरीक्षण में दोषमुक्ति के आदेश को अपास्त करने की छूट है, लेकिन हमारे विचार में केवल आपवादिक मामलों में ही उच्च न्यायालय को इस अधिकारिता का प्रयोग करना चाहिए, जब प्रक्रिया में बड़ी त्रुटि है अथवा विधि के बिन्दु पर स्पष्ट गलती हो जिसके परिणामस्वरुप घोर अन्याय हुई हो। धारा 439 की उपधारा (4) दोषमुक्ति के निष्कर्ष को दोषसिद्धि में बदलने से उच्च न्यायालय को मना करती है और यह उच्च न्यायालय को और भी ज्यादा जिम्मेदार बनाती है कि वह देखे कि पुनर्विचारण का आदेश देने के अप्रत्यक्ष तरीके के द्वारा वह दोषमुक्ति के निष्कर्ष को दोषसिद्धि के निष्कर्ष में नहीं बदल दे जब वह स्वयं प्रत्यक्ष रूप से दोषमुक्ति के निष्कर्ष को दोषसिद्धि के निष्कर्ष में नहीं बदल सकता है। यह पुनरीक्षण में दोषमुक्ति के निष्कर्ष को अपास्त करने की उच्च न्यायालय की शक्ति को सीमित करता है और केवल आपवादिक मामलों में ही इस शक्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए। ऐसे आपवादिक मामलों को विनिश्चित करने का मापदंड अधिक कथित करना संभव नहीं है जो सारी आकस्मिकताओं को आच्छादित करेगा। हम इस प्रकार के कुछ मामलों को उपदर्शित कर सकते हैं जो हमारे मत में पुनरीक्षण में दोषमुक्ति के निष्कर्ष में उच्च न्यायालय के हस्तक्षेप को न्यायोचित बना सकता है। ऐसे मामले हो सकते हैं जहाँ विचारण न्यायालय को मामले की विचारण करने की अधिकारिता नहीं हो लेकिन फिर भी इसने अभियुक्त को दोषमुक्त कर दिया है अथवा जहाँ विचारण न्यायालय ने साक्ष्य प्रस्तुत करने से मना कर दिया है जिन्हें अभियोजन प्रस्तुत करना चाहता था अथवा जहाँ अपील न्यायालय ने साक्ष्य को गलत रूप से अभिनिर्धारित किया है जो विचारण न्यायालय के अनुसार स्वीकृत किए जाने योग्य नहीं था अथवा जहाँ विचारण न्यायालय अथवा अपील न्यायालय द्वारा तात्विक साक्ष्य को नजरअंदाज कर दिया गया है अथवा जहाँ दोषमुक्ति अपराध की शमनीयता पर आधारित है जो विधि के अधीन अवैध है। इन और इसी प्रकृति के अन्य मामलों को आपवादिक प्रकृति का मामला समुचित रूप से अभिनिर्धारित किया जा सकता है जहाँ उच्च न्यायालय न्यायोचित रूप से दोषमुक्ति के आदेश में हस्तक्षेप कर सकता है।''

7. मैं यह संप्रेक्षित करने हेतु मजबूर हूँ कि याची के विद्वान अधिवक्ता वर्तमान मामले को अभियुक्तगण के विचारण का संचालन करते हुए प्रक्रिया में किसी बड़ी त्रुटि अथवा विधि के बिन्दु पर स्पष्ट गलती के परिणामस्वरुप घोर अन्याय अथवा विधि की प्रतिपादना पर विश्वास करते अन्य मापदंडों को इंगित करते हुए आपवादिक मामला दर्शाने में विफल रहे है जैसा यहाँ इसमें पहले निर्दिष्ट किया गया है। टी॰ आर॰ सं॰ 128 वर्ष 2008 (जी॰ आर॰ सं॰ 2960 वर्ष 2002) से उद्भूत दांडिक अपील सं॰ 70 वर्ष 2008 में सत्र न्यायाधीश द्वारा अभिलिखित दोषमुक्ति के निर्णय में हस्तक्षेप के लिए आधार दर्शाने में वरीय अधिवक्ता विफल रहे जो हस्तक्षेप की अपेक्षा करता हो।

8. कोई गुणागुण न होने के कारण, यह पुनरीक्षण खारिज किया जाता है।

माननीय एम॰ वाई॰ इकबाल एवं जया रॉय, न्यायमूर्तिगण

बरहो सिंह एवं अन्य

बनाम

श्रीमती तुलेश्वरी देवी एवं अन्य

LPA No. 784 of 2001. Decided on 18th December, 2009.

प्रतिकूल कब्जा–प्रतिवादीगण के पक्ष में भूमि का टाइटल सूट डिक्री किया गया–जब प्रतिवादीगण यह मामला लेकर आए कि अभिलिखित-स्वामी द्वारा मौखिक रूप से वाद भूमि उन्हें उपहार में दी गयी थी, वे अभिलिखित स्वामी और उसकी पुत्री के विरुद्ध विरोधी टाइटल का दावा नहीं कर सकते थे–प्रतिवादियों द्वारा प्रतिकूल कब्जा द्वारा टाइटल का दावा करने हेतु दोनों घटक पर्याप्त रूप से सिद्ध नहीं किए गए–विचारण न्यायालय ने गलत रूप से अभिनिर्धारित किया कि प्रतिकूल कब्जा द्वारा प्रतिवादीगण ने अपना टाइटल पक्का कर लिया–विचारण न्यायालय द्वारा अभिलिखित निष्कर्ष विधि में पूर्णतः गलत है और एकल न्यायाधीश द्वारा सही रूप से अपास्त किया गया–अपील खारिज। (पैरा 8 से 10)

अधिवक्तागण.–M/s Rajan Raj, Ravi Kerketta, For the Appellants; M/s Manjul Prasad, Arvind Kr. Sinha, For the Respondents.

एम॰ वाई॰ इकबाल, न्यायमूर्ति.–यह अपील लेटर्स पेटेन्ट के खंड 10 के अधीन प्रतिवादीगण-अपीलार्थीगण द्वारा प्रथम अपील सं॰ 112 वर्ष 1986 (आर॰) में दिनांक 16.10.2001 को पारित उस आदेश के विरुद्ध दाखिल की गयी है जिसके द्वारा विद्वान एकल न्यायाधीश ने अपील अनुज्ञात किया था और टाइटल सूट सं॰ 3 वर्ष 1980 में अधीनस्थ न्यायाधीश, हजारीबाग द्वारा पारित निर्णय और डिक्री को अपास्त कर दिया था।

2. टाइटल की घोषणा और कब्जे की संपुष्टि के लिए और विकल्प में खाता सं॰ 20, 21 और 22, ग्राम बरदेवा, पी॰ एस॰ बड़ही जिला-हजारीबाग के वादित भूमि के कब्जे की वापसी के लिए वादीगण-प्रत्यर्थीगण ने पूर्वोक्त टाइटल सूट सं॰ 3 वर्ष 1980 प्रतिवादीगण-अपीलार्थीगण के विरुद्ध दाखिल किया। अन्य बातों के साथ वादीगण का मामला यह है कि बरखातौर सिंह पक्षों का साझा पूर्वज था जिसको दो पुत्र भिखारी सिंह और नारायण सिंह थे। भिखारी सिंह अपने पीछे पाँच पुत्रों अर्थात चोहन सिंह, चिनू सिंह, गोपाल सिंह, जग्गू सिंह और जीतू सिंह को छोड़ कर मर गया। नारायण सिंह को एक पुत्र मिठू सिंह था जिसके दो पुत्र अर्थात् निरपु सिंह और तेजो सिंह थे और एक पुत्री थी जिसका विवाह रूपु सिंह के साथ हुआ। तेजोसिंह निःसंतान मृत्यु प्राप्त किया। निरपु सिंह को तीन पुत्रियाँ अर्थात् खेमनी, सिबिया और रुक्नी थी। स्वीकृत तौर पर, वादीगण और प्रतिवादीगण भिखारी सिंह के वंशज है। प्रतिवादीगण सं॰ 3 से 5 लालू सिंह के पुत्र है।

3. स्वीकृत तौर पर, खाता सं॰ 20 के अंतर्गत आने वाली वादभूमि निरपु सिंह के नाम पर अभिलिखित किया गया था जबकि खाता सं॰ 21 की भूमि निरपू सिंह एवं तेजो सिंह के नाममें संयुक्त रूप से अभिलिखित किया गया था। जहाँ तक खाता सं॰ 22 की भूमि का संबंध है, इसका एक हिस्सा निरपू सिंह एवं तेजो सिंह के नाम में और दूसरा हिस्सा ज्ञान सिंह के पुत्र भवानी सिंह के नाम में अभिलिखित किया गया था। वादीगण का मामला यह है कि निरपू सिंह की पुत्री मोसमात सिबिया ने अनुसूची-B की संपत्तियाँ वादीगण को बेच दी और उक्त भूमि खरीदने के बाद वादीगण ने अंचल अधिकारी के समक्ष नामान्तर हेतु आवेदन दिया। लेकिन उठायी गयी आपत्ति के कारण, अंचल अधिकारी ने सिविल न्यायालय के माध्यम से अपना विवाद का समाधान करने का निर्देश पक्षों को दिया। वादीगण-प्रत्यर्थीगण ने अभिवाक् किया कि चूँकि तेजो सिंह की मृत्यु निःसंतान हो गयी, निरपू सिंह वाद भूमि का एकमात्र स्वामी बन गया। उसकी तीन पुत्रियाँ थी। पुत्रियों में से एक खेमनी की मृत्यु उसकी मृत्यु से पहले हो गयी और दूसरी पुत्री रूक्नी की भी मृत्यु हो गयी। उनकी मृत्यु के बाद सिबिया ने वाद भूमि का पूर्ण टाइटल और कब्जा प्राप्त किया जिससे वादीगण ने दिनांक 23.10.1967 के रजिस्टर्ड विक्रय विलेख द्वारा वाद भूमि खरीदा।

4. दूसरी ओर प्रतिवादीगण का मामला यह है कि बहन का पुत्र अर्थात् लालू सिंह निरपू सिंह के साथ रह रहा था और वृद्धावस्था में उसकी देखभाल कर रहा था। निरपू सिंह के निकटतम गोत्रज

अर्थात गुआर्दु सिंह, अम्बो सिंह और टहल सिंह भी उसकी और उसकी संपत्तियों की देखभाल कर रहे थे। प्रतिवादीगण के अनुसार, अपनी मृत्यु के पहले निरपू सिंह ने वाद भूमि को अपने तीन गोत्रजों और बहन के पुत्र लालू सिंह के बीच विभाजित कर दिया था। प्रतिवादीगण का आगे मामला यह है कि लालू सिंह को निरपू सिंह की संपत्ति का एक चौथाई हिस्सा मिला जो उसे मौखिक उपहारस्वरुप दिया गया था। प्रतिवादीगण ने इस प्रकार मामला बनाया कि चूँकि अपने जीवन काल में निरपू सिंह ने अपनी संपत्ति का बँटवारा कर दिया था, उसकी पुत्री सिबिया को विरासत में मिल सकने वाला कुछ भी नहीं शेष था। परिणामस्वरुप, वादीगण के पक्ष में वाद संपत्तियाँ अंतरित करने का अधिकार सिबिया को नहीं था। प्रतिवादीगण ने आगे मामला यह बनाया है कि निरपू सिंह और उसकी पुत्री सिबिया की खुली और प्रतिकूल जानकारी में वाद भूमि पर उनका अव्यवधानित और शांतिमय कब्जा था और उन्होंने प्रतिकूल कब्जे द्वारा अपना टाइटल पक्का कर लिया है।

5. विचारण न्यायालय ने यह निष्कर्ष अभिलिखित किया कि प्रतिवादीगण ने प्रतिकूल कब्जा द्वारा अपना टाइटल पक्का कर लिया है और मोसमात सिबिया ने वाद भूमि पर अपना पूर्ण स्वामित्व प्राप्त नहीं किया था। मौखिक एवं दस्तावेजी समस्त साक्ष्य के अधिमूल्यन के बाद प्रथम अपीलीय न्यायालय ने इस निष्कर्ष पर आया कि प्रतिवादीगण को एक साथ दो परस्पर विरोधी बात कहने की अनुज्ञा दी नहीं जा सकती है। जब एक बार उन्होंने प्रतिवाद किया कि वाद भूमि निरपू सिंह द्वारा उन्हें मौखिक रूप से उपहार में दी गयी थी, प्रतिकूल कब्जा द्वारा निरपू सिंह और उसकी पुत्री सिबिया के विरुद्ध उन्हें अपने टाइटल का दावा करने का प्रश्न अथवा अवसर नहीं था। परिणामस्वरुप, विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री को अपास्त कर दिया।

6. मैंने अपीलार्थीगण की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री राजन राय को सुना। अपीलार्थीगण की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा अभिलिखित निष्कर्ष का विरोध मुख्यत: इस आधार पर किया है कि अपीलीय न्यायालय ने प्रदर्श-बी॰ पर विचार करने में विफल रहा जो रजिस्ट्रेशन कार्यालय के मूल रजिस्टर में विक्रय विलेख के संबंध में की गयी प्रविष्टियाँ है जिनसे प्रकट होगा कि वादी लाखो सिंह और मोसमात जिरिया ने वाद भूमि के अंश से संबंधित प्रतिवादीगण में से कुछ के पक्ष में विक्रय विलेख निष्पादित किया था। विद्वान अधिवक्ता ने आगे निवेदन किया कि विद्वान एकल न्यायाधीश ने दस्तावेजी साक्ष्य विशेषत: प्रदर्श-ई॰ श्रृंखला और प्रदर्श-आई॰ जो प्रतिवादीगण के पक्ष में भूमि का नामान्तर दर्शाती रजिस्टर-II की प्रमाणित प्रति है, पर भी विचार करने में विफल रहा।

7. टाइटल और कब्जा के प्रश्न का निर्णय करते हुए विचारण न्यायालय ने निर्णय के पैरा-18 में निष्कर्ष समापन किया जिसका पठन निम्नलिखित है:-

> *''18. उपर की गयी चर्चा और तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करने पर मैं पाता हूँ और अभिनिर्धारित करता हूँ कि यद्यपि प्रतिवादीगण यह सिद्ध नहीं कर सके कि निरपू सिंह ने अपने जीवन काल में संपत्ति विभाजित कर दी थी लेकिन उन्होंने सफलतापूर्वक यह सिद्ध किया है कि वादीगण के साथ-साथ संपत्ति पर उनका कब्जा था और उन्होंने प्रतिकूल कब्जा द्वारा अपना टाइटल पक्का कर लिया था और सिबिया ने यद्यपि विरासत में अपने पिता की संपत्ति पायी लेकिन इन पर अपना टाइटल गवाँ बैठी और पूर्ण स्वामित्व प्राप्त नहीं कर सकी जैसा हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 की धारा 14 के अधीन परिकल्पित किया गया है। अतः वादीगण डिक्री पाने के हकदार नहीं है जैसी प्रार्थना उन्होंने की है। यह विवाद्यक सं०-III, IV, V और VI का समाधान करता है।''*

8. निर्विवादत: तेजो सिंह की मृत्यु के पश्चात निरपू सिंह वाद भूमि का एकमात्र स्वामी बन गया और उसकी मृत्यु के बाद एकमात्र जीवित पुत्री होने के मोस्मात नाते सिबिया ने निरपू सिंह द्वारा छोड़ी गयी संपत्ति को विरासत में पाया। परिवाद करते प्रतिवादीगण ने निरपू सिंह के टाइटल पर विवाद नहीं किया है लेकिन उनका मामला यह है कि उनके द्वारा निरपू सिंह की देखभाल की जा रही थी और निरपू सिंह ने अपने जीवन काल में अपनी संपत्ति अपने गोत्रजों में विभाजित कर दी थी और उस

विभाजन के आधार पर वाद भूमि पर उनका कब्जा बना हुआ है। दूसरी ओर, उनका मामला आगे यह है कि लालू सिंह ने मौखिक उपहारस्वरुप वाद संपत्ति का एक हिस्सा पाया। विचारण न्यायालय ने निरपु सिंह द्वारा संपत्ति के विभाजन और मौखिक उपहार स्वरुप प्रतिवादीगण के पक्ष में वाद भूमि के अंतरण से संबंधित प्रतिवादीगण के मामले पर विश्वास नहीं करके सही किया है। उक्त निष्कर्षों के आधार विचारण न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करने में गंभीर गलती की है। प्रतिवादीगण ने प्रतिकूल कब्जा द्वारा अपना हक पक्का कर लिया है। विद्वान एकल न्यायाधीश ने सही अभिनिर्धारित किया है कि परिवाद करते प्रतिवादीगण को साथ-साथ दो परस्पर विरोधी बात करने की अनुज्ञा नहीं दी जा सकती है। जब एक बार प्रतिवादीगण ने मामला बनाया कि निरपू सिंह द्वारा उन्हें वाद भूमि मौखिक रूप से उपहार में दी गयी थी, निरपू सिंह और उसकी पुत्री के विरुद्ध विरोधी दावा वे नहीं कर सकते थे। प्रतिवादीगण द्वारा प्रतिकूल कब्जा द्वारा टाइटल का दावा करने हेतु दोनों घटक पर्याप्त रूप से सिद्ध नहीं किए गए है, अत: विचारण न्यायालय ने गलत अभिनिर्धारित किया कि प्रतिवादीगण ने प्रतिकूल कब्जा द्वारा अपना टाइटल पक्का कर लिया।

9. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों और पक्षों द्वारा दिए गये साक्ष्य में हमारा निश्चित दृष्टिकोण है कि विचारण न्यायालय द्वारा अभिलिखित निष्कर्ष विधि में पूर्णत: गलत है और विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा इसे सही अपास्त किया गया है।

10. अत: हम इस अपील में कोई गुणागुण नहीं पाते हैं और तद्नुसार इसे खारिज किया जाता है।

जया रॉय, न्यायमूर्ति.–मैं सहमत हूँ।

माननीय जे॰ सी॰ एस॰ रावत, न्यायमूर्ति

रामावतार पासवान

बनाम

झारखंड राज्य एवं अन्य

WP(S) No. 6452 of 2008. Decided on 2nd December, 2009.

सेवा विधि–दंड–बिहार पुनर्गठन अधिनियम, 2000 की धारा 74—दो वेतनवृद्धियों का रोका जाना और शेषराशि की वसूली–बिहार राज्य द्वारा आक्षेपित आदेश पारित किया गया–झारखंड राज्य के सृजन के समय याची झारखंड राज्य में था और वर्ष 2001 में झारखंड राज्य से अधिवर्षिता भी प्राप्त किया था–वर्ष 2000 में झारखंड राज्य के सृजन के उपरांत आक्षेपित आदेश पारित–इस प्रकार, इस संबंध में केवल झारखंड राज्य ही निर्णय लेने में सक्षम था–आक्षेपित आदेश अपास्त–याची को वेतन के भुगतान के संबंध में निर्णय लेने के लिए झारखण्ड राज्य सक्षम होगा। (पैरा 8 से 12)

निर्णयज विधि.–2001(3) JCR 155; LPA No. 658 of 2001—Followed.

अधिवक्तागण.–M/s Ritu Kumar, Ravi Kr. Singh, For the Petitioner; J.C. to G.P.-I, For the Respondents.

आदेश

निम्नलिखित अनुतोषों के लिए याची ने यह रिट याचिका दाखिल की है:–

2. मेमो सं॰ 2721 दिनांक 19.6.2002 (परिशिष्ट-7) में अंतर्विष्ट कार्यालय आदेश, जिसके द्वारा मेमो सं॰ 2824 दिनांक 2.8.1995 (परिशिष्ट-1) में अंतर्विष्ट अधिसूचना द्वारा प्रारंभ की गयी कार्यवाही में याची पर दंड का एक अन्य संवर्ग अधिरोपित किया गया है जिसके लिए मेमो सं॰ 2545 दिनांक 22.8.2000 (परिशिष्ट-4) में अंतर्विष्ट संकल्प द्वारा उस पर पहले ही दो दंड अधिरोपित किए जा चुके थे, के अभिखंडन हेतु समुचित निर्देश विशेषत: उत्प्रेषण की प्रकृति का, रिट जारी करने के लिए और पत्र सं॰ 812 दिनांक 15.2.2003 (परिशिष्ट-8) जिसके द्वारा मुख्य वनपाल, बिहार, राँची, द्वारा याची द्वारा दाखिल अभ्यावेदन को अस्वीकृत कर दिया गया था, के अभिखंडन के लिए और दिनांक 2.8.1995 से 31.8.2000 तक की अवधि, जब उसे निलम्बन में रखा गया था, के लिए उस अवधि के दौरान भुगतान किए गए निर्वाह भत्ता घटाकर पूरे वेतन का भुगतान करने और उसके पेंशन के लिए भी उक्त अवधि को ऐसा मानने का निर्देश प्रत्यर्थीगण को देने के लिए और किसी अन्य अनुतोष अथवा अनुतोषों के लिए जिसके लिए याची को हकदार पाया जा सकता है।

3. संक्षेप में, पक्षों के बीच यह स्वीकृत तथ्य है कि तत्कालीन बिहार राज्य में दिनांक 1.12.1975 को याची फॉरेस्टर के तौर पर नियुक्त किया गया था। वर्ष 1995 में सक्षम वन प्राधिकारी द्वारा उसे निलंबित कर दिया गया था और उसके विरुद्ध विभागीय कार्यवाही प्रारंभ की गयी थी। जाँच पूरी होने के बाद, दिनांक 22.8.2000 को याची को सजा अधिनिर्णीत की गयी जिसके द्वारा याची की दो वेतनवृद्धियाँ रोक दी गयी थी और 37,361.61/- रुपए की शेष राशि याची से वसूल की गयी। तत्पश्चात् याची का निलंबन दिनांक 1.9.2000 को प्रतिसंहृत कर दी गयी (रिट याचिका का परिशिष्ट-5)। बिहार और झारखंड राज्य के विभाजन के समय याची देवघर, झारखंड राज्य में कार्यरत था और वर्ष 2001 में मुख्य वनपाल, राँची के कार्यालय से रेंज अधिकारी के पद से अधिवर्षिता प्राप्त किया। अधिवर्षिता के पश्चात् याची ने मुख्य वनपाल, बिहार, पटना, द्वारा जारी कार्यालय आदेश दिनांक 19.6.2002 प्राप्त किया जिसके द्वारा उसे यह निर्णय संसूचित किया गया था कि निलंबन की अवधि के दौरान याची को निर्वाह भत्ता के अतिरिक्त कुछ भी भुगतान नहीं किया जाएगा और उसके पेंशन के लिए उक्त अवधि की गणना नहीं होगी। तत्पश्चात् याची ने प्रत्यर्थीगण के समक्ष अभ्यावेदन दिया और उक्त अभ्यावेदन भी बिहार के सक्षम प्राधिकारी द्वारा अस्वीकार कर दिया गया। अत: यह रिट याचिका दाखिल की गयी है।

4. मैंने याची के विद्वान अधिवक्ता और प्रत्यर्थीगण सं॰ 4, 5 और 6 के विद्वान अधिवक्ता को सुना है। उन्होंने प्रति शपथ पत्र दाखिल किया है और प्रत्यर्थीगण ने कथन किया है कि दिनांक 2.8.1995 को याची को निलंबित किया गया था तत्पश्चात वन एवं पर्यावरण विभाग, बिहार सरकार द्वारा 22.8.2000 को उसे पुनर्स्थापित किया गया था जिसके द्वारा उसे वर्ष 2000 में दण्ड अधिर्निणित किया गया था। दिनांक 1.9.2000 को बिहार राज्य ने याची के निलंबन का आदेश प्रतिसंहृत कर दिया और निलंबन अवधि के दौरान वेतन के भुगतान के संबंध में निर्णय उस समय नहीं लिया गया था जिसे बिहार सेवा संहिता के नियम 97 के आधार पर बाद में लिया गया था जिसके अधीन केवल निर्वाह भत्ता के भुगतान न कि पूर्ण वेतन के भुगतान के लिए और आक्षेपित आदेश पारित करने के लिए निर्देश देने में सक्षम प्राधिकारी सक्षम था। प्रत्यर्थीगण-बिहार राज्य ने याची के दावे का विरोध इस आधार पर भी किया कि अधिवर्षिता के समय याची को झारखण्ड राज्य आबंटित नहीं किया गया था और वह

बिहार राज्य का सेवक था और उसका नियुक्ति प्राधिकारी मुख्य वनपाल, बिहार था और उसके वेतन भुगतान के संबंध में उसे निर्णय लेना था।

5. याची के विद्वान अधिवक्ता ने प्रतिवाद किया कि प्रत्यर्थीगण अधिकारी बिहार राज्य द्वारा पारित आदेश बिहार पुनर्गठन अधिनियम के प्रावधान का उल्लंघन करता है; याची झारखंड राज्य की सेवा से अधिवर्षित हुआ था और बिहार राज्य के पुनर्गठन के बाद एवं झारखंड राज्य के सृजन के पश्चात, बिहार पुनर्गठन अधिनियम-2000 की धारा 74 के फलस्वरुप आदेश पारित करने और समुचित निर्णय लेने के लिए मुख्य वनपाल, झारखंड, राँची, सक्षम प्राधिकारी था। आक्षेपित आदेश पारित करने की अधिकारिता मुख्य वनपाल, बिहार, पटना को नहीं थी।

6. बिहार राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने प्रतिवाद किया कि याची को अंतत: झारखंड राज्य आबंटित नहीं किया गया था, अत: पारित आक्षेपित आदेश पूर्णत: उसकी सक्षमता के अंतर्गत था और उन्होंने प्रति शपथ पत्र में किए गए दावों का समर्थन किया।

7. पक्षों के विद्वान अधिवक्ता के प्रतिवादों का अधिमूल्यन करने से पहले, बिहार पुनर्गठन अधिनियम, 2000 की धारा 74 को निर्दिष्ट करना प्रासंगिक होगा जो निम्नलिखित है:–

*"74. **एक ही पद में अधिकारियों के बने रहने के प्रावधान.**-प्रत्येक व्यक्ति, जो नियत दिन के तुरंत पहले किसी क्षेत्र में, जो उस दिन उत्तराधिकारी राज्यों में से किसी एक के अंतर्गत आता है, विद्यमान बिहार राज्य के कार्यकलापों से संबंधित किसी पद अथवा कार्यालय को धारित कर रहा है अथवा कर्त्तव्यों का निर्वहन कर रहा है, उस उत्तराधिकारी राज्य में उसी पद अथवा कार्यालय को धारित करता रहेगा और उस उत्तराधिकारी राज्य की सरकार अथवा किसी अन्य समुचित प्राधिकारी द्वारा उस पद अथवा कार्यालय पर उस तिथि पर और से सम्यक रूप से नियुक्त माना जाएगा।*

''उत्तराधिकारी राज्य'' अधिनियम की धारा 2 (जे०) में परिभाषित किया गया है जो निम्नलिखित है.-

''विद्यमान बिहार राज्य के सम्बन्ध में ''उत्तराधिकारी'' का अर्थ बिहार अथवा झारखंड राज्य है।''

8. धारा 74 के परिशीलन से प्रकट है कि यदि याची झारखंड राज्य में पदस्थापित है और झारखंड राज्य में पद अथवा कार्यालय धारित कर रहा है, उसे झारखंड राज्य द्वारा तब तक नियुक्त माना जाएगा जब तक कि उसे बिहार राज्य को आबंटित नहीं कर दिया जाता है। बिहार पुनर्गठन अधिनियम की धारा 74 एक धारणा उपबंध है जिसके अधीन एक व्यक्ति जो दिनांक 15.11.2000 के पहले विद्यमान बिहार राज्य से संबंधित कोई पद अथवा कार्यालय धारण कर रहा था अथवा कर्त्तव्यों का निर्वहन कर रहा था, नवम्बर 15, 2000 पर और से वह व्यक्ति उत्तराधिकारी राज्य में, जिसके अधीन वह क्षेत्र आता है, उसी पद अथवा कार्यालय को धारित करता रहेगा और नियत तिथि पर और से उत्तराधिकारी राज्य, जिसके अधीन पद अथवा कार्यालय आता है, में सरकार अथवा समुचित प्राधिकारी द्वारा उस पद अथवा कार्यालय पर सम्यक रूप से नियुक्त माना जाएगा। धारणा उपबंध के फलस्वरुप, व्यक्ति जो झारखंड राज्य में कार्य कर रहे थे, झारखंड राज्य के कर्मचारी होंगे जबतक कि उन्हें बिहार राज्य को आबंटित नहीं कर दिया जाए।

9. 2001(3) JCR 155 (बिहार राज्य बनाम अरविन्द विजय विलंग एवं एक अन्य) में प्रकाशित निर्णय द्वारा निम्नलिखित संप्रेक्षित किया गया है:–

27. स्वीकृत तौर पर, प्रत्येक व्यक्ति जो नवम्बर 15, 2000 के तुरंत पहले ''विद्यमान बिहार राज्य' की सेवा कर रहा था, उनका नियुक्ति प्राधिकारी' विद्यमान बिहार राज्य' अथवा उक्त 'विद्यमान बिहार राज्य' का यथोचित प्राधिकारी था।

नवम्बर 15, 2000 पर और से, समस्त उद्देश्यों हेतु विभाजन के चलते ''विद्यमान बिहार राज्य'' अस्तित्व में नहीं है और दोनों उत्तराधिकारी राज्य नवम्बर 15, 2000 से अस्तित्व में आए, 'विद्यमान बिहार राज्य', जो नवम्बर 15, 2000 के पूर्व से अस्तित्व में था, को उत्तराधिकारी बिहार राज्य, जो नवम्बर 15, 2000 को अस्तित्व में आया, के तुलनीय अथवा इसका पर्याय नहीं माना जा सकता है।

चूँकि प्रत्येक व्यक्ति के लिए एक नियुक्ति प्राधिकारी होना चाहिए, 'विद्यमान बिहार राज्य' का समस्त उद्देश्यों हेतु अस्तित्वलोप होने के चलते एक अथवा दूसरे उत्तराधिकारी राज्य अथवा उस उत्तराधिकारी राज्य के समुचित प्राधिकारी को नियुक्ति प्राधिकारी बनाना आवश्यक हो जाता है, अतः पुनर्गठन अधिनियम, 2000 की धारा 71 का प्रावधान सांसदों द्वारा सम्मिलित किया गया प्रतीत होता है।

28. यह सुनिश्चित विधि है कि विषय वस्तु से संबंधित संविधि को सुसंगत और सामंजस्यपूर्ण बनाने के लिए संविधि के प्रत्येक खंड को उसके संदर्भ और अधिनियम के अन्य प्रावधानों के संबंध में विचार करना होगा।

धारा 72 की उप-धारा (1) में निर्दिष्ट अभिव्यक्ति 'बिहार राज्य के कार्य-कलाप से संबंधित सेवा में अनंतिम रूप से बने रहेंगे' का अर्थ पृथक रूप से नहीं लगाया जा सकता है बल्कि इसका पठन मूल राज्य के स्थान पर उत्तराधिकारी राज्य के नियुक्ति प्राधिकारी के तौर पर प्रतिस्थापित करते हुए धारा 74 से जोड़कर करना होगा जो एक दूसरे के पूरक है। एन० चंद्रमौली बनाम मैसूर राज्य, AIR 1971 मैसूर 53 में मैसूर उच्च न्यायालय का यही दृष्टिकोण है।

धारा 74 के परन्तुक में आयी अभिव्यक्ति 'सक्षम प्राधिकारी' का अर्थ भी पृथक रूप से नहीं लगाया जा सकता है। इसमें धारा 74 की उपधारा (1) द्वारा अनुध्यात अभिव्यक्ति 'नियुक्ति प्राधिकारी' के समान अर्थ रखते हुए माने और समझे गए के साथ जोड़ कर इसका पठन करना होगा। मैसूर राज्य सड़क परिवहन निगम बनाम मिर्जा कासिम अली बेग (ऊपर) में सर्वोच्च न्यायालय का यही दृष्टिकोण है।

29. केन्द्रीय सरकार के सामान्य अथवा विशेष आदेश की अनुपस्थिति में यद्यपि धारा 72 की उपधारा (1) के अधीन झारखंड राज्य के क्षेत्र में पदस्थापित एक व्यक्ति बिहार राज्य के कार्यकलापों से जुड़ी सेवा अनंतिम रूप से देता रहता है, इसे धारा 74 के प्रावधान के साथ-साथ पढ़ा जाना होगा क्योंकि दोनों एक दूसरे के पूरक है।

पद, जिसे राज्य पुनर्गठन अधिनियम द्वारा अथवा इसके कारण समाप्त नहीं किया गया है, धारित करता व्यक्ति उस पद और कार्यालय को धारित करता रहेगा और उत्तराधिकारी राज्य के समुचित/सक्षम प्राधिकारी द्वारा उस पद पर नियुक्त माना जाएगा।

30. पूर्वोक्त पृष्ठ भूमि में, झारखंड राज्य के क्षेत्र में पद अथवा कार्यालय धारित करते व्यक्तियों के संबंध में, झारखंड राज्य नियुक्ति प्राधिकारी होने के नाते, जब तक उन्हें बिहार राज्य को आबंटित नहीं किया जाता है, अनुशासनिक कार्रवाई करने वाला सक्षम प्राधिकारी झारखंड राज्य होगा और न कि बिहार राज्य।

31. 'बालकिशन चतुर्वेदी बनाम मुख्य सचिव, भोपाल सरकार', AIR 1963 MP 216 मामले में ऐसी ही परिस्थिति थी, जिसमें अधिकारी जो उस क्षेत्र जो राजस्थान राज्य का हिस्सा था में कार्यरत था, राज्य के पुर्नगठन के दौरान उस क्षेत्र के स्थानांतरण द्वारा मध्यप्रदेश राज्य में काम करने लगा और चूँकि ऐसे अधिकारी के संबंध में केन्द्रीय सरकार द्वारा जारी कोई सामान्य अथवा विशेष आदेश नहीं था, न्यायालय ने समरुप प्रावधान को विचार में लेते हुए अभिनिर्धारित किया कि दंड देने वाला सक्षम प्राधिकारी मध्य प्रदेश राज्य है और न कि राजस्थान राज्य।

32. चूँकि याचीगण क्रमशः 'चतरा' और 'जमशेदपुर' क्षेत्र में पद अथवा कार्यालय धारित कर रहे थे जो नवम्बर 15, 2000 से झारखंड राज्य के अंतर्गत आ गया, वे न केवल उसी पद अथवा कार्यालय को झारखंड राज्य में धारित करते रहेंगे बल्कि उन्हें नवम्बर 15, 2000 से झारखंड सरकार द्वारा उसी पद अथवा कार्यालय पर सम्यक रूप से नियुक्त माना जाएगा, जब तक कि उन्हें कोई एक राज्य आबंटित नहीं किया जाता है, और अनुशासनिक कार्रवाई करने वाला सक्षम प्राधिकारी झारखंड राज्य होगा।

इसी कारण के लिए, बिहार राज्य को आबंटित किए जाने तक झारखंड सरकार द्वारा नियुक्त माने गए झारखंड राज्य में पद अथवा कार्यालय धारित करता व्यक्ति के संबंध में अनुशासनिक कार्रवाई करने की अधिकारिता बिहार राज्य को नहीं होगी।

33. निर्दिष्ट किए गए प्रावधानों और उपर की गयी चर्चा की दृष्टि में, झारखंड राज्य में पद अथवा कार्यालय धारित कर रहे याचीगण के समान व्यक्तियों के विरुद्ध अनुशासनिक कार्रवाई करने की अधिकारिता वर्तमान बिहार राज्य को नहीं होने के कारण, याची अरविन्द विजय बिलंग के संबंध में दिनांक मई 20, 2001 की अधिसूचना में अंतर्विष्ट निलंबन के आक्षेपित आदेशों और याची वी० एन० मिश्रा के संबंध में दिनांक मई, 5, 2001 की अधिसूचना को मान्य नहीं ठहराया जा सकता है और उन्हें अपास्त किया जाता है।

34. लेकिन झारखंड राज्य, यदि वह ऐसा चाहता है, को विधि के अनुरुप कोई भी आदेश पारित करने की छूट रहेगी। अपने–अपने विभागों के सचिव के ध्यान में यह आदेश याचीगण को लाना चाहिए।

10. एल॰ पी॰ ए॰ सं॰ 658 वर्ष 2001 में भी उक्त निर्णय संपुष्ट किया गया है जिसमें निम्नलिखित संप्रेक्षित किया गया है:–

पैरा–11: अतः जब एक बार अभिनिर्धारित किया जाता है कि नियत दिन पर और से, किसी सरकारी सेवक के संबंध में विद्यमान राज्य का उत्तराधिकारी राज्य नियुक्ति प्राधिकारी होगा और उस दिन पर और से ऐसे व्यक्ति के विरुद्ध (ऐसे पद अथवा कार्यालय में उसके बने रहने को प्रभावित करते आदेश सहित) किसी भी संबंध में कोई भी आदेश पारित करने की समस्त शक्ति सक्षम प्राधिकारी को होगी, ऐसे व्यक्ति के विरुद्ध अनुशासनिक कार्यवाही प्रारंभ करने अथवा निलंबन आदेश जारी करने की अनुज्ञा विद्यमान बिहार राज्य को देना अधिनियम की धारा 74 में अंतर्विष्ट अभिव्यक्त आज्ञापकता और इसके परन्तुक का उल्लंघन होगा। नियत दिन पर और से धारा 2(E) में परिभाषित 'विद्यमान बिहार राज्य के उत्तराधिकारी राज्य अस्तित्व में आए। ये उत्तराधिकारी राज्य बिहार राज्य और झारखंड राज्य है। अतः धारा 74 के पठन द्वारा यह उभरता है कि सरकारी सेवक के संबंध में नियुक्ति प्राधिकारी दो

उत्तराधिकारी राज्यों बिहार राज्य अथवा झारखंड राज्य, में से एक होगा। और यह विनिश्चत करने के लिए कि दो उत्तराधिकारी राज्यों में से कौन नियुक्ति प्राधिकारी है, परीक्षा बहुत ही सरल है। नियत दिन पर, यदि कर्मचारी उत्तराधिकारी बिहार राज्य का हिस्सा निर्मित करते क्षेत्र में पदस्थापित एवं सेवारत था, बिहार राज्य नियुक्ति प्राधिकारी होगा। यदि कर्मचारी झारखंड राज्य का हिस्सा निर्मित करते क्षेत्र में पदस्थापित और सेवारत था, झारखंड राज्य नियुक्ति प्राधिकारी होगा। उत्तराधिकारी राज्य में सक्षम प्राधिकारी को कार्रवाई प्रारंभ करने और आदेश पारित करने की शक्ति एवं अधिकारिता है। यह नियत दिन से पहले समय के किसी बिन्दु पर वाद हेतुक के प्रोद्भवन अथवा उस स्थान जहाँ वाद हेतुक हुआ है को विचार में लिए बिना है। स्पष्ट करने हेतु हम कह सकते हैं कि यदि नियत दिन पर कोई व्यक्ति उस स्थान पर पदस्थापित एवं सेवारत था जो झारखंड राज्य का हिस्सा निर्मित करता था और यदि ऐसे व्यक्ति के संबंध में वाद हेतुक, कहे वर्ष 1998 या 1999 में, उस स्थान में हुआ था जो नियत दिन पर बिहार राज्य का हिस्सा निर्मित करता था, ऐसे व्यक्ति के संबंध में राज्य प्राधिकारी और ऐसा ही सक्षम प्राधिकारी आदेश पारित कर सकता है। ऐसे व्यक्ति के संबंध में कार्रवाई प्रारंभ करने अथवा आदेश पारित करने की अधिकारिता बिहार राज्य को नहीं होगी।

पैरा-12 : ऐसी स्थिति और ऐसी पृष्ठभूमि में जब विद्यमान राज्य से राज्य विभाजित किया जाता है, दो राज्यों के बीच सहयोग अर्थपूर्ण है। अतः यदि बिहार राज्य के कब्जे में किसी सरकारी सेवक के विरुद्ध कोई सामग्री है जो अधिनियम की धारा 74 के फलस्वरुप अब झारखंड राज्य की सेवा में है और यदि बिहार राज्य सोचता है कि ऐसी सामग्री ऐसे व्यक्ति के विरुद्ध कार्रवाई प्रारंभ करने की अपेक्षा रखती है, बिहार राज्य को ऐसी सामग्री ऐसी कार्रवाई के लिए झारखण्ड राज्य को अग्रसर करने की छूट है जो झारखंड राज्य समुचित समझता हो। इसे साफ-साफ समझा जाना होगा कि तत्कालीन राज्य की एकमात्र भूमिका ऐसी स्थिति में झारखण्ड राज्य को सूचना अथवा प्रासंगिक सामग्री बढ़ाने की है और किए जाने वाला शेष कार्य झारखंड राज्य को करना है। झारखण्ड राज्य के साथ भी यही बात होगी यदि कोई कर्मचारी बिहार राज्य के किसी स्थान में है और झारखण्ड राज्य के कब्जे में कोई सामग्री है जो ऐसे किसी कर्मचारी के विरुद्ध समुचित कार्रवाई हेतु बिहार राज्य को अग्रसर किए जाने की अपेक्षा करता है।

11. विधि की उक्त प्रतिपादना की दृष्टि में राज्य के सृजन के समय याची झारखंड राज्य में था और वर्ष 2001 में झारखंड राज्य से अधिवर्षित हुआ था और आक्षेपित आदेश झारखण्ड राज्य के सृजन के पश्चात वर्ष 2002 में पारित किया गया था और इस प्रकार केवल झारखंड राज्य इस संबंध में निर्णय लेने हेतु सक्षम है। बिहार राज्य को समस्त सामग्री झारखंड राज्य के समझ भेजना चाहिए था और मुख्य वनपाल, झारखंड उपयुक्त आदेशों को पारित करने वाला सक्षम प्राधिकारी था। उक्त की दृष्टि में, प्रत्यर्थी सं॰ 6 द्वारा पारित आक्षेपित आदेश अपास्त करने योग्य है और यह भी स्पष्ट किया गया है कि दिनांक 2.8.1995 से 31.8.2000 तक याची को वेतन भुगतान के संबंध में निर्णय लेने के लिए झारखंड राज्य सक्षम होगा।

12. उक्त की दृष्टि में, दिनांक 19.6.2002 के मेमो सं॰ 2921 में अंतर्विष्ट आदेश (परिशिष्ट-7, पृष्ठ 23) जिसके द्वारा निलम्बन की अवधि का वेतन रोक दिया गया है और उसे निर्वाह भत्ता, जब

तक वह निलम्बन के अधीन था, देना अनुज्ञात किया गया था और उसके पेंशन के लिए इस अवधि की गणना भी नहीं की गयी थी और संसूचना परिशिष्ट-8 जिसके द्वारा याची का अभ्यावेदन अस्वीकृत कर दिया गया था, को अभिखंडित किया जाता है। लेकिन प्रत्यर्थी झारखंड राज्य को निर्देश दिया जाता है कि वे उस अवधि, अर्थात् 2.8.1995 से 31.8.2000 तक जब वह निलंबित था, के लिए वेतन भुगतान हेतु समुचित निर्णय लें।

13. तद्नुसार, यह याचिका निपटायी जाती है। व्यय का आदेश नहीं।

माननीय एम॰ वाई॰ इकबाल, न्यायमूर्ति

जनेश्वर मेहता

बनाम

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Cr. M.P. No. 1115 of 2009. Decided on 16th February, 2010.

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 439(2)—जमानत–रद्दकरण–भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 498A एवं दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 की धारा 3/4 के अधीन अभियोजन–सत्र न्यायाधीश द्वारा केवल इस आधार पर कि याची निबंधनों और शर्तों एवं स्वयं द्वारा दिए गए परिवचनों का पालन करने में विफल रहा, जमानत रद्द कर दिया गया–जब सूचक द्वारा किए गए अभिकथनों के गुणागुण पर विचार किए बिना और पक्षों के बीच हुए कुछ समझौते के आधार पर जमानत दिया गया था, तब निबंधनों और याची द्वारा दिए गए परिवचनों के भंग होने के आधार मात्र पर जमानत रद्द नहीं किया जा सकता है–जमानत की स्वीकृति अथवा अस्वीकृति सूचक की दया पर निर्भर नहीं है–जब एक बार जमानत दे दी जाती है, इसे बाह्य अनुचिन्तनों पर रद्द नहीं किया जा सकता है–आक्षेपित आदेश अपास्त–आवेदन अनुज्ञात। (पैरा 6 से 9)

अधिवक्तागण.–M/s Ajit Kr. Dubey, Amit Kr. Tiwari, For the Petitioner; M/s Shekhar Sinha, Vijay Shankar Prasad, For the Opp. Parties.

एम॰ वाई॰ इकबाल, न्यायमूर्ति.–इस याचिका द्वारा, याची ने दां॰ वि॰ केस सं॰ 20 वर्ष 2009 में सत्र न्यायाधीश, पलामू द्वारा पारित दिनांक 4.8.2009 के आदेश जिसके द्वारा बी॰ पी॰ सं॰ 909 वर्ष 2008 में याची को पहले दिए गए जमानत को रद्द कर दिया गया है के अभिखंडन हेतु प्रार्थना की है।

2. मामले के तथ्य संक्षेप में, यह है कि हुसैनाबाद पी॰ एस॰ केस सं॰ 94 वर्ष 2008 के माध्यम से भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 498A एवं दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 3/4 के अधीन अपराध के लिए याची के विरुद्ध दांडिक मामला संस्थापित किया गया था। पूर्वोल्लिखित मामले में याची को गिरफ्तार किया गया था और एक जमानत याचिका दाखिल की गयी थी और इसे अंततः सत्र न्यायाधीश द्वारा सुना गया था। सत्र न्यायाधीश के समक्ष, याची ने इस प्रभाव का लिखित परिवचन दिया था कि वह अपनी पत्नी को प्रेम, स्नेह, सम्मान और मान-मर्यादा के साथ रखेगा और तद्द्वारा उसने सूचक-पत्नी के साथ एक सौहार्दपूर्ण समझौता किया। यह कथन किया गया है कि याची द्वारा दिए गए उक्त आश्वासन पर, उसे दिनांक 28.11.2008 के आदेश के तहत जमानत दे दिया गया।

3. कुछ समय बाद, सूचक-पत्नी ने सत्र न्यायालय के समक्ष याची की जमानत के रद्दकरण हेतु इस आधार पर याचिका दाखिल किया कि याची द्वारा किए गए समझौते और परिवचनों के बावजूद,

वह ऐसे परिवचन से मुकर गया है और वह उसे अपने घर ले जाने और उसे पत्नी की तरह रखने से इन्कार कर रहा है। सत्र न्यायाधीश द्वारा याची पर नोटिस तामील किया गया था और इसके जवाब में, उसने यह कथन करते हुए प्रत्युत्तर दाखिल किया कि अनेक अवसरों पर वह उसे वापस लाने अपने ससुराल गया, लेकिन उसके माता-पिता द्वारा उसे ऐसा करने की आज्ञा नहीं दी गयी। सत्र न्यायाधीश ने पक्षों को सुनने के बाद याचिका अनुज्ञात करते हुए आक्षेपित आदेश पारित किया और बी॰ पी॰ सं॰ 909 वर्ष 2008 में याची को पहले दिये गए जमानत को रद्द कर दिया। विद्वान सत्र न्यायाधीश ने अपने समक्ष उद्धृत सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय **[2004 SCC (Cri.) 814]** को सुभेदित किया और अभिनिर्धारित किया कि चूँकि पहले याची द्वारा दिए गए इस परिवचन पर जमानत दिया गया था कि वह सूचक-पत्नी को रखेगा, लेकिन वह अपने द्वारा दिए गए परिवचन से मुकर गया। विद्वान सत्र न्यायाधीश ने आगे अभिनिर्धारित किया कि दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 439(2) के अधीन जमानत रद्द करने की शक्ति अधिक व्यापक है एवं, इसलिए, कारण पर्याप्त कारण होने पर जमानत रद्द किया जा सकता है।

4. मैने पक्षों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता को सुना है।

5. स्वीकृत तौर पर, पत्नी द्वारा दाखिल परिवाद के आधार पर भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 498A एवं दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 3/4 के अधीन अपराध के लिए याची के विरुद्ध दांडिक मामला संस्थापित किया गया था। याची को अभिरक्षा में लिया गया था और अंततः केवल इस आधार पर कि पक्षों ने साथ रहने का निर्णय किया है दिनांक 28.11.2008 के आदेश के तहत सत्र न्यायाधीश, पलामू द्वारा जमानत दिया गया था। बेहतर अधिमूल्यन हेतु दिनांक 28.11.2008 के आदेश, जिसके द्वारा याची को पूर्व में सत्र न्यायाधीश द्वारा जमानत दिया गया था, को यहाँ इसमें नीचे उद्धृत किया जाता है:-

> *"28.11.2008 : न्यायालय द्वारा जारी प्रस्तुतिकरण वारंट के आधार पर याची को जेल अभिरक्षा से प्रस्तुत किया गया था। सूचक संगीता देवी भी न्यायालय में उपस्थित है और निवेदन किया है कि वह अपने पति के पास वापस जाने को तैयार है यदि वह उसे भली-भाँति रखने और पत्नी के रूप में उसे मिलने वाले प्रेम और स्नेह देने का परिवचन देता है। याची ने ऐसा करने का परिवचन दिया।*
>
> *2. परिणामस्वरुप, याची जनेश्वर महतो द्वारा सम्यक् रूप से हस्ताक्षरित, उसके विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रतिहस्ताक्षरित और न्यायालय के बेंच क्लर्क द्वारा अनुप्रमाणित, इस प्रभाव का एक लिखित परिवचन दाखिल किया गया कि वह अपनी पत्नी को प्रेम, स्नेह, मर्यादा और सम्मान के साथ रखेगा और भविष्य में परिवाद करने का कोई अवसर नहीं देगा। उसने न्यायालय के समक्ष इस प्रभाव का मौखिक निवेदन करते हुए विषय वस्तु को दोहराया। सूचक संगीता देवी और उसके विद्वान अधिवक्ता, श्री नन्दलाल सिंह द्वारा निवेदन किया गया था कि उन्हें कोई आपत्ति नहीं होगी यदि याची को अब जमानत पर निर्मुक्त किया जाता है।*
>
> *3. पक्षों के बीच उक्त सौहार्दपूर्ण समझौते की दृष्टि में, हुसैनाबाद पी० एस० केस सं० 94/08, तत्सम जी० आर० केस सं० 1544/08, से संबंधित मामले में विद्वान सी० जे० एम०, पलामू की संतुष्टि पर 10,000/- रुपयों का जमानत बंधपत्र और इतनी ही राशि के दो प्रतिभूतियों को उपलब्ध कराने पर, याची को जमानत पर निर्मुक्त करने का निर्देश दिया गया। बशर्ते कि जमानतदारों में से एक उसका निकट संबंधी हो और वह न्यायालय में अपने द्वारा दिए गए परिवचन का पालन करे।''*

6. पूर्वोक्त जमानत आदेश के परिशीलन से, यह सुस्पष्ट है कि सत्र न्यायाधीश ने सूचक द्वारा किए गए अभिकथनों की सत्यता पर विचार किए बिना, बल्कि आपसी समझौते और परिवचन के

आधार पर याची को जमानत दिया था। सूचक का यह स्वीकृत मामला है कि जब याची को जमानत पर निर्मुक्त कर दिया गया था, वह याची के साथ अपने ससुराल चली गयी थी। लेकिन, शायद कुछ विवाद उद्‌भूत हुए थे जिसके चलते जमानत के रद्दकरण हेतु केवल इस आधार पर याचिका दाखिल की गयी थी कि याची जमानत दिए जाते समय किये गए वादों को पूरा करने में विफल रहा। विद्वान सत्र न्यायाधीश ने केवल इस आधार पर याची की जमानत रद्द कर दी कि याची स्वयं द्वारा दिए गए निबंधनों एवं शर्तों और परिवचनों का पालन करने में विफल रहा।

7. आरंभ से ही मेरा दृष्टिकोण यह है कि जब सूचक द्वारा किए गए अभिकथनों के गुणागुण पर विचार किए बिना और पक्षों के बीच हुए कुछ समझौतों के आधार मात्र पर जमानत दिया गया था, तब याची द्वारा दिए गए निबंधनों और परिवचन के भंग किए जाने के आधार मात्र पर जमानत रद्द नहीं किया जा सकता है। जब एक बार जमानत दे दिया जाता है, इसे बाह्य अनुचिन्तन पर रद्द नहीं किया जा सकता है।

8. वर्तमान मामले में, पक्षों के बीच हुए कुछ समझौतों और याची द्वारा समझौते के निबंधनों एवं शर्तों का पालन करने का परिवचन की आधार पर जमानत दिया गया था। अत: बिना यह जाने कि परिवचन भंग करने के लिए कौन पक्ष जिम्मेदार है और क्या परिस्थितियाँ थी जिनके चलते याची अपने वादे और परिवचन को पूरा नहीं कर पाया, न्यायालय को उसे दी गयी जमानत को रद्द नहीं करना चाहिए था। विद्वान सत्र न्यायाधीश ने सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अधिकथित विधि का सही अधिमूल्यन नहीं किया है।

9. पूर्वोक्त कारणों से, यह याचिका अनुज्ञात की जाती है और याची की जमानत रद्द करते हुए आक्षेपित आदेश को अपास्त किया जाता है।

माननीय आर॰ के॰ मेराठिया, न्यायमूर्ति

मो॰ इलियास

बनाम

नैय्यर इकबाल एवं अन्य

W P(C) No. 500 of 2009. Decided on 10th February, 2010.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908—आदेश I, नियम 10 सह-पठित भूमि अर्जन अधिनियम, 1894—धारा 18—कार्यवाही में पक्ष के तौर पर पक्षकार बनाया जाना–भूमि अर्जन मामला–आक्षेपित आदेश द्वारा प्रत्यर्थीगण की प्रार्थना अनुज्ञात–भूमि अर्जन अधिनियम की धारा 18 के अधीन एक कार्यवाही में आदेश I, नियम 10 के अधीन आवेदन दाखिल की जा सकती है–संतुष्ट होने पर कि प्रत्यर्थीगण को कार्यवाही में पक्ष के रूप में जोड़ा जाना चाहिए, अवर न्यायालय द्वारा आक्षेपित आदेश पारित किया गया–आक्षेपित आदेश के साथ हस्तक्षेप का कारण नहीं है। (पैरा 5 से 7)

निर्णयज विधि.–AIR 1991 Allahabad 241; (2006)12 SCC 300—Distinguished; AIR 1984 P&H 177—Referred to.

अधिवक्तागण.–Mr. Dilip Kumar Prasad, For the Petitioner; M/s M.K. Laik, Smita Mitra, For the Respondents.

आदेश

एल॰ ए॰ सन्दर्भ केस सं॰ 10 वर्ष 1999 में सि॰ प्र॰ सं॰ के आदेश I, नियम 10 के अधीन प्रत्यर्थीगण की प्रार्थना अनुज्ञात करते हुए और कार्यवाही में उन्हें पक्ष के रूप में जोड़ते हुए भूमि अर्जन न्यायाधीश, धनबाद द्वारा पारित दिनांक 4.9.2008 के आदेश के विरुद्ध यह रिट याचिका दाखिल की गयी है।

2. याची के विद्वान अधिवक्ता, श्री डी॰ के॰ प्रसाद ने निवेदन किया कि भूमि अर्जन अधिनियम एक संपूर्ण संहिता है और सी॰ पी॰ सी॰ लागू नहीं होता है और प्रत्यर्थीगण हितबद्ध व्यक्ति नहीं है और इस कारण उन्हें पक्ष के रूप में अभियोजित नहीं किया जाना चाहिए था। वह आगे निवेदन करते हैं कि अधिकाधिक प्रत्यर्थीगण निर्देश ईप्सित करने के लिए धारा 30 का सहारा ले सकते थें। उन्होंने **गोरखपुर विकास प्राधिकार, गोरखपुर बनाम जिला न्यायाधीश, गोरखपुर एवं अन्य, AIR 1991 इलाहाबाद 241** में प्रकाशित और **श्यामली दास बनाम इला चौधरी एवं अन्य, (2006)12, SCC 300** में प्रकाशित मामलों पर विश्वास प्रकट किया है।

3. दूसरी ओर, विद्वान वरीय अधिवक्ता, श्री लायक ने आक्षेपित आदेश का समर्थन किया और निवेदन किया कि विद्वान न्यायाधीश प्रथम दृष्टया संतुष्ट थे कि प्रत्यर्थीगण को पक्ष के तौर पर अभियोजित किया जाना चाहिए। भूमि अर्जन अधिनियम की धारा 53 को निर्दिष्ट करते हुए, उन्होंने निवेदन किया कि सी॰ पी॰ सी॰ के प्रावधान जहाँ तक वे भूमि अर्जन अधिनियम के साथ असंगत नहीं है, लागू होते हैं। उन्होंने आगे निवेदन किया कि आदेश I, नियम 10 का अवलम्ब लिया जा सकता है और यदि न्यायालय संतुष्ट है कि वें हितबद्ध व्यक्ति हैं, भूमि अर्जन अधिनियम की धारा 18 के अधीन निर्देश के चरण पर, न कि धारा 30 के चरण पर, उन्हें पक्षों के रूप में जोड़ा जा सकता है। वह श्री प्रसाद द्वारा उद्धृत निर्णयों को सुभेदित किया और **बाघ सिंह एवं अन्य बनाम विशेष भूमि अर्जन कलक्टर जालंधर एवं एक अन्य, AIR 1984 पंजाब एवं हरियाणा 177** में प्रकाशित मामले के निर्णय पर विश्वास जताया।

4. गोरखपुर विकास प्राधिकार (ऊपर) का निर्णय वर्तमान मामले पर लागू नहीं होता है क्योंकि उस मामले में हिताधिकारी, जिनके लाभ के लिए भूमि अर्जन करना ईप्सित किया गया था, पक्ष के रूप में अभियोजित होना चाहते थे और उस संदर्भ में यह कहा गया था कि भूमि अर्जन अधिनियम की धारा 18 के अधीन कार्यवाही में ऐसी याचिका दाखिल नहीं की जा सकती थी।

5. श्यामली दास (ऊपर) का निर्णय भी वर्तमान मामले पर लागू नहीं होता है। उक्त मामले के पैराग्राफ 20 से प्रकट होगा कि पक्षकार को अभियोजित करने के लिए पहले दी गयी याचिका यह अभिनिर्धारित करते हुए कि ऐसा पक्षकार हितबद्ध पक्ष नहीं था और आदेश के अंतिम हो जाने के कारण पक्ष को अभियोजित करने के लिए अन्य याचिका दाखिल नहीं की जा सकती थी, अस्वीकार कर दी गयी थी, और इसके अतिरिक्त, आगे यह प्रकट होता है कि भूमि अर्जन अधिनियम की धारा 18 के अधीन कार्यवाही में सी॰ पी॰ सी॰ के आदेश I, नियम 10(2) के अधीन याचिका दाखिल की जा सकती है।

6. पक्षों के अपने-अपने मामलों पर विचार करने के बाद, विद्वान अवर न्यायालय प्रथम दृष्टया संतुष्ट था कि इस कार्यवाही में प्रत्यर्थी को पक्ष के रूप में जोड़ा जाना चाहिए। श्री प्रसाद का निवेदन कि भूमि अर्जन अधिनियम की धारा 30 के अधीन निर्देश के लिए प्रत्यर्थी याचिका दाखिल कर सकता था, पूरी तरह गलत है।

7. इन परिस्थितियों में, मैं भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन मेरी पर्यवेक्षण अधिकारिता का प्रयोग करते हुए आक्षेपित आदेश में हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं पाता हूँ।

8. प्रत्यर्थीगण को आज से एक माह के भीतर अपना कारण-पृच्छा दाखिल करने, यदि इसे पहले ही दाखिल नहीं किया गया हो, का निर्देश दिया जाता है। उसके बाद दो माह के भीतर उन्हें अपना साक्ष्य समाप्त करने का आगे निर्देश दिया जाता है। यदि इस समय के भीतर कारण-पृच्छा दाखिल नहीं किया जाता है और साक्ष्य समाप्त नहीं किया जाता है, प्रत्यर्थीगण का मामला बन्द कर दिया जाएगा। भूमि अर्जन न्यायाधीश, जो कार्यवाही का निपटारा शीघ्र करने का प्रयास करेंगे, के समक्ष मामले के शीघ्र निपटारे के लिए सहयोग करने का निर्देश दिया जाता है।

9. यह आदेश, आज से चार सप्ताह के भीतर प्रत्यर्थीगण द्वारा याची को 2,000/- रुपयों का भुगतान करने के शर्त के अधीन है।

10. इन संप्रेक्षणों एवं निर्देशों के साथ यह रिट याचिका निस्तारित की जाती है।

माननीय एम॰ वाई॰ इकबाल एवं आर॰ आर॰ प्रसाद, न्यायमूर्तिगण

मेसर्स इन्टरलिन्क कोल प्रा॰ लि॰ (317 में)

सुधा देवी एवं अन्य (288 में)

बनाम

सुधा देवी एवं अन्य (317 में)

सियाराम सिंह एवं अन्य (288 में)

M.A. Nos. 317 and 288 of 2007. Decided on 25th January, 2010.

मोटर यान अधिनियम, 1988—धाराएँ 168 एवं 173—घातक दुर्घटना–ट्रक एवं कार के बीच टक्कर–अधिकरण द्वारा 5,64,580/- रुपये का मुआवजा अधिनिर्णीत लेकिन दोनों वाहनों के तीव्र गति और उपेक्षापूर्वक गाड़ी चलाने के आधार पर जिम्मेदारी बराबर हिस्सों में प्रभाजित किया गया था–भारी वाहन होने के कारण ट्रक को 75% दायित्व दिया गया और हल्का वाहन होने के कारण कार को 25% दायित्व दिया गया–तद्नुसार, अधिनिर्णय परिवर्तित–कार के विरुद्ध दायित्व बीमा कम्पनी को भरना होगा। (पैरा 4 से 6)

अधिवक्तागण.–Mr. S. Arun (in 317); Mr. A.K. Lal (in 288), For the Appellants; M/s A.K. Lal, M. Kumar, K.L. Ojha (in 317); Mr. S. Arun (in 288), For the Respondents.

आदेश

ये दो अपीलें, एक वाहन के स्वामी द्वारा और दूसरा दावेदारों द्वारा मुआवजा केस सं॰ 291/2004 में मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण, राँची द्वारा पारित एक ही निर्णय और अधिनिर्णय के विरुद्ध दाखिल की गयी है। एम॰ ए॰ सं॰ 317/2007 अपीलार्थी मेसर्स इंटरलिंक कोल प्रा॰ लि॰, जो सेन्ट्रो कार का स्वामी है द्वारा दाखिल किया गया है, जबकि एम॰ ए॰ सं॰ 288/2007 अपीलार्थीगण, जो दावेदार हैं, द्वारा दाखिल किया गया है।

2. मामले के तथ्य संक्षेप में निम्नलिखित है–

एक मोटर वाहन दुर्घटना में किसी कृष्णकान्त तिवारी की मृत्यु के कारण पूर्वोल्लिखित मुआवजा मामला दावेदारों द्वारा दाखिल किया गया है। यह अभिकथन किया गया था कि दुर्घटना तब हुई जब दो वाहन अर्थात् ट्रक सं॰ बी॰ आर॰ 01 जी॰ 6382 और सैन्ट्रो कार विपरीत दिशाओं से आते हुए एक दूसरे से टकरा गये। दोनों वाहन तीव्र गति से और उपेक्षापूर्वक तरीके से चलाए जा रहे थे। मृतक की आयु 43 वर्ष थी और वह बिहार पोस्ट एवं टेलीग्राफ सहकारी समिति में सेवारत बताया जाता था और प्रतिमाह 6,194/- रुपया अर्जित कर रहा था। मृतक सैंट्रो कार का चालक था और राँची से जमशेदपुर

जा रहा था। अधिकरण ने 5,64,580/- रुपये की सीमा तक मुआवजा का आकलन किया लेकिन दायित्व के विवाद्यक पर अधिकरण ने अभिनिर्धारित किया कि चूँकि दोनों वाहनों को तीव्रगति से एवं उपेक्षापूर्वक चलाए जाने के कारण दुर्घटना हुई, मुआवजा राशि का भुगतान बराबर हिस्सों में किया जाएगा।

3. अपीलार्थी, जो सैंट्रो कार का स्वामी है, ने दो आधारों पर आक्षेपित निर्णय और अधिनिर्णय का विरोध किया है। प्रथमत: यह प्रतिवाद किया गया है कि ट्रक को तीव्रगति से एवं उपेक्षापूर्वक चलाए जाने के कारण दुर्घटना हुई, मुआवजे का भुगतान करने का दायित्व ट्रक के स्वामी और बीमाकर्त्ता को अभिनिर्धारित किया जाना होगा। यह प्रतिवाद किया गया था कि यदि सैंट्रो कार के चालक की ओर से उपेक्षा की भी गयी थी, तब भी हल्का वाहन होने के नाते, सैन्ट्रो कार के स्वामी और बीमाकर्ता द्वारा मुआवजा राशि के हिस्से का भुगतान किया जाना चाहिए था। द्वितीयत:, यह प्रतिवाद किया गया था कि सैंट्रो कार प्रत्यर्थी बीमा कम्पनी के साथ सम्यक् रूप से बीमाकृत था और इस कारण अधिकरण ने मुआवजा राशि के भुगतान का निर्देश सैंट्रो कार के स्वामी को देते हुए विधि में गलती की है।

4. सैंट्रो कार के प्रत्यर्थी बीमाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने इस तथ्य पर विवाद नहीं किया है कि सैंट्रो कार बीमा कम्पनी के साथ सम्यक् रूप से बीमाकृत था। अत: हमारे दृष्टिकोण में, सैंट्रो कार के स्वामी के विरुद्ध जो भी दायित्व बनता है, उसका भुगतान बीमा कम्पनी द्वारा किया जाना चाहिए।

5. पक्षों के अधिवक्ता को सुनने के बाद हम अभिनिर्धारित करते हैं कि ट्रक और सैंट्रो कार के बीच के दायित्व को 75% और 25% के अनुपात में प्रभाजित किया जाना चाहिए था। भारी वाहन होने के नाते ट्रक को 75% की सीमा तक दायित्व दिया जाना होगा और हल्का वाहन होने के नाते सैंट्रो कार को 25% तक दायित्व दिया जाना है।

6. पूर्वोक्त कारणों से, एम॰ ए॰ सं॰ 317/2007 अनुज्ञात किया जाता है और निर्णय एवं अधिनिर्णय को इस सीमा तक परिवर्तित किया जाता है कि अधिकरण द्वारा आकलित कुल मुआवजा में से 25% सैंट्रो कार के बीमाकर्त्ता द्वारा भुगतान किया जाएगा और 75% का भुगतान ट्रक के बीमाकर्ता द्वारा किया जाएगा।

7. एम॰ ए॰ सं॰ 288/2007 में, अपीलार्थीगण, जो दावेदार है, ने मुआवजा की राशि बढ़ाने की प्रार्थना की है। अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि मासिक वेतन जो मृतक उपार्जित कर रहा था, के अतिरिक्त उसे 30,000/- रुपये वार्षिक आमदनी कृषि से थी। यह प्रतिवाद किया गया है कि मुआवजा का आकलन करते हुए अधिकरण को कृषि से होने वाली आमदनी को भी विचार में लेना चाहिए था। आगे यह प्रतिवाद किया गया था कि मुआवजा राशि पर ब्याज 7% के बयाज 9% अधिनिर्णीत किया जाना चाहिए था।

8. आक्षेपित आदेश से प्रकट होता है कि अधिकरण ने समस्त साक्ष्य पर विचार करने के बाद यह निष्कर्ष दर्ज किया है कि यह दर्शाने के लिए कि मृतक को खेती से होनेवाली आमदनी भी थी, कोई तर्कपूर्ण साक्ष्य नहीं दिया है। अधिकरण ने दावेदारों द्वारा दिए गए साक्ष्य की आगे संवीक्षा की और मृतक की आमदनी पर एक निश्चित निष्कर्ष पर आया और तद्नुसार 5,64,580/- रुपये की सीमा तक मुआवजा का आकलन किया। हम अधिकरण द्वारा दर्ज निष्कर्ष में कोई गलती नहीं पाते हैं। हम आगे अभिनिर्धारित करते हैं कि अधिकरण द्वारा आकलित मुआवजा न्यायोचित और युक्तियुक्त है।

9. अत: कोई गुणागुणन होने के कारण एम॰ ए॰ सं॰ 288/2007 तद्नुसार खारिज किया जाता है।

आर॰ आर॰ प्रसाद, न्यायमूर्ति.–मैं सहमत हूँ।

माननीय डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति

अनूप कुम्हार एवं अन्य

बनाम

झारखण्ड राज्य एवं एक अन्य

Cr. Revision No. 113 of 2009. Decided on 5th January, 2010.

भारतीय दण्ड संहिता, 1860—धाराएँ 323, 341, 307 एवं 302/34—हत्या–निर्मुक्ति याचिका का अस्वीकरण–मृतक की मृत्यु अभिकथित रूप से सिर की उपहति से हुई–लेकिन, पोस्ट-मार्टम रिपोर्ट मृतक के पेट में कीटनाशक की उपस्थिति दर्शा रहा है–दी गई परिस्थिति में याचीगण में से किसी के विरूद्ध धारा 302 या 307 के अधीन मामला निर्मित नहीं होता है–अधिकाधिक, यह भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 325 के अधीन हो सकता था–लेकिन, प्रथम दृष्टया आरोप महिला याची के विरूद्ध तय नहीं किया जा सकता है–उसे निर्मुक्त किया गया–धारा 325/34 के अधीन आरोप के लिए अन्य दोनों याचीगण के विरूद्ध कार्यवाही करने के लिए प्रथम दृष्टया सामग्रियों की दृष्टि में उन लोगों के विरूद्ध कार्यवाही जारी रहेंगे–याचिका आंशिक रूप से अनुज्ञात। (पैरा 5 से 7)

अधिवक्तागण.–M/s B.M. Tripathy, Nutan Sharma, N.K. Jaiswal, For the Petitioner(s); A.P.P., For the State; Mr. Mahesh Tewari, For the Opp. Party No.2.

डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति.–याचीगण ने एस॰ टी॰ संख्या 476 वर्ष 2008 में विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश, FTC–III, धनबाद द्वारा दिनांक 13.1.2009 को पारित आक्षेपित आदेश अपास्त करने के लिए यह दाण्डिक पुनरीक्षण दायर किया है जो बाघमारा (बरोरा) पुलिस केस संख्या 60 वर्ष 2008 से उद्भूत होता है अभिकथित अपराध भारतीय दण्ड संहिता की धाराएँ 323/341/307/302/34 के अन्तर्गत है; जिसके द्वारा दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 227 के अन्तर्गत उनलोगों के निर्मुक्ति के लिए दाखिल याचिका अस्वीकार कर दी गई थी।

2. अभियोजन कहानी संक्षेप में यह थी कि सूचक धनंजय कुम्हार (अब मृत) दिनांक 4.3.2008 को पानी की पाईप-लाईन जोड़ने के लिए अपने घर के नजदीक जमीन खोद रहा था, उसी समय इसका विरोध याचीगण द्वारा किया गया, उन लोगों ने गाली दी और वहाँ पर झगड़ा हुआ। इसके पश्चात्, यह अभिकथित किया गया था कि याची अनूप कुम्हार, जो अपने हाथ में लोहे का सरिया लिए हुए था, सूचक के सिर पर वार किया (मारा) जिससे उसके सिर पर उपहति हुई। जब सूचक का पुत्र अपने पिता के बचाव में आया, उस पर भी हमला किया गया एवं तद्द्वारा उपहतियां आई। सूचक ने तब उसी दिन, दिनांक 4.3.2008 को लिखित सूचना पुलिस थाने में प्रस्तुत किया जिसपर पुलिस ने याचीगण के विरुद्ध भारतीय दण्ड संहिता की धाराएँ 341/323/307/504/34 के अन्तर्गत अभिकथित अपराध के लिए केस दर्ज किया। सूचक धनंजय कुम्हार को उपचार के लिए बाघमारा क्षेत्रिय अस्पताल भेजा गया जहाँ डॉक्टर ने बाएँ कंधे पर छोटे खरोंच के साथ सिर के बाएँ पेरिएटल क्षेत्र पर 2" x ½" x ¼" माप का विदिर्ण घाव पाया। डॉक्टर की राय में यह उपहति उसके परीक्षण से छः घंटे पूर्व कड़े एवं भोथरे औजार से कारित किए गए थे। उपहति के प्रकृति को क्षतिग्रस्त सिर के एक्स-रे रिपोर्ट का प्रतीक्षा में सुरक्षित रखा गया था। जब सूचक धनंजय कुम्हार के जख्मों का उपचार बाघमारा अस्पताल में नहीं हो सका, तब उसे दिनांक 12.3.2008 को उपचार के लिए सरायढेला केन्द्रीय अस्पताल भेजा गया जहाँ 13.3.2008 को उपचार के अनुक्रम में उसकी मृत्यु हो गई एवं केवल तत्पश्चात् यह अपराध भारतीय दण्ड संहिता की धारा 302 के अन्तर्गत प्राथमिकी में जोड़ा गया था। विद्वान वरीय अधिवक्ता

ने स्पष्ट किया कि धनंजय कुम्हार के पोस्ट-मार्टम रिपोर्ट में, डॉक्टर ने मृतक के बाएँ कंधे पर खरोंच का निशान एवं बाएँ occipital क्षेत्र कि ओर सिले हुए घावा पाया। शव विच्छेदन में पेट में 50cc गहरे भुरे रंग का तरल पाया गया था जो अन्य विसेराओं के साथ मृत्यु के वास्तविक कारणों का पता लगाने के लिए न्यायालयिक विज्ञान प्रयोगशाला में भेजने के लिए लिया गया था। इसी बीच, आरोप पत्र प्राप्त करने के बाद भारतीय दण्ड संहिता की धाराएँ 341/323/307/504/34 के अन्तर्गत अपराध का संज्ञान लिया गया था। मामले की सुपुर्दगी की गई थी एवं तत्पश्चात् दिनांक 13.11.2008 को न्यायालयिक विज्ञान प्रयोगशाला के रिपोर्ट के आधार पर उनके उन्मोचन के लिए याचीगण ने दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 227 के अन्तर्गत याचिका दायर किया जिसमें यह वर्णित था कि धनंजय कुम्हार के आँत में endosulfan पाया गया था जो क्लोरो-ऑरगेनों कीटनाशक था, समान्यत: इसका उपयोग खेतों में कीट मारने के लिए किया जाता है एवं यह जहरीला था, लेकिन उनकी याचिका को अस्वीकार कर दिया गया था।

3. विद्वान वरीय अधिवक्ता, श्री त्रिपाठी ने निवेदन किया कि घटना वर्तमान केस के सूचक धनंजय कुम्हार द्वारा प्रस्तुत किये गए रीति से घटित नहीं हुआ था, वस्तुत वास्तविक कथन यह था कि जब याची संख्या 3 रूपा देवी अपने बड़े दामाद के साथ घटना के अभिकथित तारीख दिनांक 4.3.2008 को अपने बेटे अनूप कुम्हार के विवाह की तैयारी में व्यस्त थी, उसने बाहर शोर की आवाज सुनी और जब वह अपने घर से बाहर आई, उसने देखा कि धनंजय कुम्हार अपने दो बेटों और दूसरे महिला सदस्यों के साथ उसके दरवाजे के सामने जमीन खोद रहे थे, एवं पूछताछ करने पर धनंजय कुम्हार ने जवाब दिया कि उसे पानी के सप्लाई के लिए पाईप लाइन बिछाना था जिसका रूपा देवी ने विरोध किया एवं ऐसा नहीं करने को कहा 13 मार्च को उसके बेटे की शादी होने वाली थी एवं उसके कुछ जवाब अश्लील भाषाओं में बदल गए एवं झगड़े में परिणामित हुए। तत्पश्चात् धनंजय कुम्हार एवं उसके परिवार के अन्य सदस्यों ने अपने घर से डंडे एवं तलवार ले आए और रूपा देवी के आँगन में घुसने एवं अतिचार करने लगे, उन्होंने सूचक रूपा देवी के साथ उसके दामाद पर भी हमला किया। ठीक उसी समय उसका बेटा भरत कुम्हार आया और स्थिति को संभालने का प्रयास किया लेकिन कोई फायदा नहीं हुआ रूपा देवी (याची संख्या-3) के लिखित सूचना पर पुलिस ने धनंजय कुम्हार एवं पाँच अन्य अभिकथित व्यक्तियों के विरुद्ध तत्काल मामला दर्ज करने से पूर्व समय के प्रथम बिन्दु पर बाघमारा (बरोरा) पुलिस केस संख्या 59 वर्ष 2008 को ध्यान में रखकर भारतीय दण्ड संहिता की धाराएँ 341/323/354/448/504/34 के अन्तर्गत एक मामला दर्ज किया।

4. विद्वान वरीय अधिवक्ता ने इंगित किया कि धनंजय कुम्हार के बाएँ कंधे पर एक खरोंच एवं सिर पर एक छोटे घाव के साथ दिनांक 4.3.2008 को स्वयं भर्त्ती हुआ था। उस समय साधारण घाव पाए गए थे, वह दिनांक 7.3.2008 को अस्पताल से उन्मोचित कर दिया गया था। दिनांक 12.3.2008 को, उसे सरायढेला केन्द्रीय अस्पताल लाया गया था। जहाँ दिनांक 13.3.2008 को उसकी मृत्यु हो गई। वरीय अधिवक्ता आगे इंगित करते हैं कि न्यायलयिक विज्ञान प्रयोगशाला के रिपोर्ट में मृतक के पेट में कीटनाशक पाया गया था, उसके मृत्यु का कारण विष के द्वारा आपराधिक मानव वध या स्वयं द्वारा आत्महत्या का प्रयास हो सकता था और इसलिए उसके सिर पर आयी चोटें उसके मृत्यु का कारण नहीं हो सकता था दिनांक 7.3.2008 को उसके घाबों पर पट्टी बांधने के उपरांत अस्पताल से उन्मोचित किया गया था जिसके बाद वह स्वस्थ पाया गया था, यह एक ऐसा मामला नहीं था कि याची ने किसी समय बिन्दु पर विष दिया था या यह कि उपहति पीड़ित के सिर पर पाया गया था, डॉक्टर के राय में ये मृत्यु के पर्याप्त कारण थे, उल्लेख करने के लिए यह सुसंगत हो सकता है कि धनंजय कुम्हार स्वस्थ्य था, शारीरिक रूप से समर्थ था एवं उसने बाघमारा (बरोरा) थाना केस संख्या 59 वर्ष

2008 में मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, धनबाद के न्यायालय में दिनांक 12.3.2008 को आत्मसमर्पण किया था जो रूपा देवी (याची संख्या 3) के विनती पर संस्थित किया गया था यह (उपाबंध-7) दिनांक 12.3.2008 को मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश से स्पष्ट हो सकता है। लेकिन विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश, FTC–III, धनबाद ने इस तात्विक तथ्य को अनदेखा करते हुए दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 227 के अन्तर्गत याची की ओर से दाखिल याचिका को गलत प्रकार से अस्वीकार कर दिया है कि केस डायरी में सभी गवाहों ने FIR में अभिकथित घटना का समर्थन किया था एवं पोस्टमार्टम रिपोर्ट यह इंगित करता था कि पीड़ित ने सिर पर चोट खायी थी, भारतीय दण्ड संहिता की धाराएँ 323/341/307/302/34 के अन्तर्गत अभिकथित अपराध के लिए अभियुक्त याचीगण के विरुद्ध आरोप सिद्ध करने के लिए पर्याप्त सामग्री है।

5. अन्तिम रूप से, विद्वान वरीय अधिवक्ता तर्क करते हैं कि विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश द्वारा अभिलिखित आक्षेपित आदेश गलत चिन्तन पर आधारित था चूँकि न्यायालय यह विवेचन करने में असफल रहा कि वहाँ कोई तात्विक तथ्य अभिलेख पर नहीं था कि याचीगण ने विष दिया था जिसके परिणामस्वरुप उसकी मृत्यु हुई। अगर यह बहस की खातिर प्रस्तुत किया जाय कि धनंजय कुम्हार ने उसके सिर पर चोट किया था तब भी वहाँ केस डायरी में संकेत देने को कोई सामग्री नहीं थी कि उसके सिर पर किया गया चोट उसके मृत्यु का वास्तविक कारण था।

6. दुसरी ओर, प्रतिपक्ष संख्या-2 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता, श्री महेश तिवारी ने श्री त्रिपाठी के बहस का जोरदार विरोध इस आधार पर किया कि पीड़ित धनंजय कुम्हार द्वारा याचियों के हाथ पर किया गया चोट कुछ गवाहों द्वारा संपुष्ट किया गया था क्योंकि घटना के तथ्य से इन्कार नहीं किया जा सकता था जैसे विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश द्वारा अभिलिखित आक्षेपित आदेश में निर्दिष्ट किया जा चुका है। अभियोजन का मामला यह नहीं था कि अभियुक्त व्यक्तियों ने विष दिया था, वस्तुत: याची संख्या 1 अनूप कुम्हार ने सह-अभियुक्त के साथ सामान्य आशय से उसके सिर पर लोहे के सरिया से बार किया था जो मृतक के पोस्टमार्टम रिपोर्ट के साथ-साथ उपहति रिपोर्ट में वर्णित है। यद्यपि मैं पाता हूँ कि विद्वान अधिवक्ता, श्री तिवारी न्यायालयिक विज्ञान प्रयोगशाला द्वारा दिए गए विसेरा रिपोर्ट में मृतक के पेट में पाये गये कीटनाशक के जाँच परिणाम के विषय में खामोश है जो धनंजय कुम्हार के मृत्यु का कारण के विषय में पूर्णत: भिन्न परिस्थिति प्रकट करता है।

7. पक्षकारों की ओर से दिए गए तर्कों, परिस्थितियों एवं तथ्यों को ध्यान में रखकर मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि किसी भी याचीगणों के विरुद्ध भारतीय दण्ड संहिता की धारा 302 या 307 के अधीन कोई अपराध निर्मित नहीं होता है यह धारा 325 के अन्तर्गत हो सकता था जो बिना किसी बहस एवं बिना किसी पूर्वाग्रह के मामले के गुण-दोष को इंगित करता है। संबद्ध याची रूपा देवी के सह-अपराधिता को ध्यान में रखकर, पुलिस के समक्ष उनका पूर्व कथन इंगित करता है कि धनंजय कुम्हार जो आक्रमणकर्त्ता था एवं इसलिए मेरी राय में भारतीय दण्ड संहिता की धाराएँ 325/34 के अन्तर्गत प्रथम दृष्टया आरोप नहीं हो सकता है, मैंने उनके केस के उन्मोचन पर विचार करने के लिए पर्याप्त तथ्य पाया है एवं उसी अनुसार बाघमारा (बरोरा) पुलिस केस संख्या 60 वर्ष 2008 में उनको

उन्मोचित किया जाता है। उपरोक्त कारणों से, भारतीय दण्ड संहिता की धाराएँ 325/34 के अन्तर्गत आरोप के लिए अन्य दो याचीगणों के विरुद्ध कार्यवाही के लिए मैंने प्रथम दृष्टया सामग्री पाया है उसी अनुसार वे दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 228(1)(a) के अन्तर्गत मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, धनबाद को उनके अभिलेख स्थानान्तरित करने के उपरांत कार्यवाही की जाय। तद्नुसार, यह याचिका ऊपर निर्दिष्ट तरीके से आंशिक तौर पर अनुज्ञात करते हुए निस्तारित की जाती है।

माननीय एन॰ एन॰ तिवारी, न्यायमूर्ति

अनिल चन्द्र पंडित

बनाम

झारखण्ड राज्य एवं अन्य

WP(S) No. 626 of 2005. Decided on 29th January, 2010.

सेवा विधि–वसूली–मूल नियमावली का नियम 22(1)(c)—नियम 22 (1)(c) के निबंधनों के अनुसार अतिरिक्त वेतनवृद्धि के तौर पर याची को भुगतान की गयी अतिरिक्त रकम की वसूली–यद्यपि याची को अतिरिक्त वेतन वृद्धि भुगतान योग्य नहीं थी, चूँकि याची की ओर से दुर्व्यपदेशन अथवा कपट के बिना इसका भुगतान प्रत्यर्थी द्वारा किया गया था, उससे उक्त राशि वसूल नहीं की जा सकती है–प्रत्यर्थीगण को याची से पहले वसूल की गयी राशि को वापस करने का निर्देश दिया गया। (पैरा 6 से 9)

निर्णयज विधि.–2009(2) JLJR 32—Applied.

अधिवक्तागण.–Mr. A. Banerjee, For the Petitioner; Mr. N.S. Mukherjee, For the Respondents.

आदेश

इस याचिका में, याची ने जिला शिक्षा अधिकारी, दुमका/जामताड़ा द्वारा निर्गत दिनांक 22 सितम्बर, 2003 के आदेश/पत्र, पत्र सं॰ 1231 द्वारा संसूचित जिसके द्वारा अतिरिक्त वेतन वृद्धि, जिसका भुगतान मूल नियमावली (यहाँ इसमें इसके बाद 'उक्त नियमावली' के तौर पर निर्दिष्ट) के नियम 22(1)(c) के निबंधनों में याची को किया गया था, की वसूली के लिए प्रत्यर्थीगण को निर्देश दिया गया था, के अभिखंडन हेतु प्रार्थना की है। इसके अतिरिक्त याची ने जिला शिक्षा अधिकारी, दुमका/जामताड़ा द्वारा जारी दिनांक 4.12.2004 के पत्र सं॰ 1079, जिसके द्वारा उक्त नियमावली के अधीन दी गयी वेतन वृद्धि वापस लेने का निर्देश दिया गया है, के अभिखंडन हेतु भी प्रार्थना की है।

2. याची वर्ष 1965 में संथाल उच्च विद्यालय, कैराबानी में शिक्षक के तौर पर नियुक्त किया गया था। अधिवर्षिता की आयु प्राप्त करने पर वह उक्त पद से दिनांक 31.1.2002 को सेवानिवृत्त हो गया। उसकी नियुक्ति के समय, याची इंटर पास था। बाद में, उसने मूल शिक्षक प्रशिक्षण पाठ्यक्रम और स्नातक परीक्षा उत्तीर्ण किया। उस आधार पर, याची को स्नातक प्रशिक्षित वेतनमान दिनांक 31.3.1980 के प्रभाव से दिया गया। वर्ष 1982 में, याची को मूल वेतन का पुनरीक्षित वेतनमान दिया गया। ग्यारह वर्ष की सेवा पूरी करने के बाद उक्त नियमावली के नियम 22(c) के प्रावधान के अधीन दिनांक 16.11.1991 के प्रभाव से कालबद्ध प्रोन्नति के तौर पर अतिरिक्त वेतनवृद्धि और वरीय केंद्रीय वेतनमान दिया गया।

3. याची की सेवानिवृत्ति के पश्चात्, नियमावली के नियम 22(c) के तात्पर्यित प्रावधान के अधीन उसे दिए गए अतिरिक्त वेतनवृद्धि की स्वीकार्यता: के संबंध में महालेखाकार, बिहार द्वारा आपत्ति उठायी गयी थी। महालेखाकार के उक्त आपत्ति की दृष्टि में विभाग के निदेशक द्वारा जिला शिक्षा

अधिकारी, दुमका को एक पत्र जारी किया गया। उस आधार पर, जिला शिक्षा अधिकारी, दुमका ने दिनांक 21.5.2003 के अपने पत्र द्वारा अभिनिर्धारित किया कि नियमावली के नियम 22(c) के निबंधनों के अनुसार याची को भुगतान की गयी अतिरिक्त वेतनवृद्धि अनुज्ञेय नहीं था। अत: उसने वेतनमान के पुनर्नियतिकरण और याची को दी गयी अधिक राशि की वसूली के लिए निर्देश दिया। तद्नुसार, दिनांक 4.12.2004 के आक्षेपित पत्र द्वारा नियमावली के नियम 22(c) के निबंधनों के अनुसार याची को दी गयी वेतनवृद्धि वापस लेने का निर्देश दिया गया था। उक्त नियमावली के निबंधनों के अनुसार अतिरिक्त वेतनवृद्धि के रूप में याची को भुगतान किए गए अधिक राशि को उक्त आधार पर प्रत्यर्थीगण वसूल करना चाहते थे। उक्त से व्यथित होकर याची ने वर्तमान रिट याचिका दाखिल की है।

4. जब आरंभ में मामले पर विचार किया गया था, यह सूचित किया गया कि ऐसा ही प्रश्न सिविल अपील सं॰ 3351-3355 वर्ष 2003 और समदृश्य मामलों में सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष विचाराधीन है।

5. याची के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि उक्त सिविल अपीले सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निपटायी जा चुकी है। उन्होंने निर्णय की प्रति भी प्रस्तुत किया है।

6. सर्वोच्च न्यायालय के उक्त निर्णय में, यह अभिनिर्धारित किया गया है कि संकल्प की तिथि से पहले एफ॰ आर॰ 22(1)(a)(1) और एफ॰ आर॰ (1)(a)(2) द्वारा उक्त नियम की प्रतिस्थापना की दृष्टि में, नियमावली के नियम 22(c) के निबंधनों के अनुसार अतिरिक्त वेतनवृद्धि अनुज्ञेय नहीं था। संकल्प प्रावधानों के निबंधनों के अनुसार लिया गया था जो संकल्प की तिथि पर अस्तित्व में नहीं था। आगे यह अभिनिर्धारित किया गया है कि चूँकि अपीलार्थीगण-शिक्षकगण उच्चतर पद/श्रेणी में अपनी प्रोन्नति पर किसी ज्यादा महत्वपूर्ण कर्तव्यों और जिम्मेदारियों का निर्वहन नहीं कर रहे थे जो अतिरिक्त वेतनवृद्धि का पात्र होने हेतु अनिवार्य है, अत: वे अतिरिक्त वेतनवृद्धि के हकदार नहीं है। लेकिन, सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि नियम की गलत व्याख्या के कारण, न कि उनके दुर्व्यपदेशन अथवा कपट के कारण पहले ही अपीलार्थीगण को भुगतान की गयी राशि वसूली योग्य नहीं है और यदि राशि वसूल कर ली गयी है, तो इसे वापस करना होगा। (जोर दिया हुआ)

7. इस याचिका में उद्भूत विवाद्यक/प्रश्न सर्वोच्च न्यायालय के उक्त निर्णय **(सैयद अब्दुल कादिर एवं अन्य बनाम बिहार राज्य एवं अन्य)** 2009(2) JLJR 32 से पूरी तरह आच्छादित है। यह अभिनिर्धारित करते हुए कि याची को अतिरिक्त वेतनवृद्धि भुगतान योग्य नहीं थी, चूँकि याची के दुर्व्यपदेशन अथवा कपट के बिना प्रत्यर्थी द्वारा इसका भुगतान किया जा चुका था; उक्त राशि उससे वसूले जाने योग्य नहीं है। यह सूचित किया गया है कि इस रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान, अतिरिक्त वेतनवृद्धि के तौर पर याची को भुगतान की गयी 67,251/- रुपये की राशि उससे वसूल कर ली गयी है।

8. राज्य-प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने याची से की गयी उक्त वसूली पर विवाद नहीं किया है।

9. उक्त की दृष्टि में, इस आदेश की प्रति की प्राप्ति/प्रस्तुती की तिथि से तीन माह की अवधि के भीतर अतिरिक्त वेतनवृद्धि के तौर पर उसे किए गए अधिक भुगतान की राशि, जिसे याची से वसूला गया है को वापस करने का निर्देश प्रत्यर्थीगण को दिया जाता है। यदि उक्त अवधि के भीतर पूर्वोक्त वसूली गयी राशि का भुगतान याची को नहीं किया जाता है, तब याची से वसूल की गयी तिथि से उसे वास्तविक भुगतान/वापसी की तिथि तक 10% प्रतिवर्ष की दर से ब्याज देय होगा।

10. याची को अंतिम पेंशन और उपदान का पुनरीक्षित भुगतान आदेश जारी करने के लिए प्रत्यर्थीगण को तुरंत वेतनमान के पुनर्नियतिकरण के कागजात महालेखाकार को भेजना होगा। याची के वेतनमान के उक्त पुनर्नियतिकरण के आधार पर अवकाश भुनाई और अन्य सेवानिवृत्ति देयों की गणना करनी होगी। यदि उसके वेतनमान के पुनर्नियतिकरण के बाद याची को ऐसी राशि भुगतान योग्य पायी जाती है, इस आदेश की प्रति की प्राप्ति/प्रस्तुति की तिथि से तीन माह के भीतर भुगतान हेतु पत्र/आदेश जारी करना होगा। ऐसी किसी राशि के भुगतान की विफलता की स्थिति में, वास्तविक भुगतान की तिथि तक, नहीं भुगतान की गयी राशि पर 10% प्रतिवर्ष की दर पर ब्याज पाने का हक याची को होगा।

माननीय प्रदीप कुमार, न्यायमूर्ति

दिल मोहम्मद एवं एक अन्य

बनाम

बिहार राज्य (अब झारखंड)

Criminal Appeal (SJ) No. 131 of 2000. Decided on 17th February, 2010.

सत्र विचारण केस सं॰ 392 वर्ष 1990 में श्री राजेश कुमार दूबे, विद्वान अष्टम अपर न्यायिक कमिश्नर, राँची द्वारा पारित दिनांक 7.3.2000 के दोषसिद्धि के निर्णय एवं दंडादेश के विरुद्ध।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धारा 376—बलात्संग–सात वर्ष का कठोर सश्रम कारावास–पीड़ित बालिका ने स्वीकार किया कि वह सहमत पक्षकार थी और पहले से अपीलार्थी की प्रेमिका थी–गर्भवती होने के बाद और अपीलार्थी द्वारा विवाह के अपने वादें से मुकर जाने के बाद पीड़िता द्वारा परिवाद दाखिल किया गया–बलात्कार का अभिकथन क्षोभ के कारण था–अपीलार्थी और पीड़ित बालिका अब एक-दूसरे के साथ विवाहित है–दोषसिद्धि और दंड अपास्त–अपील अनुज्ञात। (पैरा 9 से 12)

अधिवक्तागण.–Mr. P.P.N. Roy, For the Appellants; Mr. Amaresh Kumar, For the State.

प्रदीप कुमार, न्यायमूर्ति.–अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता एवं राज्य के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

2. यह अपील सत्र विचारण केस सं॰ 392 वर्ष 1990 में श्री राजेश कुमार दूबे, विद्वान अष्टम अपर न्यायिक कमिश्नर, राँची द्वारा पारित दिनांक 7.3.2000 के दोषसिद्धि के निर्णय एवं दंडादेश के विरुद्ध है, जिसके द्वारा उन्होंने एकमात्र अपीलार्थी सं॰ 1, दिल मोहम्मद को भारतीय दंड संहिता की धारा 376 के अधीन अपराध का दोषी पाया और सात वर्षों के सश्रम कारावास का दंड दिया। उन्होंने अपीलार्थी सं॰ 2 मुन्ना खातून को भारतीय दंड संहिता की धारा 109/376 के अधीन अपराध का दोषी पाया और उसे 5,000/- रुपये और इसी राशि के दो प्रतिभूओं का जमानत पत्र भरने और शांति कायम रखने एवं दो वर्षों की अवधि तक अच्छा व्यवहार करने पर निर्मुक्त किए जाने का आदेश दिया।

3. अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा निवेदन किया गया है कि अभियोक्त्री के साक्ष्यों और अन्य गवाहों के साक्ष्यों से प्रकट होगा कि अभियोक्त्री सहमत पक्षकार थी और अपीलार्थीगण की दोषसिद्धि विधि में दोषपूर्ण है और अपास्त किए जाने योग्य है।

4. दूसरी ओर, राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने प्रार्थना का विरोध किया है और निवेदन किया है कि अभियोजन ने युक्तियुक्त संदेहों के परे सिद्ध किया है कि अपीलार्थी सं॰ 1 दिल मोहम्मद ने अपीलार्थी सं॰ 2 मुन्ना खातून के साथ साँठ-गाँठ कर पीड़ित बालिका मजिदान खातुन का बलात्कार किया और इस प्रकार अपीलार्थी सं॰ 1 को सही दोषसिद्ध किया गया है।

5. दोनों पक्षों को सुनने के बाद और अभिलेख पर लाए गए साक्ष्यों के परिशीलन के बाद, मैं पाता हूँ कि दिनांक 19.2.1990 को सूचक पीड़िता मजिदान खातून द्वारा लिखाए गए लिखित रिपोर्ट के आधार पर अभियोजन मामला प्रारंभ किया गया था जिसमें कथन किया गया था कि ग्रामीण, दिल मोहम्मद ने लगभग चार माह पहले अपनी बहन मुन्ना खातून के माध्यम से उसे उसके घर से बुलाया था। तत्पश्चात्, दिल मोहम्मद ने भीतर से दरवाजा बन्द कर लिया और उसके साथ बलात्कार किया। जब उसने हल्ला करना चाहा, अभियुक्त सं॰ 1 की बहन मुन्ना खातून ने कथन किया कि उसका भाई दिल मोहम्मद उससे विवाह करेगा। तब उसने हल्ला नहीं किया। जब उसने घटना के बारे में ग्रामीण गंदौर खान, पुत्र सबदेरखान को बताया, तब उसने भी कहा कि वह देखेगा कि उनका विवाह हो जाए। अब वह चार माह की गर्भवती है और तब यह लिखित रिपोर्ट कर रही है।

6. उक्त लिखित रिपोर्ट के आधार पर, पुलिस ने भारतीय दंड संहिता की धारा 376/120B के अधीन अपराध के लिए मामला दर्ज किया और अन्वेषण के बाद पुलिस ने मामले में आरोप पत्र दाखिल किया।

7. चूँकि, मामला केवल सत्र न्यायालय द्वारा विचारण योग्य था, विद्वान सी॰ जी॰ एम॰ ने संज्ञान लेने के बाद मामला सत्र न्यायालय को सुपुर्द कर दिया और जैसा ऊपर कहा गया है, मामले का विचारण विद्वान अष्टम अपर न्यायिक कमिश्नर, राँची द्वारा किया गया जिन्होंने अपीलार्थीगण को दोषी पाया और उनका दोषसिद्ध किया।

8. यह प्रतीत होता है कि विचारण के क्रम में, अभियोजन ने सात गवाहों का परीक्षण किया है:–

अ॰ सा॰ 1 हैदर खान है।

अ॰ सा॰ 2 कासिम खान है, जो पीड़ित बालिका का पिता है।

अ॰ सा॰ 3 मजिदान खातून है, जो पीड़ित बालिका (सूचक) है।

अ॰ सा॰ 4 ऐनूल खान है।

अ॰ सा॰ 5 जमीरान खातून है, जो सूचक की माता है।

अ॰ सा॰ 6 मो॰ इसरायल है, जो टेन्डर गवाह है।

अ॰ सा॰ 7 डॉ॰ रीता लाल है, जो पीड़ित बालिका का परीक्षण किया।

9. सूचक, अ॰ सा॰ 3 मजिदान खातून ने न्यायालय में कथन किया कि लगभग तीन वर्ष पहले दोपहर में मुन्ना खातून ने चावल देने के लिए उसे बुलाया और उसे अपने घर ले गयी। वह उसे अपने कमरे में ले गयी और उसे छोड़ दिया और बाहर से दरवाजा बन्द कर दिया। अभियुक्त दिल मोहम्मद उस कमरे में बैठा हुआ था। जब उसने दरवाजा खोलने को कहा तब मुन्ना खातून ने उसे दिल मोहम्मद के साथ रहने को कहा और कहा कि उसे विवाह करेगा। तब दिल मोहम्मद ने उसे जमीन पर लिटाकर उसकी इच्छा के विपरीत उसके साथ बलात्कार किया। बलात्कार करने के बाद दिलमोहम्मद ने उसे दरवाजा खोलने को कहा, तब मुन्ना खातून ने दरवाजा खोला उससे कहा कि वह हल्ला नहीं करे और वह दिल मोहम्मद से उसका विवाह करवाएगी। रास्ते में, वह गंदुर खान से मिली और उसे घटना के

बारे में बताया, तब उसने भी हल्ला न करने को कहा, तो तुम्हारा विवाह उसके साथ होगा। तत्पश्चात् उसने घटना के बारे में अपने पिता हैदर खान को बताया। पिछले चार माह के दौरान वह घटना के कारण गर्भवती हो गयी। गंदौर खान ने दिल मोहम्मद के साथ उसका विवाह करवाने से इन्कार कर दिया और अपनी पुत्री वसीला का विवाह दिल मोहम्मद से करवा दिया। पंचायती भी नहीं की गयी, तब उसने मामला दर्ज किया। उसने न्यायालय में अभियुक्तगण को पहचाना। अपने प्रति-परीक्षण में उसने कथन किया कि जब उसने धारा 164 दं॰ प्र॰ सं॰ के अधीन बयान दिया, वह चार माह की गर्भवती थी। पैरा 15 पर उसने कथन किया कि जब मुन्ना खातून उसे बुलाने उसके घर आयी, वह घर में अकेली थी और उनका घर उसके घर के अगल-बगल था लेकिन उसने किसी को सूचित नहीं किया। बाद में जब पीड़ित बालिका का दिनांक 25.9.1999 को प्रतिपरीक्षण किया गया। तब उसने प्रति-परीक्षण के पैरा 31 में स्वीकार किया कि वह घटना के पहले से ही दिल मोहम्मद से प्रेम करती थी और उसके पास आया-जाया करती थी। उसने यह भी स्वीकार किया कि उस घटना के पहले से ही उसका उसके साथ शारीरिक संबंध था और जब वह गर्भवती हो गयी, तब उसने उससे विवाह करने को कहा। उसने यह भी कथन किया कि चूँकि दिल मोहम्मद ने गंदौर खान की पुत्रीसे विवाह कर लिया था, वह उससे चिढ़ गयी थी और यह मामला दर्ज किया था। यदि उसने उसके साथ निकाह किया होता तब वह यह मामला दर्ज नहीं करती। तब उसने पुनः दिनांक 23.11.1998 को मामला दर्ज करने के बाद स्वीकार किया कि वह दिल मोहम्मद के साथ विवाह कर चुकी थी और उसके साथ उसका निकाह हो चुका था और निकाह के बाद उसका उसके साथ शारीरिक संबंध था। उसने यह भी स्वीकार किया कि वह वर्तमान में अपने ससुराल में रह रही है।

10. इस प्रकार, पीड़ित बालिका के साक्ष्य से प्रकट होता है कि यद्यपि अपने मुख्य परीक्षण में उसने कथन किया है कि अभियुक्त दिल मोहम्मद ने उसका शारीरिक बलात्कार किया, लेकिन बाद में, उसने अपने पुनः परीक्षण में स्वीकार किया कि घटना के पहले अभियुक्त दिल मोहम्मद के साथ उसका प्रेम संबंध था और उसके साथ उसका शारीरिक संबंध भी था और चूँकि उसने दूसरी महिला अर्थात गंदौर खान की पुत्री के साथ विवाह कर लिया था, उसने यह मामला दर्ज किया था और अब वह स्वीकार करती है कि उसने उसके साथ विवाह किया है और यदि उसने पहले ही उसके साथ विवाह कर लिया होता, वह यह मामला दाखिल नहीं करती।

11. यद्यपि पीड़ित बालिका द्वारा दिनांक 19.2.1990 को दिया गया पहला बयान अ॰ सा॰ 1 हैदर खान और अ॰ सा॰ 2 करीम खान के साक्ष्य द्वारा समर्थित था, लेकिन अब चूँकि, उसने स्वयं प्रति-परीक्षण में दिनांक 25.9.1999 को अपने ही साक्ष्य का खंडन किया है और डॉ॰ रीता लाल, जिन्होंने ने उसका परीक्षण किया और चिकित्सा रिपोर्ट प्रदर्श-4 में सिद्ध किया कि बलात्कार नहीं हुआ था, यह प्रकट है कि बलात्कार का अभिकथन चिढ़ के कारण है चूँकि अभियुक्त दिल मोहम्मद ने गंदौर खान की पुत्री से विवाह कर लिया था और बाद में, अभियोक्त्री के साथ विवाह किया था। पीड़ित बालिका ने स्वीकार किया कि वह सहमत पक्षकार थी और घटना के पहले से ही उसका उसके साथ प्रेम संबंध था।

12. मामले के इस दृष्टि में, सत्र विचारण सं॰ 392 वर्ष 1990 में श्री राजेश कुमार दूबे, विद्वान अष्टम अपर न्यायिक कमिश्नर, राँची द्वारा पारित भारतीय दंड संहिता की धारा 376 और धारा 109/376 के अधीन दिनांक 7.3.2000 का दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश विधि में दोषपूर्ण है और इसे अपास्त किया जाता है।

13. तद्नुसार; यह दांडिक अपील अनुज्ञात किया जाता है।

14. अपीलार्थी जमानत पर है और उन्हें अपने जमानत पत्र के बंधन से निर्मुक्त किया जाता है।

माननीय अमरेश्वर सहाय, न्यायमूर्ति

बेली बराईक

बनाम

झारखण्ड राज्य एवं एक अन्य

Cr. M.P. No. 196 of 2008. Decided on 29th January, 2010.

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 439 (2)—जमानत–रद्दकरण हेतु प्रार्थना–अपनी पत्नी–याची द्वारा शुरु की गयी दांडिक अभियोजन का सामना वि॰ प॰ सं॰ 2 कर रहा है–वि॰ प॰ सं॰ 2 को दी गयी अग्रिम जमानत के संबंध में निबंधनों और शर्तों का अभिकथित उल्लंघन–वि॰ प॰ सं॰ 2 भरण-पोषण नहीं दे रहा है जो पक्षों के बीच तय हुआ था–उनके बीच निबंधनों और शर्तों का पालन करने हेतु पक्षों को एक और अवसर दिया जाना चाहिए–न्यायालय अग्रिम जमानत रद्द करने के पक्ष में नहीं है। (पैरा 9 एवं 10)

अधिवक्तागण.–Mr. Neeraj Kumar, For the Petitioner; Mr. APP, For the State; Mr. Mohit Prakash, For O.P. No. 2.

आदेश

याची के विद्वान अधिवक्ता श्री नीरज कुमार और वि॰ प॰ सं॰ 2 के विद्वान अधिवक्ता श्री मोहित प्रकाश को सुना गया।

2. इस याचिका में, याची वि॰ प॰ सं॰ 2 की पत्नी है। उसने अपने पति अर्थात् वि॰ प॰ सं॰ 2 अर्थात् जगदेव भगत, जो पुलिस में उपनिरीक्षक है और वर्तमान में पलामू जिला में मनातू पुलिस थाना में पुलिस उप-निरीक्षक के तौर पर पदस्थापित है, को दिए गए जमानत के रद्दकरण हेतु यह याचिका दाखिल की है। याची बेली बराईक अभिकथन करती है कि उसके पति ने उनके बीच हुए समझौते के निबंधनों का जानबूझकर और आशयपूर्वक उल्लंघन किया है जो उसे अग्रिम जमानत दिए जाने का शर्त था और इस प्रकार ए॰ बी॰ ए॰ सं॰ 1265 वर्ष 2006 में दिनांक 20.11.2006 के इस न्यायालय के आदेश को जानबूझ कर और आशयित उल्लंघन के लिए वि॰ प॰ सं॰ 2 जगदेव भगत को दिया गया अग्रिम जमानत रद्द किया जा सकता है।

3. यह प्रतीत होता है कि याची ने भारतीय दंड संहिता की धाराएँ 494, 498A एवं 420 के अधीन चैनपुर पी॰ एस॰ केस सं॰ 27 वर्ष 2006 में अपने पति जगदेव भगत के विरुद्ध दांडिक मामला दर्ज किया था जिसमें अभिकथन किया गया था कि उसे अपने पति द्वारा यातना दी जा रही थी और उसने दूसरी पत्नी के रूप में एक महिला को अपने घर में गैरकानूनी रूप से रखा है जो उसके साथ उसके बच्चो के साथ रह रही है।

4. पति जगदेव भगत ने जिला न्यायाधीश, गुमला के समक्ष अग्रिम जमानत हेतु याचिका दाखिल किया और इन्कार किए जाने पर इस न्यायालय के समक्ष अग्रिम जमानत याचिका दाखिल किया जो ए॰ बी॰ ए॰ सं॰ 1265 वर्ष 2006 के रूप में दर्ज था। अग्रिम जमानत याचिका की सुनवाई करते हुए पीठ ने मामले को सुलहकर्ता, झारखंड राज्य विधि सेवा प्राधिकार, राँची को निर्दिष्ट करके पक्षों के बीच वैवाहिक विवाद सुलझाने का प्रयास किया। दोनों पक्ष सुलहकर्ता के समक्ष उपस्थित हुए और अंतत: पक्षों ने लिखित रूप से करार किया। दोनों पक्षों द्वारा सम्यक् रूप से हस्ताक्षरित लिखित करार के निबंधनों के अनुसार पति जगदेव भगत अर्थात् वि॰ प॰ सं॰ 2 सहमत हुआ कि वह अपने वेतन का 45%

अपनी पत्नी अर्थात् याची को देगा और उसकी पत्नी उसके विरुद्ध दाखिल दांडिक मामला वापस ले लेगी। वह अक्टूबर 2006 से अपने वेतन का 45% अपनी पत्नी अर्थात याची के खाते में जमा करने को सहमत हुआ और इसमें विफल होने पर अपनी पत्नी को स्वतंत्रता दी कि वह उक्त राशि अर्थात् उसके वेतन का 45% काटने और उसके खाते में जमा करने के लिए विभाग को कह सकती है।

5. सुलहकर्ता के समक्ष पक्षों के बीच हुए करार पर विचार करने के बाद पति अर्थात् वि० प० सं० 2 को अग्रिम जमानत देते हुए इस न्यायालय के दिनांक 20.11.2006 के आदेश द्वारा अग्रिम जमानत याचिका इस शर्त के साथ निपटायी गयी थी कि वह समझौते के निबंधनों और शर्तों का पालन करेगा और यदि वह विफल रहता है तो उसकी पत्नी उसकी जमानत रद्द करवाने हेतु याचिका दाखिल करने को स्वतंत्र होगी।

6. अब, जमानत के रद्दकरण हेतु उस आधार, जिन्हें पहले के पैराग्राफों में ध्यान में लिया जा चुका है, पर पत्नी द्वारा याचिका दाखिल की गयी है।

7. पति जगदेव भगत, वि० प० सं० 2, नोटिस के बाद उपस्थित हुआ है और अपना कारण बताओ दाखिल किया है जिसमें उसने कथन किया है कि समझौते के निबंधनों में से एक यह था कि याची दांडिक मामला वापस ले लेगी लेकिन उसने ऐसा करने से इन्कार कर दिया है और उक्त दांडिक मामले में आरोप भी विरचित कर दिए गए हैं। उसने आगे कथन किया है कि वह फरवरी 2009 से वेतन नहीं पा रहा है और इस प्रकार तय भरण पोषण राशि उसे दे नहीं सकता है। लेकिन उसने किसी प्रकार याची बेली बराईक के खाते में दिनांक 4.1.2010 को 50,000/- रुपए जमा कर दिया है। उसने आगे कहा कि जैसे ही उसे वेतन मिलेगा वह तय राशि जमा कर देगा।

8. याची कथन करती है कि यद्यपि उसके पति ने वेतन के 45% के समतुल्य राशि भुगतान करने को सहमत हुआ था, वस्तुतः उसने केवल 5000/- रुपये प्रतिमाह का भुगतान किया है। पहला भुगतान दिनांक 23.2.2007 को, दूसरा भुगतान दिनांक 6.3.2007 को, तीसरा भुगतान दिनांक 20.4.2007 को चौथा भुगतान दिनांक 12.6.2007 को, पाँचवा भुगतान दिनांक 16.7.2007 को और छठा भुगतान 15.9.2007 को किया गया था। उसने अभिकथन किया है कि मई और अगस्त 2007 के माह के लिए कोई भुगतान नहीं किया गया है। उसने आगे कथन किया है कि सितम्बर 2007 के बाद उसे एक पैसे का भी भुगतान नहीं किया गया है और चूँकि उसे आय का कोई अन्य स्रोत नहीं है, अतः वह भुखमरी के कगार पर है।

9. पक्षों के परस्पर विरोधी प्रतिवादों पर विचार करते हुए, मैं महसूस करता हूँ कि उनके बीच हुए करार के निबंधनों एवं शर्तों के पालन के लिए पक्षों को एक और अवसर दिया जाना चाहिए। वर्तमान में, मैं पति जगदेव भगत की अग्रिम जमानत रद्द करने के पक्ष में नहीं हूँ लेकिन इसी समय मेरा दृष्टिकोण यह है कि उसके द्वारा सहमत निबंधनों एवं शर्तों का पालन उसे करना चाहिए।

10. तद्नुसार, आरक्षी अधीक्षक, पलामू को वि० प० सं० 2 जगदेव भगत, पुलिस उपनिरीक्षक, मनातू पुलिस थाना, पलामू के कुल वेतन से 45% अक्टूबर 2007 से काट कर और वि० प० सं० 2 द्वारा याची को पहले भुगतान किए गए राशि को घटाकर इसे याची बेली बराक के पंजाब नेशनल बैंक, किशोरगंज, शाखा, राँची के खाते में जमा करने का निर्देश देकर यह याचिका निपटायी जाती है। याची को अपना बैंक खाता संख्या विभाग को देने का निर्देश दिया जाता है। जब एक बार विभाग भरण-पोषण राशि को याची के खाते में हस्तांतरण करना प्रारंभ कर देता है उसे भी समझौते के निबंधनों और शर्तों

का पालन करना चाहिए और जैसा वह सहमत हुई थी। उसे अपने पति जगदेव भगत अर्थात वि॰ प॰ सं॰ 2 के विरुद्ध दांडिक मामला जारी नहीं रखना चाहिए। वि॰ प॰ 2 के अधिवक्ता ने कथन किया है कि वि॰ प॰ 2 अपनी सेवा पुस्तिका में याची का नाम नाम निदेशित करने का कदम उठाएगा।

इन संप्रेक्षणों और निर्देशों के साथ यह याचिका निस्तारित की जाती है।

माननीय ज्ञान सुधा मिश्र, मुख्य न्यायाधीश एवं आर॰ आर॰ प्रसाद, न्यायमूर्ति

मधुसूदन मित्तल

बनाम

झारखंड राज्य विद्युत बोर्ड एवं अन्य

I.A. No. 290 of 2010 in CWJC No. 1793 of 2001. Decided on 28th January, 2010.

विद्युत विधि–जे॰ एस॰ ई॰ बी॰ को 75 मेगावाट बिजली की अतिरिक्त आपूर्त्ति करने का निर्देश उच्च न्यायालय द्वारा डी॰ वी॰ सी॰ को दिया गया–निर्देश को कार्यान्वित करने में 15 दिनों का स्थगन ईप्सित करते हुए आवेदन–आदेश के कार्यान्वयन को केवल इस तथ्य के आधार पर स्थगित नहीं किया जा सकता है कि विद्युत दर के संबंध में मुकदमा अधिकरण और उच्च न्यायालय के समक्ष विवाद का विषय वस्तु है–आक्षेपित आदेश को कार्यान्वित किया जाना है क्योंकि यह अंतिमता प्राप्त कर चुका है–लेकिन, अतिरिक्त आपूर्त्ति हेतु भुगतान किए बिना अतिरिक्त आपूर्त्ति का लाभ उठाने की अनुज्ञा जे॰ एस॰ ई॰ बी॰ को नहीं दी जा सकती है–आवेदन अस्वीकृत। (पैरा 4 से 8)

अधिवक्तागण.–Mr. M.S. Mittal, For the Petitioner; M/s V.P. Singh, A.K. Pandey, For the J.S.E.B.; Mr. Manish Mishra, For the State; Mr. S.B. Gadodia, For the D.V.C.; Md. Mokhtar Khan, For the Union of India.

आदेश

यह याचिका प्रत्यर्थी-डी॰ वी॰ सी॰ द्वारा इस प्रार्थना के साथ दाखिल की गयी है कि दिनांक 1.5.2008 के आदेश के अनुसरण में प्रत्यर्थी-जे॰ एस॰ ई॰ बी॰ को 75 मेगावाट बिजली की अतिरिक्त आपूर्त्ति करने का निर्देश देते हुए इस न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 13.1.2010 एवं 19.1.2010 के आदेशों को 15 दिनों की अवधि तक कार्यान्वित नहीं किया जाना चाहिए। याचिका इन प्राख्यानों पर दाखिल की गयी है कि यद्यपि प्रत्यर्थी-डी॰ वी॰ सी॰ ने 25 मेगावाट की अतिरिक्त आपूर्त्ति करते हुए आदेश को कार्यान्वित किया है, दिनांक 13.1.2010 एवं 19.1.2010 को इस न्यायालय द्वारा पारित आदेशों का 15 दिनों के लिए स्थगित कर दिया जाना चाहिए ताकि प्रत्यर्थी-डी॰ वी॰ सी॰ यह स्थापित करने के लिए एक व्यापक याचिका दाखिल करेगा कि विशेष परिस्थिति के अधीन वह बोर्ड को 100 मेगावाट की अतिरिक्त आपूर्त्ति करने की स्थिति में नहीं है।

2. प्रत्यर्थी-डी॰ वी॰ सी॰ के विद्वान अधिवक्ता, जिन्हें डी॰ वी॰ सी॰ के वित्त निदेशक द्वारा सहायता दी जा रही है, को अपना यह अभिवाक् स्थापित करने हेतु इस न्यायालय को संबोधित करने की अनुज्ञा दी गयी थी कि दिनांक 1.5.2008 को पारित सहमति आदेश के बावजूद जे॰ एस॰ ई॰ बी॰ को विद्युत की अतिरिक्त आपूर्त्ति क्यों नहीं की जा सकती है जब बोर्ड को 150 मेगावाट की अतिरिक्त आपूर्त्ति करने के लिए डी॰ वी॰ सी॰ सहमत हो गया था। जब हमने दिनांक 1.5.2008 के आदेश, जो कि सर्वोच्च न्यायालय तक अंतिमता प्राप्त कर ली थी, के अनुसरण में आपूर्त्ति नहीं करने का कारण बताने के लिए डी॰ वी॰ सी॰ के अधिवक्ता और उसके अधिकारी को अनुज्ञा दी,

इस न्यायालय के समक्ष तथ्यों एवं परिस्थितियों की विस्तृत जानकारी दी गयी थी जिनसे यह निष्कर्ष निकला कि डी॰ वी॰ सी॰ जे॰ एस॰ ई॰ बी॰ को अतिरिक्त आपूर्त्ति करने का इच्छुक नहीं था क्योंकि पहले से ही आपूर्ति की गयी विद्युत के लिए जे॰ एस॰ ई॰ बी॰ के विरुद्ध वृहत राशि बकाया है।

3. डी॰ वी॰ सी॰ के अधिवक्ता द्वारा कथन किया गया है कि दिनांक 2.1.2010 को जे॰ एस॰ ई॰ बी॰ के विरुद्ध 218.00 करोड़ रुपये बकाया है जबकि जे॰ एस॰ ई॰ बी॰ के अधिवक्ता ने कथन किया कि लेटर ऑफ क्रेडिट के मार्फत से 79.00 करोड़ रुपया डी॰ वी॰ सी॰ को पहले ही दिया जा चुका है और टैरिफ, जिसका दावा डी॰ वी॰ सी॰ द्वारा किया गया है और जिसका बोर्ड द्वारा प्रतिवाद किया गया है, के संबंध में वास्तविक आँकड़े को अंतिम अभिनिधारित नहीं किया जा सकता है। पक्षों के अधिवक्ता द्वारा आगे यह सूचित किया गया कि 'विद्युत के लिए अपीलीय अधिकरण' के समक्ष विवाद लंबित है जहाँ बकाया राशि के संबंध में प्रश्न न्यायाधीन है और जब मामला अधिकरण के समक्ष न्यायाधीन है, सितम्बर 2000 से प्रभावी प्रचलित दर जो डी॰ वी॰ सी॰ के अनुसार 2.77/- रुपया है, पर डी॰ वी॰ सी॰ को भुगतान करने का निर्देश देते हुए अधिकरण द्वारा एक आदेश पारित किया गया है।

4. इस तथ्य से यह युक्तियुक्त निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि टैरिफ, जिसे बोर्ड को विद्युत आपूर्त्ति करने के लिए प्रभारित किया जाना है, के संबंध में डी॰ वी॰ सी॰ एवं जे॰ एस॰ ई॰ बी॰ के बीच विवाद है और मामला अधिकरण के पास लंबित है।

5. हमारे समक्ष जो भी कथन किए गए हैं उनके आलोक में मामले के इन सारे पहलुओं पर विचार करने पर, हम केवल इस आधार पर डी॰ वी॰ सी॰ को दिनांक 1.5.2008 के आदेश को क्रियान्वित नहीं करने की अनुज्ञा इसलिए नहीं दे सकते हैं कि विद्युत के दर के संबंध में मुकदमा अधिकरण के समक्ष विवाद का विषयवस्तु है और यह न्यायालय तत्समय मामले पर इस सीमा तक विचार कर रहा है कि दिनांक 1.5.2008 के आदेश, जिसके द्वारा 150 मेगावट विद्युत की अतिरिक्त आपूर्त्ति करने हेतु डी॰ वी॰ सी॰ सहमत हुआ था, प्रभाव में लाने योग्य है या नहीं। इस संदर्भ में, पक्षों के अधिवक्ताओं को सुनने के बाद हम इस निष्कर्ष पर आते हैं कि जे॰ एस॰ ई॰ बी॰ के विरुद्ध डी॰ वी॰ सी॰ की बकाया राशि और विद्युत दर के संबंध में विवाद अधिकरण के समक्ष विचाराधीन विषय वस्तु है और इस कारण विवाद के इस अंश पर विचार करने का कोई कारण न्यायालय के पास नहीं है तत्समय हमारे समक्ष एकमात्र विवाद यह है कि 150 मेगावाट की अतिरिक्त आपूर्त्ति, जिसकी आपूर्त्ति के लिए डी॰ वी॰ सी॰ सहमत हुआ था, निष्पादित करने योग्य है या नहीं और हमारा स्पष्ट दृष्टिकोण यह है कि इसे क्रियान्वित करना ही होगा क्योंकि यह अंतिमता प्राप्त कर चुका है। फिर भी हम इस तथ्य के प्रति जागरूक है कि अतिरिक्त आपूर्त्ति के लिए भुगतान किए बिना अतिरिक्त आपूर्त्ति का लाभ उठाने की अनुज्ञा प्रत्यर्थी-जे॰ एस॰ ई॰ बी॰ को नहीं दी सकती है भले ही यह उस दर पर क्यों नहीं जिसे अपीलीय अधिकरण ने अंतरिम उपाय के तौर पर यह दर्शाते हुए नियत किया है कि सितम्बर 2000 में प्रचलित दर लागू होगी और यह दर डी॰ वी॰ सी॰ के अनुसार 2.77/- रुपया है।

6. जे॰ एस॰ ई॰ बी॰ के विद्वान अधिवक्ता ने कथन किया है कि जे॰ एस॰ ई॰ बी॰ 2,77/- रुपये की दर पर अतिरिक्त आपूर्त्ति के लिए भुगतान कर रहा है और इस दर को विचार में लेते हुए बिल बनाया गया है।

7. अत: भुगतान के बारे में डी॰ वी॰ सी॰ को अनावश्यक चिन्ता करने का कोई भी कारण नहीं है जहाँ तक अतिरिक्त आपूर्त्ति का संबंध है। हमें सूचित किया गया है कि इस चरण पर डी॰ वी॰ सी॰

दिनांक 23.1.2010 से 100 मेगावाट की आपूर्त्ति कर रहा है और हम डी॰ वी॰ सी॰ को निर्देश देते हैं कि प्रत्यर्थी–जे॰ एस॰ ई॰ बी॰ को 100 मेगावाट की अतिरिक्त आपूर्त्ति के लिए एक पृथक खाता रखा जाए और जहाँ तक 100 मेगावाट की अतिरिक्त आपूर्त्ति का संबंध है, उन्हें दिनांक 22.1.2010 से बिल बनाने की अनुज्ञा दी जाती है और बिल अपीलीय अधिकरण द्वारा पारित आदेश, जब तक इसे परिवर्तित नहीं किया जाता है अथवा अपीलीय अधिकरण द्वारा अंतिम रूप से निर्णीत किया जाता है, के मुताबिक 2.77/- रुपये की दर से बनाया जाएगा। प्रत्यर्थी डी॰ वी॰ सी॰ 100 मेगावाट की अतिरिक्त आपूर्त्ति करता रहेगा और जहाँ तक अतिरिक्त आपूर्त्ति का संबंध है, जे॰ एस॰ ई॰ बी॰ भुगतान करता रहेगा जैसा यहाँ इसमें पहले उपदर्शित किया गया है।

8. मामले की इस दृष्टि में, हम दिनांक 13.1.2010 और 19.1.2010 के आदेशों को स्थगित करने का कोई कारण नहीं पाते हैं क्योंकि ये आदेश डी॰ वी॰ सी॰ को दिनांक 1.5.2008 के आदेश, जो सर्वोच्च न्यायालय द्वारा मान्य ठहराया गया था, को क्रियान्वित करने का निर्देश देते हैं। अत: हम पूर्वोक्त आदेशों को स्थगित करने की प्रत्यर्थी डी॰ वी॰ सी॰ की प्रार्थना को अस्वीकार करते हैं और यहाँ इसमें पहले दर्ज आदेशों के अनुपालन हेतु डी॰ वी॰ सी॰ को दिए गए निर्देश को दोहराते हैं।

9. लेकिन, हम याची के अधिवक्ता की चिन्ता की सराहना करते हैं कि इस आदेश के अधीन डी॰ वी॰ सी॰ प्रत्यर्थी बोर्ड को की जानेवाली विद्युत की मूल मात्रा/आपूर्त्ति को रोक नहीं सकता है जो वह पहले से कर रहा है और पहले नहीं की गयी आपूर्त्ति की बकाया राशि के संबंध में विवाद पर विचार कर रहे हैं क्योंकि ये हमारे समक्ष विचाराधीन नहीं हैं और ये अपीलीय अधिकरण के समक्ष संवीक्षा और न्यायनिर्णयण का विषयवस्तु है।

10. तद्नुसार याचिका (आई॰ ए॰ सं॰ 290/2010) निपटायी जाती है।

11. मुख्य याचिका (सी॰ डब्ल्यू॰ जे॰ सी॰ 1793/2001) को 4.2.2010 को सुनवाई के लिए सूचीबद्ध किया जाता है।

माननीया जया रॉय, न्यायमूर्ति

ब्रिगेडियर हरीश चन्द्र चावला एवं अन्य

बनाम

झारखंड राज्य एवं अन्य

Cr. Revision No. 44 of 2009. Decided on 29th January, 2010.

(क) भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 323, 324, 325, 326, 342, 352, 504, 506 एवं 120B सह-पठित दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 197—संज्ञान–उन्मोचन याचिका की अस्वीकृति–याचीगण केन्द्रीय सरकार के कर्मचारी हैं–मंजूरी के आधार पर आक्षेपित आदेश का विरोध–अभिकथित कृत्य पदीय कर्तव्य के निर्वहन के दौरान किया गया था या नहीं, यह बिल्कुल तथ्य का प्रश्न है जिसका निर्णय साक्ष्य के आधार पर संपूर्ण विचारण के बाद किया जा सकता है–विचारण न्यायालय ने सही पाया कि अभियुक्तों द्वारा प्रहार का अवरोधित सीमित कृत्य और दांडिक बल का प्रयोग पदीय कर्तव्य का अंश नहीं है–पुनरीक्षण याचिका खारिज। (पैरा 6, 7, 10, 18 एवं 19)

(ख) सैन्य अधिनियम, 1950–धारा 125—दांडिक न्यायालय एवं कोर्ट मार्शल अधिकारिता समायोजन नियमावली, 1978—मेजर पर अभिकथित प्रहार के लिए याचीगण का दांडिक अभियोजन–बहुत पहले से सेना को जानकारी थी कि न्यायिक दंडाधिकारी के न्यायालय में याचीगण के विरुद्ध दांडिक मामला चल रहा है–लेकिन सेना ने कोर्ट मार्शल कार्यवाही प्रारंभ करने का विकल्प नहीं चुना–अब धारा 125 के प्रावधानों और नियम 3 एवं 4 का अभिवाक् याचीगण नहीं कर सकते है। (पैरा 14)

निर्णयज विधि.–AIR 1988 SC 257; (2004)2 SCC 349; (2009)6 SCC 372—Relied upon; 1987 Cr. L.J. 637; 2002 Cr.L.J. 531—Distinguished.

अधिवक्तागण.–M/s Md. Mokhtar Khan, Md. Razallah Ansari, Shahid Khan, For the Petitioners; Mr. R.S. Sinha, For the State; M/s Rajesh Kumar, Deepak Kr. Bharti, Amit Kumar, M.K. Sinha, For the Opp. Party No. 2.

जया रॉय, न्यायमूर्ति.–इस पुनरीक्षण याचिका को पक्षों की सहमति से ग्रहण के चरण पर ही निपटाने के लिए सुना गया था। याचीगण ने परिवाद केस सं॰ सी॰ 599 वर्ष 2000 में दिनांक 17.12.2008 को श्री प्रभाकर सिंह, न्यायिक दंडाधिकारी, राँची द्वारा पारित आदेश, जिसके द्वारा उन्होंने याची को उन्मोचित करने के लिए और उनके विरुद्ध लंबित कार्यवाही को समाप्त करने के लिए याचीगण की ओर से दाखिल याचिका को खारिज कर दिया है, के अभिखंडन के लिए वर्तमान पुनरीक्षण याचिका दाखिल की है।

2. संक्षेप में, मामले के तथ्य यह है कि विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 ने जो मेजर अनन्त कुमार की पत्नी है, ने भारतीय दंड संहिता की धाराएँ 323, 324, 325, 326, 342, 352, 504, 506 सह-पठित धारा 120B के अधीन अभिकथित अपराध के लिए मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, राँची के समक्ष परिवाद याचिका (परिवाद याचिका सं॰ C-599 वर्ष 2000) दाखिल की थी। तत्पश्चात्, न्यायिक दंडाधिकारी ने दिनांक 9.10.2002 के आदेश के तहत याचीगण के विरुद्ध संज्ञान लिया और दिनांक 27.2.2003 के अपने आदेश द्वारा गिरफ्तारी का जमानती वारंट जारी किया और उक्त आदेशों के विरुद्ध याचीगण ने दिनांक 9.10.2002 के संज्ञान लेते हुए आदेश के अभिखंडन हेतु और न्यायिक दंडाधिकारी, राँची के समक्ष लंबित दांडिक परिवाद की समस्त कार्यवाही के अभिखंडन हेतु भी अभिखंडन याचिका दाखिल किया। उक्त अभिखंडन याचिका इस न्यायालय के समक्ष दांडिक विविध याचिका (दां॰ वि॰ याचिका सं॰ 578 वर्ष 2003) के रूप में दर्ज किया गया था। लेकिन अंतत: उक्त अभिखंडित याचिका याचीगण को आरोप विरचित किए जाते समय अथवा विचारण के दौरान अवर न्यायालय में सारे बिन्दुओं को उठाने की स्वतंत्रता याचीगण को देते हुए दिनांक 10.7.2003 के आदेश के तहत वापस ले ली गयी थी। तत्पश्चात्, कार्यवाही समाप्त करने और उनको उन्मोचित करने के लिए याचीगण द्वारा विद्वान दंडाधिकारी के समक्ष दिनांक 26.7.2008 को याचिका दाखिल किया गया था। उक्त याचिका में यह स्पष्ट तौर पर कथन किया गया था कि चूँकि सारे अभियुक्तगण सेना में भारत संघ के क्रियाकलापों से संबंधित केन्द्रीय सरकार के कर्मचारी हैं, उनके अभियोजन के लिए इस मामले में मंजूरी अपेक्षित है जैसा दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 197 (2) में कथन किया गया है जो यह प्रावधान करता है कि:–

> *''केन्द्रीय सरकार की पूर्व मंजूरी के सिवाय अपने पदीय कर्तव्य के निर्वहन का कार्य अथवा तात्पर्यित रूप से कार्य करते हुए संघ के सैन्य बल के किसी सदस्य द्वारा अभिकथित रूप से किए गए किसी अपराध के लिए कोई न्यायालय संज्ञान नहीं लेगा।''*

3. आगे यह निवेदन किया गया है कि केन्द्रीय सरकार से मंजूरी लिए बिना न्यायालय द्वारा संज्ञान लिया गया है। सेना के वरीय अधिकारी होने के नाते अभियुक्तगण अपने पदीय कर्तव्य के निर्वहन में

कार्य कर रहे थे और उन्होंने अपनी अधिकारिता के परे कोई काम नहीं किया था। इस मामले में मंजूरी नहीं ली गयी है, अत: यह मामला खारिज कर देना चाहिए। यह भी कथन किया गया है कि परिवादी का पति सेना में अधिकारी था और कोर्ट मार्शल के दौरान उसे दोषी पाया गया था और इस कारण परिवादी ने वरीय अधिकारियों को परेशान करने के लिए इस मनगढ़ंत और बनावटी परिवाद याचिका दाखिल किया है।

4. वर्तमान विपक्षी पक्षकार सं० 2 ने याचीगण द्वारा दिनांक 26.7.2008 को दाखिल पूर्वोक्त याचिका के खिलाफ प्रत्युत्तर भी दाखिल किया है। दोनों पक्षों के मामले पर विचार करने के बाद और मामले के अभिलेखों के परिशीलन के बाद और पक्षों को विस्तारपूर्वक सुनने के बाद विचारण न्यायालय ने पूर्वोक्त याचिका को खारिज कर दिया और अभियुक्तगण को न्यायालय में सशरीर उपस्थित होने का निर्देश दिया और दिनांक 17.12.2008 के आदेश द्वारा अभियोग के लिए मामला को नियत किया।

5. याचीगण के विद्वान अधिवक्ता, श्री खान निवेदन करते हैं कि दांडिक विविध याचिका सं० 578 वर्ष 2003 में उच्च न्यायालय ने दिनांक 10.7.2003 के अपने आदेश द्वारा याचीगण को आरोप विरचित किए जाते समय अथवा विचारण के दौरान स्वयं अवर न्यायालय में इन सारे बिन्दुओं को उठाने की स्वतंत्रता दी है। अभिलेख से पता चलता है कि जाँच के बाद विचारण न्यायालय ने भा० दं० सं० की धाराएँ 323, 342 एवं 352 के अधीन याचीगण (अभियुक्तगण) के विरुद्ध प्रथम दृष्टया मामला पाया है और दिनांक 9.10.2002 के अपने आदेश द्वारा मामले का संज्ञान लिया। उक्त आदेश को चुनौती देते हुए याचीगण ने उच्च न्यायालय के समक्ष आए है। पक्षों को सुनने के बाद, उच्च न्यायालय ने निम्नलिखित संप्रेक्षणों के साथ उक्त मामले को निपटाया था:–

> *''इन याचीगण, जो सैन्य कार्मिक है और घटना की अभिकथित तिथि पर पदीय कर्तव्य का निर्वहन कर रहे थे, के अभियोजन की मंजूरी से संबंधित बिन्दुओं को आरोप विरचित किए जाते समय अथवा विचारण के दौरान स्वयं विद्वान अवर न्यायालय में याचीगण के विद्वान अधिवक्ता उठा सकते हैं और यह परिवाद याचिका परिवादी के पति और इन याचीगण, जो 23 इन्फैन्ट्री डिवीजन आर्डनेन्स यूनिट, आर्मी कैम्पस, नामकुम, राँची के सैन्य कार्मिक है, के बीच कुछ मतभेदों को लेकर दाखिल की गयी है।*
>
> *इस संप्रेक्षण के साथ कि याचीगण को आरोप विरचित किए जाते समय अथवा विचारण के दौरान स्वयं विद्वान अवर न्यायालय में इन सारे बिन्दुओं को उठाने की स्वतंत्रता होगी, यह दांडिक विविध याचिका निपटायी जाती है।*

6. इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि यह प्रश्न कि अभिकथित कार्य पदीय कर्तव्य के निर्वहन के दौरान किए गए थे या नहीं; पूर्णत: तथ्य का प्रश्न है जिसका निर्णय संपूर्ण विचारण के पश्चात् साक्ष्य के आधार पर किया जा सकता है। विचारण न्यायालय ने निर्णय किया है और अपना निष्कर्ष दिया है कि जाँच के बाद न्यायालय ने क्षति कारित करने के अभिकथित कृत्य को गलत नहीं पाया है लेकिन वर्तमान अभियुक्तगण द्वारा प्रहार के सीमित कृत्य और दांडिक बल के प्रयोग को पदीय कर्तव्य का अंश नहीं पाया गया था।

7. बख्शीश सिंह बरार बनाम श्रीमती गुरमेज कौर एवं एक अन्य, AIR 1988 SC पृष्ठ 257 में प्रकाशित मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने संप्रेक्षित किया है:–

> *''अपने कर्तव्यों के निर्वहन में लोक सेवकों को संरक्षण देना आवश्यक है। दांडिक कार्यवाहियों और अभियोजन में परेशान होने से उन्हें उन्मुक्त किया जाना चाहिए, धारा 196 और धारा 197 का तर्काधार यही है। लेकिन यह जोर देना उतना*

ही महत्वपूर्ण है कि नागरिकों के अधिकारों को संरक्षित किया जाना चाहिए और किसी अतिरेक की अनुज्ञा नहीं दी जानी चाहिए। 'मुठभेड़ में मृत्यु' सामान्य बात हो गयी है। प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में पदीय कर्तव्यों का निर्वहन में कार्यरत लोक अधिकारियों और लोक सेवकों के संरक्षण और आम नागरिकों को यह देखते हुए संतुलित करना होगा कि अपने कर्तव्यों के निर्वहन अथवा तात्यपर्यित रूप से अपने कर्तव्यों के निर्वहन में लोक सेवक किस सीमा और कहाँ तक कार्य कर रहा है और क्या लोक सेवक ने अपनी सीमा का उल्लंघन किया है। यह सत्य है कि धारा 196 कथन करती है कि कोई संज्ञान नहीं लिया जा सकता है और संज्ञान लिए जाने के बाद भी यदि तथ्य प्रकाश में आते है कि परिवाद किए गए कार्य पदीय कर्तव्यों के निर्वहन में किए गए थे, तब विचारण को तब तक स्थगित किया जा सकता है जब तक मंजूरी न प्राप्त कर ली जाए। लेकिन इसी समय यह जोर देना होगा कि प्रारंभिक चरण पर सारे मामलों में दांडिक विचारण को स्थगित नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि यह साक्ष्य को अत्यधिक नुकसान कारित करेगा।''

अंतत: पूर्वोक्त मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने विचारण न्यायालय को निर्देश दिया है:–

''लेकिन हम निर्देश देते हैं कि विचारण को जितना संभव हो उतनी शीघ्रतापूर्वक शुरू किया जाना चाहिए। हम आगे अभिलिखित करते हैं कि यदि आवश्यक हो, विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश द्वारा कुछ साक्ष्य को ध्यान में लेने के बाद दं० प्र० सं० की धारा 197 के अधीन मंजूरी के प्रश्न को उठाया जा सकता है।

विशेष अनुमति याचिका खारिज।''

8. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम पारसनाथ सिंह, (2009)6 SCC पृष्ठ 372 में प्रकाशित मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा की गयी उद्घोषणा में निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया है:–

''अभिनिर्धारित, अभियोजन हेतु मंजूरी अपेक्षित नहीं है क्योंकि ये अपराध पदीय कर्तव्य के निर्वहन में नहीं किए गए है-भा० दं० सं० की धाराएँ 409, 420, 461 एवं 468 के अधीन अपराध करने के लिए प्रत्यर्थी आरोपित किया गया लेकिन केवल 409 और 468 के अधीन अपराधों के लिए विचारण न्यायालय द्वारा दोषसिद्ध किया गया। अन्य बातों के साथ-साथ इस आधार पर कि सक्षम प्राधिकारी द्वारा अभियोजन हेतु मंजूरी प्रदान नहीं की गयी थी अपीलीय न्यायालय ने प्रत्यर्थी को उन्मोचित किया। उच्च न्यायालय ने आदेश को अभिपुष्ट किया। अभिनिर्धारित, वर्तमान मामले में मंजूरी अपेक्षित नहीं है उच्च न्यायालय का आदेश अपास्त और गुणागुण पर राज्य के अपील को सुनने का निर्देश-दंड संहिता, 1860, धारा 409 एवं 468"

9. हिमाचल प्रदेश राज्य बनाम एम॰ पी॰ गुप्ता, (2004)2 SCC 349 में प्रकाशित मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यही दृष्टिकोण लिया गया है जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था:–

''E. दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 197—लोक सेवक को अभियोजित करने हेतु मंजूरी प्राप्त करने की अपेक्षा भा० दं० सं० की धाराएँ 467, 468 एवं 471 के अधीन अपराध अभिनिर्धारित, अपने पदीय कर्तव्यों का निर्वहन करते हुए उक्त अपराध किया जाना कर्तव्य का अंश नहीं है-अभिनिर्धारित, ऐसे अपराध के संबंध में लोक सेवक को अभियोजित करने हेतु धारा 197 के अधीन मंजूरी की आवश्यकता की वर्जना नहीं है।''

10. यहाँ उल्लिखित करना महत्वपूर्ण है कि परिवाद याचिका के पैरा 2 और 7 में उल्लिखित तथ्यों और परिस्थितियों और मामले को ध्यान में लेते हुए यह स्पष्ट है कि परिवादी का पति अर्थात्

मेजर आनन्द कुमार पर याचीगण द्वारा प्रहार किया गया था और कल्पना की किसी सीमा में यह नहीं कहा जा सकता है कि यह उनके पदीय कर्तव्यों के निर्वहन में किया गया था। विचारण न्यायालय ने सही संप्रेक्षित किया है कि इस मामले में मंजूरी अपेक्षित नहीं है।

11. श्री खान ने अपने अगले बिन्दु को जोरदार तरीके से आगे बढ़ाया कि विद्वान न्यायिक दंडाधिकारी ने सेना अधिनियम की धारा 125 के प्रावधान का अनुसरण नहीं किया है। धारा 125 स्पष्ट उल्लिखित करती है कि ''जब एक दांडिक न्यायालय और कोर्ट मार्शल को अपराध के संबंध में अपनी-अपनी अधिकारिता है कि सेना कॉप, डिविजन अथवा स्वतंत्र बिग्रेड, जिसमें अभियुक्त सेवारत है, को कमांड करते अधिकारी अथवा ऐसे अन्य अधिकारी, जैसा विहित किया गया है, को निर्णय करने का स्वविवेक होगा कि किस न्यायालय के समक्ष कार्यवाही संस्थापित की जाए और यदि वह अधिकारी निर्णय करता है कि उन्हें कोर्ट मार्शन के समक्ष संस्थापित किया जाना चाहिए, वह अभियुक्त को सैन्य अभिरक्षा में निरुद्ध किए जाने का निर्देश दे।''

12. श्री खान ने आगे निवेदन किया है कि दांडिक न्यायालय एवं कोर्ट मार्शल अधिकारिता समायोजन नियमावली, 1978 के प्रावधानों का उल्लंघन विद्वान दंडाधिकारी द्वारा किया गया है। नियम 3 और 4 स्पष्टत: उल्लिखित करता है:-

नियम 3 में.□स्थल सेना, नौसेना, वायुसेना अथवा कोस्टगार्ड विधि अथवा तत्समय प्रभावी संघ सैन्य बल की विधि के अधीन जब किसी व्यक्ति को किसी दंडाधिकारी के समक्ष लाया जाता है और अपराध के लिए आरोपित किया जाता है जिसके लिए वह कोर्ट मार्शल अथवा कोस्ट गार्ड न्यायालय द्वारा विचारण किए जाने हेतु जिम्मेवार है, जैसा भी मामला हो, ऐसा दंडाधिकारी उस व्यक्ति के विचारण हेतु अग्रसर नहीं होगा अथवा सत्र न्यायालय को मामला सुपुर्द नहीं करेगा जबतक कि:-

(a) सक्षम स्थल सेना, नौसेना, वायुसेना अथवा कोस्ट गार्ड प्राधिकारी द्वारा उसे वहाँ नहीं भेजा जाए; अथवा

(b) उसका मत है, जिसका कारण दर्ज किया जाना होगा, कि ऐसे प्राधिकारी द्वारा उसे वहाँ भेजे बिना उसके विरूद्ध कार्रवाई की जानी चाहिए अथवा उसको सुपुर्द किया जाय।

नियम 4 में.-नियम 3 के खंड (b) के अधीन दंडाधिकारी को स्थल सेना, नौसेना वायुसेना अथवा कोस्ट गार्ड के सक्षम प्राधिकारी अथवा कमांडिंग अधिकारी को जैसा मामला हो, अभियुक्त को लिखित नोटिस देना होगा और नोटिस तामील किए जाने की तिथि से 15 दिनों के अवसान तक वह:-

(a) अभियुक्त को दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (2 वर्ष 1974) की धारा 352, 256 की उप-धारा (1) अथवा धारा 257 के अधीन दोषसिद्ध अथवा दोषमुक्त नहीं करेगा अथवा उक्त संहिता की धारा 254 के अधीन उसे उसके बचाव में नहीं सुनेगा; अथवा

(b) उक्त संहिता की धारा 256 की उपधारा (1) अथवा धारा 240 के अधीन अभियुक्त के विरुद्ध आरोप लिखित रूप से विरचित नहीं करेगा; अथवा

(c) उक्त संहिता की धारा 209 के अधीन विचारण के लिए अभियुक्त को सत्र न्यायालय को सुपुर्द करने का आदेश नहीं देगा, अथवा

(d) उक्त संहिता की धारा 192 के अधीन जाँच अथवा विचारण का मामला नहीं बनाएगा।

13. विपक्षी पक्षकार सं० 2 की ओर से उपस्थित होने वाले श्री राजेश कुमार ने दूसरी ओर तर्क किया है कि अधिकारिता समायोजन नियमावली के नियम 3 और 4 और सेना अधिनियम की धारा 125

का उद्देश्य केवल यह है कि यह सेना और सक्षम प्राधिकारियों की जानकारी में लाया जा सकता है कि उनके अधिकारियों के विरुद्ध दांडिक मामला दर्ज किया गया है और यदि वह सैन्य नियमों/कोर्ट मार्शल के परिधि के अंतर्गत अग्रसर होना चाहते है, तब वह अग्रसर हो सकते हैं और विद्वान सी॰ जी॰ एम॰ को सूचित कर सकते है कि कोर्ट मार्शल द्वारा उक्त अधिकारी के विरुद्ध कार्यवाही कर रहे है और तब विद्वान सी॰ जी॰ एम॰ कार्यवाही रोक देगा।

14. श्री राजेश कुमार ने आगे निवेदन किया है कि अवर न्यायालय के अभिलेखों से प्रकट है कि अधिकारिता समायोजन नियमावली के नियम 3 और 4 के अधीन विचारण न्यायालय द्वारा नोटिस भेजा गया था जिसे सैन्य अधिकारियों द्वारा फूहड़ आधारों पर लेने से इन्कार कर दिया गया था और दिनांक 21.3.2002 का इंकार नोटिस के साथ अवर न्यायालय के अभिलेख में पृष्ठ 244 पर है और यह इन्कार दर्शाता है कि नोटिस का तामील वैध और पर्याप्त था। यही नहीं, अवर न्यायालय के अभिलेख के पृष्ठ 241 पर दर्ज है कि दिनांक 7.11.2003 को अवर न्यायालय द्वारा दूसरा नोटिस भेजा गया था जिसे जी॰ ओ॰ सी॰, एच॰ क्यू॰ 23 इन्फैन्ट्री डिविजन, दीपाटो ली द्वारा प्राप्त किया गया था जिसमें सूचना दी गयी थी कि भारतीय दंड संहिता की धाराएँ 323, 324 एवं 352 के अधीन याचीगण के विरुद्ध पहले ही संज्ञान लिया जा चुका है। विचारण न्यायालय ने अगली तिथि अर्थात् दिनांक 10.12.2003 पर न्यायालय में याची की उपस्थिति सुनिश्चित करने की प्रार्थना की थी जिसका उत्तर मेजर मनोज कुमार, ए॰ ए॰ जी॰ ओ॰ सी॰, 23 इन्फैन्ट्री डिविजन की ओर से सम्यक रूप से दिया गया था और उनके पत्र को निर्दिष्ट करते हुए विचारण न्यायालय को सूचित किया गया था कि यह तीनों अधिकारियों की जानकारी में है और उन्होंने उनकी व्यक्तिगत उपस्थिति को अभिमुक्त करने हेतु दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 205 के अधीन पहले ही याचिका दाखिल कर दिया है जो न्यायिक दंडाधिकारी के न्यायालय (विचारण न्यायालय) में लंबित है और यह भी कथन किया गया कि उक्त तीन अधिकारियों की उपस्थिति सुनिश्चित करना उसके लिए संभव नहीं है और वादा किया गया था कि इन सबके बावजूद भविष्य में सेना द्वारा विधि के मुताबिक हर सहायता और सहभागिता दी जाएगी। सेना के उक्त पत्र अवर न्यायालय अभिलेख के पृष्ठ 13 का अंश है। इस प्रकार यह पूरी तरह सिद्ध किया गया है कि वर्ष 2003 से यह सेना की जानकारी में था कि याचीगण के विरुद्ध न्यायिक दंडाधिकारी, राँची के न्यायालय में पूर्वोक्त धाराओं के अधीन दांडिक मामला चल रहा है। लेकिन इन सबके बावजूद सेना ने वर्ष 2003 से आज की तिथि तक कोर्ट मार्शल कार्यवाही प्रारंभ करने का विकल्प कभी नहीं चुना है। अत: अब सैन्य अधिनियम की धारा 125 के प्रावधानों और अधिकारिता समायोजन नियमावली के नियम 3 और 4 का अभिवाक् उनको उपलब्ध नहीं हैं इस संबंध में याचीगण के विद्वान अधिवक्ता ने कुछ निर्णयों अर्थात (i) **1987 Cr. LJ पृष्ठ 637** और (ii) **2002 Crl. L.J. पृष्ठ 531** और कुछ अन्य निर्णयों को उद्धृत किया है।

15. लेकिन मेरे मत में, पूर्वोक्त मामले वर्तमान मामले पर लागू होने योग्य नहीं है क्योंकि वर्तमान मामले में नोटिस जारी किया गया था और इनके बारे में सेना प्राधिकारी को पूरी जानकारी थी।

16. दोनों पक्षों के पूर्वोक्त निवेदन पर विचार करने के बाद और अवर न्यायालय के अभिलेखों का परिशीलन करने के बाद, मैं याचीगण के निवेदनों में पर्याप्त वजन नहीं पाता हूँ कि विचारण न्यायालय ने सैन्य अधिनियम की धारा 125 के प्रावधान और दांडिक न्यायालय एवं कोर्ट मार्शल अधिकारिता समायोजन नियमावली, 1978 के प्रावधानों का अनुसरण नहीं किया है।

17. याचीगण द्वारा मेरे समक्ष अन्य कोई बिन्दु नहीं उठाया है।

18. पूर्वोक्त आधारों पर, मैं इस पुनरीक्षण याचिका में कोई गुणागुण नहीं पाता हूँ जिसे, तद्नुसार खारिज किया जाता है। लेकिन यह कहना अनावश्यक होगा कि यदि याचीगण के पक्ष में विचारण के

दौरान इस प्रभाव का कोई साक्ष्य सामने आता है कि परिवादी ने अभिकथित कृत्य उनके पदीय कर्तव्य के निर्वहन हेतु किया गया था, तब वे विचारण न्यायालय के समक्ष दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 197 के अधीन मंजूरी की आवश्यकता का प्रश्न उठा सकते है।

19. चूँकि परिवाद मामला वर्ष 2000 (परिवाद केस सं॰ C-599 वर्ष 2000) का है, विचारण न्यायालय को इस आदेश की प्रति की प्राप्ति की तिथि से एक वर्ष की अवधि के भीतर, जितना शीघ्र संभव हो, विचारण समाप्त करने का निर्देश दिया जाता है।

माननीय एम॰ वाई॰ इकबाल, न्यायमूर्ति

डॉ॰ ब्रजनन्दन सिंह भोंसले एवं अन्य

बनाम

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Cr. M.P. No. 1170 of 2004. Decided on 16th February, 2010.

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 482 सह-पठित भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 467, 468, 471, 419 एवं 120B—कूटरचना, छल और षडयन्त्र—संज्ञान—भूमि के लिए विक्रय-विलेख के निष्पादन में किया गया अपराध—धारा 482 दं॰ प्र॰ सं॰ के अधीन शक्ति मुख्यतः न्याय के उद्धेश्य को सुरक्षित करने हेतु न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए है—परिवाद मामला दाखिल किए जाने के पहले धारा 144/145 दं॰ प्र॰ सं॰ के अधीन परिवादी और याची के बीच मुकदमे का पहला दौर चला था—पक्ष विवादित भूमि पर अधिकार, टाइटल, हित और कब्जे का दावा कर रहे हैं जिसे केवल सक्षम अधिकारिता वाले सिविल न्यायालय द्वारा ही निर्णीत किया जा सकता है—सिविल न्यायालय इस विवाद्यक पर निर्णय लेने के लिए भी पूर्णतः सक्षम है कि क्या टाइटल का दस्तावेज कुटरचित और मनगढ़ंत दस्तावेज है जैसा परिवादी ने अभिकथन किया है—समस्त दांडिक कार्यवाही और संज्ञान का आदेश अपास्त। (पैरा 6 से 11)

निर्णयज विधि.—1992 Suppl. (1) SCC 335; (2005)1 SCC 122; (2007)12 SCC 1—Relied upon.

अधिवक्तागण.—M/s S.K. Srivastava, Rupesh Rai, For the Petitioners; A.P.P., For the Opp. Parties.

एम॰ वाई॰ इकबाल, न्यायमूर्ति.—इस याचिका द्वारा याचीगण ने बरियातू पी॰ एस॰ केस सं॰ 32/2002 में मुख्य न्यायिक दण्डाधिकारी, राँची द्वारा पारित दिनांक 27.8.2004 के आदेश के अभिखंडन हेतु प्रार्थना की है जिसके द्वारा उन्होंने धाराएँ 467, 468, 471, 419 और 120B भा॰ दं॰ सं॰ के अधीन अपराध के लिए संज्ञान लिया है यद्यपि अंतिम रिपोर्ट में पुलिस ने पाया कि यह भूमि संबंधित सिविल विवाद है और सिविल मामला न्यायालय में लंबित है।

2. स्वयं को भगवान प्रसाद सिंह का दामाद और मुख्तारनामा धारक होने का दावा करते विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 प्रोफेसर सतीश कुमार ने अन्य बातों के साथ अभिकथन करते हुए कि उसके ससुर ने वर्ष 1963 में श्रीमती इन्दु राय से रजिस्टर्ड विक्रय विलेख के माध्यम से भूमि का एक टुकड़ा खरीदा था, याचीगण के विरूद्ध एक परिवाद दाखिल किया। खरीद के बाद भगवान प्रसाद सिंह ने अभिकथित तौर पर भूमि के इर्द-गिर्द चाहरदीवारी खड़ी की, एक छोटा कमरा बनवाया और कुछ वृक्ष लगाए। आगे अभिकथन है कि दिनांक 26.10.2001 को जब परिवादी भूमि देखने गया तो उसने पाया कि याची सं॰1 के घर की तरफ वाली दीवार तोड़ दी गयी है। अभियुक्त याची सं॰1 डॉ॰ बी॰ एन॰ एस॰ भोंसले

ने उससे कहा कि भगवान प्रसाद सिंह ने दिनांक 15.1.90 के रजिस्टर्ड विक्रय विलेख द्वारा उसे भूमि बेच दिया था और उसने परिवादी को विक्रय विलेख दिखाया। परिवाद याचिका में आगे अभिकथन किया गया था कि दिनांक 28.10.2001 को भगवान प्रसाद सिंह याची के पास राँची आया और परिवादी उसके ओर अन्यों के साथ याची सं॰1 के घर गया। याची सं॰1 ने भगवान प्रसाद सिंह को रजिस्टर्ड विलेख दिखाया। विलेख पर अपना कूटरचित हस्ताक्षर देखने के बाद भगवान प्रसाद सिंह ने याची सं॰1 से पूछा कि उसने ऐसा क्यों किया। याची सं॰1 डॉ॰ भोंसले ने गवाहों की उपस्थिति में अभिकथित तौर पर उससे कहा कि यह सारी बात याची सं॰3 की प्रेरणा पर हुई है। अत: परिवादी ने अभिकथन किया कि अभियुक्तगण ने षडयन्त्र के तहत उन विक्रय विलेखों को प्रबंधित, निष्पादित और हस्ताक्षरित किया जो रजिस्टर किए गए थे। परिवादी ने आगे कथन किया कि उसने दो विक्रय विलेखों पर किए गए भगवान प्रसाद सिंह के हस्ताक्षर का परीक्षण विशेषज्ञों द्वारा करवाया जिन्होंने रिपोर्ट किया कि हस्ताक्षर कूटरचित थे।

3. यह प्रतीत होता है कि दिनांक 5.2.2002 के आदेश द्वारा मजिस्ट्रेट ने परिवादी को दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 156(3) के अधीन मामला संस्थापित करने और अन्वेषण के बाद अंतिम फार्म प्रस्तुत करने हेतु पुलिस के पास भेजा। परिवाद पाने पर पुलिस ने बरियातू पी॰ एस॰ केस सं॰ 32/2002 दर्ज किया। अन्वेषण के बाद अन्वेषण अधिकारी ने यह कथन करते हुए कि मामला पूरी तरह एक सिविल विवाद है, दिनांक 30.9.2002 को अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत किया। मजिस्ट्रेट पुलिस के अंतिम रिपोर्ट से सहमत नहीं हुआ और अभिनिर्धारित किया कि यह मात्र एक सिविल विवाद नहीं है और यह एक प्रथम दृष्टया मामला है और दिनांक 27.8.2004 का आक्षेपित आदेश पारित करते हुए अपराध का संज्ञान लिया।

4. याचीगण की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने मजिस्ट्रेट द्वारा पारित संज्ञान के आक्षेपित आदेश को गलत, अवैध और बिना अधिकारितावाला बताते हुए इसका विरोध किया। विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि पुलिस के अंतिम रिपोर्ट से असहमति जताते हुए अपराध का संज्ञान लेने से पहले मजिस्ट्रेट को आगे जाँच करना चाहिए था। विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि जब चाची सं॰ 1 को भूमि बेच दी गयी थी, उसने नगर निगम और अंचल अधिकारी, टाउन कार्यालय, राँची के कार्यालय में अपना नाम नामान्तप्ति करवाया था। विद्वान अधिवक्ता ने आगे निवेदन किया कि वर्ष 1994 में परिवादी और उसके सहयोगियों ने याची सं॰1 के भूमि पर स्वामित्व में हस्तक्षेप करने का प्रयास किया जिसका परिणाम भगवान प्रसाद सिह और परिवादी और अन्यों के विरूद्ध दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 144 के अधीन कार्यवाही में हुआ। उक्त कार्यवाही को दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 145 के अधीन कार्यवाही में बदल दिया गया जिसमे परिवादी और अन्य व्यक्ति उपस्थित हुए और लिखित बयान दाखिल किया और कार्यवाही में भाग लिया। प्रथम पक्ष का भूमि के उपर स्वामित्व की घोषणा करते हुए दिनांक 9.9.96 को मजिस्ट्रेट ने अतत: आदेश पारित किया और बरियातू पुलिस थाना को आदेश संसूचित किया। याचीगण के विद्वान अधिवक्ता ने अनेक अन्य तथ्यों सहित यह इंगित किया कि दिनांक 26.10.2001 और 28.10.2001 को याची सं॰ 1 भारत में था ही नहीं। याची सं॰ 1 ने राँची छोड़ा और दिनांक 5.10.2001 को आस्ट्रेलिया के लिए कलकत्ता से उड़ान भरा और दिनांक 4.1.2002 को भारत वापस आया। अत: परिवाद याचिका में किया गया अभिकथन कि पूर्वोक्त दो तिथियों पर परिवादी और उसका ससुर याची सं॰ 1 से मिले थे, बिल्कुल ही गलत है।

5. निष्कर्ष पर आने से पहले मैं मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, राँची, द्वारा पारित दिनांक 27.8.2004 के संज्ञान के आदेश को उद्घृत करना चाहूँगा:–

"27.8.2004 : वर्तमान मामले अर्थात् बरियातू पुलिस केस सं० 32/02 में 125/02 के तोर पर संख्यांकित इस मामले के आई० ओ० द्वारा प्रस्तुत अंतिम रिपोर्ट का परिशीलन किया।

आई० ओ० द्वारा अंतिम फॉर्म में यह कहा गया है कि उप आरक्षी अधीक्षक, राँची के संप्रेक्षण के आलोक में सिविल विवाद के तौर पर अंतिम फॉरम प्रस्तुत किया जा रहा है।

मैने केस रिर्काड के साथ-साथ सम्पूर्ण केस डायरी का परिशीलन किया है।

अपने आदेश के बेहतर अधिमूल्यन हेतु, मैं मामले के तथ्यों को संक्षेप में कहना चाहूँगा। आरंभ में इस शिकायत के साथ कि वर्ष 1963 में उनके ससुर के स्वामित्व के अंतर्गत भूमि के निष्पादित विक्रय विलेख के माध्यम से मुख्तारनामा धारित करते हुए परिवादी द्वारा एक परिवाद मामला सं० 1/02 लाया गया था। यह अभिकथन किया गया है कि जब दिनांक 26.10.2001 को परिवादी भूमि देखने गया, यह पाया गया था कि चाहरदीवारी तोड़ कर अभियुक्तगण भूमि पर कब्जा करने का प्रयास कर रहे है और जब पूछताछ किया गया, अभियुक्तगण ने सूचित किया कि उन्होंने कलकत्ता में उनके पक्ष में दिनांक 15.1.90 को एक विक्रय-विलेख निष्पादित करवाया था। अन्वेषण के क्रम में उक्त भगवान प्रसाद सिंह, जिसे वास्तविक स्वामी बताया गया है, के हस्ताक्षर को अभियुक्तगण द्वारा विक्रय-विलेख पर किए गए हस्ताक्षर के साथ सत्यापित करवाया था। हस्तलेखन विशेषज्ञों द्वारा तर्कपूर्ण कारण और वैज्ञानिक साक्ष्य के साथ एक सुनिश्चित मत दिया गया कि अभियुक्तगण के विक्रय-विलेख पर किया गया हस्ताक्षर कूटरचित और गढ़ा हुआ था। केस डायरी में अनेक गवाह थे जिन्होंने कथन किया है कि अभियुक्तगण ने असद्भावपूर्वक आशय के साथ परिवादी और भूमि के वास्तविक स्वामी के साथ छल करने के लिए दस्तावेज कूटरचित किया था।

मैं पाता हूँ कि यह केवल सिविल विवाद मात्र नही है। यह कहना अनावश्यक है कि दांडिक विधि के अतिरिक्त, यदि छल करने के लिए दस्तावेज कूटरचित किया गया था, दांडिक दायित्व भी बनता है और अभियुक्तगण को दांण्डिक दायित्व के लिए विचारण का सामना करना होगा।

चर्चा के मुताबिक मैं पाता हूँ कि प्राथमिकी (परिवाद याचिका) नामजद अभियुक्तगण के विरूद्ध भा० दं० सं० की धाराएँ 461/468/471/419/120B के अधीन अपराध के लिए प्रथम दृष्टवा मामला बनता है। तद्नुसार, जैसा उपर उल्लिखित किया गया है, अपराध का संज्ञान लिया जाता है और शीघ्र निपटारे के लिए मामले को श्री संजीव वर्मा, न्यायिक दंडाधिकारी, प्रथम श्रेणी, राँची के न्यायालय को अंतरित किया जाता है।

6. निर्णयों की एक श्रृर्खला द्वारा यह सुनिश्चित किया गया है कि दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 482 के अधीन शक्ति मुख्यतः न्याय के उद्देश्य को सुरक्षित करने के लिये न्यायालय की प्रक्रिया का दुरूपयोग रोकने के लिए है। **भजनलाल मामले [1992 Supp. 1. SCC 335]** में, सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट तौर अभिनिर्धारित किया है कि दांडिक कार्यवाही के अभिखंडन के उद्देश्य हेतु दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 482 के अधीन शक्ति का प्रयोग किया जा सकता है जब, अन्य बातों के साथ, यह पाया जाता है कि प्राथमिकी अथवा परिवाद में किए गए अभिकथन इतने बेतुके और अंतर्निहित रूप से असंभाव्य है कि कोई विवेकपूर्ण व्यक्ति इस न्यायोचित निष्कर्ष पर नहीं आ सकता है कि अभियुक्त के विरूद्ध कार्यवाही करने का पर्याप्त आधार है जहाँ एक दांडिक कार्यवाही स्पष्टतः असद्भावपूर्ण है एवं/या जहाँ कार्यवाही अभियुक्त से प्रतिशोध लेने के लिए अंतरस्थ हेतु के साथ द्वेषपूर्वक संस्थापित की जाती है।

7. झंडू फर्मास्यूटिक्ल वर्क्स लि॰ बनाम मो॰ सराफुल हक [(2005) 1 SCC 122] मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि जब एक परिवाद का अंभिखंडन इप्सित किया जाता है तब यह आकलन करने कि परिवादी ने क्या अभिकथन किया है और क्या कोई अपराध निर्मित होता है यदि अभिकथनों को पूर्णत: स्वीकार किया जाता है, सामग्रियों पर विचार करना अनुज्ञेय है। सर्वोच्च न्यायालय ने संप्रेक्षित किया:

... "8. यह न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग होगा कि ऐसी कार्रवाई अनुज्ञात की जाए जिसका परिणाम अन्याय में और न्याय के उन्नयन को रोकने में हो। शक्तियों का प्रयोग करने में न्यायालय किसी कार्यवाही का अभिखंडन करने में न्योयाचित होगा यदि यह पाता है कि इसका प्रारंभ किया जाना/इसे जारी रखना न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग होगा अथवा इन कार्यवाहियों का अभिखंडन अन्यथा न्याय के उद्धेश्य की पूर्ति करेगा। जब परिवाद द्वारा कोई अपराध प्रकट नहीं किया जाता है, न्यायालय तथ्य के प्रश्न की जाँच कर सकता है। जब किसी परिवाद का अभिखंडन इप्सित किया जाता है तो यह आकलन करने के लिए कि परिवादी ने क्या अभिकथन किया और क्या अपराध निर्मित होता है यदि अभिकथनों को पूर्णतः स्वीकार किया जाता है, सामग्रियों पर विचार करना अनुज्ञेय है।''

8. इंदर मोहन गोस्वामी एवं एक अन्य बनाम उतरान्चल राज्य एवं अन्य [(2007) 12 SCC 1] मामले में पहले के निर्णय में अधिकथित सिद्धान्तों पर चर्चा करने के बाद सवोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया:–

"46. न्यायालय को सुनिश्चित करना चाहिए कि दांडिक अभियोजन का उपयोग परेशान करने हेतु यंत्र के रूप अथवा निजी प्रतिशोध इप्सित करने हेतु अथवा अभियुक्त पर दवाब डालने के लिए अंतरस्थ हेतु के साथ नहीं किया जा रहा हैं पूर्वोल्लिखित मामलों के विशलेषण पर, हमारा मत है कि दृढ़ नियम अधिकथित करना न तो संभव है और न ही बांछनीय जो अंतर्निहित अधिकारिता के प्रयोग को शासित करेगा। दं० प्र० सं० की धारा 482 के अधीन उच्च न्यायालय की अंतर्निहित अधिकारिता यद्यपि विस्तृत है लेकिन इसका प्रयोग यदा-कदा और पूर्वोल्लिखित मामलों में विनिर्दिष्टतः सावधानीपूर्वक और सतर्कता के साथ किया जाना होगा और जब स्वयं संविधि द्वारा यह न्यायोचित ठहराया जाता है। सुनिश्चित विधिक स्थिति की दृष्टि में, आक्षेपित आदेश मान्य नहीं ठहराया जा सकता है।''

9. वर्तमान मामले में, परिवादी ने अभिकथन किया है कि दिनांक 26.10.2001 को उसने चाहरदीवार टूटा पाया और तत्पश्चात दिनांक 28.10.2001 को परिवादी याची सं॰1 से मिला जिसने विक्रय-विलेख दिखाया और स्वीकार किया कि याची सं॰ 3 की प्रेरणा पर कूटरचना की गयी थी। लेकिन यह प्रकट होता है कि दिनांक 5.10.2001 से दिनांक 4.1.2002 तक याची सं॰1 आस्ट्रेलिया में था। इन प्राख्यानों को वीसा और उड़ान टिकटों से समर्थित किया गया है। साथ ही साथ यह प्रकट है कि याचीगण के अनुसार परिवादी का ससुर 22,839/- रुपये के प्रतिफलार्थ वर्ष 1974 में याची सं॰ 1 के पिता श्री भरत प्रसाद सिंह के साथ 19.86 कठ्ठा क्षेत्रवाले भूमि के विक्रय के लिए एक करार किया था। करार के बाद, कुछ समय बीतने पर वर्ष 1990 में याची सं॰ 1 के पक्ष में एक विक्रय विलेख निष्पादित किया गया था। यह प्रकट है कि मजिस्ट्रेट ने अभिलेख पर लाए गए साक्ष्य का सावधानीपूर्वक संविक्षा नहीं किया है और संज्ञान लेने से पहले सच्चाई का पता लगाने में विफल रहा है विशेषत: जब पुलिस ने यह अभिनिश्चित किया कि यह शुद्धत: एक सिविल विवाद है, अंतिम फॉर्म प्रस्तुत किया। जैसा उपर ध्यान में लिया गया है, परिवाद दाखिल किए जाने के पहले परिवादी और याची सं॰1 के बीच दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 144/145 के अधीन मुकदमे का प्रथम दौर चला था। प्रथम दृष्टया, यह एक सुस्पष्ट मामला है जहाँ पक्ष विवादित भूमि पर अधिकार, टाइटल, हित और स्वामित्व का दावा कर रहें

है। जिसे सक्षम अधिकारिता वाले सिविल न्यायालय द्वारा निर्णीत किया जा सकता हैं सिविल न्यायालय इस विवाद्यक पर निर्णय लेने हेतु पूर्णत: सक्षम है कि क्या टाइटल का दस्तावेज कूट रचित और गढ़ा हुआ है जैसा परिवादी ने अभिकथन किया है।

10. मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों में, परिवाद में किए गए अभिकथन अर्थात् दिनांक 26.10.2001 और 28.10.2001 को परिवादी की याची सं॰1 के साथ मुलाकात प्रथम दृष्टया गलत प्रकट होता है और दांडिक कार्यवाही जारी रखना विधि की प्रक्रिया का दुरुपयोग होगा।

11. पूर्वोक्त कारणों से, यह याचिका अनुज्ञात की जाती है और समस्त दांडिक कार्यवाही और दिनांक 27.8.2004 का संज्ञान का आदेश अपास्त किया जाता है। लेकिन यह स्पष्ट किया जाता है कि आदेश में इस न्यायालय द्वारा किए गए संप्रेक्षण और अभिव्यक्त मत पक्षों के मामलों पर किसी प्रकार का प्रतिकूल प्रभाव नहीं डालेंगे यदि मामला सिविल न्यायालय में लाया जाता है और उनके दावे साक्ष्य के आधार पर निर्णीत किए जाएँगे जिन्हें अभिलेख पर लाया जा सकता है।

माननीय डी॰ जी॰ आर॰ पटनायक, न्यायमूर्ति

मेसर्स हाई-टेक ग्लास इन्डस्ट्रीज, राँची (1114 में)

मेसर्स अजन्ता बॉटलर्स एन्ड ब्लेन्डर्स (प्रा॰) लि॰, राँची (3839 में)

मेसर्स मैथन कोल कम्पनी (प्रा॰) लि॰, धनबाद (4025 में)

बनाम

झारखंड राज्य विद्युत बोर्ड, राँची एवं अन्य (सभी में)

WP(C) Nos. 1114 of 2004; 3839, 4025 of 2003. Decided on 11th February, 2010.

भारत के संविधान के अनुच्छेद 126 के अधीन एक आवेदन के मामले में।

(क) झारखंड औद्योगिक नीति, 2001—खंड 15.2.11—विद्युत आपूर्त्ति अधिनियम, 1948—धारा 78(A)—ए॰ एम॰ जी॰ प्रभार के भुगतान से छूट के लाभ से इनकार–औद्योगिक नीति के रूप में अंगीकृत राज्य के संबंधित विभागों के औपचारिक संकल्पों को औद्योगिक इकाइयों को प्रदत्त छूट के अभिव्यक्त निबंधनों के अंगीकरण सहित औद्योगिक नीति के अधीन परिकल्पित योजना के अनुकूल होना होगा–औद्योगिक नीति के अंगीकरण के माध्यम से अधिसूचित राज्य सरकार के संबंधित विभागों के औपचारिक संकल्प औद्योगिक नीति के अधीन नयी औद्योगिक इकाइयों को प्रोद्भूत होनेवाले लाभों से इन्कार नहीं कर सकते हैं–राज्य औद्योगिक नीति के खंड 15.2.11 के निबंधनों के अनुसार, याचीगण को प्रोदूभूत होने वाले लाभ देने से जे॰ एस॰ ई॰ बी॰ इन्कार नहीं कर सकता है–आक्षेपित ए॰ एम॰ जी॰ बिल अभिखंडित। (पैरा 12 से 17 एवं 22)

(ख) झारखंड औद्योगिक नीति, 2001—खंड 15.2.11—विद्युत आपूर्त्ति अधिनियम, 1948—धारा 78(A)—दिनांक 15.11.2000, जो वह तिथि है जिससे औद्योगिक नीति, 2001 को प्रभावशील बनाया गया है, के बजाय दिनांक 1.9.2002 के प्रभाव से औद्योगिक इकाइयों के संबंध में औद्योगिक नीति के प्रावधानों को लागू करने के लिए जे॰ एस॰ ई॰ बी॰ मनमानी तिथि तय नहीं कर सकता है–इसी प्रकार, याचीगण को ए॰ एम॰ जी॰ प्रभार के भुगतान से छूट के लाभों को विस्तारित करने के लिए जे॰ एस॰ ई॰ बी॰ को हुई हानि की प्रतिपूर्ति के लिए राज्य सरकार से आश्वासन प्राप्त करने हेतु जे॰ एस॰ ई॰ बी॰ याचीगण पर कोई शर्त अधिरोपित नहीं कर सकता है। (पैरा 22)

निर्णयज विधि.—2001(1) JLJR (SC) 678; 2002(2) PLJR 529—Referred to.

अधिवक्तागण.—M/s M.S. Mittal, N.K. Pasari, For the Petitioners (in all); M/s V.P. Singh, Rajesh Shankar, Abhay Prakash, For the Respondents-J.S.E.B. (in all); M/s Rahul Kumar, Suresh Kumar, For the Respondents-State (in all).

डी॰ जी॰ आर॰ पटनायक, न्यायमूर्ति.—चुँकि इन तीनों रिट याचिकाओं में समान विवाद्यक उठाए गए हैं, अत: इस सम्मिलित आदेश द्वारा उनके निपटारे के लिए उन्हें सथ-साथ सुना गया है।

2. पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

3. इन रिट याचिकाओं में झारखण्ड औद्योगिक नीति, 2001 के खंड 15.2.11 के अधीन उनको छूट का लाभ देने से इनकार करते हुए ए॰ एम॰ जी॰ प्रभारों के भुगतान के लिए की गयी मांग के विरूद्ध महाप्रबंधक-सह-मुख्य अभियन्ता, जे॰ एस॰ ई॰ बी॰ द्वारा पारित आदेश को इकट्ठी चुनौती दी गयी है।

ए॰ एम॰ जी॰ बिलों, जिन्हे औद्योगिक नीति, 2001 के खंड 15.2.17 के प्रावधानों के अधीन संविदा-मांग के आधार पर उठाने के बजाय एक विशेष माह में दर्ज के॰ वी॰ ए॰ के आधार पर उठाया गया है, के शुद्धिकरण की वैकल्पिक प्रार्थना की गयी है।

4. याचीगण झारखण्ड राज्य में स्थापित निजी लघु औद्योगिक इकाईयाँ है। इन इकाईयों में से प्रत्येक ने इकाईयों को चलाने के लिए विद्युत आपूर्त्ति के संविदा-मांग हेतु झारखंड राज्य विद्युत बोर्ड के साथ अलग-अलग करार किया था।

याची मेसर्स हाई-टेक ग्लास इन्डस्ट्रीज, राँची [डब्लू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 1114 वर्ष 2004] ने 100 के॰ बी॰ ए॰ विद्युत आपूर्त्ति के लिए संविदा मांग करार किया था और दिनांक 23.6.2001 से विद्युत आपूर्ति शुरू की गयी थी जिसके बाद दिनांक 1.9.2001 से इकाई ने व्यवसायिक उत्पादन शुरू किया। इस इकाई का दिनांक 26.6.2003 का आक्षेपित ए॰ एम॰ जी॰ बिल वर्ष 2002-03 से संबंधित है।

याची मेसर्स अजन्ता बॉटलर्स एवं ब्लेन्डर्स प्रा॰ लि॰, राँची (डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 3839 वर्ष 2003) एक मध्यम औद्योगिक इकाई है जिने आरंभ में 75 एच॰ पी॰ का संविदा-मांग करार किया था जिसे बाद में याची और प्रत्यर्थी-जे॰ एस॰ ई॰ बी॰ द्वारा और उनके मध्य दिनांक 6.6.2006 को निष्पादित नए करार द्वारा 200 के॰ बी॰ ए॰ तक बढ़ाया गया था और तत्पश्चात् इकाई ने दिनांक 20.12.2002 के प्रभाव से व्यवसायिक उत्पादन शुरू किया।

याची मेसर्स मैथन कोल कम्पनी प्रा॰ लि॰, धनबाद (डब्लू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 4025 वर्ष 2003) भी जिला औद्योगिक केन्द्र, धनबाद में स्थापित एक मधु उद्योग इकाई है जिसे वर्ष 1975 में स्थापित किया गया था और जिसने दिनांक 27.7.1995 के प्रभाव से व्यवसायिक उत्पादन शुरू किया था। आरंभ में, इसने 100 K.V.A. का संविदा मांग करार किया था जिसे बाद में 120 K.V.A. तक संविदा मांग में आगे की गयी बढ़ोतरी द्वारा बढ़ाया गया था और उस सीमा तक दिनांक 1.9.2000 के प्रभाव से याची और प्रत्यर्थी-बोर्ड द्वारा और उनके मध्य एक नया करार किया गया था। इकाई ने 30 लाख रुपये के अतिरिक्त निवेश के साथ अपनी उत्पादन क्षमता बढ़ाने के लिए अपने प्रतिष्ठान के विस्तार/आधुनिकीकरण का प्रस्ताव किया था और इन उद्देश्यों हेतु अप्रैल 2000 में जिला उद्योग केन्द्र, धनबाद का अनुमोदन/अनुज्ञा प्राप्त किया था और तद्नुसार स्थायी रजिस्ट्रेशन प्रमाणपत्र दिए जानेपर जिला उद्योग केन्द्र के साथ रजिस्टर्ड किया गया था। जिला उद्योग केन्द्र, धनबाद ने विस्तारीकरण। आधुनिकीकरण दिनांक 10.4.2000 के प्रभाव से शुरू होने और दिनांक 15.11.2001 तक जारी रहने

की घोषणा की थी। दिनांक 10.4.2003 का आक्षेपित ए॰ एम॰ जी॰ बिल (परिशिष्ट–9) वर्ष 2002-2003 की अवधि से संबंधित है।

5. याचीगण इकाईयों द्वारा दावा किए गए अनुतोषों, जैसी प्रार्थना की गयी है, का मुख्य आधार यह है कि अन्य बातों के साथ उर्जा पावर उपभोग हेतु प्रोत्साहनों सहित उद्योगों की अनेक श्रेणियों को अनेक प्रोत्साहन देते हुए वर्ष 2001 में झारखंड सरकार द्वारा जारी झारखंड औद्योगिक नीति, 2001 के अधीन लघु औद्योगिक इकाइयों के लिए आरक्षित लाभों के वे हकदार हैं। याचीगण खंड 15.2.11 के प्रावधानों के लाभ का दावा करते हैं जो बिलिंग मानकों के मुताबिक 500 KVA अथवा समतुल्य एच॰ पी॰ तक के संबद्ध भार वाले नये लघु उद्योग इकाइयों को न्यूनतम गारंटी प्रभारों के भुगतान से छूट प्रदान करता है।

याचीगण औद्योगिक नीति के खंड 15.2.17 के अधीन विहित बिलिंग नॉर्म्स के लाभों को प्राप्त करना चाहेंगे जिसके अधीन एच॰ टी॰ उपभोक्ताओं के लिए, यदि किसी विशेष माह में उपभोग संविदा मांग के 15 प्रतिशत तक से अधिक होता है, केवल उसी विशेष माह के लिए न्यूनतम गारंटी प्रभार, नियत प्रभार, इत्यादि से अधिक वसूला जाएगा। दूसरी ओर, यदि उपभोग संविदा मांग के 15 प्रतिशत के परे अधिक होता है, न्यूनतम गारंटी प्रभार नियत प्रभार, इत्यादि वर्त्तमान 12 माह के बजाय केवल 6 माह की अवधि के लिए अतिरिक्त वसूला जाएगा।

औद्योगिक नीति के खंड 22, जो नयीं इकाइयों को दिए गए समरूप प्रोत्साहनों को निर्दिष्ट करता है, के दिए गए प्रोत्साहनों के लाभों को पाने के लिए जिन्हें नयी इकाइयों को दिया गया है, समान व्यवहार किए जाने का दावा याची सं॰ 3 ने इस आधार पर किया है कि औद्योगिक नीति, 2001 के अधीन आच्छादित अवधि के दौरान उसने वर्ष 2002-2003 में अपनी इकाई का विस्तार/आधुनिकीकरण किया है।

6. याचीगण के विद्वान अधिवक्ता, श्री एम॰ एस॰ मित्तल निवेदन करते हैं कि झारखण्ड औद्योगिक नीति, 2001 दिनांक 15.11.2000 से प्रभावशील बनायी गयी थी और नए एवं पुराने औद्योगिक इकाइयाँ, जिन्होंने विस्तार/आधुनिकीकरण किया था, औद्योगिक नीति के खंड 15.2.11 और खंड 15.2.17 के अधीन प्रदत्त प्रोत्साहनों के लाभों को पाने के हकदार है।

विद्वान अधिवक्ता स्पष्ट करते हैं कि पहले 1993 टैरिफ के खंड 16.5 के अधीन, यह उल्लिखित किया गया था कि यदि किसी वित्तीय वर्ष में किसी माह के दौरान किसी उपभोक्ता का वास्तविक अधिकतम मांग संविदा मांग के 110 प्रतिशत से अधिक हो जाता है, तब इस तरह दर्ज किया गया उच्चतर मांग उस विशेष वित्तीय वर्ष के लिए संविदा मांग के रूप में माना जाएगा और अधिकतम मांग एवं उर्जा प्रभारों के संबंध में उनके लिए न्यूनतम बेस प्रभार उस आधार पर भुगतान योग्य होगा। 1993 टैरिफ के पूर्व खंड 16.5 को झारखण्ड औद्योगिक नीति, 2001 द्वारा परिवर्तित किया गया है। औद्योगिक नीति का खंड 15.2.17, जो एच॰ टी॰ उपभोक्ताओं क लिए नयी बिलिंग प्रक्रिया प्रावधान करता है, उल्लिखित करता है कि यदि किसी विशेष माह में 15 प्रतिशत तक की संविदा मांग से अधिक उपभोग होता है, तब केवल उसी विशेष माह के लिए न्यूनतम गारंटी प्रभार, नियत प्रभार, इत्यादि अतिरिक्त लिया जाएगा। दूसरी ओर, यदि उपभोग संविदा मांग के 15 प्रतिशत के परे होता है, न्यूनतम गारंटी प्रभार, नियत प्रभार, इत्यादि 12 माह के बजाए केवल 6 माह की अवधि के लिए अतिरिक्त लिया जाएगा।

विद्वान अधिवक्ता आगे कहते हैं कि औद्योगिक नीति के अनुसरण में, औद्योगिक नीति के निबंधनों के अनुसार, विद्युत उपभोक्ताओं को दिए गए अनेक लाभों की अभिपुष्ट करते हुए विद्युत आपूर्ति अधिनियम, 1948 की धारा 78A के अधीन झारखड राज्य के उर्जा विभाग ने दिनांक 13.8.2002 का संकल्प (परिशिष्ट–6) जारी किया। यद्यपि औद्योगिक नीति के खंड 15.2.17 के लाभ संकल्प के खंड 12.2 के निबंधनों के अनुसार दिए गए थे लेकिन न्यूनतम गारंटी प्रभार के छूट से संबंधित खंड 15.2.11 के लाभ को संकल्प में सम्मिलित नहीं किया गया था।

विद्वान अधिवक्ता आगे कहते हैं कि विभाग के संकल्प के अनुसरण में झारखण्ड राज्य विद्युत बोर्ड ने इस राइडर के साथ कि संकल्प के अधीन आश्वासित प्रोत्साहन केवल दिनांक 1.9.2002 के प्रभाव से उपलब्ध होंगे, उर्जा विभाग के संकल्प को अंगीकृत करते हुए दिनांक 29.8.2002 को अधिसूचना (परिशिष्ट-7) भी जारी किया था। यद्यपि जे॰ एस॰ ई॰ बी॰ के संकल्प ने खंड 15.2.17 के लाभों को आश्वासित किया था लेकिन औद्योगिक नीति के निबंधनों के अनुसार ए॰ एम॰ जी॰ प्रभारों के भुगतान से छूट के लाभों को नहीं दिया गया था।

श्री मित्तल स्पष्ट करतें हैं कि याचीगण की शिकायत यह है कि प्रत्यर्थी-बोर्ड ने याचीगण के विरुद्ध ए॰ एम॰ जी॰ बिलों को बनाया है और तदद्वारा राज्य औद्योगिक नीति के खंड 15.2.11 के अधीन प्रदत प्रोत्साहनों के लाभों को देने से इन्कार किया है और फिर आगे यह कि ऐसे बिल 6 माह की बजाए 12 माह की अवधि के लिए ए॰ एम॰ जी॰ हेतु संविदा मांग की गणना करते हुए खंड 15.2.17 के उल्लंघन में जारी किए गए हैं।

श्री मित्तल का प्रतिवाद यह है कि झारखंड राज्य विद्युत बोर्ड लाभों से इन्कार नहीं कर सकता है जो औद्योगिक नीति के खंड 15.2.11 के निबंधनों के अनुसार याचीगण की इकाइयों को आश्वासित किए गए है और न ही झारखण्ड राज्य विद्युत बोर्ड औद्योगिक नीति के प्रावधानों को बिलम्बित तिथि अर्थात् दिनांक 1.9.2002 के प्रभाव से लागू कर सकता है जब औद्योगिक नीति दिनांक 15.11.2000 से प्रभावशील हो गयी है।

7. याचीगण के दावा का खंडन करते हुए प्रत्यर्थी–जे॰ एस॰ ई॰ बी॰ द्वारा अपनाया गया दृष्टिकोण, जैसा उनके प्रति शपथपत्र में कथन किया गया है और उनके वरीय अधिवक्ता, वी॰ पी॰ सिंह द्वारा स्पष्ट किया गया है, मुख्यत: दो है:–

(i) राज्य औद्योगिक नीति का खंड 15.2.11 जे० एस० ई० बी० द्वारा अंगीकृत नहीं किया गया है चुँकि इसे राज्य के उर्जा विभाग के संकल्प में उल्लिखित नहीं किया गया है।

(ii) औद्योगिक नीति नयी औद्योगिक इकाइयों के संबंध में विरचित की गयी है और जे० एस० ई० बी०, जिसने दिनांक 29.8.2002 के संकल्प (परिशिष्ट-7) द्वारा अधिसूचित करते हुए उर्जा विभाग के संकल्प को अंगीकृत किया है, ने इसे दिनांक 1.9.2002 से प्रभावशील बनाया है।

श्री वी॰ पी॰ सिंह स्पष्ट करेंगे कि जे॰ एस॰ ई॰ बी॰, यद्यपि राज्य उर्जा विभाग से और स्वयं अपने विनियमन और विद्युत अधिनियम के प्रावधानों द्वारा मार्ग दर्शन प्राप्त करते हुए, दरअसल एक स्वायत निकाय है। जे॰ एस॰ ई॰ बी॰ ने राज्य उर्जा विभाग के संकल्प के अंगीकरण द्वारा, दिनांक 1.9.2002 के प्रभाव से नयी औद्योगिक इकाइयों के संबंध में न्यूनतम गारंटी प्रभारों के भुगतान से छूट का लाभ दिया है और ऐसे लाभ दिनांक 31.12.2003 तक दिए गए थे जिसके बाद ए॰ एम॰ जी॰ की अवधारणा नये टैरिफ द्वारा लोप कर दी गयी थी जिसे दिनांक 1.1.2004 के प्रभाव से लागू किया गया था।

विद्वान अधिवक्ता आगे स्पष्ट करते हैं कि इसके दिनांक 10.3.2005 के पत्र के तहत राज्य सरकार के उर्जा विभाग से प्राप्त संसूचना का अनुसरण करते हुए विद्युत अधिनियम, 2003 की धारा 65 के आलोक में जे॰ एस॰ ई॰ बी॰ द्वारा दिनांक 12.6.2006 को एक अधिसूचना जारी की गयी थी और तद्द्वारा यह घोषणा की गयी थी कि मध्यम और बड़े उद्योगों को प्रोत्साहन केवल तभी दिया जा सकता है यदि प्रोत्साहनों/सबसिडि को लागू करने में जे॰ एस॰ ई॰ बी॰ द्वारा झेले गये नुकसान की क्षतिपूर्ति राज्य सरकार द्वारा की जाती है।

श्री सिंह निवेदन करेंगे कि बोर्ड द्वारा कार्रवाई करने के लिए किसी भी सरकारी नीति को तब तक लागू नही किया जा सकता है जब तक ऐसे नीति निर्णय को विद्युत आपूर्ति अधिनियम, 1948 की धारा 78A के अधीन राज्य द्वारा संसूचित नहीं किया जाता है। विद्वान अधिवक्ता स्पष्ट करते है कि संबंधित विभाग के माध्यम से राज्य सरकार द्वारा संसूचना उर्जा विभाग द्वारा संकल्प अंगीकृत करने के बाद दी गयी थी और इस कारण संसूचना की तिथि से पहले औद्योगिक नीति के अधीन छूट लागू करने और इसे याची को देने के लिए प्रत्यर्थी-बोर्ड बाध्य नहीं था।

8. प्रत्यर्थी जे॰ एस॰ ई॰ बी॰ के विद्वान अधिवक्ता द्वारा किए गए निवेदनों का सार यह है कि राज्य औद्योगिक नीति के खंड 15.2.11 के अनुकूल याची की इकाई को छूट प्रदान करने के लिए जे॰ एस॰ इ॰ बी॰ बाध्य नहीं है और यदि राज्य सरकार द्वारा इसे याची की इकाई को प्रोत्साहन देने के लिए कहा भी जाता है, यह ऐसा तभी कर सकता है जब जे॰ एस॰ ई॰ बी॰ को हुए नुकसान की प्रतिपूर्ति राज्य सरकार करती है।

9. पक्षों के विद्वान अधिवक्ता के परस्पर विरोधी निवेदनों को सुनने के बाद, विनिश्चय के लिए निम्नलिखित प्रश्न उद्भूत होते है:–

(i) क्या झारखण्ड राज्य विद्युत बोर्ड याचीगण को राज्य औद्योगिक नीति के खंड 15.2.11 के प्रावधानों का लाभ देने से इन्कार कर सकता है?

(ii) क्या झारखण्ड राज्य विद्युत बोर्ड उस तिथि, जबसे औद्योगिक नीति को प्रभावशील घोषित किया गया था, के बजाए दिनांक 1.9.2002 के प्रभाव से औद्योगिक नीति के प्रावधानों को लागू करने के लिए विलम्बित तिथि तय कर सकता है?

(iii) क्या झारखण्ड राज्य विद्युत बोर्ड औद्योगिक नीति के खंड 23 के प्रावधानों के निबंधनों के अनुसार औद्योगिक नीति के खंड 15.2.11 के प्रावधानों का लाभ याचीगण की इकाइयों को देने के लिए शर्त अधिरोपित कर सकता है?

10. प्रत्यर्थी सं॰ 5 अर्थात् झारखण्ड सरकार का उर्जा विभाग, की ओर से दाखिल प्रतिशपथ पत्र में एक स्पष्ट घोषणा की गयी है कि राज्य औद्योगिक नीति दिनांक 15.11.2000 से दिनांक 31.3.2005 तक प्रभावशील है और जे॰ एस॰ ई॰ बी॰ के साथ-साथ उर्जा विभाग से ही सारे संबंधित सरकारी विभागों द्वारा औद्योगिक नीति के प्रावधानों को लागू किया जाएगा। आगे यह घोषणा की गयी है कि झारखंड औद्योगिक नीति, 2001 को मंत्रिपरिषद द्वारा अनुमोदित किया गया है और इसलिए यह सरकार के सभी विभागों पर आबद्धकर है। अपने प्रति शपथपत्र के पैरा 9 में प्रत्यर्थी सं॰ 5 ने औद्योगिक नीति के खंड 15.2.11 और 15.2.17 के अधीन नयी औद्योगिक इकाइयों को आश्वस्त प्रोत्साहनों को दोहराया है और अभिस्वीकृत किया है कि औद्योगिक नीति के पूर्वोक्त प्रावधानों को राज्य सरकार के

उर्जा विभाग द्वारा अंगीकृत किया गया है और दिनांक 1.9.2002 के प्रभाव से प्रत्यर्थी–जे॰ एस॰ ई॰ बी॰ द्वारा लागू भी किया गया है।

11. परस्पर विरोधी निवेदनों से उद्‌भुत स्वीकृत तथ्य निम्नलिखित है:–

(i) राज्य औद्योगिक नीति की अधिसूचना, जिसे दिनांक 15.11.2000 से प्रभावशील बनाया गया है, के बाद याची सं० 1 और 2 की इकाईयों ने व्यवसायिक उत्पादन शुरू किया था। अतः ये दोनों इकाइयाँ औद्योगिक नीति के अधीन परिभाषित नयी इकाइयाँ मानी जाएँगी।

तीसरे याची की इकाइ वर्ष 1975 में स्थापित की गयी थी लेकिन इसने अपने प्रतिष्ठान का विस्तार/आधुनिकीकरण किया था और विस्तार की गयी इकाई ने वर्ष 2001 अर्थात् राज्य औद्योगिक नीति का प्रभावशील बनाए जाने की तिथि के बाद व्यवसायिक उत्पादन शुरू किया था।

(ii) राज्य औद्योगिक नीति के खंड 15.2.11 के अधीन विद्युत उपभोग के लिए ए० एम० जी० प्रभारों से छूट के रूप में नयी औद्योगिक इकाइयों को प्रोत्साहन दिया गया है। औद्योगिक नीति के खंड 22 के अधीन समरूप लाभ उन इकाइयों को दिया गया है जिन्होंने विस्तार/आधुनिकीकरण किया है और उस तिथि, जिससे औद्योगिक नीति प्रभावशील बनायी गयी थी, के बाद उद्योग विभाग से विस्तार का प्रमाणपत्र प्राप्त किया था।

(iii) औद्योगिक नीति के खंड 15.2.17 के अधीन, एच० टी० उपभोक्ताओं के लिए नया टैरिफ लागू किया गया था जिसके अधीन यदि विद्युत उपभोग किसी विशेष माह में संविदा मांग के 15 प्रतिशत से अधिक होता है, न्यूनतम गारंटी प्रभार, नियत प्रभार, इत्यादि 12 माह के बजाए 6 माह की अवधि के लिए अतिरिक्त प्रभार के रूप में लिया जाएगा।

(iv) जैसा प्रत्यर्थी सं० 5 अर्थात राज्य सरकार के उर्जा विभाग ने घोषित किया है, झारखण्ड औद्योगिक नीति, 2001 मंत्रीमंडल द्वारा अनुमोदित किया गया था और इसके प्रावधानों, जो दिनांक 15.11.2000 से दिनांक 31.3.2005 तक प्रभावशील बनाए गए थे और अनुमोदित किए गए थे और इसलिए जे० एस० इ० बी० के साथ-साथ उर्जा विभाग सहित सारे संबंधित सरकारी विभागों द्वारा लागू करने योग्य थे और राज्य उर्जा विभाग सहित राज्य सरकार के सारे विभागों पर आबद्धकर और लागू करने योग्य थे।

(v) राज्य उर्जा विभाग ने स्वीकार किया है कि इसने दिनांक 13.8.2002 के अपने संकल्प द्वारा खंड 15.2.11 और खंड 15.2.17 के प्रावधानों सहित नीति के प्रावधानों को अंगीकृत किया है यद्यपि इसने नयी औद्योगिक इकाइयों को ए० एम० जी० प्रभारों के भुगतान से छूट संबंधित खंड 15.2.11 के प्रावधानों को निर्दिष्ट करने को, अपने संकल्प में लोप किया था।

(vi) यद्यपि दिनांक 1.9.2002 से इसे प्रभावशील बनाते हुए खंड 15.2.17 के लाभों को देते हुए उर्जा विभाग के संकल्प के अनुकूल अपने संकल्प को अधिसूचित किया है और तद्‌द्वारा, दिनांक 1.9.2002 से नयी औद्योगिक इकाइयों को इसके लाभों को प्रदान किया है।

(vii) यद्यपि जे० एस० ई० बी० याचीगण की इकाइयों को प्रोत्साहन देने के लिए सहमत हो गयी है लेकिन इस राइडर के साथ कि याचीगण की इकाइयों को ए० एम० जी० प्रभार माफ करने से जे० एस० इ० बी० को प्रोद्भूत नुकसान की प्रतिपूर्ति विद्युत अधिनियम की धारा 65 के प्रावधानों के मुताबिक राज्य सरकार द्वारा दी जाएगी।

12. राज्य की औद्योगिक इकाइयों को दी जानेवाली छूट को अभिव्यक्त निबंधनों में विनिर्दिष्ट करते हुए झारखण्ड राज्य औद्योगिक नीति, 2001 को आधिकारिक राजपत्र में अधिसूचित किया गया था। औद्योगिक इकाइयों को दी जानेवाली छूट के अभिव्यक्त निबंधनों के अंगीकरण सहित औद्योगिक नीति को अंगीकृत करते राज्य के संबंधित विभागों के औपचारिक संकल्पों को औद्योगिक नीति के अधीन परिकल्पित योजना के अनुकूल होना होगा। औद्योगिक नीति के अंगीकरण के रूप में अधिसूचित राज्य सरकार के संबंधित विभागों के औपचारिक संकल्प औद्योगिक नीति के अधीन नयी औद्योगिक इकाइयों को प्रोद्भूत लाभों को देने से इन्कार नहीं कर सकते है।

कल्याणपुर सीमेन्ट प्रा॰ लि॰, पटना बनाम बिहार राज्य एवं अन्य, 2002(2) PLJR 529 में प्रकाशित मामले में पटना उच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि जब एक बार औद्योगिक नीति के रूप में राज्य सरकार द्वारा आश्वासन दिया जाता है, तब सरकार को अपनी प्रतिबद्धता की पूर्ति करनी ही होगी।

13. इस प्रकार यह प्रतीत होता है कि इस तथ्य के बावजूद कि औद्योगिक नीति के प्रावधानों को अंगीकृत करते बाद की तिथि पर राज्य उर्जा विभाग (प्रत्यर्थी सं॰ 5) ने अपना संकल्प अधिसूचित किया था लेकिन यह आश्वासन देता है कि प्रोत्साहन सहित लाभ उस तिथि से लागू किए जाएँगे जब से औद्योगिक नीति प्रभावशील हो गयी। इस प्रकार, चुँकि राज्य सरकार के उर्जा विभाग ने राज्य औद्योगिक नीति के प्रावधान को लागू करना और वहाँ उसमें अंतर्विष्ट प्रोत्साहनों को नयी औद्योगिक इकाइयों को उस तिथि के प्रभाव से, जबसे औद्योगिक नीति प्रभावशील हुई, देना स्वीकार किया है, विद्युत आपूर्त्ति अधिनियम, 1948 की धारा 78A के अधीन उसके उर्जा विभाग द्वारा जारी संकल्प को सरकारी संकल्प द्वारा घोषित औद्योगिक नीति के प्रतिकूल मानना केवल इसलिए कि यह औद्योगिक नीति के खंड 15.2.11 को निर्दिष्ट करने से चूक गया है, आवश्यक नहीं है।

14. झारखण्ड औद्योगिक नीति, 2001 का खंड 36.2 किए जानेवाले मॉनिटरिंग और पुनर्विलोकन का प्रावधान करता है और सारे संबंधित विभागों एवं संगठनों से एक महीने के भीतर नीति के प्रावधानों को प्रभावशील बनाने के लिए अनुवर्ती अधिसूचना जारी किए जाने की अपेक्षा करता है। पुनरूत्थान पैकेज के मुताबिक न्यूनतम गारंटी प्रभारों से छूट पाने के लिए खंड 92(1) (VI) के संबंध में विद्युत आपूर्ति अधिनियम, 1948 की धारा 78(A) के अधीन यदि सरकार के समुचित विभागों ने अधिसूचना जो नहीं किया है, प्रत्यर्थी राज्य औद्योगिक नीति, 1995 को समुचित प्रभाव देने हेतु संबंधित विभाग को समुचित निर्देश देने के लिए बाध्य है।

15. अब इस प्रश्न पर आते हुए कि क्या जे॰ एस॰ ई॰ बी॰ याचीगण को प्रोदभूत औद्योगिक नीति के प्रोत्साहन खंडों के लाभों को देने से इन्कार कर सकता है, यह ध्यान में लेना होगा कि यद्यपि झारखण्ड राज्य विद्युत बोर्ड स्वयं अपने नियमों और विनियमनों वाली एक पृथक और सुभिन्न निकाय है, फिर भी यह राज्य सरकार के उर्जा विभाग द्वारा जारी निर्देशों से मार्गदर्शित होती है। चुँकि राज्य सरकार ने अपने संबंधित विभागों के माध्यम से विनिर्दिष्ट तिथि के प्रभाव से नयी औद्योगिक इकाइयों को प्रोत्साहनों के लाभों को देने के लिए अपनी औद्योगिक नीति के रूप में अपने आश्वासनों की घोषणा

की है, यह राज्य सरकार की जिम्मेदारी हो जाती है कि वह अपनी प्रतिबद्धता की पूर्ति करें और इस संदर्भ में, राज्य औद्योगिक नीति के अधीन नयी औद्योगिक इकाइयों को दिए गए प्रोत्साहनों को सुनिश्चित करने के लिए जे॰ एस॰ इ॰ बी॰ को आवश्यक निर्देश जारी करें।

16. यह प्रतीत होता है कि राज्य सरकार के उर्जा विभाग द्वारा अंगीकृत संकल्प और संकल्प के निबंधनों के अनुसार जे॰ एस॰ इ॰ बी॰ को इसके द्वारा जारी किए गए निर्देशों के अनुसरण में, नयी औद्योगिक इकाइयों को राज्य औद्योगिक नीति के अधीन प्रोत्साहनों को देने से सहमत होते हुए, इस संदर्भ में इसके द्वारा लिए गए संकल्प को अधिसूचित करते हुए जे॰ एस॰ ई॰ बी॰ ने भी एक संकल्प अंगीकृत किया है। लेकिन यह प्रतीत होता है कि जे॰ एस॰ ई॰ बी॰ ने इसे दिनांक 1.9.2002 से इसे प्रभावशील बनाते हुए औद्योगिक नीति के प्रोत्साहन प्रावधानों को लागू करने के लिए एक राइडर लगाया है। क्या जे॰ एस॰ ई॰ बी॰ औद्योगिक नीति के प्रावधानों को लागू करने के लिए स्वयं अपनी तिथि तय करके ऐसा राइडर लगा सकता है? दो कारणों से इसका उत्तर जोरदार ''नहीं'' मे है:–

प्रथमतः, चुँकि राज्य सरकार की औद्योगिक नीति दिनांक 15.11.2000 से प्रभावशील बनायी गयी थी और मंत्रिपरिषद द्वारा औद्योगिक नीति के निबंधनों को अंगीकृत किया जाने के नाते, यह उर्जा विभाग सहित राज्य सरकार के प्रत्येक विभागों पर आबद्धकर है।

द्वितीयतः विद्युत आपूर्ति अधिनियम, 1948 की धारा 78A के अधीन जारी उर्जा विभाग द्वारा अंगीकृत संकल्प की अधिसूचना, जिसके अनुसरण में औद्योगिक नीति के प्रोत्साहन खंडों को लागू करने के लिए सहमत होते हुए जे० एस० इ० बी० ने अपना संकल्प अधिसूचित किया था, औद्योगिक नीति को लागू करने के लिए उस तिथि, जबसे औद्योगिक नीति प्रभावशील बनायी गयी थी, के अतिरिक्त कोई अन्य तिथि उल्लिखित नहीं करती है। वस्तुतः उर्जा विभाग और राज्य सरकार के उद्योग विभाग ने भी अपने-अपने प्रति शपथपत्र में घोषणा किया है कि औद्योगिक नीति 2001 दिनांक 15.11.2000 से प्रभावशील है।

17. चुँकि विद्युत आपूर्त्ति अधिनियम की धारा 78(A) के अधीन इसको दिए गए सरकारी निर्देश को बोर्ड ने स्वीकार किया है, याचीगण पर कोई शर्त अधिरोपित किए बिना छूट का लाभ, जिसे पाने हेतु याचीगण की इकाइयाँ हकदार है, स्वीकार करने के लिए यह बाध्य है। इस संदर्भ में **के॰ डी॰ इन्डस्ट्रीज एवं एक अन्य बनाम बिहार राज्य विद्युत बोर्ड और अन्य,** 2001 (1) JLJR 678 (SC) में प्रकाशित मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय में निर्णित निर्णयाधार को निर्दिष्ट किया जा सकता है।

18. उक्त विवाद अब जे॰ एस॰ ई॰ बी॰ द्वारा समाधान किया जा चुका प्रतीत होता है जिसने कृपालु होते हुए दिनांक 15.11.2000 से दिनांक 31.12.2003 तक याचीगण की इकाइयों को ए॰ एम॰ जी॰ प्रभारों के भुगतान से छूट दिया है यद्यपि पुनः एक राइडर के साथ कि याचीगण को छूट देने से जे॰ एस॰ ई॰ बी॰ को हुए नुकसान की प्रतिपूर्ति राज्य सरकार द्वारा की जानी चाहिए। यह प्रतीत होता है कि इसे राज्य उर्जा विभाग द्वारा संबोधित दिनांक 10.3.2005 के पक्ष की व्याख्या करते हुए जे॰ एस॰ ई॰ बी॰ विद्युत अधिनियम, 2003 की धारा 65 के प्रावधानों के निबंधनों के अनुसार पत्र को व्याख्या करता प्रतीत होता है यद्यपि, जैसा याचीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा इंगित किया गया है, पत्र यह उपदर्शित नहीं करता है कि विद्युत अधिनियम, 2003 की धारा 65 के प्रावधानों के निबंधनों के अनुसार राज्य उर्जा विभाग द्वारा कोई प्रस्ताव किया गया है।

19. किसी भी सूरत में, वर्तमान याचीगण की इकाइयों के संबंध में विद्युत अधिनियम, 2003 की धारा 65 के प्रावधानों का आह्वान नहीं किया जा सकता है। विद्युत अधिनियम, 2003 की धारा 65 के प्रावधान, यदि इनका पठन झारखण्ड राज्य औद्योगिक नीति, 2001 के खंड 23 के साथ किया

भी जाए, केवल बीमार उद्योगों के मामलों पर लागू होते है। याचीगण की इकाइयों में से किसी को भी बीमार घोषित नहीं किया गया है। अन्यथा भी, विद्युत अधिनियम, 2003 उस तिथि पर और से प्रभाव में नहीं आया जब से अर्थात् 15.11.2000 से औद्योगिक नीति प्रभावशील बनायी गयी थी।

20. यह स्पष्ट है कि याचीगण की इकाइयों को प्रोत्साहनों के लाभों को देने के लिए राज्य सरकार से प्रतिपूर्ति इप्सित करते हुए और शर्त अधिरोपित करने का प्रयास करते हुए जे॰ एस॰ ई॰ बी॰ ने अप्रत्यक्षत राज्य औद्योगिक नीति के अधीन नयी औद्योगिक इकाइयों को आश्वस्त प्रोत्साहनों के लाभों को देने से इंकार करना चाहता था।

21. अन्यथा भी, शर्तों की पूर्ति करने के लिए याचीगण को नहीं कहे जाने के नाते, यह मामला अनन्यत: राज्य सरकार और जे॰ एस॰ ई॰ बी॰ के बीच है कि वे निर्णय करें कि क्या याचीगण को छूट देने के चलते जे॰ एस॰ ई॰ बी॰ को हुए नुकसान की प्रतिपूर्ति किए जाने की जे॰ एस॰ ई॰ बी॰ की मांग सही है या नही और उनके लिए मॉडेलिटि बनाए।

22. उक्त चर्चा के आलोक में, प्रश्न जो उपर निर्मित किए गए, उनका उत्तर निम्नलिखित तरीकों से दिया गया है:–

(i) राज्य औद्योगिक नीति के खंड 15.2.11 कि निबंधनों के अनुसार याचीगण को प्रोदभूत लाभ देने से झारखंड राज्य विद्युत बोर्ड इन्कार नहीं कर सकता है।

(ii) झारखंड राज्य विद्युत बोर्ड औद्योगिक इकाइयों के संबंध में औद्योगिक नीति के प्रावधानों को लागू करने के लिए दिनांक 15.11.2000 जिस तिथि से औद्योगिक नीति 2001 प्रभावशील बनाया गया था के बजाए दिनांक 1.9.2002 के प्रभाव से लागू करने की मनमानी तिथि तय नहीं कर सकता है।

(iii) याचीगण को ए० एम० जी० प्रभारों के भुगतान से छूट का लाभ देने के लिए जे० एस० इ० बी० द्वारा सहे गए नुकसान, यदि ऐसा है, की प्रतिपूर्ति के लिए राज्य सरकार से आश्वासन प्राप्त करने हेतु याचीगण पर कोई शर्त अधिरोपित नहीं कर सकता है।

23. उक्त निष्कर्षों के आलोक में, मैं इन रिट याचिकाओं में गुणागुण पाता हूँ। तद्नुसार, ये रिट याचिकाएँ [डब्लू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 1114 वर्ष 2004, डब्लू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 3839 वर्ष 2003 और डब्लू॰ पी॰ सी॰ सं॰ 4025 वर्ष 2003) अनुज्ञात की जाती है।

डब्लू॰ पी (सी॰) सं॰ 1114 वर्ष 2004 के तहत याची के मामले में दिनांक 19.1.2004 का आक्षेपित आदेश (परिशिष्ट–13) और वर्ष 2002–2003 का आक्षेपित ए॰ एम॰ जी॰ बिल (परिशिष्ट–4) एतद्द्वारा अभिखंडित किया जाता है।

डब्लू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 3839 वर्ष 2003 के तहत याची के मामले में, वर्ष 2002-2003 के लिए दिनांक 26.6.2003 का आक्षेपित ए॰ एम॰ जी॰ बिल (परिशिष्ट–5) एतद्द्वारा अभिखंडित किया जाता है।

डब्लू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 4025 वर्ष 2003 के तहत याची के मामले में, दिनांक 10.4.2003 का आक्षेपित ए॰ एम॰ जी॰ बिल (परिशिष्ट–9) एतद्द्वारा अभिखंडित किया जाता है।

इस आदेश की प्रति की प्राप्ति/प्रस्तुति की तिथि से तीन माह की अवधि के भीतर उनको क्रमश: तामील किए गए आक्षेपित ए॰ एम॰ जी॰ बिलों के लिए याचीगण द्वारा व्यक्तिगत रूप से भुगतान की गयी राशि, यदि कोई हो तो, को वापस करने का निर्देश प्रत्यर्थी–जे॰ एस॰ ई॰ बी॰ को दिया जाता है।

24. इस आदेश की एक प्रति प्रत्यर्थी–जे॰ एस॰ ई॰ बी॰ के विद्वान अधिवक्ता को दी जाए।

माननीय जे॰ सी॰ एस॰ रावत एवं जया रॉय, न्यायमूर्तिगण

मेजोरा हेम्ब्रम

बनाम

झारखंड राज्य

Criminal Appeal No. 194 of 1992(R). Decided on 27th January, 2010.

सत्र विचारण सं॰ 365 वर्ष 1990 में, श्री दिलीप कुमार सिन्हा, चतुर्थ अपर सत्र न्यायाधीश, सिंहभूम (पश्चिम), चाईबासा द्वारा पारित दिनांक 16.9.1992 एवं 17.9.1992 के निर्णय और दोषसिद्धि के आदेश एवं दंडादेश के विरूद्ध।

(क) भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 307/34 सह-पठित आयुध अधिनियम, 1959—धारा 27—हत्या का प्रयास–आजीवन कारावास–अभियोजन गवाहों का साक्ष्य असंगत और परस्पर विरोधी–अन्वेषण अधिकारी को नहीं प्रस्तुत किए जाने से अपीलार्थी के बचाव पर प्रतिकूल प्रभाव–अभियोजन गवाह पक्षद्रोही हो गए–अपराध किए जाने में अपीलार्थी की हिस्सेदारी अभियोजन स्थापित नहीं कर पाया–आयुध अधिनियम की धारा 27 के अधीन साक्ष्य पर चर्चा करने की आवश्यकता नहीं–दोषसिद्धि एवं दंडादेश अपास्त–अपील अनुज्ञात। (पैरा 9 एवं 11 से 16)

(ख) दांडिक विधि–साक्ष्य का अधिमूल्यन–अन्वेषण अधिकारी का अपरीक्षण महत्वपूर्ण नहीं है जब उसे न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत नहीं किया गया है–आइ॰ ओ॰ का अ-प्रस्तुतीकरण बचाव को संकट में डालेगा जब अभियोजन गवाहों के बयानों में तात्विक विरोधाभास है–यह सर्वदा आवश्यक नही है कि लघु विरोधाभासों के लिए भी, आइ॰ ओ॰ की उपस्थिति अपेक्षित हो। (पैरा 12)

निर्णयज विधि.–2003 SCC (Cri.) 1494 : (2002)9 SCC 639; (2005) 5 SCC 258—Relied upon.

अधिवक्तागण.–M/s R.P. Gupta, Pradeep Kumar Nayak, For the Appellants; Mr. V.S. Sahay, For the Respondent-State.

आदेश

यह अपील सत्र विचारण सं॰ 365 वर्ष 1990 में चतुर्थ अपर सत्र न्यायाधीश, सिंहभूम (पश्चिम), चाईबासा द्वारा पारित क्रमशः दिनांक 16.9.1992 एवं 17.9.1992 के निर्णय और आदेश के विरूद्ध अपीलार्थी द्वारा दाखिल किया गया है जिसके द्वारा अपीलार्थी को भारतीय दंड संहिता की धाराएँ 307/34 एवं आयुध अधिनियम की धारा 27 के अधीन अपीलार्थी को दोषसिद्ध किया गया है और तदनुसार भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 307/34 के अधीन आजीवन सश्रम कारावास और आयुध अधिनियम की धारा 27 के अधीन 7 वर्षों का कारावास भुगतने का दंड दिया गया है। लेकिन, आगे यह निर्देश दिया गया है कि दोनों दंड साथ-साथ चलेंगे।

2. संक्षेप में मामले का तथ्य यह है कि दिनांक 1.6.1989 को प्रातः 10 बजे सूचक सोमा बिरूली मोइका समाध द्वारा आयोजित भोज में भाग लेने प्रातः लगभग 10 बजे ग्राम लोकोहातो के निवासी मोइका समाद के घर उसके निमन्त्रण पर गया। जब वह उसके घर पहुँचा, उसने पाया कि भोज में जो खाना खिलाया जाना था उसके घर के पास पकाया जा रहा था और वह उसके घर के निकट गया जहाँ इमली का एक पेड़ था। जब वह वहाँ था, सूरज की जला देनेवाली गर्मी ने उसे अपने कजिन बिगा बिरूली के साथ उक्त वृक्ष के पास बैठने को मजबूर किया। तत्पश्चात्, अपीलार्थी और अन्य सह-अभियुक्त, चार की संख्या में, घटना स्थल पर आए और अपीलार्थी ने सूचक सोमा बिरूली, अ॰ सा॰ 1, की ओर

पिस्तौल ताना और उसपर गोली चलायी। परिणामस्वरूप, उसकी दायी बाँह और दायी छाती पर गोली लगी। इसके बाद सह-अभियुक्त राजेश ने सूचक पर बम फेंका जिसके चलते दायीं भौं पर उपहितयाँ हुई। उक्त बम सह-अभियुक्त राजेश अपने झोले में रखे हुए था। गोली की आवाज ने आस-पास रहने वाले व्यक्तियों को चौकन्ना किया जो घटना स्थल पर आए और देखा कि सारे दुष्ट उस समय तक घटनास्थल से जा चुके थे। अभियोजन द्वारा यह भी कथन किया गया है कि अनेक व्यक्तियों ने घटना को देखा था। आग्नेयास्त्र के आतंक और भय के कारण, व्यक्तिगण जो घटना स्थल पर पहुँचे थे अपीलार्थी और अन्य अभियुक्तों को घटनास्थल पर पकड़ने का साहस नहीं दिखायी और उन्हें बिना किसी हानि के जाने दिया उक्त घटना दोपहर लगभग 1.00 बजे हुई थी और घटना के तुरंत बाद घायल सूचक अ० स० 1 को अस्पताल ले जाया गया और उसने अन्वेषण अधिकारी को सायं लगभग 4.15 बजे चाईबासा सिविल अस्पताल में फर्दबयान के तौर पर अपना बयान दिया। अन्वेषण अधिकारी ने अपीलार्थी और अन्य सह-अभियुक्तों के विरूद्ध तुरंत मामला दर्ज किया जिसकी परिणति अपीलार्थी और अन्य सह-अभियुक्तों के विरूद्ध आरोप-पत्र दाखिल करने में हुई।

3. आरोप-पत्र दाखिल करने के बाद, विद्वान न्यायिक दंडाधिकारी, प्रथम श्रेणी, चाईबासा ने अपराध का संज्ञान लिया और मामला सत्र न्यायालय को सुपुर्द किया क्योंकि यह अनन्य रूप से सत्र न्यायालय द्वारा विचारण योग्य था।

अभियुक्त अपीलार्थी को आरोप-पत्रित किया गया और उसके विरूद्ध आरोप विरचित किए गए। उसने विचारण न्यायालय के समक्ष विचारण किया जाना स्वीकार किया।

4. अपने मामले के समर्थन में अभियोजन ने चार गवाहों का परीक्षण किया है अर्थात अ० सा०1 सूचक सोमा बिरूली जिसने पुलिस के समक्ष फर्दबयान दाखिल किया, अ० सा० 2 चक्रो पूर्ती और अ० सा० 3 बुरन सिंह समद जो चश्मदीद गवाह होने का दावा करते हैं। लेकिन, विचारण के दौरान, उन्होंने अभियोजन के विवरण का समर्थन नहीं किया और पहले दिए गए बयान से मुकर गए। अत: अभियोजन ने उन्हें पक्षद्रोही घोषित कर दिया। अ० सा० 4 डॉ० राजदेव प्रसाद सिंह है जिन्होंने उसी दिन सांय लगभग 4.30 बजे घायल सूचक अ० सा० 1 का परीक्षण किया और घायल के चिकित्सा परीक्षा के समय चिकित्सा परीक्षा रिपोर्ट (प्रदर्श 1) तैयार किया। न्यायालय द्वारा अनेक अवसर दिए जाने के बावजूद अपने मामले के समर्थन में अभियोजन ने शेष गवाहों को प्रस्तुत नहीं कर सका था और यद्यपि प्रक्रियाएँ भेजी गयी थी, अन्य गवाहों को न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत नहीं किया जा सका था। अन्वेषण अधिकारी को भी न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत नहीं किया गया है। दं० प्र० सं० की धारा 313 के अधीन दर्ज अपने बयान में अपने विरूद्ध किए गए सारे प्राख्यानों से अपीलार्थी ने इन्कार किया है। उसने आगे कथन किया है कि उसे मामले में झूठा फँसाया गया है।

5. अभिलेख पर लाए गए साक्ष्य के अधिमूल्यन के पश्चात, विचारण न्यायालय ने अपीलार्थी को दोषी पाया और जैसा उपर उपदर्शित किया गया है, उसे दोषसिद्ध किया और दंड दिया। अन्य सह-अभियुक्त मथुरा हेम्ब्रम और महन्ती पूर्ती को अपर सत्र न्यायाधीश द्वारा दोषमुक्त कर दिया गया है। जहाँ तक सह-अभियुक्त राजेश का संबंध है, विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश ने संप्रेक्षित किया है कि उसके विचारण को अन्य सह-अभियुक्तों से पृथक कर दिया गया था क्योंकि वह विचारण के दौरान फरार था।

6. अपीलार्थी और राज्य के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

यहाँ यह उल्लिखित करना आवश्यक है कि दिनांक 1.6.1989 को घटना स्थल पर सूचक अ० सा० 1 ने उपहतियाँ प्राप्त की थी। अ० सा० 4 डॉ० राजदेव प्रसाद सिंह ने दिनांक 1.6.1989 को सांय लगभग 4.30 बजे सूचक सोमा बिरूली अ० सा० 1 का परीक्षण किया और उसके शरीर पर निम्नलिखित उपहतियाँ पायी:-

1. (a) बाँह की त्वचा पर बहुतेरे छर्रों वाले दाग सहित त्वचा गहरा 1½" x ½" आकार वाली बाँह के दाएं हिस्से पर पार्श्वभाग पर प्रवेश घाव (आर-पार);

(b) त्वचा तक गहरी 1½" x ½" आकार वाली दायी बाँह के मीडियल सतह पर निकास घाव;

2. दाएँ भाग के मध्य ऑक्जिलरी पंक्ति पर छर्रे के विविध छिद्र;

3. 1" x ½" x ½ के आकार वाली ललाट के दाएँ भाग पर पाया गया विर्दीण घाव;

4. जली हुई त्वचा सहित 3" x 2" आकार वाला पृष्ठ के बाएँ भाग पर जला हुआ बम से हुआ जख्म;

5. 1½" x ½ x ½" आकारवाला बाएँ पेरिटों-आक्सीपीटल क्षेत्र पर विदीर्ण जख्म।

7. उन्होंने आगे मत दिया कि उपहतियाँ आग्नेयास्त्र, बम विस्फोट और कठोर एवं भोंथरे पदार्थ से कारित हो सकती थी। उन्होंने आगे मत दिया कि उपहतियाँ सरल प्रकृति की थीं और जिन्दगी के लिए खतरनाक थी। उन्होंने आगे मत दिया कि अभियोजन द्वारा दिए गए तारीख और समय पर उपहतियाँ कारित हो सकती थी। उन्होंने आगे मत दिया कि सूचक अ० सा० 1 के शरीर पर हुई ये उपहतियाँ स्व-अधिरोपित उपहतियां नहीं हो सकती थी। घायल सूचक अ० सा० 1 ने स्पष्ट तौर पर कथन किया है कि उसने घटना में गोली और बम दोनों से हुई उपहतियाँ प्राप्त की थी। अ० सा० 2 चक्रो पूर्ती और अ० सा० 3 बूरन सिंह समद ने अपने साक्ष्य में कथन किया है कि घटना के तुरंत बाद वे घटना स्थल पर पहुँचे थे और घायल सूचक अ० सा० 1 को घायल अवस्था में देखा था और उसे अस्पताल ले जाया गया था। ये तथ्य स्थापित करते हैं कि सूचक अ० सा०1 की उपहतियाँ उसी तिथि, समय और घटना स्थल पर प्राप्त की गयी थी। अब हमे यह देखना है कि घायल सोमा बिरूली अ० सा० 1 के शरीर को उपहतियाँ पहुँचाने वाला कौन था।

8. अभियोजन के अनुसार, उक्त आग्नेयास्त्र उपहतियाँ अपीलार्थी द्वारा कारित की गयी थी और अन्य उपहतियाँ अन्य सह-अभियुक्तों द्वारा कारित की गयी थी। बचाव पक्ष के विद्वान अधिवक्ता ने कथन किया है कि अपीलार्थी को झूठा फँसाया गया है और घायल के शरीर पर हुई उपहतियाँ करने वाला वह नहीं है। अभियोजन तीन गवाहों, जो चश्मदीद गवाह होने का दावा करते हैं, का साक्ष्य प्रति-परीक्षण के दौरान दिया है। अ० सा०1 सोमा बिरूली इस मामले का घायल सूचक है। उसने कथन किया है कि घटना की तिथि पर वह मोइका समद के घर उसके द्वारा आयोजित भोज में खाना खाने उसके निमन्त्रण पर गया था। जब वह सूरज की गर्मी के कारण गर्मी महसूस कर रहा था, वह अपने कजिन के साथ इमली के वृक्ष के नीचे बैठा था। तत्पश्चात्, अपीलार्थी और अन्य सह-अभियुक्त घटना स्थल पर आए और अपीलार्थी ने सूचक पर गोली चलायी जिसके परिणामस्वरूप उसने उपहतियाँ पायी। अन्य सह-अभियुक्त राजेश ने उसपर बम फेंका जिसके द्वारा भी उसे उपहतियाँ हुई। उसने अन्य अभियुक्त को नहीं पहचाना था और उसने केवल अपीलार्थी को कटघरे में पहचाना था। तत्पश्चात् बचावपक्ष द्वारा उसका प्रति-परीक्षण किया गया। उसने स्पष्ट तौर पर कथन किया है कि घटना दिन के समय घटना की तिथि पर घटित हुई थी और अपीलार्थी ने उसके पीठ के पीछे से गोली चलायी थी और वह नहीं देख सका था कि उसने पीछे से गोली कैसे चलायी थी जो उसके ललाट पर लगी थी। तत्पश्चात वह वहाँ से 10-15 कदम दौड़ा। तत्पश्चात, अपीलार्थी ने सामने से गोली चलायी थी जो उसकी छाती पर लगी थी। उसने स्पष्ट तौर पर कथन किया है कि उसने अपने बयान देने के समय अन्वेषण अधिकारी

को घटनास्थल पर दो गोली चलाए जाने का कथन किया था। उसने आगे कथन किया है कि दुष्टगण 5-6 की संख्या में थे और अपने हाथ में पिस्तौल पकड़े हुए थे। यह नोट करना महत्वपूर्ण है कि उसने अभियोजन के हित के विरूद्ध प्रति-परीक्षण के दौरान बयान दिया है। अभियोजन ने उक्त गवाह के प्रति-परीक्षण हेतु उन्हें अनुज्ञा देने की प्रार्थना विचारण न्यायालय से नहीं की थी। अभियोजन ने अ॰ सा॰ 2 चक्रोपूर्ति का साक्ष्य भी लिया है जिसने अन्वेषण के दौरान चश्मदीद गवाह होने का दावा किया है, लेकिन जब वह विचारण न्यायालय के समक्ष उपस्थित हुआ, उसने कथन किया कि उसने सुना था कि कोई घटना हुई थी जिसमें अपीलार्थी और अन्य सह-अभियुक्तों ने घटना की तिथि पर सूचक अ॰ सा॰1 पर प्रहार किया था। आग्नेयास्त्र और बम विस्फोट का हल्ला सुनने के तुरंत बाद वह घटना स्थल पर पहुँचा और देखा कि व्यक्तिगण जिन्होंने घटना में भाग लिया था, घटना स्थल से भाग चुके थे और उसने अभियुक्त अपीलार्थी को न्यायालय में नहीं पहचाना था। उसे पक्षद्रोही घोषित किया गया और उसने कथन किया कि उसने अन्वेषण अधिकारी को कोई बयान नहीं दिया था। अ॰ सा॰ 3 बूरन सिंह समद ने कथन किया है कि घटना की तिथि पर सूचक अ॰ सा॰ 1 ने उपहतियाँ प्राप्त की थी लेकिन उसने कथन किया कि उसने अपनी आँखों से घटना होते नही देखा था। उसने आगे कथन किया है कि अपीलार्थी और अन्य सह-अभियुक्तों ने सूचक अ॰ सा॰1 पर चार-पाँच गोलियाँ चलायी थी जिसके चलते उसे उपहतियाँ प्राप्त हुई थी। अभियोजन द्वारा गवाह को पक्षद्रोही घोषित किया गया। अ॰ सा॰ 4 डॉ॰ राजदेव प्रसाद सिंह इस मामले का चिकित्सा अधिकारी है जिसके साक्ष्य पर यहाँ इसमें उपर पहले के पैराग्राफों में चर्चा की गयी है।

9. अभिलेख पर लाए गए साक्ष्य के परिशीलन से यह स्पष्ट है कि अ॰ सा॰ 2 एवं 3 के साक्ष्य पर विचारण न्यायालय द्वारा विश्वास नहीं किया गया है। अ॰ सा॰1 सूचक सोमा बिरूली और अ॰ सा॰ 4 डॉ॰ राजदेव प्रसाद सिंह के अभिसाक्ष्य पर दोष-सिद्धि आधारित की गयी है। विचारार्थ प्रथम और मुख्य बिन्दु से यह उद्‌भूत होता है कि फर्दबयान में अभियोजन गवाहों ने अभियोजन की एक भिन्न कथा सुनाई है कि केवल एक गोली चलायी गयी थी जो अ॰ सा॰ 1 सूचक के दाए बाँह से दाए छाती तक घुस गयी। लेकिन जब वह गवाह के कटघरे में उपस्थित हुआ, उसने एक भिन्न कथा सुनायी कि दो गोलियाँ चलायी गयी थी–एक सूचक के पीछे से जब वह इमली के पेड़ के नीचे बैठा हुआ था। उसने आगे कथन किया है कि दूसरी गोली तब चलायी गयी जब वह उस स्थान, जहाँ वह बैठा हुआ था से भाग रहा था और वहाँ से 10-15 कदम दूर था जब अपीलार्थी ने सामने से घायल पर गोली चलायी थी। घायल सूचक ने अपने शरीर पर उक्त उपहतियाँ पायी। इस प्रकार, एक विनिर्दिष्ट प्राख्यान है कि दो गोलियाँ चलायी गयी थी। इसके अतिरिक्त, उसने घटना में भाग लेने वाले अन्य सह-अभियुक्तों को नहीं पहचाना है। उसने केवल कटघरे में अपीलार्थी को पहचाना। अत: यह समुचित होता कि अभियोजन गवाह की प्रति-परीक्षण किया जाता ताकि उसके मुँह से सच सामने आता। गवाह, जिसे पक्षद्रोही घोषित नहीं किया गया था, का अभिसाक्ष्य और गवाह के साक्ष्य का साक्ष्यिक मूल्य अभियोजन के लिए घातक होगा। अभियोजन ऐसे गवाह के बयान से बचकर नहीं निकल सकता भले ही गवाह घायल हो।

10. जगन एम॰ शेषाद्रि बनाम तमिलनाडू राज्य [2003 SCC (Cri.) 1494] : (2002)9 SCC 639] के मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि अभियोजन गवाह, जिन्हें पक्षद्रोही घोषित नहीं किया गया था, अभियोजन गवाह के बयान से बचकर नहीं निकल सकता है भले ही गवाह अभियुक्त की सास हो।

मुख्तार अहमद अंसारी बनाम एन॰ सी॰ टी॰ दिल्ली राज्य, (2005)5 SCC 258 में प्रकाशित मामले मे सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है:–

29. ''अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने यह भी आग्रह किया था कि यह अभियोजन का मामला था कि पुलिस ने वेद प्रकाश गोयल से मारूति कार अधिग्रहण किया था। वेदप्रकाश गोयल का इस मामले में अ० सा० 1 के रूप में अभियोजन गवाह के तौर पर परीक्षित किया गया था। लेकिन उसने अभियोजन का समर्थन नहीं किया था। अभियोजन को कभी भी अ० सा० 1 को ''पक्षद्रोही'' घोषित नहीं किया था। उसके साक्ष्य ने अभियोजन का समर्थन नहीं किया था। अतः अभियुक्त उस साक्ष्य पर विश्वास कर सकता था''।

30. ''राजाराम बनाम राजस्थान राज्य के मामले में इस न्यायालय के समक्ष ऐसा ही प्रश्न आया था। उस मामले में, डॉक्टर, जिसे अभियोजन गवाह के तौर पर परीक्षित किया गया था, का साक्ष्य दर्शाता था कि मृतक को किसी के द्वारा यह बताया जा रहा था कि उसे अभियुक्त को आलिप्त करना चाहिए अन्यथा उसे अभियोजन का सामना करना पड़ सकता है। डॉक्टर को ''पक्षद्रोही'' घोषित नहीं किया गया था। लेकिन उच्च न्यायालय ने अभियुक्त को दोषसिद्ध किया। इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि बचावपक्ष डॉक्टर के साक्ष्य पर विश्वास करने हेतु स्वतंत्र था और यह अभियोजन पर बाध्यकारी था।''

11. इस मामले में गवाह ने स्पष्ट तौर पर कथन किया कि उसपर दो गोलियाँ चलायी गयी थी और जबकि अभियोजन का मामला यह है कि अ॰ सा॰ 1 घायल सोमा बिरूली पर मात्र एक गोली चलायी गयी थी। इस प्रकार, अ॰ सा॰ 1 का साक्ष्य असंगत और विरोधाभासी है और अभियोजन उसके साक्ष्य की आलोचना नहीं कर सकता है कि अ॰ सा॰ 1 अपने पहले के बयान से मुकर गया है। इसके लिए, अ॰ सा॰ 1 के साक्ष्य को विचार में नहीं लिया जा सकता है और इस प्रकार, अपीलार्थी के विरूद्ध कोई साक्ष्य नहीं है जिसके द्वारा यह स्थापित किया जा सकता था कि सूचक के शरीर को उपहति पहुँचाने वाला वही था।

12. विचारार्थ अगला बिन्दु यह है कि अन्वेषण अधिकारी को न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत नहीं किया गया है। यह सर्वविदित कानून है कि अन्वेषण अधिकारी का गैर–परीक्षण महत्वपूर्ण नहीं है जब उसे न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत नहीं किया गया हो। अन्वेषण अधिकारी के गैर–प्रस्तुतीकरण का लाभ लेने के पहले, बचावपक्ष को यह स्थापित करना होगा कि उसका बचाव अन्वेषण अधिकरी के गैर–प्रस्तुतीकरण के चलते तात्विक और सारभूत रूप से प्रभावित हुआ है। अन्वेषण अधिकारी का गैर–प्रस्तुतीकरण बचावपक्ष को केवल संकट में डालेगा जब अभियोजन के गवाह के बयान में तात्विक विरोधाभास सामने आए हो। यह सर्वदा आवश्यक नहीं है कि लघु विरोधाभासों के लिए भी अन्वेषण अधिकारी की उपस्थिति अपेक्षित है।

13. वर्तमान मामले में, यह एक विशिष्ट तथ्य है कि दोनों गवाह, चक्रो पूर्ती और बूरन सिंह समद, अ॰ सा॰ 2 और 3, पक्षद्रोही घोषित कर दिए गए हैं लेकिन अभियोजन यह स्थापित करने के लिए कि अभियोजन गवाह अन्वेषण के समय घटना के चश्मदीद गवाह था और बाद में उसे पक्षद्रोही घोषित कर दिया गया है, विरोधाभास को दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 161 के अधीन रखने का प्रयास किया था। अन्वेषण अधिकारी को न्यायालय के समक्ष अ॰ सा॰ 2 चक्रो पूर्ति और अ॰ सा॰ 3 बूरन सिंह समद के साक्ष्य को सिद्ध करने के लिए नहीं कहा जा सकता था। उक्त के अतिरिक्त, यदि हम उक्त तथ्य को अनदेखा भी करे तो भी अ॰ सा॰ 1, जिसे पक्षद्रोही घोषित नहीं किया गया था, ने स्पष्ट तौर पर कथन किया कि घटनास्थल पर उसपर दो गोलियाँ चलायी गयी थी जबकि फर्दबयान में उसने कथन किया

है कि घायल पर केवल एक गोली चलायी गयी थी। उससे आगे यह प्रश्न किया गया कि क्या उसने दो गोलियों का उक्त वर्णन अन्वेषण अधिकारी द्वारा दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 161 के अधीन बयान दर्ज किया था। उसने कथन किया है कि उसने अन्वेषण अधिकारी के समक्ष इस तथ्य का कथन किया था। इस मामले के विचित्र तथ्यों में अन्वेषण अधिकारी का गैर-प्रस्तुतीकरण अपीलार्थी के बचाव पर प्रतिकूल प्रभाव डालेगा। यदि अन्वेषण अधिकारी प्रस्तुत किया जाता, वह कथन कर सकता था कि उसने ऐसा कथन किया था या नहीं अथवा वह विचारण पर अभियोजन के विवरण को समृद्ध किया था। यदि उसने अन्वेषण के दौरान इस तथ्य का कथन नहीं किया होता, बचावपक्ष के लिए यह महत्व का होता क्योंकि प्राथमिकी सारे तात्विक तथ्यों का वृहद शब्दकोष नहीं है जिसका कथन वहाँ उसमें किया जाय। प्राथमिकी विधि को गति प्रदान करने और अन्वेषण शुरू करने हेतु दर्ज की जाती है। अन्वेषण अधिकारी कथन कर सकता था कि उसने कब अ॰ सा॰ 1 सोमा बिरूली का बयान दर्ज किया था। यदि उसी दिन यह बयान दर्ज नहीं किया गया था, यह बचावपक्ष के काम आ सकता था, लेकिन यहाँ अन्वेषण अधिकारी के गैर-प्रस्तुतीकरण ने निश्चय ही अपीलार्थी के बचाव पर प्रतिकूल प्रभाव डाला है।

14. उक्त की दृष्टि में, हमारा दृष्टिकोण यह है कि अपराध करने में अपीलार्थी की हिस्सेदारी को अभियोजन स्थापित नहीं कर सका है। इस प्रकार, आयुध अधिनियम की धारा 27 के अधीन साक्ष्य पर चर्चा करने की आवश्यकता नहीं है।

15. अभियोजन संदेह की समस्त छाया के परे अपीलार्थी के विरूद्ध मामला सिद्ध करने में विफल रहा है। अपील अनुज्ञात करने योग्य है। अपीलार्थी को दोषसिद्ध करने में विचारण न्यायालय ने गलती की है। अपीलार्थी दोषमुक्ति का हकदार है।

16. पूर्वोक्त कारणों से, यह अपील अनुज्ञात की जाती है। सत्र विचारण सं॰ 365 वर्ष 1990 में विचारण न्यायालय द्वारा अपीलार्थी की दोषसिद्धि और दंड अपास्त किया जाता है। अपीलार्थी जमानत पर है। उसे आरोप से दोषमुक्त किया जाता है और उसे जमानत पत्र की जिम्मेदारियों से उन्मोचित किया जाता है।

माननीय डी॰ एन॰ पटेल, न्यायमूर्ति

धनेश्वर पासवान

बनाम

झारखण्ड राज्य एवं अन्य

WP(S) No. 2441 of 2008. Decided on 1st February, 2010.

सेवा विधि–नियुक्ति–कॉन्सटेबल का पद–उम्मीदवारी की अस्वीकृति–कद के संबंध में मास्टर चार्ट में अभिकथित लिप्त लेखन–याची आरक्षित श्रेणी का उम्मीदवार है और उसने 16 अंक प्राप्त किया था–अनुसूचित जाति श्रेणी से 14 अंक प्राप्त किए उम्मीदवार को पहले ही कॉन्सटेबल के तौर पर नियुक्त किया गया है–याची लिखित और शारीरिक परीक्षाओं में सफलतापूर्वक उत्तीर्ण हुआ था–मास्टर चार्ट में अभिकथित लिप्त लेखन के बारे में याची को कोई नोटिस नहीं दिया गया–अनुच्छेद 16 के अधीन प्रत्याभूत सर्वाधिक मूल्यवान अधिकार लापरवाही के कारण छीन लिया गया है–चयन बोर्ड का रिपोर्ट अथवा मत प्रकट नहीं किया गया–यदि कद के संबंध में कोई गलती है, इसे फिर से नापा जा सकता है–आक्षेपित आदेश अपास्त–याचिका अनुज्ञात। (पैरा 5 एवं 6)

निर्णयज विधि.–2007(1) JCR 1 (Jhr.); 2009(4) JLJR 543—Relied upon.

अधिवक्तागण.—M/s Dr. S.N. Pathak, Nawal Kishore Pandey, For the Petitioner; Mr. S.K. Sinha, For the State.

आदेश

वर्तमान याचिका दिनांक 5.3.2008 की आरक्षी अधीक्षक, कोडरमा द्वारा पारित आदेश, याचिका के मेमो का परिशिष्ट 7, जिसके द्वारा कॉन्सटेबल के पद के लिए याची की उम्मीदवारी को खारिज कर दिया गया है, के विरूद्ध दाखिल की गयी है।

2. याची के विद्वान अधिवक्ता ने जोरदार निवेदन किया कि याची भारत का एक नागरिक है और भारत के संविधान के अनुच्छेद 16 के अधीन गारंटीकृत मूल अधिकारों का हकदार है अर्थात् याची को सार्वजनिक रोजगार हेतु समान अवसर पाने का अधिकार है। पुलिस कॉन्सटेबल के पद पर नियुक्ति के लिए दिनांक 13.1.2004 को प्रकाशित विज्ञापन सं॰ 1/04 वाले सार्वजनिक विज्ञापन के अनुसरण में याची ने आवेदन दिया था और समस्त प्रकार की परीक्षाओं अर्थात् लिखित एवं शारीरिक परीक्षाओं में सफलतापूर्वक उत्तीर्ण हुआ था। याची आरक्षित श्रेणी, विशेषत: अनुसूचित जाति, का उम्मीदवार है और उसने प्रत्यर्थीगण द्वारा विहित अंकों के आबंटन के तरीके के मुताबिक 16 अंक प्राप्त किया है और अनुसूचित जाति श्रेणी में 14 अंक पाए उम्मीदवार को कॉन्सटेबल के तौर पर नियुक्त किया गया है और दिनांक 5.3.2008 के आक्षेपित आदेश, जो याचिका के मेमो के परिशिष्ट–7 पर है, में आरक्षी अधीक्षक, कोडरमा द्वारा दिया गया एक मात्र कारण यह है कि सरकारी पदधारियों द्वारा तैयार किए गए कुछ मास्टर चार्ट में, जहाँ तक कद का संबंध है, कुछ लिप्त लेखन है और इस कारण याची को कॉन्सेटबल के पद पर नियुक्ति के लिए अपात्र और अक्षम घोषित किया गया है। विधि की दृष्टि में यह कोई कारण नहीं है। याची के विरूद्ध कोई अभिकथन नही है कि याची ने मास्टर चार्ट में लिप्त लेखन किया है। याची के विरूद्ध प्रत्यर्थीगण द्वारा कोई भी अभिकथन नहीं है। अन्यथा भी, तथाकथित रजिस्टर और मास्टर चार्ट इत्यादि का अनुरक्षण प्रत्यर्थीगण–पुलिस प्राधिकारियों द्वारा किया जा रहा है। याची को उन रजिस्टर अथवा मास्टर चार्ट को छूने की भी इजाजत नहीं है। यदि कोई लिप्त लेखन है, याची इस तथ्य से अवगत नहीं है कि लिप्त लेखन क्या है और क्या यह किसी छलसाधन के कारण किया गया है। याची को न तो कारण बताओ नोटिस और न ही सुनवाई का अवसर दिया गया है और वस्तुत: आक्षेपित आदेश द्वारा आरक्षी अधीक्षक, कोडरमा ने याची के विरूद्ध कोई अभिकथन भी नहीं किया है कि मास्टर चार्ट याची के कब्जे में था और याची ने सरकार के मास्टर चार्ट में छल साधित किया है।

3. याची के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह भी जोरदार निवेदन किया गया है कि इस प्रकार के पत्र/आदेश द्वारा भारत के संविधान के अनुच्छेद 16 द्वारा प्रदत मूल्यवान अधिकार को वापस नहीं लिया जा सकता है। वस्तुत: मास्टर चार्ट का अनुरक्षण करने में याची की ओर से कोई गलती नहीं है और यदि मास्टर चार्ट में कोई लिप्त लेखन किया भी गया है तो स्वयं सरकार इसके लिए जिम्मेदार है। याची की ओर से विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह भी निवेदन किया गया है कि आक्षेपित आदेश विवेक का इस्तेमाल किए बिना पारित किया गया है और यह केवल मनमानी कार्रवाई दर्शाता है। स्वीकार किए बिना, यह उपधारित करते हुए कि किसी उम्मीदवार के कद को नापने में कोई गलती है, तब भी पुलिस विभाग को भारत के संविधान के अनुच्छेद 16 के अधीन अधिकार को वापस लेने के पहले दोबारा सोचना चाहिए था कि कद ऐसा कारक नही है जिसे किसी के द्वारा छलसाधित किया जा सकता है।

कद को पुनः नापा जा सकता है। यदि याची के कद के बारे में कोई संदेह है, उच्च श्रेणी के पुलिस अधिकारीगण कद मापने के लिए डॉक्टर की नियुक्ति कर सकते थें और इस प्रकार कारण, जिसे आक्षेपित आदेश में दिया गया है, विधि की दृष्टि में कोई कारण नही है, विशेषतः जब प्रत्यर्थी-प्राधिकारियों द्वारा अनुरक्षित मास्टर चार्ट को याची ने छल साधित नहीं किया है और इस कारण दिनांक 5.3.2008 को आरक्षी अधीक्षक, कोडरमा द्वारा पारित याचिका के मेमो के परिशिष्ट 7 का आदेश अभिखंडित और अपास्त करने योग्य है।

4. मैंने प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता को सुना है जिन्होंने निवेदन किया है कि आक्षेपित आदेश को देखने पर यह प्रतीत होता है कि जहाँ तक प्रत्यर्थीगण द्वारा तैयार मास्टर चार्ट में याची के कद का संबंध है, लिप्त लेखन किया गया है और इस कारण उसकी उम्मीदवारी अस्वीकार कर दी गयी है। चयन बोर्ड द्वारा भी ऐसा निर्देश था और इसलिए आरक्षी अधीक्षक, कोडरमा द्वारा यह निर्णय लिया गया है। प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह भी निवेदन किया गया है कि शुरूआत में एक रिट याचिका डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) सं॰ 1242 वर्ष 2006 में दिनांक 10.11.2006 के आदेश के तहत, जिसे **2007(1) JCR, Page 1(Jhr.)(कृष्णजी बनाम झारखंड राज्य)** में प्रकाशित किया गया है, इस न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया है कि कुछ छल साधन के चलते 932 उम्मीदवारों को कॉन्सटेबल के तौर पर नियुक्त नहीं किया जा सकता है और इस कारण याचिका के मेमो के परिशिष्ट-7 पर यह निर्णय लिया गया है और इसलिए यह रिट याचिका खारिज करने लायक है।

5. दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने के बाद और मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों को देखते हुए मैं आरक्षी अधीक्षक, कोडरमा द्वारा पारित दिनांक 5.3.2008 के आक्षेपित आदेश, जो याचिका के मेमो के परिशिष्ट-7 पर है, को मुख्यतः निम्नलिखित तथ्यों और कारणों से अभिखंडित और अपास्त करता हूँ।

(i) झारखंड राज्य द्वारा जारी विज्ञापन सं॰ 1/04, सार्वजनिक विज्ञापन के अनुसरण में कॉन्सटेबल के पद पर नियुक्ति के लिए याची ने आवेदन किया था;

(ii) याची भारत का नागरिक है और भारत के संविधान के अनुच्छेद 16 द्वारा गारंटीकृत मूल अधिकारों का हकदार है अर्थात सार्वजनिक नियोजन में समान अवसर पाने का हकदार। याची अनुसूचित जाति श्रेणी का उम्मीदवार है और प्रत्यर्थीगण द्वारा तय अंकों के आबंटन के तरीके के मुताबिक उसने 16 अंक प्राप्त किया है और अनुसूचित जाति श्रेणी से 14 अंक प्राप्त किए उम्मीदवार को पहले ही कॉन्सटेबल के पद पर नियुक्त किया गया है;

(iii) यह प्रतीत होता है कि प्रत्यर्थीगण द्वारा संचालित कॉन्सटेबल के पद के लिए ली गयी लिखित और शारीरिक परीक्षा दोनों में सफलतापूर्वक उत्तीर्ण हुआ है;

(iv) यह भी प्रतीत होता है कि आरक्षी अधीक्षक, कोडरमा ने तत्पश्चात् दिनांक 5.3.2008 को आक्षेपित आदेश, जो याचिका के मेमो के परिशिष्ट-7 पर है, जारी किया है जिसके द्वारा याची को यह इंगित किया गया है कि कॉन्सटेबल के पद पर नियुक्ति के लिए उसकी उम्मीदवारी को अस्वीकार कर दिया गया है क्योंकि कद के बारे में सरकार द्वारा तैयार किए गए मास्टर चार्ट में लिप्त लेखन किया गया है। आक्षेपित आदेश में मात्र यही कारण दर्शाया गया है। याचिका के मेमो के परिशिष्ट-7 को निकट से देखते हुए यह प्रतीत होता है कि याची के विरूद्ध कोई अभिकथन नहीं है कि याची ने सरकार के उच्च श्रेणी अधिकारी द्वारा तैयार किए गए मास्टर चार्ट

में छल साधित किया है। आक्षेपित आदेश में ऐसा कुछ नहीं है कि याची के कद की माप को लेकर लिप्त लेखन है या नहीं। मास्टर चार्ट में कुछ उम्मीदवारों के कद की माप को लेकर लिप्त लेखन हो सकता है। आक्षेपित आदेश में कुछ स्पष्ट नहीं किया गया है। इसके अतिरिक्त, याची को कोई नोटिस नहीं दिया गया है कि उसने लिप्त लेखन अथवा छल साधन किया है और भारत के संविधान के अनुच्छेद 16 के अधीन गारंटीकृत सर्वाधिक मूल्यवान अधिकार को बहुत ही लापरवाह तरीके से छीन लिया गया है;

(v) याचिका के मेमो के परिशिष्ट–7 पर दिनांक 5.3.2008 के आक्षेपित आदेश को देखने पर यह प्रतीत होता है कि आरक्षी अधीक्षक, कोडरमा, जिन्होंने कॉन्सटेबल के पद पर नियुक्ति के लिए याची की उम्मीदवारी को वापस ले लिया है, ने चयन बोर्ड द्वारा लिए गए कुछ निर्णय पर विश्वास किया है लेकिन याची को ऐसे निर्णय/पत्र की प्रति कभी नहीं दी गयी है अथवा इसे प्रति शपथपत्र के साथ उपाबद्ध नहीं किया गया है। इस तरह आजतक भी, प्रत्यर्थीगण ने अपने प्रति शपथपत्र में उपाबद्ध नहीं किया है कि याची के बारे में चयन बोर्ड का मत अथवा रिपोर्ट क्या है। आरक्षी अधीक्षक, कोडरमा, जिन्होंने चयन बोर्ड द्वारा दिए गए मत पर पूरा विश्वास किया है, याची को चयन बोर्ड के इस मत की प्रति की आपूर्त्ति नहीं की है। प्रति शपथपत्र में भी चयन बोर्ड द्वारा लिए गए ऐसे निर्णय को उपाबद्ध नहीं किया गया है। इस प्रकार कोई नहीं जानता है कि चयन बोर्ड का रिपोर्ट अथवा मत क्या है; इसकी तिथि क्या है और याची के विरूद्ध अभिकथन क्या है। भारत के संविधान के अनुच्छेद 16 के अधीन गारंटीकृत मूल्यवान अधिकार को छीनने से पहले राज्य प्राधिकारियों को कम से कम उन दस्तावेजों, जिन पर उनके द्वारा विश्वास किया गया है, को वर्तमान याची को आपूर्त्ति करना चाहिए था;

(vi) प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने दिनांक 10.11.2006 को डब्लू० पी० (एस०) सं० 1242 वर्ष 2006 में दिए गए निर्णय, 2007(1) JCR Page 1 (Jhr.) (कृष्णा जी बनाम झारखंड राज्य) में प्रकाशित, पर विश्वास किया है। दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा विश्वास किए गए उक्त निर्णय के प्रासंगित अंश, विशेषतः पैराग्राफ 11 का पठन निम्नलिखित है:

"11. जाँच अधिकारी के रिपोर्ट में अथवा अभिलेख पर लायी गयी सामग्रियों में इस प्रभाव का ऐसा कुछ भी नहीं है कि संचालित लिखित परीक्षा किसी तरीके से दूषित हो गयी है। अतः, अनियमितताएँ, जो प्रकाश में आयी है, उम्मीदवारों के शारीरिक स्तर अथवा उनकी जन्मतिथि और होमगार्ड/क्रीड़ा प्रमाणपत्र दर्ज करने से संबंधित है। जाँच अधिकारी ने ऐसे 932 व्यक्तियों की पहचान की है जिनके पक्ष में ऐसा छल साधन किया गया है। सारे जिलों में उम्मिदवारों की संख्या बहुत अधिक होने के नाते, पहचान किए गए उम्मीदवार कुल उम्मीदवारों का एक छोटा अनुपात गठित करते हैं। उपर ध्यान में लिए गए सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के अभियुक्ति की दृष्टि में, हमारा मत यह है कि उक्त निर्दिष्ट निर्णय में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा परिकल्पित आनुपातिकता का सिद्धान्त इस मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों में आकृष्ट होता है। ऐसे उम्मीदवार, जिन्होंने किसी अवचार में लिप्त हुए बिना अथवा छल साधन का हिताधिकारी हुए बिना अंतिम चयन/प्रतिभा सूची में सफलतापूर्वक अर्हित हुए हैं और उनमें स्थान प्राप्त किया है, को पीड़ित नहीं किया जा सकता है अथवा नहीं किया जाना चाहिए। अतः हम इन रिट याचिकाओं को निम्नलिखित निर्देशों के साथ अनुज्ञात करते हैं:

(a) विज्ञापन नोटिस सं० 1/04 के अनुसरण में प्रारंभ किए गए हजारीबाग, कोडरमा, चतरा और गिरीडीह जिलों में कॉन्सटेबल के पद के उम्मीदवारों के चयन को रद्द करते हुए दिनांक 10.12.2005 का आक्षेपित आदेश और दिनांक 16.1.2006 की अधिसूचना सं० 106 एतद्द्वारा अभिखंडित की जाती है। नये शारीरिक एवं शैक्षणिक परीक्षा के लिए मेमो सं० 43/P दिनांक 16.1.2006 भी अभिखंडित किया जाता है।

(b) जाँच अधिकारी द्वारा पहचाने गए और चयन के दौरान अनाचारों का हिताधिकारी पाए गए 932 उम्मीदवारों को अपवर्जित करते हुए राज्य के चार जिलों अर्थात् हजारीबाग, कोडरमा, चतरा और गिरिडीह में सफल घोषित सफल उम्मीदवारों को चयन/प्रतिभा सूची के अनुसार नियुक्त करने का निर्देश प्रत्यर्थीगण को दिया जाता है। दो माह के भीतर ऐसे उम्मीदवारों को नियुक्त किया जाए।

(c) तीन महीनों के भीतर, यदि ऐसा पहले ही नहीं किया गया है, कॉन्सटेबलों की भरती में हुए अनाचार में अंतर्ग्रस्त सी० पी० किरण, तत्कालीन आरक्षी अधीक्षक-सह-अध्यक्ष, चतरा, कॉन्सटेबल भरती कमिटी□3 अथवा किसी अन्य अधिकारी के विरूद्ध जाँच/विभागीय कार्यवाही पूरा करने और जाँच के परिणाम पर निर्भर नियमों के अनुसार समुचित कार्रवाई करने का निर्देश प्रत्यर्थीगण को दिया जाता है।
(जोर डाला गया है)

(vii) पूर्वोक्त निर्णय की दृष्टि में प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रतिवाद किया गया है कि कतिपय उम्मीदवारों, जिन्होंने कॉन्सटेबल के पद के लिए आवेदन दिया है, को नियुक्त नहीं करने की अनुज्ञा न्यायालय ने दी है और इस कारण आरक्षी अधीक्षक, कोडरमा द्वारा याचिका के मेमो के परिशिष्ट-7 पर दिया हुआ आक्षेपित आदेश पारित किया गया है। यह प्रतिवाद भी मुख्यतः इस कारण के चलते इस न्यायालय द्वारा अस्वीकार किया गया है कि पूर्वोक्त निर्णय में इस न्यायालय के पूर्वोक्त संप्रेक्षणों को निकट से देखते हुए यह प्रतीत होता है कि केवल उन उम्मीदवारों, जिन्हें जाँच अधिकारी द्वारा पहचाना गया है और जो अनाचारों के चयन के दौरान हिताधिकारी पाए गए हैं, को अपवर्जित किया जाना चाहिए और ऐसे उम्मीदवारों की संख्या 932 है। इस प्रकार, इस न्यायालय द्वारा सरकार को इंगित किया गया एक अंतः निर्मित साधन है कि इन 932 उम्मीदवारों की पहचान जाँच अधिकारी द्वारा की जानी चाहिए। वर्तमान मामले के तथ्यों में, वर्तमान याची को न तो कोई नोटिस दिया गया है, न ही उसके विरूद्ध जाँच की गयी है, और जैसा यहाँ इसमें उपर कथन किया गया है, आक्षेपित आदेश से यह प्रकट होता है कि याची के विरूद्ध कोई भी अभिकथन भी नहीं है और जहाँ तक वर्तमान याची का संबंध है, कोई नहीं जानता है कि चयन बोर्ड का मत क्या है। इस प्रकार पूर्वोक्त मामले के तथ्यों से वर्तमान मामले के तथ्य भिन्न है और इस कारण पूर्वोक्त निर्णय वर्तमान याची पर लागू होने योग्य नहीं है;

(viii) रंजय कुमार सिंह बनाम झारखंड राज्य एवं अन्य, 2009(4) JLJR पृष्ठ 543 में प्रकाशित मामले में, विशेषतः पैराग्राफ 7, 8, 9 और 10 जिसका पठन निम्नलिखित है, इस न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया है:

''7. पूर्वोक्त निर्णय दिनांक 10.11.2006 को दिया गया था। पूर्वोक्त निर्णय के पश्चात् ही चुँकि अपीलार्थी की पहचान 932 व्यक्तिगण की श्रेणी में नहीं की गयी थी, उसे दिनांक 10.4.2007 के पत्र के तहत कॉन्सटेबल के पद पर योगदान करने की अनुज्ञा दी गयी थी। पूर्वोक्त पत्र के अनुसरण मे, अपीलार्थी ने पदग्रहण किया और

उसे कॉन्सटेबल के पद पर पदग्रहण करने की अनुज्ञा दी गयी थी। आश्चर्यजनक रूप से, दिनांक 31.10.2005 की उसी जांच रिपोर्ट के आधार पर अपीलार्थी को पुनः सेवा से बर्खास्त कर दिया गया था जो बर्खास्तगी के आक्षेपित आदेश से प्रकट है। इन सारे तथ्यों पर विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा विचार नहीं किया गया है और रिट याचिका को आरंभ में ही खारिज कर दिया गया था।

8. उक्त के अतिरिक्त, अनेक रिट याचिकाएँ डब्ल्यू० पी० एस० सं० 4351 वर्ष 2007, डब्ल्यू० पी० एस० सं० 5906 वर्ष 2007 और डब्ल्यू० पी० एस० सं० 6041 वर्ष 2007—अन्य व्यक्तियों द्वारा दाखिल की गयी थी और इन रिट याचिकाओं को अनुज्ञात किया गया था और इस न्यायालय की एक खंड पीठ द्वारा नियुक्तियों को अभिखंडित कर दिया गया था।

9. यहाँ इसमें ऊपर चर्चा किए गए मामले के समस्त तथ्यों पर विचार करते हुए, अपीलार्थी को सेवा से बर्खास्त करने वाला आक्षेपित आदेश विधि में मान्य नहीं ठहराया जा सकता है।

10. पूर्वोक्त कारणों से, यह अपील अनुज्ञात की जाती है और विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आक्षेपित आदेश और अपीलार्थी को सेवा से बर्खास्त करने वाला आक्षेपित आदेश भी अपास्त किया जाता है। हम प्रत्यर्थीगण को आगे निर्देश देते हैं कि वह अपीलार्थी को कॉन्सटेबल का पद ग्रहण करने की अनुमति दे, लेकिन यह स्पष्ट किया जाता है कि बर्खास्तगी की तिथि से पुनर्बहाली की तिथि तक अपीलार्थी किसी बकाया वेतन का हकदार नही होगा''। (जोर डाला गया)

(ix) पूर्वोक्त निर्णय की दृष्टि में, इस न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित किया गया है कि पूर्वोक्त मामले में किसी जाँच द्वारा याची की पहचान 932 व्यक्तिगण की कोटि में नहीं की गयी थी, और इसलिए वह 932 उम्मीदवारों के समूह में नहीं आता है और इस कारण पूर्वोक्त प्रकाशित निर्णय में, इस न्यायालय की खंडपीठ ने उस याची की बर्खास्तगी के आदेश को अभिखंडित और अपास्त किया है।

(x) वर्तमान मामले के तथ्यों को देखते हुए भी, याची की पहचान 932 व्यक्तिगण की कोटि में नहीं की गयी है जिसने स्वयं सरकार द्वारा तैयार, सुरक्षित और अनुरक्षित मास्टर चार्ट में छलसाधन किया हैं वस्तुतः किसी ने मास्टर चार्ट को छूने की अनुज्ञा नये उम्मीदवार को नहीं दी थी। केवल सरकार ही ऐसे मास्टर चार्ट को तैयार कर रही है और अनुरक्षित कर रही है। और यदि कोई लिप्त लेखन है, सरकार को अपने पुलिस अधिकारी, जो मास्टर चार्ट के प्रभारी है, के विरूद्ध कार्रवाई करनी चाहिए थी, न कि नए रंगरूट के विरूद्ध जब याची के विरूद्ध रत्ती भर भी साक्ष्य नहीं है। वर्तमान मामले के तथ्यों में, जैसा यहाँ इसमें ऊपर कथन किया गया है, वर्तमान याची के विरूद्ध कोई काना-फूसी भी नहीं है कि याची ने स्वयं सरकार द्वारा तैयार, सुरक्षित और अनुरक्षित मास्टर चार्ट में छल साधन किया है अथवा लिप्त लेखन किया है।

(xi) याचिका के मेमो के परिशिष्ट-7 पर आक्षेपित आदेश मास्टर चार्ट में कद के लिप्त लेखन के बारे में बात करता है। सरकार द्वारा किया गया हल्ला-गुल्ला बेबुनियाद है क्योंकि स्वयं सरकार द्वारा मास्टर चार्ट तैयार किया गया था और इसे सुरक्षित एवं अनुरक्षित किया गया था। यदि लिप्त लेखन है, यह सरकार के अधिकारियों द्वारा किया गया है और यह ध्यान में रखना होगा कि कद को छल साधित नहीं किया जा सकता है और यदि सरकार के उच्च श्रेणी के पुलिस अधिकारी के मत के मुताबिक उम्मीदवार के कद के माप के लेखन में कोई गलती है, इसे पुनः मापा जा सकता था क्योंकि कोई कद को बढ़ा या घटा नहीं सकता है।

6. पूर्वोक्त तथ्यों एवं कारणों और न्यायिक उद्घोषणाओं की संचयी प्रभाव के कारण मैं एतद्द्वारा याचिका के मेमो के परिशिष्ट-7 पर दिनांक 5.3.2008 को आरक्षी अधीक्षक, कोडरमा द्वारा पारित आक्षेपित आदेश को अभिखंडित और अपास्त करता हूँ और झारखंड राज्य एवं/अथवा प्रत्यर्थी सं॰ 4 को याची को कॉन्सटेबल के पद पर, जितना शीघ्र और व्यवहारिक रूप से संभव हो, इस न्यायालय के आदेश की प्रति की प्राप्ति के चार सप्ताह के भीतर नियुक्त करने का एतद् द्वारा निर्देश देता हूँ।

7. तद्नुसार यह रिट याचिका, पूर्वोक्त संप्रेक्षणों की दृष्टि में अनुज्ञात की जाती है और निपटायी जाती है।

माननीय प्रदीप कुमार, न्यायमूर्ति

अदालत महतो एवं एक अन्य

बनाम

झारखण्ड राज्य

Criminal Appeal No. 392 of 2001. Decided on 4th February, 2010.

सत्र विचारण सं॰ 294 वर्ष 1995 में श्री अरुणध्वज प्रसाद सिंह, प्रथम अपर सत्र न्यायाधीश, दुमका द्वारा पारित दिनांक 31.5.2001 के दोषसिद्धि के निर्णय एवं दिनांक 1.6.2001 के दंडादेश के विरुद्ध।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धारा 304B—दहेज मृत्यु–10 वर्षों का कठोर कारावास अधिनिर्णीत-फाँसी/फंदा लगाकर मृत्यु–विवाह के चार वर्षों के भीतर घटना घटी–दहेज की मांग और यातना के चलते पीड़ित बालिका ने यातना से निराश होकर फाँसी लगाकर जान दे दी–धारा 304B के अधीन अपीलार्थीगण की दोषसिद्धि बिल्कुल सही है और उच्च न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप करने की अपेक्षा नहीं की जाती है–अपील खारिज लेकिन काटी गयी सजा की अवधि तक दंड को घटाया गया। (पैरा 8 से 13)

अधिवक्तागण.–Mr. S. P. Roy, For the Appellants; Mr.Hemant Sikarwar, For the Respondent

न्यायालय द्वारा.–यह अपील सत्र विचारण सं॰ 294 वर्ष 1995 में श्री अरुणध्वज प्रसाद सिंह, प्रथम अपर सत्र न्यायाधीश, दुमका द्वारा पारित दिनांक 31.5.2001 के दोषसिद्धि के निर्णय और दिनांक 1.6.2001 के दंडादेश के विरुद्ध दाखिल की गयी है जिस निर्णय के द्वारा उन्होंने अपीलार्थीगण को भारतीय दंड संहिता की धारा 304B के अधीन दोषी पाया और उन लोगों को 10 वर्षों के कठोर कारावास भुगतने का दंड दिया।

2. अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह निवेदन किया गया है कि स्वतंत्र गवाहों में से किसी ने भी अभियोजन मामले का समर्थन नहीं किया है, किन्तु केवल पीड़ित बालिका के परिवार के सदस्यों अर्थात् अ॰ सा॰ 1, 2, 3 और 11 ने अभियोजन मामले का समर्थन किया है और डॉक्टर ने इसे स्वयं को फाँसी लगाकर मृत्यु का मामला पाया है, अत: मामले के इस दृष्टि में भारतीय दंड संहिता की धारा 304B के अधीन अपीलार्थीगण की दोषसिद्धि विधि की दृष्टि से दोषपूर्ण है और अपास्त किए जाने योग्य है।

3. दूसरी ओर, राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने अभियोजन मामले का समर्थन किया है और कथन किया है कि विवाह के चार वर्षों के भीतर पीड़ित बालिका की मृत्यु हो गयी जिसे अ॰ सा॰ 1, 2, 3 एवं 11 के साक्ष्यों द्वारा सिद्ध किया गया है और इस प्रकार चूँकि घटना के पहले दहेज की मांग की

गयी थी जैसा अ॰ सा॰ 11 के साक्ष्य द्वारा कथन किया गया है, अत: मामले की इस दृष्टि में, भारतीय दंड संहिता की धारा 304B के अधीन उन सबों कि दोषसिद्धि प्रथम अपर सत्र न्यायाधीश, दुमका द्वारा सही पारित की गयी है और यह इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप करने की अपेक्षा नहीं करता है।

4. दोनों पक्षों को सुनने और अभिलेख का परिशीलन करने के पश्चात, मैं पाता हूँ कि दिनांक 3.6.1995 को प्रात: 8 बजे पीड़ित बालिका के पिता मथन महतो द्वारा दिए गए लिखित रिपोर्ट के आधार पर अभियोजन मामला शुरू किया गया था जिसमें कथन किया गया था कि उसकी पुत्री ठंडा देवी का विवाह अभियुक्त-अपीलार्थी अदालत महतो के साथ चार वर्ष पहले हुआ था और उसके विवाह के दो वर्षों के बाद उसका दामाद अदालत महतो और उसकी माता सोनिया महतैन उसकी पुत्री से 2,000/- रुपये मांगते थे और वे उसे इसके लिए प्रताड़ित करते थे। जब प्रताड़ना असहनीय हो गयी, वह अपने पिता के घर चली गयी और बाद में गाँव में पंचायती की गयी जहाँ पंचों की उपस्थिति में उन्होंने बहू को रखने और दहेज की मांग हेतु यातना नहीं देने को सहमत हुए। तब, वह अपने ससुराल गयी, लेकिन उसकी सास ने दहेज में उससे आभूषण मांगना शुरू किया और उसपर प्रहार करना शुरू किया जिसके बारे में उसे उसके साले अदालत महतो द्वारा सूचित किया गया और तब वह इस घटना के ठीक दस दिन पहले पुत्री के ससुराल गया और आभूषण के लिए उसे प्रताड़ित नहीं करने को कहा क्योंकि वह तीन माह के भीतर धन की मांग पूरी करेगा और तब वे सहमत हुए और आश्वासन दिया कि वे उसकी पुत्री पर प्रहार अथवा प्रताड़ना नहीं करेंगे, लेकिन ठीक दस दिन बाद दिनांक 22.5.95 को उसे दामाद के चाचा द्वारा सूचित किया गया कि उसकी पुत्री की हालत गंभीर है। इसके बाद, वह अपने भाई के साथ अभियुक्त के घर गया और अपनी पुत्री को मृत पाया और उसे पता लगा कि उसका गला दबाकर उसके प्राण ले लिया गया था। वह मूर्छित हो गया और ऐसी अवस्था में कुछ समय रहा और तत्पश्चात् उसने लिखित रिपोर्ट दर्ज किया।

5. उक्त लिखित रिपोर्ट के आधार पर, पुलिस ने भारतीय दंड संहिता की धारा 304B/34 के अधीन मामला दर्ज किया और अन्वेषण के बाद अभियुक्त-अपीलार्थीगण के विरुद्ध पूर्वोक्त धाराओं के अधीन आरोप-पत्र दाखिल किया। चूँकि मामला सत्र न्यायालय द्वारा अनन्यत: विचारणयोग्य था, विद्वान मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी ने मामले का संज्ञान लेने के बाद इसे सत्र न्यायालय को सुपुर्द किया और आखिरकार मामले का विचारण सत्र न्यायाधीश द्वारा किया गया जिन्होंने पूर्वोक्तानुसार अपीलार्थीगण को दोषी पाया।

6. विचारण के क्रम में, अभियोजन ने 12 गवाहों, अ॰ सा॰ 21 गोविन्द महतो, अ॰ सा॰ 2 हीरालाल झा, अ॰ सा॰ 3 उत्तरा देवी, अ॰ सा॰ 4 सुशील कुमार कर्ण, अ॰ सा॰ 5 गंगाधर महतो, अ॰ सा॰ 6 राज कुमार महतो, अ॰ सा॰ 7 फूल कुमारी देवी, अ॰ सा॰ 8 कार्तिक महतबर, अ॰ सा॰ 9 सुभद्रा देवी, अ॰ सा॰ 10 शंभु महतो, अ॰ सा॰ 11 मथन महतो, सूचक और अ॰ सा॰ 12, डॉ॰ बलराम प्रसाद का परीक्षण किया है।

7. यह नोट करना महत्वपूर्ण है कि परीक्षित किए गए 12 गवाहों में से अ॰ सा॰ 1, 3 एवं 11 को छोड़कर अन्य सारे गवाह या तो औपचारिक है अथवा उन्होंने अभियोजन मामले का समर्थन नहीं किया है और उन्हें पक्षद्रोही घोषित किया गया है। पक्षद्रोही गवाहों अर्थात् अ॰ सा॰ 6 राज कुमार महतो, अ॰ सा॰ 7 फूल कुमारी देवी और अ॰ सा॰ 8 कार्तिक महतबर के बयानों के अनुसार पीड़िता ने अपनी गर्दन में फाँसी लगाकर आत्महत्या कर ली।

8. अ॰ सा॰ 11, मथन महतो-सूचक ने अभियोजन मामले का समर्थन किया है उसके द्वारा लिखित रिपोर्ट में दिया गया है और कथन किया है कि उसकी पुत्री, ठंडा देवी का विवाह उसकी मृत्यु के चार वष पहले अभियुक्त अपीलार्थी अदालत महतो के साथ हुआ था। अभियुक्त-अपीलार्थी अदालत महतो और उसकी माता सोनिया महतैन उसकी पुत्री से 2,000/- रु॰ मांगते थे और वे इसके लिए उसपर

प्रहार और प्रताड़ित किया करते थे। तब वह अपने पिता के घर चली गयी और बाद में गाँव में पंचायती की गयी जहाँ पंचों की उपस्थिति में सास और ससुर बहू को रखने और दहेज की मांग हेतु उसे प्रताड़ना नहीं देने को सहमत हुए। तब वह पुनः अपने ससुराल गयी लेकिन उसके दामाद और उसकी माता ने दहेज में उससे आभूषण मांगना शुरू किया और उस पर पुनः प्रहार करना शुरू किया जिसके बारे में उसे उसके साले अदालत महतो द्वारा सूचित किया गया और तब वह इस घटना के ठीक दस दिन पहले पुत्री के ससुराल गया और आभूषण के लिए उसे प्रताड़ित नहीं करने को कहा क्योंकि वह तीन माह के भीतर धन की मांग पूरी करेगा और तब वे अचानक सहमत हुए और आश्वासन दिया कि वे उसकी पुत्री पर प्रहार अथवा प्रताड़ना नहीं करेंगे लेकिन ठीक दस दिन बाद दिनांक 22.5.95 को उसके दामाद के चाचा द्वारा सूचित किया गया कि उसकी पुत्री की हालत गंभीर है। इसके बाद वह अपनी पुत्री के घर गया और अपनी पुत्री को मृत पाया और उसे पता लगा कि उसका गला दबाकर उसका प्राण ले लिया गया था। मृत शरीर को देखकर वह मूर्छित हो गया और कुछ समय तक ऐसी अवस्था में रहा और तत्पश्चात्त उसने लिखित रिपोर्ट दर्ज कराया। लिखित रिपोर्ट प्रदर्श 4/1 के रूप में चिन्हित की गयी है। उसका बयान उसके भाई अ॰ सा॰ 1 गोविन्द महतो और उसकी पत्नी अ॰ सा॰ 3 उत्तरा देवी द्वारा समर्थित किया गया है।

9. अ॰ सा॰ 12 डॉ॰ बलराम प्रसाद, जिन्होंने पीड़ित बालिका का परीक्षण किया और शव परीक्षण संचालित किया, ने पाया कि यह फाँसी लगाकर आत्महत्या करने का मामला है। मामले की इस दृष्टि में, अभियोजन मामले और पक्षद्रोही गवाहों के मामले के अतिरिक्त भी यह स्पष्ट है कि दहेज मांग और प्रताड़ना के चलते पीड़ित बालिका ने प्रताड़ना से निराश होकर फाँसी लगाकर प्राण दे दिया, लेकिन स्थिति यह है कि विवाह के चार वर्षों के भीतर उसकी अप्राकृतिक मृत्यु हुई और इस कारण भारतीय दंड संहिता की धारा 304B के अधीन स्पष्ट मामला बनता है।

10. बचाव पक्ष ने प्रति-परीक्षण में यह बताने का प्रयास किया है कि चूँकि पीड़ित बालिका को कोई संतान नहीं थी, वह इसके चलते निराश रहा करती थी और उसके आत्महत्या करने का यही कारण था।

11. लेकिन, चूँकि दहेज की मांग थी, जिसे अभियोजन द्वारा सिद्ध किया गया है, मेरे मत में भारतीय दंड संहिता की धारा 304B के अधीन अपीलार्थीगण की दोषसिद्धि बिल्कुल सही है और उच्च न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप करने की अपेक्षा नहीं की जाती है।

12. अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा निवेदन किया गया है कि अपीलार्थी सं॰ 1 अदालत महतो गिरफ्तारी की तिथि अर्थात् 28.7.95 से अभिरक्षा में है और उसने वर्ष 2005 में अपने दंड का दस वर्ष पूरा कर लिया है और उसे कभी भी जमानत नहीं दिया गया था। मामले की इस दृष्टि में, चूँकि उसने पहले ही दस वर्ष पूरा कर लिया है, यदि वह जेल में है तो उसे तुरन्त निर्मुक्त कर देना चाहिए। उन्होंने आगे निवेदन किया कि अपीलार्थी सं॰ 2 सोनिया महतैन भी लगभग दो वर्षों तक अभिरक्षा में रही है और कोई प्रत्यक्ष साक्ष्य नहीं है कि उसने पीड़ित बालिका पर प्रहार किया था और प्रताड़ना दी थी, अतः मामले की इस दृष्टि में उसका दंड भुगती गयी अवधि तक घटाया जा सकता है।

13. चूँकि मुख्य अभियुक्त अदालत महतो दस वर्षों से अधिक तक अभिरक्षा में रहा है और उसकी माता-अपीलार्थी सं॰ 2 भी लगभग दो वर्षों तक अभिरक्षा में रही है, विचारण और अपील के दौरान पहले से काटी गयी सजा अपीलार्थी सं॰ 2 के लिए पर्याप्त दंड है और उसके द्वारा भुगती गयी सजा तक दण्ड को सीमित किया जाता है। जहाँ तक अपीलार्थी सं॰ 1 का संबंध है, वह पहले ही दस वर्षों का दंड भुगतने हेतु जेल में रह चुका है, अतः यदि वह जेल में है तो उसे तुरन्त निर्मुक्त कर देना चाहिए।

14. दंड में पूर्वोक्त परिवर्तन के साथ अपील खारिज की जाती है।

15. अपीलार्थी सं॰ 2 सोनिया महतैन जमानत पर है, उसे उसके जमानत पत्र की जिम्मेदारियों से उन्मोचित किया जाता है।

माननीय डी॰ जी॰ आर॰ पटनायक, न्यायमूर्ति

बिलासो देवी

बनाम

झारखण्ड राज्य एवं अन्य

WP(C). No. 4123 of 2004. Decided on 16th February, 2010.

बिहार भूमि सुधार अधिनियम, 1950—धारा 4(h)–जमाबन्दी–रद्दकरण–वर्ष 1992 में खोली गयी याची की जमाबंदी को आक्षेपित आदेश द्वारा रद्द करना इप्सित किया गया–विवादित भूमि पर पक्षों ने टाइटल एवं स्वामित्व पर परस्पर विरोधी दावा किया है–आम जनता से आपत्तियाँ मांगे जाने के बाद वर्ष 1991-92 में याची के नाम में और पक्ष में भूमि का बंदोबस्त किया गया था–टाइटल के विवादित प्रश्न पर अपर कलक्टर द्वारा विचार नहीं किया जा सकता और न ही याची के नाम पर लंबे अरसे से चली आ रही जमाबन्दी के साथ अपर कलक्टर अथवा कमिश्नर द्वारा हस्तक्षेप किया जा सकता था–यद्यपि जमाबन्दी का सृजन टाइटल का सृजन नहीं करता है लेकिन इसके रद्दकरण के प्रतिकूल सिविल परिणाम होते हैं–याची के नाम में चली आ रही जमाबन्दी को रद्द करने का निर्णय मुख्यतः अनुमानों और अटकलों पर लिया गया था न कि धारा 4(h) के अधीन प्रगणित आधारों में से किसी एक पर–आक्षेपित आदेश अपास्त–आवेदन अनुज्ञात। (पैरा 9 से 12)

अधिवक्तागण.–Mr. Chandar Kishore Tewari, For the Petitioners; J.C. to S.C. (L&C), For the Respondents.

आदेश

पक्षों के अधिवक्ता को सुना गया और उनकी सहमति से ग्रहण के चरण पर यह याचिका निपटायी जाती है।

2. याची ने इस याचिका में विविध अपील सं॰ 20/98-99 में अपर कलक्टर द्वारा पारित दिनांक 16.11.2001 के आदेश और राजस्व पुनरीक्षण सं॰ 69/2002 में पारित कमिश्नर, उत्तरी छोटानागपुर के दिनांक 31.3.2004 के आदेश, जिसके द्वारा वर्ष 1992 में तात्पर्यित रूप से खोली गयी याची की चली आ रही जमाबन्दी को रद्द करना इप्सित किया गया है, को चुनौती दी है।

3. याची का मामला यह है कि वर्ष 1933 में रामगढ़ राज प्रतिपाल्य संपदा अधिकरण के अधीन था और उस वर्ष में किसी मोगल हजाम, बंधन ठाकुर का पिता और वर्तमान याची का ससुर, ने खाता सं॰ 72 और खाता सं॰ 74 के अधीन समस्त होल्डिंग सं॰ 66 का इस आधार पर कि ये परित्यक्त भूमि हैं, प्रतिपाल्य संपदा अधिकरण से बन्दोबस्त प्राप्त किया था। किए गए बन्दोबस्त को संपुष्ट करते हुए भूमि के 1.08 एकड़ कुल क्षेत्र के लिए याची के ससुर को दिनांक 25.8.1933 का एक हुक्मनामा दिया गया था। बंदोबस्ती के समय, तद्नुसार लगान तय किया गया था और मोगल हजाम इसका भुगतान करता था।

4. राज्य सरकार में जमीन्दारी निहित किए जाने के बाद याची के पति बन्धन ठाकुर ने अपनी पत्नी अर्थात् वर्तमान याची के नाम में खाता सं॰ 66 के लगान का नए सिरे से पुनर्आकलन के लिए

अंचल अधिकारी के कार्यालय में नया आवेदन दाखिल किया था। एक लगान नियतीकरण केस सं॰ 2/91-92 दर्ज किया गया था। आम जनता को सामान्य नोटिस जारी करने और आपत्तियों, यदि कोई है, की प्रतीक्षा करने के बाद याची के पक्ष में लगान नियत किया गया था।

5. बाद में, वर्ष 1980 में याची के भूमि के शांतिमय स्वामित्व और कब्जे में प्रत्यर्थी सं॰ 3 और 4 ने छेड़छाड़ करना शुरू किया। अनुमंडलीय मजिस्ट्रेट के न्यायालय में दोनों पक्षों के बीच धारा 144 दं॰ प्र॰ सं॰ के अधीन कार्यवाही प्रारंभ की गयी थी। तद्द्वारा संपुष्ट करते हुए कि याची का भूमि पर वास्तविक स्वामित्व और कब्जा है, प्रत्यर्थीगण के विरुद्ध अवरोध के नियम को अंतिम बनाया गया था।

6. तत्पश्चात्, एल॰ आर॰ डी॰ सी॰, हजारीबाग द्वारा पारित दिनांक 8.6.1993 के आदेश के विरुद्ध अपर कलक्टर, हजारीबाग के समक्ष प्रत्यर्थी सं॰ 1 ने अपील दाखिल की। आक्षेपित आदेश द्वारा अपर कलक्टर ने एल॰ आर॰ डी॰ सी॰ के आदेश को अपास्त कर दिया गया था। अपर कलक्टर के आक्षेपित आदेश के विरुद्ध याची ने कमिश्नर के समक्ष राजस्व पुनरीक्षण दाखिल किया जिसे खारिज कर दिया गया था और इस कारण वर्तमान रिट याचिका दाखिल की गयी है।

7. याची के विद्वान अधिवक्ता का प्रतिवाद यह है कि आक्षेपित आदेश द्वारा चली आ रही जमाबन्दी, जिसे एक दशक से अधिक पहले खोला गया था, को किसी विधिक आधार के बिना रद्द किया जाना इप्सित किया गया था।

8. याची के समस्त दावे से इंकार करते हुए और विवाद करते हुए प्रतिशपथ पत्र में प्रत्यर्थी राज्य द्वारा अपनाया गया दृष्टिकोण यह है कि यद्यपि राजस्व अभिलेखों में याची का नाम प्रविष्ट किया गया पाया गया है, वर्ष 1993 में मोगल हजाम के पक्ष में भूमि की बंदोबस्ती के याची के दावे के संबंध में एक विवाद उठाया गया है। प्रत्यर्थी राज्य ने प्रश्नगत भूमि पर याची के स्वामित्व के दावे पर विवाद किया है। प्रत्यर्थी राज्य का आगे प्रतिवाद यह है कि राज्य सरकार में जमीन्दारी निहित किए जाने के 40 वर्ष से अधिक समय के बाद सी॰ एन॰ टी॰ अधिनियम के प्रावधानों के अधीन वर्ष 1991-92 में लगान नियतीकरण मामला प्रारंभ करने का प्राधिकार अंचल अधिकारी को नहीं था।

आगे स्पष्ट करते हुए यह कथन किया गया है कि खाता सं॰ 66 के अधीन किसी गेन्दुआ महतो के नाम में भूमि की प्रविष्टि की गयी थी और इस प्रकार, यदि लगान का आकलन किया भी जाना था, तो इसे मृतक गेन्दुआ महतो के विधिक उत्तराधिकारी के पक्ष में प्रारंभ किया जाना चाहिए था।

9. परस्पर विरोधी निवेदनों से यह प्रकट है कि पक्षों ने विवादित भूमि पर टाइटल और स्वामित्व का परस्पर विरोधी दावा किया है। स्वीकृत तौर पर, लगान नियतीकरण मामले द्वारा, आम नोटिस जारी करके आम जनता से आपत्तियाँ मांगे जाने के बाद वर्ष 1991-92 में वर्तमान याची के नाम और पक्ष में भूमि का बंदोबस्त किया गया था।

10. टाइटल के विवादित प्रश्न पर अपर कलक्टर द्वारा विचार नहीं किया जा सकता था और न ही अपर कलक्टर अथवा कमिश्नर याची के नाम में लंबे अरसे से चली आ रही जमाबन्दी में हस्तक्षेप कर सकते थे। यद्यपि जमाबन्दी का सृजन टाइटल का सृजन नहीं करता है लेकिन इसके रद्दकरण के प्रतिकूल सिविल परिणाम होंगे।

11. अपर कलक्टर के आक्षेपित आदेशों के परिशीलन से यह प्रकट है कि याची के नाम में चली आ रही जमाबन्दी को रद्द करने का निर्णय मुख्यत: अनुमानों और अटकलों के आधार पर लिया गया है न कि बिहार भूमि सुधार अधिनियम की धारा 2(h) के अधीन प्रगणित आधारों में से किसी पर।

12. उक्त के आलोक में, मैं इस रिट याचिका में गुणागुण पाता हूँ और तद्नुसार इसे अनुज्ञात किया जाता है। आक्षेपित आदेशों को एतद् द्वारा अपास्त किया जाता है। चूँकि विवाद आवश्यक रूप से टाइटल और स्वामित्व के परस्पर विरोधी दावे से संबंधित तथ्य के विवादित प्रश्नों को अंतर्ग्रस्त करता है, पक्ष अपने विवाद के न्याय निर्णयन हेतु सक्षम अधिकारिता वाले न्यायालय को निर्दिष्ट कर सकते है।

इन संप्रेक्षण के साथ यह रिट याचिका निपटायी जाती है।

माननीय एम॰ वाई॰ इकबाल एवं आर॰ आर॰ प्रसाद, न्यायमूर्तिगण

परमानन्द सिंह

बनाम

झारखंड राज्य एवं अन्य

LPA No. 322 of 2009. Decided on 9th February, 2010.

सेवा विधि–नियुक्ति–उच्च न्यायालय के आक्षेपित निर्णय द्वारा प्रत्यर्थी की पैरा शिक्षक के रूप में नियुक्ति को चुनौती देते हुए रिट याचिका खारिज–अपीलार्थी द्वारा दी गयी चुनौती उसके उच्चतर अर्हता पर आधारित–विज्ञापन में यह स्पष्टतः उल्लिखित किया गया था कि उच्च अर्हित उम्मीदवारों को प्राथमिकता दी जाएगी–स्वीकृत रूप से अपीलार्थी प्रत्यर्थी की तुलना में कहीं ज्यादा अर्हता प्राप्त था–प्रति शपथ पत्र में दिए गए झूठे बयान कि विज्ञापन विज्ञान शिक्षक के लिए था, पर प्रत्यर्थी का चयन गलत मनमाना और असद्भावपूर्व है–प्रत्यर्थी को मात्र इंटर विज्ञान की अर्हता थी–अपीलार्थी, जो मूल शिक्षक प्रशिक्षण के साथ स्नातकोतर है, प्राथमिक शिक्षक के पद नियुक्त होने का हकदार है–आक्षेपित आदेश अपास्त–अपील अनुज्ञात। (पैरा 6 एवं 7)

निर्णयज विधि.–WP(S) No. 106 of 2007—Set aside.

अधिवक्तागण.–Mr. B. K. Dubey, For the Appellant; M/s S.P. Roy & S.C.-II, For the Respondents.

एम॰ वाई॰ इकबाल, न्यायमूर्ति.–यह अपील डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) सं॰ 106 वर्ष 2007 में पारित दिनांक 20.5.2009 के निर्णय के, जिसके द्वारा विद्वान एकल न्यायाधीश ने याची अपीलार्थी द्वारा दाखिल रिट याचिका, जिसमें प्रत्यर्थी सं॰ 5 की पैरा-शिक्षक के रूप में नियुक्ति को चुनौती दी गयी थी, को खारिज कर दिया था, विरुद्ध दाखिल की गयी है।

2. मामले के तथ्य संक्षेप में निम्नलिखित है:-

जिलास्तरीय झारखंड शिक्षा प्रोजेक्ट परिषद की योजना के अधीन प्राथमिक विद्यालयों में शिक्षकों की नियुक्ति के लिए संबंधित प्रत्यर्थीगण द्वारा एक विज्ञापन जारी किया गया था। विज्ञापन में नियत की गयी न्यूनतम अर्हता इंटरमिडियट थी। आगे, विज्ञापन में उल्लिखित किया गया था कि दो व्यक्तियों के एक समान/समरूप अर्हता होने के मामले में इंटरमीडियट विज्ञान के उम्मीदवारों को प्राथमिकता दी जाएगी। आगे यह शर्त अधिकथित किया गया था कि उन्हें प्राथमिकता दी जाएगी जो उच्च अर्हता प्राप्त किए हैं। अपीलार्थी रिट याची और प्रत्यर्थी सं॰ 5 दोनों ने उक्त पद के लिए आवेदन दिया। एक ओर, अपीलार्थी की अर्हता मूल शिक्षक प्रशिक्षण के साथ स्नातकोतर थी जबकि प्रत्यर्थी सं॰ 5 की अर्हता केवल इंटरमीडियट (विज्ञान) थी विज्ञापन में दिए गए शर्त के बावजूद, उक्त पद के लिए प्रत्यर्थी सं॰ 5 का चयन किया गया था।

3. याची-अपीलार्थी ने अन्य बातों के साथ इस आधार पर कि अपीलार्थी को उच्चतर अर्हता अर्थात् मूल शिक्षक प्रशिक्षण के साथ स्नातकोत्तर, प्राप्त थी लेकिन प्रत्यर्थी सं॰ 5 जिसे केवल इंटरमीडियट (विज्ञान) की अर्हता प्राप्त थी, का शिक्षक के पद पर चयन किया गया था, प्रत्यर्थी सं॰ 5 की नियुक्ति को चुनौती देते हुए डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) सं॰ 106 वर्ष 2007 दाखिल करते हुए इस न्यायालय की शरण ली। प्रत्यर्थी ने प्रति शपथ पत्र दाखिल किया और विद्वान एकल न्यायाधीश ने प्रतिशपथ पत्र में दिए गए बयानों कि विज्ञापित पद इंटरमीडिएट विज्ञान शिक्षकों के लिए था और इसलिए, चूँकि प्रत्यर्थी सं॰ 5 को इंटरमीडिएट विज्ञान की अर्हता प्राप्त थी, उसका चयन किया गया था, पर विश्वास करते हुए रिट याचिका को खारिज कर दिया।

4. हमने अपीलार्थी की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री बी॰ के॰ दूबे और निजी प्रत्यर्थी की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री एस॰ पी॰ राय को सुना है।

5. बेहतर अधिमूल्यन के लिए विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित निर्णय के प्रासंगिक अंश को यहाँ इसमें नीचे उद्धृत किया जाता है:-

> *''यह कथन करते कि विज्ञापित पद इंटर विज्ञान के लिए था और इस पृष्ठभूमि में उन्होंने प्रत्यर्थी सं॰ 5 जिसे इंटरमीडिएट विज्ञान की अर्हता प्राप्त थी, को प्राथमिकता दी थी, प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने हमारा ध्यान प्रतिशपथ पत्र की ओर आकृष्ट किया है। याची ने अन्यों के साथ प्रक्रिया में भाग लिया और सम्यक चयन के बाद प्रतियोगिता नहीं कर सका था और इस तथ्य के बारे में कोई विवाद नहीं है कि यह एक चयन पद था और अधिकारपूर्वक इसका दावा नहीं किया जा सकता है। यह मार्गदर्शन कि प्राथमिकता दी जाएगी, स्वयं में नियुक्त होने हेतु कोई विधिक अथवा प्रोद्भूत अथवा निहित अधिकार का हकदार नहीं बनाती है अथवा इसे प्रदान नहीं करती है जिसे परमादेश के एक रिट द्वारा प्रवर्तित नहीं किया जा सकता है। यह केवल इस पूर्व शर्त के साथ कि केवल ऐसी स्थिति में जहाँ एक समान अर्हता प्राप्त एक समान उम्मीदवार है, ऐसी प्राथमिकता को ध्यान में लिया जाएगा, के साथ अतिरिक्त अर्हता मात्र है। यह तथ्य बना रहता है कि याची के पास विज्ञान पृष्ठ भूमि नहीं थी यद्यपि वह स्नातकोत्तर हो सकता है।''*

6. प्रथम दृष्टया, यह देखते हुए कि विज्ञापन इंटर विज्ञान शिक्षक की नियुक्ति के लिए नहीं बल्कि प्राथमिक विद्यालय में शिक्षक की नियुक्ति के लिए जारी किया गया था, विद्वान एकल न्यायाधीश ने अभिलेख की गलती की है। उक्त विज्ञापन में, यह स्पष्ट: उल्लिखित किया गया था कि उनको प्राथमिकता दी जाएगी जिन्हें उच्च अर्हता प्राप्त है। स्वीकृत रूप से, अपीलार्थी प्रत्यर्थी सं॰ 5 की तुलना में कहीं ज्यादा अर्हता प्राप्त किए था और इस कारण, प्रतिशपथपत्र में दिए गए गलत बयान कि विज्ञापन विज्ञान शिक्षक के लिए था, प्रत्यर्थी सं॰ 5 का चयन पूर्णत: और स्पष्टत: गलत, मनमाना और असद्भावपूर्ण है।

7. पूर्वोक्त कारण से, यह अपील अनुज्ञात की जाती है और आक्षेपित आदेश अपास्त किया जाता है। यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि अपीलार्थी, जिसे मूल शिक्षक प्रशिक्षण के साथ स्नातकोत्तर अर्हता प्राप्त है, प्राथमिक शिक्षक के पद पर नियुक्ति किए जाने का हकदार है।

आर॰ आर॰ प्रसाद, न्यायमूर्ति.-मैं सहमत हूँ।

माननीय डी॰ जी॰ आर॰ पटनायक, न्यायमूर्ति

बिपेन्द्र प्रसाद लाल

बनाम

भारत कोकिंग कोल लिमिटेड एवं अन्य

WP(C) No. 2963 of 2004. Decided on 11th February, 2010.

सेवा विधि–बसूली–भवन निर्माण ऋण जिसे याची ने प्रत्यर्थीगण से पहले लिया था, पर ब्याज को याची के उपदान की राशि से काटा जाना–इस तथ्य का लाभ लेते हुए कि याची के उपदान की राशि उनके पास थी, याची के ऋण खाते का प्रत्यर्थीगण द्वारा एक पक्षीय रूप से समयपूर्व समापन कर दिया गया–भवन निर्माण ऋण के करार के निबंधन ऋण खाते के समयपूर्व समापन को प्रतिषिद्ध नहीं करते है और न ही ये ऋण खाते के समयपूर्व समापन पर अतिरिक्त राशि के भुगतान के लिए उधार लेने वाले पर शास्ति अधिरोपित करते हैं–तिथि जिस पर खाता समाप्त किया गया था याची द्वारा भुगतान योग्य वास्तविक राशि के पुनर्आकलन हेतु प्रत्यर्थीगण को निर्देश दिया गया–अधिक काटी गयी राशि को याची को वापस करना होगा।

(पैरा 5 से 8)

अधिवक्तागण.–Mr. Sunil Kumar Sinha, For the Petitioner; Mr. Anoop Kumar Mehta, For the Respondents.

आदेश

पक्षों के अधिवक्ता को सुना गया और उनकी सहमति से यह याचिका ग्रहण के चरण पर निपटायी जाती है।

2. याची ने इस रिट याचिका में उसे 58,360/- रुपये, जिसे याची के अनुसार भवन निर्माण ऋण, जिसे याची ने प्रत्यर्थीगण से पहले लिया था, पर ब्याज को याची की उपदान की राशि से अवैध रूप से काटा गया है, वापस करने के लिए प्रत्यर्थीगण को निर्देश देने हेतु प्रार्थना की है।

3. प्रत्यर्थीगण द्वारा दाखिल प्रतिशपथ पत्र में यह स्पष्ट करना इप्सित किया गया है कि याची और प्रत्यर्थीगण द्वारा और उनके मध्य में निष्पादित करार के निबंधनों के अधीन भवन ऋण के रूप में प्रत्यर्थीगण से याची द्वारा 1,86,000/- रुपया उधार लिया गया था। ब्याज के साथ मूलधन को 20 वर्षों की अवधि में 176 बराबर मासिक किश्तों में याची द्वारा भुगतान किया जाना था। लेकिन अवधि के अवसान के पूर्व ही याची ने स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति लेने का विकल्प चुना जिसे प्रत्यर्थीगण द्वारा दिनांक 7.12.1999 को स्वीकार कर लिया गया था। स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति की स्वीकृति के बाद याची ने अपना सेवानिवृत्ति लाभ प्राप्त किया था। जिसका आकलन उसके द्वारा समस्त संबंधित विभागों से अनापत्ति प्रमाणपत्रों को प्रस्तुत करने के बाद किया गया था। लेकिन बाद में यह पाया गया था कि भवन निर्माण ऋण याची द्वारा नहीं चुकाया गया था और इसके अलावा कुछ अग्रिमों जो याची ने पहले प्राप्त किया था, को भी याची द्वारा अपनी सेवा निवृत्ति की तिथि के पहले नहीं चुकाया गया था। इस प्रकार, ब्याज के साथ बकाया कुल मुख्य राशि याची के ऋण खाते में बनी रही और उन राशियों, जिसे याची ने अग्रिम के रूप में प्राप्त किया था लेकिन चुकाया नहीं था, के साथ इसे उसकी उपदान की राशि में से काट लिया गया था।

4. प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता इस संदर्भ में प्रति शपथ पत्र में उपाबद्ध लेखा विवरण को निर्दिष्ट करते है और निवेदन करते है कि इस प्रकार याची की आशंका कि तात्पर्यित ब्याज के रूप में कतिपय अतिरिक्त राशि, जिसका भुगतान करने के लिए याची जिम्मेदार नहीं था, को याची की उपदान राशि में अवैध रूप से काट लिया गया है, भ्रामक है।

5. रिट याचिका के परिशिष्टों से यह प्रकट है कि यद्यपि याची द्वारा उधार ली गयी मूल राशि 1,86,000/- रुपया दर्शायी गयी है, मूल राशि पर याची द्वारा भुगतान योग्य ब्याज की कुल राशि 95,960/- रुपया आकलित की गयी थी। स्वीकृत तौर पर, ब्याज की ऐसी राशि याची द्वारा भुगतान योग्य तभी थी यदि वह किस्तों का भुगतान 176 किस्तों तक करता रहता। इसके विपरीत, यह प्रकट होता है कि इस तथ्य का लाभ लेते हुए कि याची की उपदान राशि उनके पास थी, याची के ऋण खाते को समयपूर्व, और वह भी एक पक्षीय रूप से प्रत्यर्थीगण द्वारा परिसमाप्त कर दिया गया है।

6. याची के विद्वान अधिवक्ता भवन निर्माण ऋण के करार के निबंधनों को निर्दिष्ट करते हैं और निवेदन करते हैं कि करार ऋण राशि के समयपूर्व परिसमापन को प्रतिषिद्ध नहीं करता है और न हीं यह ऋण राशि के समयपूर्व परिसमापन पर किसी अतिरिक्त राशि के भुगतान के लिए उधार लेने पर कोई शास्ति अधिरोपित करता है। विद्वान अधिवक्ता आगे कहते हैं कि ऋण राशि के समयपूर्व परिसमापन पर प्रत्यर्थीगण अधिकाधिक परिसमापन की तिथि पर लेजर में दर्शाये गये बकाया राशि, जो अधिकाधिक मूल राशि के अतिशेष और उस तिथि तक अतिशेष राशि पर प्रोद्भूत ब्याज को सम्मिलित करेगी, की वसूली कर सकते थे।

7. यदि याची के मामले के इन पहलुओं का कोई खंडन है, तो इसे प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता द्वारा संतोषजनक रूप से स्पष्ट नहीं किया गया है।

8. उक्त तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करते हुए, प्रत्यर्थीगण के संबंधित प्राधिकारियों के समक्ष अभ्यावेदन दाखिल करने की स्वतंत्रता याची को देते हुए यह याचिका निपटायी जाती है और अभ्यावेदन की प्राप्ति की तिथि से चार सप्ताह के भीतर मूल राशि के अतिशेष और उस तिथि तक बकाया प्रोद्भूत ब्याज की राशि को सम्मिलित करते हुए उस तिथि पर जब खाता परिसमाप्त कर दिया गया था, उसके भवन निर्माण ऋण खाते में याची द्वारा भुगतान योग्य वास्तविक राशि का पुनर्आकलन प्रत्यर्थीगण करेंगे और उस तिथि तक संग्रहित ऐसे मूलधन और ब्याज की राशि को याची की उपदान राशि से काटेंगे और यदि याची द्वारा भुगतान योग्य राशि की तुलना में अधिक राशि काटी गयी है, तब पुनर्आकलन की तिथि से चार सप्ताह के भीतर प्रत्यर्थीगण याची को इसे वापस करेंगे।

इन संप्रेक्षणों के साथ, यह रिट याचिका निपटायी जाती है।

इस आदेश की एक प्रति प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता को दी जाए।

माननीय एम॰ वाई॰ इकबाल, न्यायमूर्ति

अमिताभ दास गुप्ता

बनाम

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Cr. M.P. No. 519 of 2005. Decided on 17th February, 2010.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धारा 406—आपराधिक न्यास भंग–संज्ञान-पक्षों के बीच व्यवसायिक संव्यवहार–काम पूरा किए जाने के बाद बिल के अंश का भुगतान नहीं किया गया–यदि परिवाद में किए गए समस्त अभिकथनों को सही माना जाए, तो भी यह धारा 406 के अधीन अपराध गठित नहीं करता है–कतिपय निबंधनों और शर्तों पर सामग्रियों की आपूर्त्ति

के लिए पक्षों के मध्य करार हुआ–संज्ञान लेने से पहले मजिस्ट्रेट ने करार के निबंधनों और शर्तों पर विस्तारपूर्वक विचार नहीं किया और न ही इस निष्कर्ष पर आने के लिए कि क्या धारा 406 के अधीन मामला बनता है, परिवाद में किए गए अभिकथन पर विवेक का प्रयोग किया था–ऐसे अभिकथनों पर दांडिक कार्यवाही जारी रखना विधि की प्रक्रिया का दुरुपयोग है और याची को बेवजह परेशान करना है–यदि सामग्रियों की आपूर्त्ति की संविदा भंग की गयी है, सिविल न्यायालय में उपचार उपलब्ध है–संविदा के निबंधनों की पूर्ति के लिए किसी पक्ष पर दबाव डालने हेतु दांडिक न्यायालयों का उपयोग नहीं किया जा सकता है–आक्षेपित आदेश सहित समस्त दांडिक कार्यवाही अपास्त–याचिका अनुज्ञात। (पैरा 3 एवं 4)

अधिवक्तागण.–M/s Indrajeet Sinha, Rohit Roy, For the Petitioner; M/s A.P.P., Manish Mishra, For the Opp. Parties.

एम॰ वाई॰ इकबाल, न्यायमूर्ति.–दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 482 के अधीन इस याचिका द्वारा याची ने परिवाद केस सं॰ 874 वर्ष 2002 में पारित दिनांक 22.1.2002 के संज्ञान के आदेश, जिसके द्वारा न्यायिक दंडाधिकारी, जमशेदपुर ने याची के विरुद्ध भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 406 के अधीन अपराध के लिए संज्ञान लिया है, सहित समस्त दांडिक कार्यवाही के अभिखंडन हेतु प्रार्थना की है।

2. मामले पर चर्चा करने से पहले, मैं मजिस्ट्रेट द्वारा पारित दिनांक 22.1.2002 के आक्षेपित आदेश को उद्धृत करना चाहूँगा जो निम्नलिखित है:-

''परिवादी की ओर से अधिवक्ता की हाजिरी दाखिल की गयी है।

केस अभिलेख, परिवाद याचिका, अभियुक्त के बयान, गवाहों के बयान और परिवादी द्वारा दाखिल दस्तावेजों का परिशीलन करके मेरा दृष्टिकोण यह है कि अभियुक्त मेसर्स ओट्टो इंडिया प्राईवेट लिमिटेड और ए० दास गुप्ता के विरुद्ध धारा 406 के अधीन प्रथम दृष्टया मामला बनाया गया है।

परिवादी द्वारा अध्यपेक्षाओं को दाखिल किए जाने पर, अभियुक्तगण के विरुद्ध सम्मन जारी करने का निर्देश OC को दिया गया है।

सम्मन जारी करने और उक्त नामित अभियुक्तगण की उपस्थिति के लिए दिनांक 15.4.03 को मामला रखा जाए।''

3. परिवाद याचिका की एक प्रति दाखिल की गयी है और वर्तमान याचिका के परिशिष्ट-1 के तौर पर उपाबद्ध की गयी है। परिवादी का मामला यह है कि वह मैक्सवेल इनसुलेशन का सहभागी है और इंजीनियरिंग ठेके और आपूर्त्तिकर्ता का व्यवसाय कर रहा है। ठंडे और गर्म पाइपों के लिए थर्मल इनसुलेशन की आपूर्त्ति हेतु अभियुक्त ने परिवादी को आर्डर दिया। आर्डर का मूल्य लगभग 23,00,000/- रुपया था और करार के निबंधनों के अनुसार बिल प्रस्तुत किए जाने पर इसका 90% प्रगति भुगतान के तौर पर भुगतान योग्य था और शेष 10% पूरे काम को संतोषजनक रूप से पूरा किए जाने पर तीन महीने बाद भुगतान योग्य था। परिवादी ने अभिकथन किया कि उसने उक्त आर्डर के विरुद्ध काम पूरा किया है और परिवादी को कार्य समापन प्रमाणपत्र जारी किया गया था। काम पूरा किए जाने पर, परिवादी ने प्रत्येक काम के विरुद्ध बिल प्रस्तुत किया लेकिन कुल राशि का 10% अभियुक्त द्वारा अपने पास इस बहाने रखा गया कि पूरे काम को संतोषजनक रूप से पूरा किए जाने पर इसका भुगतान किया जाएगा। परिवादी ने अभिकथित तौर पर राशि की प्रतिपूर्ति के लिए अनेक बार प्रार्थना की लेकिन अभियुक्त ने भुगतान नहीं किया और उक्त वैध दावे का भुगतान करने से अंततः इन्कार

कर दिया। अत: परिवादी के अनुसार पूर्ववर्ती को मात्र उत्प्रेरित करने के आशय के साथ गलत वचन देते हुए कि कुल बिल राशि के 10% का भुगतान बाद में किया जाएगा, उसके द्वारा सामग्रियों की आपूर्त्ति करवा ली लेकिन इसका भुगतान नहीं किया गया। इन अभिकथनों पर, यहाँ इसमें ऊपर उद्धृत आक्षेपित आदेश को पारित करते हुए मजिस्ट्रेट ने संज्ञान लिया है। यदि परिवाद में किए गए समस्त अभिकथनों को सही भी माना जाए, यह धारा 406 भा॰ दं॰ सं॰ के अधीन अपराध गठित नहीं करता है। परिवाद के पठन से, यह बिल्कुल स्पष्ट है कि कतिपय निबंधनों और शर्तों पर सामग्रियों की आपूर्त्ति के लिए पक्षों के बीच करार हुआ था। संज्ञान लेने से पहले मजिस्ट्रेट ने करार के निबंधनों और शर्तों पर विस्तारपूर्वक विचार नहीं किया था और न ही इस निष्कर्ष पर आने के लिए कि क्या धारा 406 भा॰ दं॰ सं॰ के अधीन मामला बनता है, अभिकथनों पर विवेक का प्रयोग किया था। अत: मेरे दृष्टिकोण में, ऐसे अभिकथनों पर दांडिक कार्यवाही जारी रखना विधि की प्रक्रिया का दुरुपयोग है और याची को बेवजह तंग करना है। यदि सामग्रियों की आपूर्त्ति की संविदा भंग की गयी है, सिविल न्यायालय में उपचार उपलब्ध है। बार-बार न्यायालयों ने अभिनिर्धारित किया है कि संविदा के निबंधनों की पूर्ति के लिए किसी पक्ष पर दबाव बनाने हेतु दांडिक न्यायालयों का उपयोग नहीं किया जा सकता है।

4. पूर्वोक्त कारणों से, यह याचिका अनुज्ञात की जाती है और आक्षेपित आदेश सहित समस्त दांडिक कार्यवाही अपास्त की जाती है।

माननीय आर॰ आर॰ प्रसाद, न्यायमूर्ति

रबीन्द्र अग्रवाल

बनाम

झारखण्ड राज्य एवं एक अन्य

WP(Cr.) No. 408 of 2009. Decided on 15th February, 2010.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 287, 337, 338 एवं 304A सह-पठित कारखाना अधिनियम, 1948—धारा 92—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 4—उपहति और मृत्यु कारित करते हुए कारखाना परिसर के भीतर दुर्घटना—भा॰ दं॰ सं॰ की उक्त धाराओं के अधीन संज्ञान लिया गया—अभिकथन जिस पर प्राथमिकी दर्ज की गयी थी, कारखाना अधिनियम की धारा 92 में प्रतिष्ठापित प्रावधान की परिधि के अंतर्गत आता है—इस कारण दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 4 की दृष्टि में सामान्य विधि के अधीन अभियोजन अनुज्ञेय नहीं है—आक्षेपित आदेश अभिखंडित—याचिका अनुज्ञात। (पैरा 7 से 10)

निर्णयज विधि.—2008(1) JCR 601(Jhr.)—Followed.

अधिवक्तागण.—Mr. P.A.S. Pati, For the Petitioner; J.C. to G.P.-IV, For the State.

आदेश

यह याचिका विद्वान मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, सरायकेला द्वारा पारित दिनांक 16.1.2009 के आदेश, जिसमें भारतीय दंड संहिता की धाराएँ 287, 337, 338 और 304A के अधीन अपराधों का संज्ञान लिया गया है, सहित गम्हरिया (कान्द्रा) पी॰ एस॰ केस सं॰ 17 वर्ष 2008 (जी॰ आर॰ सं॰ 146 वर्ष 2008) के समस्त दांडिक कार्यवाही के अभिखंडन हेतु दाखिल की गयी है।

2. इस याचिका को उद्भूत करने वाले तथ्य ये हैं कि लाल टुडू ने दिनांक 2.3.2008 को फर्दबयान दिया था जिसमें कथन किया गया था कि जब वह ठेका मजदूर होने के नाते दिनांक 28.2.2008 को अन्य मजदूरों के साथ मेसर्स आधुनिक एलॉय एवं पावर लिमिटेड के नाम से ज्ञात

भट्टे पर काम पर था, उसे सूचना दी गयी कि भट्टे का तापमान शून्य डिग्री तक गिर गया है। यह सूचना पाने पर जब वह और अन्य तीन मजदूर सहायक अभियन्ता के साथ निरीक्षण करने transfer Chute (वस्तु लाने जाने वाले ढलान) पर आए, प्रकोष्ठ के भीतरी छत से स्पॉन्ज लोहा गिर गया जिसके परिणामस्वरुप तापमान अचानक वृहत सीमा तक बढ़ गया और इस कारण उन्हें जलने से हुई उपहतियाँ आई। यह अभिकथन किया गया है कि प्रबंधन ने सुरक्षा उपकरणों की आपूर्ति का ख्याल कभी नहीं किया यद्यपि मजदूर खतरनाक स्थलों पर काम कर रहे थे और प्रबंधन की ओर से हुई उपेक्षा के कारण दुर्घटना हुई।

3. उक्त फर्दबयान पर, धाराएँ 287, 337, 338 के अधीन गम्हरिया (कांद्रा) पी॰ एस॰ केस सं॰ 17 वर्ष 2008 दर्ज किया गया लेकिन बाद में भारतीय दंड संहिता की धारा 304A, जोड़ी गयी थी क्योंकि मजदूरों में से एक की मृत्यु जलने के कारण हो गयी थी।

4. अन्वेषण पूरा होने पर, याची, कारखाना अर्थात् मेसर्स आधुनिक एलॉय एवं पावर लिमिटेड के प्रबंधक और अन्य अभियुक्तगण के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धाराएँ 287, 337, 338 और 304A के अधीन आरोप पत्र दाखिल किया गया जिस पर याची और अन्यों के विरुद्ध पूर्वोक्त अपराधों का संज्ञान लिया गया था।

5. उस आदेश से व्यथित होकर, यह रिट याचिका दाखिल की गयी है।

6. याची की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि प्राथमिकी में किए गए अभिकथन कारखाना अधिनियम की धारा 92 में अंतर्विष्ट प्रावधान की परिधि के अंतर्गत निश्चित रूप से आता है और इस कारण, यदि अभियोजन है तो यह कारखाना अधिनियम के अधीन है, यदि प्राधिकारियों ने उपेक्षा का मामला पाया था, क्योंकि कारखाना अधिनियम विशेष विधायन होने के नाते सामान्य विधि के प्रावधान के ऊपर अभिभावी होगा।

7. यह इंगित किया गया है कि जब विचार किए जाने हेतु इस न्यायालय के समक्ष समरूप प्रश्न उद्भूत हुआ, तो इस न्यायालय ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 4 में अंतर्विष्ट प्रावधान को विचार में लेते हुए **बिनोद कुमार दास एवं एक अन्य बनाम झारखण्ड राज्य एवं एक अन्य [2008(1) JCR 601 (Jhr.)** मामले में अभिनिर्धारित किया कि उस अभिकथन, जो विशेष विधायन की परिधि में आते हैं, पर सामान्य विधि के अधीन अभियोजन अनुज्ञेय नहीं है। ऐसा ही मामला यहाँ भी है क्योंकि अभिकथन, जिस पर प्राथमिकी दर्ज की गयी थी और भारतीय दंड संहिता के अधीन अपराध का संज्ञान लिया गया है, निश्चयपूर्वक धारा 92 के परिधि के अंतर्गत आता है और इसलिए सामान्य विधि के अधीन अर्थात् भारतीय दंड संहिता के अधीन अभियोजन दोषपूर्ण होगा।

8. मैं इस निवेदन में पर्याप्त बल पाता हूँ। इसमें कोई संदेह नहीं है कि अभिकथन, जिस पर प्राथमिकी दर्ज की गयी थी, कारखाना अधिनियम की धारा 92 के अधीन प्रतिष्ठापित प्रावधान की परिधि के अंतर्गत आता है और इस प्रकार दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 4 की दृष्टि में सामान्य विधि के अधीन अभियोजन अनुज्ञेय नहीं है और विधि की इस प्रतिपादना को **बिनोद कुमार दास एवं एक अन्य बनाम झारखण्ड राज्य एवं एक अन्य (ऊपर)** मामले में पहले ही अधिकथित किया गया है।

9. तद्नुसार, जहाँ तक याची का संबंध है, दिनांक 16.1.2009 का आदेश जिसके अधीन भारतीय दंड संहिता की धारा 287, 337, 338 और 304A के अधीन अपराधों का संज्ञान लिया गया है, एतद् द्वारा अभिखंडित किया जाता है।

10. परिणामस्वरुप, यह याचिका अनुज्ञात की जाती है।

माननीय डी॰ एन॰ पटेल, न्यायमूर्ति

बैशाखिन गोराइँ उर्फ बिशाखिन गोर

बनाम

देवाशीष बनर्जी

WP(C) No. 1681 of 2008. Decided on 9th February, 2010.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908—आदेश VIII, नियम 1—लिखित कथन–धन का वाद–लिखित कथन दाखिल करने का चरण समाप्त हो गया–सी॰ पी॰ सी॰ के आदेश VIII नियम 1 का प्रावधान आज्ञापक प्रकृति का नहीं है–यह प्रक्रियात्मक प्रावधान है–याची (मूल प्रतिवादी) इस कारण से अपना लिखित बयान दाखिल नहीं कर पाया कि कुछ महत्वपूर्ण दस्तावेज उपलब्ध नहीं थे जिसके चलते विलम्ब हुआ–500/- रुपये के व्यय के साथ लिखित बयान दाखिल करने की याचिका अनुज्ञात की गयी। (पैरा 4 से 7)

निर्णयज विधि.–(2005) 4 SCC 480; (2005)6 SCC 344—Followed.

अधिवक्तागण.–Mr. Atanu Banerjee, For the Petitioner.

आदेश

वर्तमान रिट याचिका धन वाद सं॰ 1 वर्ष 2007 में दिनांक 18.1.2008 को विद्वान मुंसिफ, बेरमो, तेनुघाट द्वारा पारित आदेश, जिसके द्वारा लिखित बयान दाखिल करने का चरण बन्द कर दिया गया है, के विरुद्ध दाखिल की गयी है और याची ने मूल प्रतिवादी होने के नाते इस आदेश को चुनौती दी है।

2. याची के विद्वान अधिवक्ता ने जोरदार निवेदन किया कि धन वाद सं॰ 1 वर्ष 2007 प्रत्यर्थी द्वारा संस्थापित किया गया है और याची मूल प्रतिवादी है। याची ने मूल प्रतिवादी के रूप में दिनांक 14.8.2007 को वाद में अपनी हाजिरी दी थी और विद्वान विचारण न्यायालय ने दिनांक 18.1.2008 के आदेश के तहत लिखित बयान दाखिल करने की अनुमति नहीं दी है। याची के अधिवक्ता द्वारा कथन किया गया है कि मूल प्रतिवादी अपना लिखित बयान तुरन्त दाखिल करेगी और उल्लिखित समय के भीतर विचारण न्यायालय द्वारा मामले का निर्णय किया जा सकता है अन्यथा इस न्यायालय द्वारा प्रदत्त स्थगन वर्षों तक चलता रहेगा। याची मूल वादी को सांकेतिक व्यय का भुगतान करने हेतु इच्छुक है और तैयार है।

3. प्रत्यर्थी की ओर से कोई उपस्थित नहीं हुआ है यद्यपि उसे तामीला कराया गया है।

4. याची के विद्वान अधिवक्ता को सुनने और धन वाद सं॰ 1 वर्ष 2007 में विद्वान मुंसिफ, बेरमो, तेनुघाट द्वारा पारित दिनांक 18.1.2008 के आक्षेपित आदेश के परिशीलन से यह प्रकट होता है कि वर्तमान याची मूल प्रतिवादी है जिसने दिनांक 14.8.2007 को अपनी हाजिरी दाखिल की थी और मुख्यत: इस कारण से अपना लिखित बयान दाखिल नहीं किया है कि कुछ महत्वपूर्ण दस्तावेज उपलब्ध नहीं थे और इस कारण लिखित बयान दाखिल करने में कुछ विलम्ब हुआ था। दिनांक 18.1.2008 के आक्षेपित आदेश द्वारा लिखित बयान दाखिल करने की अनुमति नहीं दी गई है।

5. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों और लिखित बयान दाखिल करने में हुए विलम्ब के कारणों को देखते हुए मैं धन वाद सं॰ 1 वर्ष 2007 में विद्वान मुंसिफ, बेरमो, तेनुघाट द्वारा दिनांक 18.1.2008 को पारित आदेश को अभिखंडित करते हुए मूल प्रतिवादी को लिखित बयान दाखिल करने को एतद् द्वारा अनुज्ञात करता हूँ। सी॰ पी॰ सी॰ के आदेश VIII नियम 1 का प्रावधान आज्ञापक प्रकृति का नहीं

है। यह प्रक्रियात्मक प्रावधान है। इसे **कैलाश बनाम नन्हकू, (2005)4 SCC 480** में प्रकाशित मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित किया गया है जिसके पैरा 46 (iv) का पठन निम्नवत् है:-

"46 (iv) आदेश VIII नियम 1 सी० पी० सी० के अधीन लिखित बयान दाखिल करने हेतु प्रावधानित समय सीमा का उद्देश्य सुनवाई में तेजी लाना है न कि इसको बाधित करना। यह प्रावधान प्रतिवादी पर एक अयोग्यता स्थापित करता है। यह समय बढ़ाने की न्यायालय की शक्ति पर रोक अधिरोपित नहीं करता है। यद्यपि आदेश VIII नियम 1 के परन्तुक की भाषा नकारात्मक है, यह अननुपालन के चलते उत्पन्न दांडिक परिणामों को विनिर्दिष्ट नहीं करता है। प्रावधान के प्रक्रियात्मक विधि के क्षेत्र में होने के नाते इसे निदेशात्मक न कि आज्ञापक, अभिनिर्धारित करना होगा। आदेश VIII नियम 1 सि० प्र० सं० द्वारा प्रावधानित समय सीमा के पुरे लिखित बयान दाखिल करने का समय बढ़ाने की न्यायालय की शक्ति पूर्णतः वापस नहीं ली गयी है।''

(जोर दिया हुआ)

6. सलेम अधिवक्ता बार संघ बनाम भारत संघ, (2005)6 SCC 344 में प्रकाशित मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा भी यह अभिनिर्धारित किया गया है जिसके पैरा 20 और 21 का पठन निम्नलिखित है:-

"20. आदेश 8 नियम 1 में शब्द ''गा'' (shall) का प्रयोग स्वयं में यह अवधारित करने हेतु निश्चायक नहीं है कि प्रावधान आज्ञापक है अथवा निदेशात्मक। हमें उस लक्ष्य को अभिनिश्चित करना है जिसकी पूर्ति इस प्रावधान और इसके प्रारूप और संदर्भ जिसमें यह अधिनियमित किया गया है, द्वारा किए जाने की अपेक्षा की जाती है। शब्द ''गा'' (shall) का प्रयोग सामान्यतः प्रावधान के आज्ञापक प्रकृति का द्योतक है लेकिन उस संदर्भ जिसमें इसका प्रयोग किया गया है को देखते हुए और विधायिका के आशय को देखते हुए, इसे निदेशात्मक भी माना जा सकता है। प्रश्नगत नियम को न्याय के उद्देश्य को आगे बढ़ाना है, न कि इसे पराजित करना। प्रक्रिया के नियम न्याय के उद्देश्य को आगे बढ़ाने के लिए, न कि इसे पराजित करने हेतु, बनाए गए है। नियम अथवा प्रक्रिया, जो न्याय को प्रोन्नत करते हैं और घोर अन्याय को रोकते हैं, के निर्माण को प्राथमिकता दी जानी होगी। प्रक्रिया के नियम न्याय की दासी है न कि इसकी मालकिन/वर्तमान संदर्भ में, कठोर व्याख्या न्याय को विफल करेगी।

21. इस प्रावधान की व्याख्या करते हुए आदेश VIII नियम 10 से भी समर्थन लिया जा सकता है जो प्रावधान करता है कि जहाँ कोई पक्ष, जिससे नियम 1 अथवा नियम 9 के अधीन लिखित बयान की अपेक्षा की जाती है, न्यायालय द्वारा अनुज्ञेय अथवा नियत समय के भीतर इसे प्रस्तुत करने में विफल रहता है, न्यायालय उसके विरुद्ध निर्णय उद्घोषित करेगा अथवा वाद के संबंध में ऐसा अन्य आदेश देगा जिसे वह उचित समझता है। इस प्रावधान के अधीन लिखित बयान दाखिल करने में हुई विफलता पर, न्यायालय को प्रतिवादी के विरुद्ध निर्णय देने अथवा वाद के संबंध में ऐसा अन्य आदेश देने के लिए जिसे यह उचित समझता है, स्वविवेक दिया गया है। प्रावधान के संदर्भ में, शब्द ''गा'' (shall) के प्रयोग के बावजूद, न्यायालय में यदि लिखित बयान दाखिल नहीं किया जाता है, तो भी प्रतिवादी के विरुद्ध निर्णय उद्घोषित करने या न करने और इसके बदले ऐसे आदेश, जिसे यह वाद के संबंध में उचित समझता है, पारित करने का स्वविवेक दिया गया है। आदेश VIII नियम 1 और नियम 10 के प्रावधान का अर्थ लगाने में सामंजस्यपूर्ण अर्थान्वयन का सिद्धान्त लागू करना अपेक्षित है। इसका प्रभाव यह होगा कि आदेश VIII नियम 10 के अधीन न्यायालय को अपने स्वविवेक से आदेश VIII नियम 1 में प्रावधानित 90 दिनों की

अवधि के अवसान के पश्चात भी प्रतिवादी को लिखित बयान दाखिल करने की आज्ञा देने की शक्ति होगी। आदेश 8 नियम 10 में ऐसा कोई निर्बन्धन नहीं है कि 90 दिनों के अवसान के पश्चात् आगे समय बढ़ाया नहीं जा सकता है। ''वाद के संबंध में ऐसा आदेश, जिसे यह उचित समझता है, देने हेतु'' न्यायालय की शक्ति व्यापक है। अतः स्पष्टतः लिखित बयान दाखिल करने की 90 दिनों की अधिकतम सीमा प्रावधानित करते आदेश VIII नियम 1 का प्रावधान निदेशात्मक है। ऐसा कहे जाने के बाद, हम यह स्पष्ट करना चाहेंगे कि लिखित बयान दाखिल करने का समय बढ़ाने का आदेश रुटीन नहीं बनाया जा सकता है। समय केवल आपवादिक ठोस मामलो में ही बढ़ाया जा सकता है। समय बढ़ाते हुए यह ध्यान में रखना होगा कि विधायिका ने 90 दिनों की अधिकतम समय सीमा निश्चित की है। समय बढ़ाने के लिए न्यायालय के स्वविवेक का प्रयोग बारबार और रुटीन के रूप से नहीं किया जाना चाहिए कि यह आदेश VIII नियम 1 द्वारा तय अवधि को ही शून्य कर दे।'' (जोर दिया गया)

7. पूर्वोक्त दो निर्णयों की दृष्टि में, मैं 500/- रुपये के व्यय के साथ लिखित बयान दाखिल करने हेतु मूल प्रतिवादी की याचिका को एतद् द्वारा अनुज्ञात करता हूँ। यह राशि मूल प्रतिवादी द्वारा विचारण न्यायालय के समक्ष जमा की जाएगी और वादी द्वारा समुचित याचिका दिए जाने पर इसे वापस लेना अनुज्ञात किया जाएगा।

8. यह रिट याचिका अनुज्ञात की जाती है और निपटायी जाती है।

9. पहले दिया गया स्थगन रिक्त किया जाता है और मैं एतद् द्वारा विचारण न्यायालय को निर्देश देता हूँ कि वह धन वाद सं॰ 1 वर्ष 2007 में सुनवाई शीघ्र प्रारंभ करे।

माननीय डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति

बिजय प्रामणिक

बनाम

झारखण्ड राज्य

Cr. Rev. No. 76 of 2008. Decided on 16th February, 2010.

बिहार लॉटरी पर प्रतिबंध अधिनियम, 1993—धारा 3/4 सह-पठित जुआ अधिनियम की धारा 11—उन्मोचन याचिका की अस्वीकृति–पटना उच्च न्यायालय ने बिहार राज्य सरकार की विधायी क्षमता का परीक्षण किया और उक्त अधिनियम को अधिकारातीत अभिनिर्धारित किया–यद्यपि झारखण्ड राज्य ने दिनांक 5.12.2008 की अधिसूचना के तहत विभिन्न राज्यों की लॉटरी टिकटों के विक्रय पर निर्बंधन लगाया था, लेकिन अधिसूचना भविष्यलक्षी प्रभाव से लागू थी–दिनांक 5.12.2008 को अधिसूचना प्रकाशित की गयी थी–जबकि घटना की तिथि 16.2.2006 थी–जुआ अधिनियम की धारा 11 के अधीन कोई अपराध आकृष्ट नहीं होता है–अपीलार्थी दोषमुक्त–पुनरीक्षण अनुज्ञात। (पैरा 4 से 8)

अधिवक्तागण.–Mr. Kaushik Sarkhel, For the Petitioner(s); Mr. R.R. Mishra, For the State.

डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति.–यह दांडिक पुनरीक्षण जी॰ आर॰ सं॰ 737 वर्ष 2006 में श्री ए॰ कुमार, न्यायिक दंडाधिकारी, प्रथम श्रेणी, सरायकेला द्वारा पारित दिनांक 12.9.2007 के आक्षेपित आदेश, जिसके द्वारा याची की ओर से दाखिल उन्मोचन याचिका खारिज कर दी गयी थी, के विरुद्ध दाखिल की गयी है।

2. संक्षेप में अभियोजन का मामला यह था कि सरायकेला पुलिस थाना के अधिकारी-प्रभारी के स्व-बयान के आधार पर बिहार लॉटरी पर प्रतिबंध अधिनियम, 1993 की धारा 3/4 सह-पठित जुआ अधिनियम की धारा 11 के अधीन एक मामला दर्ज किया गया था, जिसमें अन्य बातों के साथ यह

अभिकथन किया गया था कि अभियुक्त-याची लोगों को, जो वहाँ लॉटरी टिकट खरीदने के लिए एकत्रित होते थे, लालच देकर बाजार में लॉटरी टिकट बेचा करता था। याची को कुछ नगद और विभिन्न राज्यों की लॉटरी टिकटों के साथ गिरफ्तार किया गया था। अन्वेषण के बाद पुलिस ने आरोप-पत्र दाखिल किया और तद्नुसार, जुआ अधिनियम की धारा 11 के अधीन और बिहार लॉटरी पर प्रतिबंध अधिनियम, 1993 की धारा 3/4 के अधीन भी अभिकथित अपराध के लिए संज्ञान लिया गया था। याची ने अवर न्यायालय के समक्ष यह बिन्दु उठाया था कि लॉटरी टिकटों का विक्रय जुआ अधिनियम की धारा 11 के रिष्टि के अधीन नहीं आता था और यह कि डब्ल्यू॰ पी॰ (क्रि॰) सं॰ 200 वर्ष 2004 में इस न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय के अनुसरण में बिहार लॉटरी पर प्रतिबंध अधिनियम में कोई बल नहीं था।

3. याची की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता, श्री सरखेल और श्री आर॰ आर॰ मिश्रा, विद्वान जी॰ पी॰-II को सुना गया।

4. विद्वान अधिवक्ता श्री सरखेल ने निवेदन किया कि बिहार राज्य ने उक्त अधिनियम की धारा 3 के प्रावधानों के अधीन बिहार राज्य में लॉटरी टिकटों के विक्रय को प्रतिषिद्ध करके बिहार लॉटरी प्रतिबंध पर अधिनियम, 1993 अधिनियमित किया था, जबकि उक्त अधिनियम की धारा 4 ने कारावास का दंड विहित करते हुए अधिनियम के प्रावधानों के उल्लंघन के मामले में दंडिक प्रावधानों को प्रावधानित किया था। ऐसे अधिनियम के लिए बिहार राज्य की विधायी अक्षमता के आधार पर पटना उच्च न्यायालय के समक्ष ऐसे अधिनियमिति को चुनौती दी गयी थीं और अनेक रिट याचिकाओं को निपटाते हुए पटना उच्च न्यायालय की पूर्णपीठ ने अभिनिर्धारित किया था कि जहाँ तक केन्द्र सरकार अथवा किसी अन्य राज्य सरकार द्वारा आयोजित लॉटरियों का संबंध है, बिहार लॉटरी पर प्रतिबंध अधिनियम, 1993 भारत के संविधान के अन्तर्गत अधिकारातीत है क्योंकि ऐसा करने हेतु राज्य के पास विधायी क्षमता नहीं है। अधिकारातीत घोषित किए जाने के चलते अधिनियम के अभिकथित उल्लंघन के लिए याची को अभियोजित करते हुए सरायकेला पुलिस थाना के अधिकारी-प्रभारी के माध्यम से झारखंड राज्य द्वारा की गयी कार्रवाई पूर्णत: बिना अधिकारिता की है और विधि की प्रक्रिया का दुरुपयोग है। लॉटरी टिकट के विक्रय में लगे हुए याची के व्यवसाय में रूकावट डालने का प्राधिकार राज्य अभियोजन को नहीं था। वर्ष 1998 में संसद ने लॉटरी (विनियमन) अधिनियम, 1998 अधिनियमित किया था और उक्त अधिनियम की धारा 5 कथन करती है:-

> *''प्रत्येक राज्य सरकार, अन्य राज्य द्वारा आयोजित, संचालित अथवा प्रोन्नत लॉटरी के टिकटों के विक्रय पर राज्य के अंतर्गत प्रतिषिद्ध कर सकती है।''*

5. श्री सरखेल ने आगे निवेदन किया कि समान स्थिति में इस न्यायालय की एक पीठ ने डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 6063 वर्ष 2002 में दिनांक 16.1.2004 के आदेश द्वारा संप्रेक्षित किया:-

> *''खंड पीठ के पूर्वोक्त निर्णय की दृष्टि में, 1994 (1) BLJR 702 में प्रकाशित बिहार लॉटरी पर प्रतिबंध अधिनियम अधिकारातीत घोषित किए जाने के चलते कोई कारण नहीं है कि याची के व्यवसाय क्यों प्रतिबंधित किया जाना चाहिए और वह भी तब जब झारखण्ड सरकार ने इस संबंध में कोई विधि नहीं बनायी है।*
>
> *मामले के इस दृष्टि में, अन्य राज्यों द्वारा आयोजित याची द्वारा किए गए लॉटरी के टिकटों के विक्रय के साथ हस्तक्षेप नहीं करने का निर्देश संबंधित प्रत्यर्थीगण को देते हुए परमादेश रिट जारी किया गया है। चूंकि यह रिट याचिका दांडिक मामलों से संबंधित नहीं है, अतः यह आदेश दांडिक विचारण को प्रभावित नहीं करेगी। यह आदेश पूर्वोक्त जारी परमादेश रिट तक ही सीमित है।''*

6. दूसरी ओर, राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान जी॰ पी॰–II, श्री आर॰ आर॰ मिश्रा ने निवेदन किया की झारखण्ड सरकार ने दिनांक 5.12.2008 के वित्त विभाग की अधिसूचना सं॰ 3646 द्वारा झारखण्ड क्षेत्र के अंतर्गत विभिन्न राज्यों के लॉटरी के टिकटों के विक्रय की प्रोन्नति को निर्बंधित किया है और इस कारण याची को दांडिक जिम्मेदारियों से मुक्त नहीं किया जा सकता है।

7. मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, मैं पाता हूँ कि पटना उच्च न्यायालय की माननीय पूर्ण पीठ ने बिहार राज्य सरकार की विधायी सक्षमता का परीक्षण किया था और उक्त अधिनियमिति को अधिकारातीत अभिनिर्धारित किया था। यद्यपि झारखंड राज्य ने दिनांक 5.12.2008 की अधिसूचना के तहत विभिन्न राज्यों के लॉटरी टिकटों के विक्रय पर निर्बंधन लगाया था लेकिन उक्त अधिसूचना, जिसे विद्वान जी॰ पी॰–II द्वारा अभिलेख पर प्रस्तुत किया गया है कि परीशीलन से मैं पाता हूँ कि यह भविष्यलक्षी प्रभाव वाली है और मामले के इस दृष्टि में याची बिजय प्रामाणिक उक्त अधिसूचना, जिसे दिनांक 5.12.2008 को प्रकाशित किया गया था, के अंतर्गत नहीं आता है जबकि घटना की तिथि 16.10.2006 थी। मैं तथ्यों एवं परिस्थितियों में आगे पाता हूँ कि जुआ अधिनियम की धारा 11 के अधीन अपराध आकृष्ट नहीं होता है।

8. परिणामस्वरूप, चूँकि याची के विरुद्ध संस्थापित अपराध सम्मन विचारण की प्रकृति का है, वह सरायकेला पी॰ एस॰ केस सं॰ 81 वर्ष 2006, तत्सम जी॰ आर॰ सं॰ 737 वर्ष 2006 में तुरन्त दोषमुक्त किया जाता है यद्यपि विचारण न्यायालय के समक्ष उसके उन्मोचन के लिए प्रार्थना की गयी थी।

9. तद्नुसार यह दांडिक पुनरीक्षण अनुज्ञात किया जाता है।

माननीय डी॰ एन॰ पटेल, न्यायमूर्ति

लूटन महतो

बनाम

रामलाल महतो एवं अन्य

WP(C) No. 1486 of 2008. Decided on 4th February, 2010.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908—आदेश VIII, नियम 1—लिखित बयान–विलम्ब के आधार पर उसके लिखित कथन दाखिल करने से याची को विवर्जित कर दिया गया–आदेश VIII, नियम 1 के प्रावधान निदेशात्मक प्रकृति के है एवं न कि आज्ञापक–लिखित कथन दाखिल करने के लिए प्रार्थना को अस्वीकार करते हुए न्यायालय को पक्षकार की पृष्ठभूमि, सामाजिक संरचना एवं पक्षकार के साथ जुड़ी असमर्थता को ध्यान में रखना चाहिए था–हमें यांत्रिक न्याय की आवश्यकता नहीं है–जल्दबाजी में किया गया न्याय, न्याय को दफनाना है–वादी पक्ष द्वारा दाखिल परिवाद के आधार पर इस तथ्य के चलते कि वह जेल में था, याची (मूल प्रतिवादी) अपना लिखित कथन दाखिल नहीं कर सका था–लिखित कथन दाखिल करने के लिए मूल प्रतिवादी द्वारा दाखिल याचिका को अनुज्ञात किया जाना चाहिए था–व्यय के साथ आक्षेपित आदेश अपास्त–याचिका अनुज्ञात। (पैरा 2 से 4)

निर्णयज विधि.–(2005)4 SCC 480—Followed.

अधिवक्तागण.–M/s K.P. Deo, G.M. Singh, For the Petitioner; Mr. Manjoj Kumar, For Respondent Nos. 1 & 2.

आदेश

वर्तमान रिट याचिका मुख्यत: टाइटल सूट सं॰ 5 वर्ष 2007 में विद्वान अवर न्यायाधीश-I, दुमका द्वारा दिनांक 10.9.2007 को पारित आदेश, जिसके द्वारा वर्तमान याची (मूल प्रतिवादी) को अपना लिखित बयान दाखिल करने की अनुमति नहीं दी गयी है, के विरुद्ध भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन दाखिल की गयी है।

2. दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने के बाद और मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों को देखते हुए यह प्रकट होता है:-

(i) कि वर्तमान प्रत्यर्थीगण मूल वादीगण हैं, जिन्होंने टाइटल सूट सं॰ 5 वर्ष 2007 संस्थापित किया था और वर्तमान याची मूल प्रतिवादी है।

(ii) वर्तमान मामले के तथ्यों से, कि वर्तमान याची (मूल प्रतिवादी) ने दिनांक 20 अप्रैल, 2007 को विचारण न्यायालय के समक्ष अपनी हाजिरी दी थी। इस प्रकार, यह लिखित बयान दाखिल करने का आरंभिक बिन्दु है।

(iii) कि तत्पश्चात् दिनांक 27 जुलाई, 2007 को मूल प्रतिवादी ने अपना लिखित बयान दाखिल करने का प्रयास किया था, लेकिन 27 जुलाई, 2007 को लिखित बयान दाखिल करने से मूल प्रतिवादी को वर्जित कर दिया गया था।

(iv) कि तत्पश्चात, दिनांक 28 अगस्त, 2007 को तर्कपूर्ण और विश्वासोत्पादक कारणों के साथ और लिखित बयान एवं दस्तावेज के साथ दिनांक 27 जुलाई, 2007 का आदेश वापस लेने के लिए मूल प्रतिवादी द्वारा याचिका दाखिल की गयी थी जिसमें विशेष रूप से कथन किया गया था कि याची जेल में था, वादी पक्ष द्वारा दाखिल परिवाद के आधार पर, वर्तमान याची जेल में होने के चलते, वह अपने वकील को समुचित अनुदेश देने और धन का इंतजाम करने हेतु और दस्तावेजों का संग्रहण करने के लिए भी नि:सहाय था, यह दुर्बलता कोई साधारण दुर्बलता नहीं है। विचारण न्यायालय ने इस तथ्य की उपेक्षा की है, जो अभिलेख पर प्रकट गलती है।

(v) कि पक्षकार, जो मूल प्रतिवादी है, पूर्वोक्त सबसे बड़ी अड़चन कि वह जेल में था के बावजूद दस्तावेजों के साथ लिखित बयान दाखिल करना चाहता है और तत्परता से न्यायालय में उपस्थित होने का इच्छुक है और तैयार है। विचारण न्यायालय को यह अधिमूल्यन करना चाहिए था कि लिखित बयान दाखिल करने के लिए समय बढ़ाने हेतु यह एक अच्छा कारण है। आदेश VIII, नियम 1 के प्रावधान आज्ञापक प्रकृति के नहीं है। लिखित बयान दाखिल करने के लिए प्रार्थना को अस्वीकार करते हुए न्यायालय को पक्ष की पृष्ठभूमि, सामाजिक संरचना और पक्ष के साथ जुडी नि:शक्तता को विचार में लेना चाहिए था। कभी-कभी, अंतर्निहित नि:शक्तता जैसे निरक्षरता, झारखण्ड राज्य के अंतर्गत कम विकसित अथवा अविकसित क्षेत्र, बीमारी, जेल में व्यतीत अवधि, धनीय सक्षमता, परिवार के मुख्य सदस्य की अनुपलब्धता, और अन्य ऐसे पहलूओं को, जब तक न्यायालय पक्ष की सामाजिक पृष्ठभूमि को नहीं जानता है, यांत्रिक न्याय ही किया जा सकता है, न्यायालय को ध्यान में रखना चाहिए था कि हमें यांत्रिक न्याय की आवश्यकता नहीं है। जल्दबाजी में किया गया न्याय न्याय को दफनाना है। जब कोई पक्षकार लिखित बयान दाखिल करने आ रहा है और यदि पक्षकार की ओर से जानबूझकर किया गया विलम्ब अथवा असद्भाव नहीं है और यदि पक्षकार की ओर से घोर उपेक्षा है और यद्यपि पक्षकार सक्षम योग्य और पर्याप्त साधन वाला है और तब भी वह वाद के निपटारे को विलम्बित करने हेतु लिखित बयान दाखिल नहीं कर रहा है, उन परिस्थितियों में, पक्षकार को लिखित बयान दाखिल करने से इनकार किया जा सकता है। पूर्वोक्त सारे सकारात्मक और नकरात्मक परिस्थितियों का अधिमूल्यन, एक वाद में लिखित बयान

दाखिल करने की बात अस्वीकार करने से पहले विचारण न्यायालय को ध्यान में लेना चाहिए। व्यथित पक्ष को उपलब्ध पहला उपचार वाद है। कभी-कभी, प्रतिवादी भी अपने-अपने प्रतिदावों को दाखिल कर रहे है, विशेषतः पक्षों के बीच विवाद का विनिश्चय करने के लिए प्रतिवादी का लिखित बयान सर्वाधिक निर्णायक है। आदेश VIII, नियम 1 का प्रावधान निदेशात्मक प्रकृति का है, न कि आज्ञापक।

(vi) कि याची (मूल प्रतिवादी) के विद्वान अधिवक्ता ने कैलाश बनाम नन्हकू एवं अन्य, 2005 (4) SCC 480 में प्रकाशित मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय पर सही विश्वास किया है, विशेषतः पैराग्राफ सं० 27, 28, 34 एवं 35 पर, जिसका पठन निम्नलिखित है:-

"27. तीन बातें स्पष्ट है। प्रथमतः उस भाषा जिसमें आदेश 8, नियम 1 प्रारूपित किया गया है, का सावधानीपूर्वक पठन यह दर्शाता है कि यह उसपर सम्मन तामील किए जाने की तिथि से 30 दिनों के भीतर एवं 90 दिनों तक बढ़ाये गए समय के भीतर लिखित बयान दाखिल करने हेतु प्रतिवादी पर बाध्यता डालता है। प्रावधान न्यायालय की शक्ति पर विचार नहीं करता है और प्रावधानित समय के परे दाखिल किए गए लिखित बयान को अभिलेख पर लाने के लिए न्यायालय की शक्ति को विनिर्दिष्टतः वापस नहीं लेता है। द्वितीयतः, आदेश 8, नियम 1 में अंतर्विष्ट प्रावधान की प्रकृति प्रक्रियात्मक है। यह सारबान विधि का एक भाग नहीं है। तृतीयतः, वर्तमान रूप में आदेश 8, नियम 1 को प्रतिस्थापित करने के पीछे का लक्ष्य त्वरित अनुतोष के लिए न्यायालय की शरण लेने वाले वादीगण एवं याचीगण को असुविधा कारित करते हुए मामलों के निस्तारण में विलम्ब करवाने वाले एवं विलम्ब कराने वाली युक्तियाँ अपनाने वाले अनैतिक प्रतिवादियों की रिष्टियों एवं बारम्बारता स्थगनों से न्यायलयों को होने वाली गम्भीर असुविधा को दूर करना है। उद्देश्य सुनवाई में तेजी लाना है न कि उसको बाधित करना। न्याय की प्रक्रिया में तेजी लायी जा सकती है और जल्दबाजी दिखायी जा सकती है लेकिन निष्पक्षता, जो न्याय का मूल तत्व है, को दफनाने की इजाजत नहीं दी जा सकती है।

28. प्रक्रिया के समस्त नियम न्याय की दासी है। प्रक्रियात्मक विधि के प्रारुपकार द्वारा इस्तेमाल की गयी भाषा उदारवादी अथवा कठोर हो सकती है, लेकिन यह तथ्य बना रहता है कि प्रक्रिया विहित करने का लक्ष्य न्याय के उद्देश्य को आगे बढ़ाना है। एक विविधतापूर्ण व्यवस्था में, न्याय किए जाने की प्रक्रिया में भाग लेने का अवसर देने से सामान्यतः किसी पक्ष को इनकार नहीं किया जा सकता है। जबतक कि संविधि के अभिव्यक्त और विनिर्दिष्ट भाषा द्वारा मजबूर न किया जाए, सी० पी० सी० अथवा प्रक्रियात्मक अधिनियम के प्रावधानों को इस तरीके से समझा नहीं जाना चाहिए जो न्याय के उद्देश्यों को प्राप्त करने में असाधारण स्थितियों का सामना करने में न्यायालय को असहाय कर दे। सुशील कुमार सेन बनाम बिहार राज्य (SCC P. 777 Para 5-6) में कृष्ण अय्यर, न्यायमूर्ति द्वारा किए गए संप्रेक्षण बिल्कुल उपयुक्त है:-

''विधि के हाथों न्याय की नश्वरता न्यायाधीश की अंतरात्मा को विचलित करता है और विधि सुधारक पर क्रोधपूर्ण परिप्रश्न इंगित करता है।

कपितय व्यवस्थाओं में प्रक्रियात्मक विधि इस कदर अभिभावी हो जाती है कि यह सारवान अधिकारों और सारभूत न्याय को बश में कर लेती है। मानवीय नियम कि प्रक्रिया विधिक न्याय की दासी, न कि मालकिन होना चाहिए, अधिकारितः कार्य करने हेतु न्यायाधीशों में अवशिष्ट शक्ति निहित करने पर विचार करने के लिए मजबूर करता है जहाँ अन्यथा करूणाजनक अनुपरिमाण पूर्णतः असाम्यिक होगी।.. ..विधिन्यायशास्त्र का उद्देश्य है न्याय, जो उतनाही प्रक्रियात्मक है। जितना कि सारवान।''

34. आज्ञापक और निदेशात्मक प्रावधानों पर विचार करते हुए न्यायमूर्ति जी० पी० सिंह अपनी प्रसिद्ध पुस्तक सांविधिक व्याख्या के सिद्धांत (नवाँ संस्करण, 2004) में उल्लेख करते हैं:-

''इस टॉपिक पर असंख्य मामलों का अध्ययन किसी सार्वभौमिक नियम के विरचन की ओर नहीं ले जाता है सिवाय इसके कि बहुधा केवल भाषा ही निर्णायक नहीं है और यह विनिश्चित करने के लिए कि यह आज्ञापक है या निदेशात्मक संदर्भ, विषयवस्तु और प्रश्नगत सांविधिक प्रावधान के लक्ष्य को ध्यान में रखा जाना चाहिए। बार-बार उद्धृत किए गए एक परिच्छेद में लार्ड कैम्पबेल ने कहा है, कोई सार्वभौम नियम अधिकथित नहीं किया जा सकता है कि क्या आज्ञापक अधिनियमों को अवज्ञा हेतु विवक्षित अकृतता के लिए केवल निदेशात्मक अथवा वैवश्वक माना जाना होगा। यह न्यायालयों का कर्तव्य है कि विचारणार्थ संविधि के संपूर्ण विस्तार पर सावधानीपूर्वक विचार करके विधायिका के वास्तविक आशय तक पहुँचने का प्रयास करें।'' (पृष्ठ 338)।

'विधायिका के वास्तविक आशय का अभिनिश्चय करने हेतु, 'सुब्बाराव, न्यायमूर्ति इंगित करते हैं, न्यायालय, अन्य बातों के साथ संविधि की प्रकृति और डिजाइन पर और इसके एक या दूसरे प्रकार से अर्थ लगाने से क्या परिणाम होंगे, विचार कर सकता है; अन्य प्रावधानों का प्रभाव जिसके द्वारा प्रश्नगत प्रावधानों का अनुपालन करने की आवश्यकता से बचा जाता है; परिस्थितियाँ, अर्थात्, यह कि संविधि प्रावधानों के अननुपालन की आकस्मिकता प्रावधानित करती है; तथ्य कि प्रावधानों के अननुपालन के लिए कोई दंड दिया जाता है या नहीं; गंभीर या तुच्छ परिणाम जो वहाँ से सामने आते है; और सर्वोपरि यह कि विधायन का लक्ष्य बिफल होगा या अग्रसर होगा।' यदि अधिनियम का लक्ष्य इसे निदेशात्मक मानने से बिफल होगा, इसका अर्थ आज्ञापक लगाया जाएगा, जबकि इसे आज्ञापक मानने पर यदि अधिनियम के लक्ष्य को अधिक अग्रसर किए बिना निर्दोष व्यक्तियों के लिए आम गंभीर असुविधा सृजित होगी, तब इसका अर्थ निदेशात्मक लगाया जाएगा।'' (पृष्ठ 339-40)

35. दो निर्णयों, जिनका हमारे समक्ष विनिश्चिय हेतु उद्भूत विवाद्यकों पर प्रत्यक्ष प्रभाव है, को हमारे ध्यान में लाया गया है, दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा एक-एक। अपीलार्थी के विद्वान वरीय अधिवक्ता ने निवेदन किया कि टॉपलाइन शूज लि० बनाम कॉरपोरेशन बैंक मामले में उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 की धारा 13 में अंतर्विष्ट समविषयक प्रावधान को न्यायालय के विचारार्थ लाया गया था। प्रावधान अपेक्षा करता है कि परिवाद का विरोधी पक्ष 30 दिनों की अवधि के भीतर अथवा 15 दिनों से अधिक तक नहीं बढ़ायी जाने वाली बढ़ाई गई अवधि के भीतर, जैसा जिला फोरम द्वारा प्रदान किया जा सकता है, मामले पर अपना विवरण दे। न्यायालय ने लक्ष्यों और कारणों का कथन और उत्तर दाखिल करने हेतु प्रावधानित समय सीमा के पीछे के विधायिका के आशय को ध्यान में लिया और अभिनिर्धारित किया कि (i) प्रावधान, जैसा विरचित किया गया है, आज्ञापक प्रकृति का नहीं था क्योंकि कोई दांडिक परिणाम विहित किए नहीं गए हैं यदि बढ़ाया गया समय 15 दिनों से अधिक होता है और; (ii) कि प्रावधान निदेशात्मक प्रकृति के थे और इनकी व्याख्या यह अर्थ लगाने के लिए नहीं की जा सकती थी कि किसी भी सूरत में 45 दिनों की अवधि के परे प्रत्यर्थीगण के उत्तर को अभिलेख पर लिया जा सकता था।''

पूर्वोक्त निर्णय की दृष्टि में भी, लिखित बयान दाखिल करने के लिए मूल प्रतिवादी द्वारा दी गयी याचिका को दिनांक 27 जुलाई, 2007 का आदेश वापस लेते हुए अनुज्ञात करना चाहिए था।

3. पूर्वोक्त तथ्यों, कारणों और न्यायिक उद्घोषणाओं के सम्मिलित प्रभाव के कारण मैं 250/- रुपए के व्यय के साथ दिनांक 10 सितम्बर, 2007 को विद्वान अवर न्यायाधीश-I, दुमका द्वारा पारित आदेश को अभिखंडित और अपास्त करता हूँ। इस राशि को विचारण न्यायालय के समक्ष जमा करना होगा और मूल वादी को समुचित याचिका देकर इसे निकालने की अनुज्ञा दी जाती है।

4. पूर्वोक्त संप्रेक्षणों और निर्देशों के साथ, यह रिट याचिका एतद् द्वारा अनुज्ञात की जाती है।

माननीय प्रदीप कुमार, न्यायमूर्ति

शिब चरण अल्दा

बनाम

बिहार राज्य (अब झारखंड)

Cr. Appeal No. 219 of 2000. Decided on 2nd February, 2010.

सत्र विचारण सं॰ 30 वर्ष 1997 में श्री तारकेश्वर प्रसाद, सत्र न्यायाधीश, सिंहभूम पश्चिम, चाईबासा द्वारा पारित दिनांक 18.3.2000 के दोषसिद्धि के निर्णय एवं दंडादेश के विरुद्ध।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धारा 304 भाग-I—हत्या की कोटि में न आनेवाला आपराधिक मानव वध—10 वर्षों के सश्रम कारावास का दंड अधिनिर्णीत—अपीलार्थी ने स्वयं अपने ज्येष्ठ भ्राता की मृत्यु कारित की—झगड़े से उद्भूत घटना—तलवार द्वारा प्रहार किया गया—मृत्यु कारित करने का आशय नहीं था—यद्यपि अभियुक्त अपीलार्थी को यह जानकारी होने का अभिकथन नहीं किया जा सकता है कि मृतक के गर्दन पर किया गया प्रहार घातक होगा और मृतक की मृत्यु हो जाएगी, लेकिन उसे हत्या करने के आशय के संबंध में जानकारी थी—हत्या कारित करने का आशय नहीं था—धारा 304 भाग-1 के अधीन अपीलार्थी की दोषसिद्धि को धारा 304 भाग-II के अधीन परिवर्तित किया गया—अपीलार्थी जेल में लगभग 4 वर्षों तक रहा है—उसके द्वारा काटी गयी सजा पर्याप्त है—अपील अंशतः अनुज्ञात।

(पैरा 9 से 13)

अधिवक्तागण.—Mr. Sagarmay N. Banerjee, For the Appellant; Mr. I.N. Gupta, For the State.

न्यायालय द्वारा.—यह अपील सत्र विचारण सं॰ 30 वर्ष 1997 में श्री तारकेश्वर प्रसाद, सत्र न्यायाधीश, सिंहभूम पश्चिम, चाईबासा द्वारा पारित दिनांक 18.3.2000 के दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के विरुद्ध दाखिल की गयी है जिस निर्णय के द्वारा भारतीय दंड संहिता की धारा 304 भाग-I के अधीन अपीलार्थी को दोषी पाया गया और उसे 10 वर्षों का सश्रम कारावास भुगतने का दंड दिया गया।

2. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा निवेदन किया गया है कि सूचक अ॰ सा॰ 1 द्वारा फर्दबयान में दिए गए बयान और तीन चश्मदीद गवाहों के बयान से भी यह प्रकट होता है कि अपीलार्थी शिव चरण अल्दा का मृतक जोटो अल्दा, जो उसका सहोदर ज्येष्ठ भ्राता था, की मृत्यु कारित करने का आशय नहीं था, लेकिन चूँकि वह उसकी पत्नी को गाली दे रहा था और मार रहा था, अचानक अभियुक्त-अपीलार्थी अपने हाथ में तलवार लिए आया और प्रहार किया जो मृतक के गर्दन पर लगा और उसकी मृत्यु हो गयी। यद्यपि यह माना जा सकता है कि उसे जानकारी थी किन्तु चूँकि ऐसा आशय नहीं था और इस कारण भारतीय दंड संहिता की धारा 304 भाग-I के अधीन उसकी दोषसिद्धि विधि की दृष्टि में दोषपूर्ण है और परिवर्तित किए जाने योग्य है।

3. राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने प्रार्थना का विरोध किया है लेकिन वह स्वीकार करते हैं कि इस अपीलार्थी-अभियुक्त का मृतक जोटो अल्दा की हत्या करने का आशय शुरू में नहीं था।

4. दोनों पक्षों को सुनने और अभिलेख का परिशीलन करने के बाद मैं पाता हूँ कि अभियोजन का मामला सूचक नन्दी कुइ–अ॰ सा॰ 1, मृतक जोटो अल्दा की पत्नी द्वारा दिनांक 26.11.1996 को सायं लगभग 4.30 बजे दिए गए फर्दबयान के आधार पर शुरू किया गया था जिसमें कथन किया गया था कि बीती रात को लगभग 8 बजे जब अभियुक्त अपीलार्थी शिब चरण अल्दा की पत्नी छोटा मनकी की पत्नी के साथ अपने बरामदे पर बातचीत कर रही थी, तब उसके पति जोटो अल्दा शिब चरण अल्दा की पत्नी की ओर गया और उससे पूछा कि वह उनको गाली क्यों दे रही थी। तत्पश्चात् उनके बीच झगड़ा हुआ और मृतक ने अपीलार्थी शिब चरण अल्दा की पत्नी को दो तमाचा मारा। इस पर अभियुक्त-अपीलार्थी शिब चरण अल्दा अपने हाथ में तलवार लिए घर से दौड़ता आया और बिना कुछ पूछे मृतक के गर्दन पर तलवार से प्रहार किया जिससे वह आंगन में गिर गया और उस समय उसकी पत्नी और पुत्र भी वहाँ थे लेकिन वे तलवार के डर से उसे बचाने वहाँ नहीं गए। उसने यह भी कथन किया कि पहले वे अभियुक्त-अपीलार्थी शिब चरण अल्दा के भतीजे गोसा अल्दा की अनुमति से घर के सामने महुआ के फूल एकत्रित किया करते थे। उसने आगे कथन किया कि दुश्मनी के कारण अभियुक्त-अपीलार्थी ने मृतक के गर्दन पर तलवार से प्रहार कारित किया है जिससे उसकी मृत्यु तुरन्त हो गयी।

5. उक्त फर्दबयान के आधार पर, पुलिस ने भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन मामला दर्ज किया और अन्वेषण के बाद पुलिस ने अपीलार्थीगण के विरुद्ध आरोप-पत्र दाखिल किया।

6. चूँकि मामला केवल सत्र न्यायाधीश द्वारा विचारण योग्य था, विद्वान मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी ने मामले का संज्ञान लेने के बाद, इसे सत्र न्यायालय को सुपुर्द दिया। और अंततः स्वयं सत्र न्यायाधीश द्वारा मामले का विचारण किया गया जिन्होंने भारतीय दंड संहिता की धारा 304 भाग-I के अधीन अपीलार्थी को दोष सिद्ध किया है।

7. यह प्रकट होता है कि विचारण के क्रम में, अभियोजन ने 7 गवाहों का परीक्षण किया है जिनमें से अ॰ सा॰ 1 नंदी कुई, सूचक और मृतक की पत्नी, अ॰ सा॰ 2 सिकन्दर अल्दा, मृतका का पुत्र, अ॰ सा॰ 3 लेम्बो कुई, छोटा मनकी की पत्नी जिसकी उपस्थिति में घटना घटी थी, अ॰ सा॰ 4 साऊ बुरुलिया, मृत्यु समीक्षा का गवाह, अ॰ सा॰ 5 डॉ॰ अरुण कुमार गुप्ता जिन्होंने शव परीक्षण संचालित किया, अ॰ सा॰ 6 मधु सूदन अल्दा, गाँव का मनकी और अ॰ सा॰ 7 शंकरलाल चौरसिया औपचारिक गवाह है।

8. यह ध्यान में लेना महत्वपूर्ण है कि अ॰ सा॰ 1, 2 और 3 मामले के चश्मदीद गवाह हैं। अ॰ सा॰ 1 नन्दी कुई, सूचक और मृतक की पत्नी ने न्यायालय में कथन किया कि घटना रविवार की रात्रि को हुई थी और उसके पति और अभियुक्त-अपीलार्थी शिब चरण अल्दा के बीच पहले से कोई झगड़ा नहीं था लेकिन सोमवार की रात खाना खाने के बाद अभियुक्त-अपीलार्थी शिब चरण अल्दा ने तुरन्त मृत्यु कारित करते हुए उसके पति पर तलवार से प्रहार किया। अभियुक्त-अपीलार्थी सिब चरण अल्दा की पत्नी उसके पति को गाली दे रही थी, इसलिए घटना घटी। उसने अभियुक्त-अपीलार्थी को न्यायालय में पहचाना।

अपने प्रति-परीक्षण के पैरा 3 पर उसने स्वीकार किया कि अभियुक्त-अपीलार्थी शिब चरण अल्दा और मृतक जोटो अल्दा एक ही माता और दो पिताओं से जन्मे भाई थे। अभियुक्त-अपीलार्थी शिब चरण अल्दा मृतक का छोटा भाई था और मृतक जोटो अल्दा अभियुक्त-अपीलार्थी शिब चरण अल्दा का बड़ा भाई था और हो आदिवासी प्रथा के मुताबिक छोटे भाई की पत्नी को छूना अपराध है। उसने इंकार किया कि केवल इसलिए कि उसके पति ने अभियुक्त-अपीलार्थी की पत्नी पर प्रहार किया था, घटना घटी थी। उसने अपने प्रतिपरीक्षण में यह भी कथन किया कि उसके पुत्र सिकन्दर अल्दा और छोटा मनकी की पत्नी की उपस्थिति में छोटा मनकी के घर में घटना घटी थी। पैरा 6 पर उसने यह भी स्वीकार किया कि उसका पति घटना स्थल पर गया था और यह चांदनी वाली रात थी। चूँकि अभियुक्त-अपीलार्थी शिब चरण अल्दा की पत्नी उसके पति-मृतक को गाली दे रही थी जो छोटा मनकी के आंगन में बैठा हुआ था और उसने अभियुक्त अपीलार्थी को अपने पति-मृतक के गर्दन पर तलवार का प्रहार करते देखा। उसने यह भी स्वीकार किया कि उसका पति-मृतक बड़ा भाई है और वह छोटे भाई की पत्नी होने पर भी उसे गाली दे रही थी लेकिन उनके बीच कोई स्पर्श नहीं हुआ था।

अ॰ सा॰ 2 सिकन्दर अल्दा मृतक का पुत्र ने भी कथन किया है कि अभियुक्त-अपीलार्थी शिब चरण अल्दा ने उसके पिता जोटा अल्दा की तुरन्त मृत्यु कारित करते हुए उसके गर्दन पर तलवार का प्रहार करते देखा। उसने अभियुक्त-अपीलार्थी को न्यायालय में पहचाना।

अपने प्रति परीक्षण के पैरा-4 पर उसने स्वीकार किया कि अभियुक्त-अपीलार्थी शिब चरण अल्दा की पत्नी और उसके पिता (मृतक) के बीच झगड़ा हो रहा था और झगड़े में कोई अन्य अंतर्ग्रस्त नहीं था। उसने आगे कथन किया कि केवल वाक् युद्ध हो रहा था और हाथ-पैर से प्रहार नहीं किया गया था। वह अपने पिता के पीछे घटनास्थल पर गया था और उसने अभियुक्त-अपीलार्थी शिब चरण अल्दा को अपने पिता की गर्दन पर तलवार से प्रहार करते देखा था।

अ॰ सा॰ 3 लेम्बो कुई, छोटा मनकी की पत्नी स्वतंत्र गवाह है जिसकी उपस्थिति में घटना घटी थी। उसने कथन किया कि घटना की तिथि पर रात्रि लगभग 8 बजे वह अभियुक्त-अपीलार्थी शिब चरण अल्दा से बातचीत कर रही थी, तब मृतक जोटा अल्दा वहाँ आया और अभियुक्त-अपीलार्थी की पत्नी को थप्पड़ मारना शुरू किया। तब अभियुक्त-अपीलार्थी शिब चरण अल्दा वहाँ आया और उससे पूछा कि वह उसकी पत्नी को क्यों मार रहा है और मृतक की गर्दन पर तलवार से प्रहार किया। उसने अभियुक्त को न्यायालय में पहचाना।

अपने प्रति-परीक्षण में उसने स्वीकार किया कि मृतक जोटा अल्दा हल्ला कर रहा था और अभियुक्त-अपीलार्थी शिब चरण अल्दा की पत्नी पर चिल्ला रहा था और यह भी कह रहा था कि वह उसकी हत्या कर देगा। उसने यह भी कथन किया कि हो आदिवासी प्रथा के मुताबिक छोटे भाई की पत्नी को छूना अपराध है, वे बातचीत कर सकते हैं लेकिन स्पर्श नहीं कर सकते हैं।

अ॰ सा॰ 4 साओ बुरुलिया मृत्यु समीक्षा का औपचारिक गवाह है।

अ॰ सा॰ 5 डॉ॰ अरुण कुमार गुप्ता ने शव परीक्षण रिपोर्ट, जिसे प्रदर्श 1 के रूप में चिन्हित किया गया है, को प्रमाणित किया है। उसने मृतक के शरीर पर निम्नलिखित उपहतियाँ पायी:-

(i) सामने और दायीं ओर स्थित गर्दन के मोटे मांसपेशी और मैन्डिबल तथा चिन को अंतर्ग्रस्त करता 6" x 3" x 6" का कटा जख्म;

(ii) गर्दन नलिका सहित गर्दन के उपरी हिस्से और कुछ मेन्टल एरिया को अंतर्ग्रस्त करता मैन्डिबल फ्रैक्चर।

मृत्यु आघात और हेमरेज के चलते कारित हुआ। उपहतियाँ तेज धार वाले हथियार जैसे तलवार से कारित हुई थी। मृत्यु के बाद बीता समय 24 से 36 घंटे था। उसने आगे मत दिया मृतक के शरीर पर केवल एक उपहति थी जो मृत्यु कारित करने हेतु पर्याप्त थी।

अ॰ सा॰ 6 मधूसूदन अल्दा, गाँव का मनकी, ने भी अभियोजन मामले का समर्थन किया है और फर्दबयान पर अपना हस्ताक्षर प्रमाणित किया है।

अ॰ सा॰ 7 शंकर लाल चौरसिया औपचारिक गवाह है।

9. इस प्रकार, इन तीनों चश्मदीद गवाहों के साक्ष्यों से और विशेषकर स्वतंत्र गवाह अ॰ सा॰ 4, लेम्बो कुई छोटा मनकी की पत्नी के साक्ष्य से यह स्पष्ट है कि अभियुक्त अपीलार्थी शिब चरण अल्दा की पत्नी छोटा मनकी की पत्नी लेम्बो कुई से उसके बरामदे में बातचीत कर रही थी जहाँ मृतक जोटा अल्दा आया। अभियुक्त-अपीलार्थी की पत्नी से यह पूछते हुए कि वह क्यों उसे गाली दे रही है, उसको तमाचा मारा जब वह उससे झगड़ रहा था और यह भी कहा कि वह उसकी हत्या कर देगा जिस पर अभियुक्त-अपीलार्थी जो घर के भीतर था, तलवार लेकर दौड़ता आया और मृतक पर प्रहार किया।

10. साक्ष्यों से यह स्पष्ट है कि यद्यपि अभियुक्त-अपीलार्थी को यह जानकारी होना नहीं कहा जा सकता है कि मृतक की गर्दन पर वार करना घातक होगा और मृतक की मृत्यु हो जाएगी लेकिन उसे हत्या करने के आशय के संबंध में जानकारी थी। इसके अलावा, सूचक और अ॰ सा॰ 3 द्वारा भी यह स्वीकार किया गया है कि उनके कबीले में छोटे भाई की पत्नी का स्पर्श करना अपराध है और फर्दबयान में सूचक के बयान और चश्मदीद गवाह अ॰ सा॰ 3 के बयान के अनुसार भी उसने छोटे भाई की पत्नी का स्पर्श किया और उसे तमाचा मारा जिसने अपीलार्थी को उकसाया जो तलवार के साथ दौड़ता आया और मृतक पर प्रहार किया।

11. मेरे मत में, मृत्यु कारित करने का आशय नहीं था और इस प्रकार धारा 304 भाग-I के अधीन अपीलार्थी की दोषसिद्धि को भारतीय दंड संहिता की धारा 304 भाग-II के अधीन बदला जाता है।

12. अवर न्यायालय के अभिलेख जैसा अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है, से यह प्रतीत होता है कि अपीलार्थी दिनांक 27.11.1996 से 4.9.2000 तक अभिरक्षा में था जब उसे दांडिक अपील में न्यायालय द्वारा जमानत दिया गया था। इस प्रकार वह जेल में अन्वेषण और विचारण के दौरान लगभग 4 वर्ष रहा जो भारतीय दंड संहिता की धारा 304 भाग-I के अधीन पर्याप्त दंड है। अपीलार्थी जमानत पर है, उसे अपने जमानत पत्र के बंधन से उन्मोचित किया जाता है।

13. दोषसिद्धि और दंड में पूर्वोक्त परिवर्तन के साथ यह अपील अंशत: अनुज्ञात की जाती है।

माननीय डी॰ जी॰ आर॰ पटनायक, न्यायमूर्ति

जी॰ थंगराज

बनाम

भारत संघ एवं एक अन्य

WP(L) No. 1358 of 2004. Decided on 11th February, 2010.

औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947—धारा 10—निर्देश–केन्द्र सरकार द्वारा अस्वीकृत–याची को स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति लेने को मजबूर किया गया–यह प्रतिवाद करते हुए कि उसके द्वारा स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति लिया जाना स्वतंत्र इच्छा और सहमति से नहीं था और यह कि वस्तुतः उसे प्रपीड़ित कर और धमका कर इसे प्राप्त किया गया था, याची द्वारा यथार्थ विवाद उठाया गया था–याची द्वारा वास्तविक रूप से उठाए गए औद्योगिक विवाद को श्रम कमिश्नर द्वारा सुलह के माध्यम से सुलझाने की भी ईप्सा की गयी थी–सुलहकर्ता से रिपोर्ट पाने पर, केन्द्र सरकार के संबंधित प्राधिकारियों से केवल यह आकलन करने की अपेक्षा की जाती थी कि क्या विवाद को न्याय निर्णयन हेतु निर्दिष्ट किया जा सकता था अथवा नहीं–विवाद को स्वयं सुलझाने का उन्हें प्राधिकार नहीं था–याचिका अनुज्ञात–समुचित निर्णय लेने के लिए केन्द्र सरकार के संबंधित प्राधिकारियों के पास मामला प्रतिप्रेषित किया गया।

(पैरा 13 एवं 14)

निर्णयज विधि.–AIR 1989 SC 1565—Relied upon.

अधिवक्तागण.–Mrs. M.M. Pal, For the Petitioner; M/s S.L. Agrawal, A.K. Singh, For the Respondents; M/s M. Khan, Prabhash Kumar, For the Respondent No. 1.

आदेश

पक्षों के अधिवक्ता को सुना गया और उनकी सहमति से ग्रहण के चरण पर यह याचिका निपटायी जा रही है।

2. याची ने इस रिट याचिका में प्रत्यर्थी सं॰ 1 द्वारा जारी दिनांक 17.9.2003 के पत्र (परिशिष्ट-6) जिसके द्वारा केन्द्र सरकार के संबंधित प्राधिकारियों ने याची द्वारा उठाए गए विवाद के न्याय निर्णयन हेतु श्रम न्यायालय/अधिकरण को निर्दिष्ट करने से इन्कार कर दिया है, को चुनौती दी है।

3. याची ने न केवल, पूर्वोक्त आक्षेपित आदेश के अभिखंडन हेतु बल्कि उसके द्वारा उठाए गए विवाद को समुचित फोरम के समक्ष न्याय निर्णयण हेतु निर्दिष्ट करने के लिए प्रत्यर्थीगण को निर्देश देने हेतु भी प्रार्थना की है।

4. याची के मामले के तथ्य संकीर्ण परिक्षेत्र में हैं।

याची, प्रत्यर्थी-हिन्दुस्तान कॉपर लिमिटेड के अधीन कर्मचारी था।

एच॰ सी॰ एल॰ के महाप्रबंधक द्वारा जारी दिनांक 25.7.2000 के पत्र (परिशिष्ट-1) द्वारा याची को सूचित किया गया कि उसकी सेवाएँ इस आधार पर समाप्त किए जाने की दायी है कि वह एक अधिशिष्ट कर्मचारी है और ऐसी घोषणा पर उसे स्वैच्छिक सेवा निवृत्ति का विकल्प दिया गया जिसे लेने के विफल होने पर कम्पनी उसकी सेवाओं को समाप्त करने के लिए मजबूर हो जाएगी।

तत्पश्चात् याची ने स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति लेने की अनुमति देने हेतु प्रार्थना करते हुए दिनांक 29.7.2000 को अपना पत्र प्रस्तुत किया। उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली गयी थी और तत्पश्चात् प्रत्यर्थी एच॰ सी॰ एल॰ के अधीन सेवा से उसे पृथक कर दिया गया।

लेकिन याची ने इस आधार पर शिकायत बनाए रखा कि वस्तुतः अभित्रास द्वारा और अप्रतिरोध्य परिस्थितियों के अधीन प्रत्यर्थी-प्रबंधन द्वारा उस पर स्वैच्छिक सेवा निवृत्ति अधिरोपित की गयी थी और इस तथ्य की दृष्टि में कि वह अपने विभाग का वरिष्ठतम कर्मचारी था और लाभदायक स्थिति में था, याची ने वस्तुतः अपनी सेवानिवृत्ति के लिए स्वेच्छापूर्वक सहमति नहीं दी थी।

याची की स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति को वापस लेने और सेवा में उसे पुनर्बहाल करने की प्रार्थना के साथ प्रत्यर्थी कंपनी के अध्यक्ष-सह-प्रबंध निदेशक को संबोधित करते हुए दिनांक 18.12.2001 के पत्र (परिशिष्ट-3) के द्वारा अपने पूर्वोक्त शिकायत को अभिव्यक्त किया।

5. यह प्रतीत होता है कि प्रबंधन द्वारा उसकी प्रार्थना को अस्वीकार करने पर याची ने सुलह कार्यवाही संचालित करने के लिए सहायक श्रम कमिश्नर (केन्द्रीय) (परिशिष्ट-5) को मामला निर्दिष्ट करते हुए एक औद्योगिक विवाद उठाना इप्सित किया।

6. दोनों पक्षों को बुलाकर सहायक श्रम कमिश्नर (केन्द्रीय) द्वारा सुलह कार्यवाही संचालित की गयी थी, लेकिन इच्छित सुलह नहीं हो पाया था।

7. तत्पश्चात्, सहायक श्रम कमिश्नर ने न्यायनिर्णयन हेतु समुचित फोरम को विवाद निर्दिष्ट करने की अनुशंसा करते हुए अपनी रिपोर्ट केन्द्र सरकार के संबंधित मंत्रालय को अग्रसर कर दिया।

8. लेकिन, निम्नलिखित संप्रेक्षण करते हुए, आक्षेपित आदेश द्वारा, केन्द्र सरकार के संबंधित प्राधिकारियों ने विवाद को निर्दिष्ट करने से इन्कार कर दिया:–

''प्रथम दृष्टया, यह मंत्रालय निम्नलिखित कारण से इस विवाद को न्याय-निर्णयण के योग्य नहीं मानता है:-

यह देखा गया है कि कर्मचारी ने स्वयं वी० आर० एस० का विकल्प चुना।''

9. याची के विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि इस तथ्य की दृष्टि में कि ऊपर ध्यान में लिए गए संप्रेक्षण द्वारा यह अभिनिर्धारित करते हुए कि कर्मचारी द्वारा स्वयं वी॰ आर॰ एस॰ का विकल्प चुने जाने के कारण उसे अब प्रतिवाद करने का अधिकार नहीं है, न्याय निर्णयण हेतु विवाद को निर्दिष्ट नहीं करने का मंत्रालय का निर्णय दोषपूर्ण है।

इस संदर्भ में **टेल्को कॉनवॉय ड्राइवर्स मजदूर संघ एवं एक अन्य बनाम बिहार राज्य एवं अन्य, [AIR 1989 SC 1565]** में प्रकाशित मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को निर्दिष्ट करते हुए विद्वान अधिवक्ता स्पष्ट करते हैं कि यह विचार करते हुए कि मामला निर्दिष्ट किया जाए या नहीं, समुचित सरकार विवाद के गुणागुण पर विचार नहीं कर सकती है और विवाद का विनिश्चय स्वयं नहीं कर सकती है जो समुचित न्याय निर्णायक फोरम द्वारा निर्णीत किए जाने की अपेक्षा करता है।

10. दूसरी ओर, प्रत्यर्थी-एच॰ सी॰ एल॰ द्वारा अपनाया गया और प्रत्यर्थी भारत संघ के विद्वान अधिवक्ता द्वारा समर्थित दृष्टिकोण यह है कि तथ्य पूर्णत: प्रदर्शित करेंगे कि याची ने स्वेच्छापूर्वक वी॰ आर॰ एस॰ का विकल्प चुना था और वी॰ आर॰ एस॰ के लिए उसकी याचना तद्नुसार स्वीकार की गयी थी जिसके बाद सेवा निवृत्ति लाभों की राशि का आकलन किया गया था और उसे सूचित किया गया था कि उसे भुगतान प्राप्त करने की स्वतंत्रता थी।

11. प्रत्यर्थी-भारत संघ के अधिवक्ता प्रत्यर्थीगण के प्रतिशपथ पत्र के उत्तर में याची द्वारा दाखिल प्रत्युत्तर को निर्दिष्ट और निवेदन करेंगे कि याची ने स्वयं सेवा निवृत्ति लाभों के स्वीकृत देयों का उसे भुगतान करने के लिए प्रबंधन को एक पत्र संबोधित किया था।

12. याची के विद्वान अधिवक्ता स्पष्ट करते हैं कि याची ने कभी भी ऐसा कोई पत्र नहीं लिखा था और ये केवल न्यायालय के समक्ष याची के निवेदन थे और इन्हें समय के किसी भी बिन्दु पर याची द्वारा नियोक्ता को की गयी प्रार्थना नहीं माना जा सकता है।

13. पक्षों के अधिवक्ताओं को सुनने के बाद और अभिलेख पर लाए गए दस्तावेजों पर विचार करने के बाद मैं पाता हूँ कि यह प्रतिवाद करते हुए कि उसके द्वारा स्वैच्छिक सेवा निवृत्ति का विकल्प चुना जाना उसकी स्वतंत्र इच्छा और सहमति से नहीं था और यह कि वस्तुतः इसे उसे प्रपीड़ित कर और धमका कर प्राप्त किया गया था, याची द्वारा एक यथार्थ विवाद उठाया गया था। याची के मामले का यह पहलू प्रत्यर्थी-एच॰ सी॰ एल॰ के अध्यक्ष को संबोधित किए गए दिसंबर 2001 में भेजे गए पत्र द्वारा समर्थित किया गया है। सेवा निवृत्ति लाभों को स्वीकार करने से उसका इंकार जैसा दिनांक 8.12.2001 के याची के पत्र द्वारा सूचित किया गया है, उसके प्रतिवाद और मामले पर पुनर्विचार करने और सेवा में उसे पुनर्बहाल करने की उसकी प्रार्थना को अभिपुष्ट करता है। उठाया गया विवाद यह था कि क्या वी॰ आर॰ एस॰ की स्वीकृति स्वैच्छिक थी अथवा क्या उसे ऐसा करने के लिए प्रबंधन द्वारा प्रपीड़ित किया गया था।

याची द्वारा उठाए गए औद्योगिक विवाद को श्रम कमिश्नर द्वारा सुलह के माध्यम से सुलझाना ईप्सित किया गया था जिन्होंने पक्षों के बीच सुलह कार्यवाही करने का कदम उठाया था।

सुलहकर्ता की रिपोर्ट पाने पर, केन्द्र सरकार के संबंधित प्राधिकारियों से केवल यह आकलित करने की अपेक्षा की जाती थी कि क्या विवाद को न्याय निर्णयण हेतु निर्दिष्ट किया जा सकता था या नहीं। उन्हें स्वयं विवाद पर निर्णय करने का प्राधिकार नहीं था। यह दृष्टिकोण **टेल्को कॉनवॉय ड्राइवर्स मजदूर संघ एवं एक अन्य (ऊपर)** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय से समर्थन प्राप्त करता है।

यद्यपि, जैसा प्रत्यर्थी के अधिवक्ता द्वारा निवेदन किया गया है, केन्द्र सरकार के संबंधित प्राधिकारियों से डाकखाना के रूप में काम करने की आशा नहीं की जाती है, लेकिन यह विवादित नहीं किया जा सकता है कि समुचित सरकार के संबंधित प्राधिकारियों को कर्मचारी द्वारा उठाए गए विवाद पर न्याय निर्णयण का प्राधिकार नहीं है।

14. उक्त तथ्यों और परिस्थितियों के प्रकाश में, मैं इस रिट याचिका में गुणागुण पाता हूँ। तद्नुसार, यह रिट याचिका अनुज्ञात की जाती है। याची द्वारा उठाए गए औद्योगिक विवाद से संबंधित श्रम कमिश्नर द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट पर समुचित निर्णय करने के लिए केन्द्र सरकार के संबंधित प्राधिकारियों को मामला वापस भेजा जाता है। इस आदेश की प्रति की प्राप्ति/प्रस्तुती की तिथि से तीन माह के भीतर ऐसा निर्णय अवश्य लिया जाना होगा।

इस आदेश की एक प्रति प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता को दी जाए।

माननीय डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति

श्रीमती सुशीला सिन्हा

बनाम

रामाशीष चौधरी एवं अन्य

Cr. M.P. No. 1610 of 2008. Decided on 16th February, 2010.

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 482 सह-पठित भारत के संविधान का अनुच्छेद 215—उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश को वापस लेने की प्रार्थना—विरोधी पक्ष के सदस्यों ने दांडिक पुनरीक्षण के लम्बित रहने के बारे में विचारण न्यायालय के समक्ष समस्त तात्विक तथ्यों और साथ ही साथ उच्च न्यायालय के समक्ष दांडिक पुनरीक्षण के लंबित रहने के दौरान

अपने दांडिक विचारण की अवस्था और प्रगति जानबूझकर दबाया–दांडिक पुनरीक्षण के निपटाए जाने तक विचारण दंडाधिकारी के समक्ष लंबित दांडिक कार्यवाही के स्थगन हेतु समय के किसी भी बिन्दु पर कोई प्रार्थना नहीं की गयी थी–कार्य-कलाप की ऐसी स्थिति के चलते दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 245 के अधीन विरोधी पक्ष के सदस्यों द्वारा दाखिल याचिका पर दंडाधिकारी द्वारा पारित आदेश को अपास्त करते हुए दांडिक पुनरीक्षण में उच्च न्यायालय द्वारा आदेश पारित किया गया था–न्यायालय के प्रक्रिया के दुरूपयोग से बचने हेतु आक्षेपित आदेश वापस लिया गया–याचिका अनुज्ञात। (पैरा 10 एवं 11)

निर्णयज विधि.–AIR 2000 SC 540—Relied upon; 2009(1) JLJR (SC)290—Referred to.

अधिवक्तागण.–M/s Babban Lal, Ashok Kumar Sinha, For the Petitioner(s); Mr. Kaushik Sarkhel, For the Opp. Party Nos. 1 to 6; Mr. Md. Hatim, For the State.

डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति.–दांडिक पुनरीक्षण सं॰ 34 वर्ष 2005 में इस न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 3.4.2008 के आदेश, के विरुद्ध दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन इस न्यायालय की अंतर्निहित अधिकारिता का अवलम्ब याची ने लिया है; जिसके द्वारा इस न्यायालय ने संप्रेक्षित किया,

> *''मैं आक्षेपित आदेश में स्पष्ट गलती पाता हूँ क्योंकि विद्वान दंडाधिकारी ने मामले को लगभग विनिश्चित कर दिया है और तद्नुसार, विधि के अनुरूप और याची के विरुद्ध अभिलेख पर लाए गए सामग्रियों पर दं० प्र० सं० की धारा 245 के अधीन याची की याचिका पर संबंधित उत्तराधिकारी न्यायालय को नया आदेश पारित करने के निर्देश के साथ इसे अपास्त कर दिया है।''*
>
> *पूर्वोक्त संप्रेक्षण के साथ यह दांडिक पुनरीक्षण अनुज्ञात किया जाता है।''*

2. विद्वान वरीय अधिवक्ता श्री बबन लाल ने निवेदन किया कि उक्त दांडिक पुनरीक्षण में याची-परिवादी को पक्ष बनाए बिना उक्त आदेश पारित किया गया था क्योंकि उसने याची की ओर से दाखिल परिवाद याचिका पर सी॰ पी॰ केस सं॰ 538 वर्ष 2000 दाखिल किया था जो श्री एस॰ एल॰ शा, न्यायिक दंडाधिकारी, प्रथम श्रेणी, धनबाद के समक्ष लंबित पड़ा था और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 202 के अधीन जाँच शुरू की गयी थी। सामग्रियों से संतुष्ट होने पर, भारतीय दंड संहिता की धारा 147/323/379/452 के अधीन अभिकथित अपराध के लिए एक प्रथम दृष्टया मामला निर्मित किया हुआ पाया गया था और तद्नुसार यहाँ इसमें विरोधी पक्ष सं॰ 1 से 6 को सम्मन जारी किया गया था। तत्पश्चात् आरोप विरचित करने के पहले साक्ष्य दर्ज किए गए थे और तब विरोधी पक्ष के सदस्यों ने अपने उन्मोचन के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 245 के अधीन याचिका दाखिल की थी जिसे निम्नलिखित संप्रेक्षण के साथ खारिज कर दिया गया था:–

> *''दोनों पक्षों को सुना और अभिलेख का परिशीलन किया। मामले के अभिलेख के परिशीलन से यह प्रकट होता है कि अभिलेखों पर लाए गए साक्ष्य इस प्रकार के हैं जिनका खंडन यदि न किया जाए तब यह भारतीय दंड संहिता की धारा 147/323/379/452 के अधीन इस मामले में अभियुक्त की दोषसिद्धि की अपेक्षा करेगा। तद्नुसार दं० प्र० सं० की धारा 245 के अधीन अभियुक्त याचीगण की ओर से दाखिल उन्मोचन याचिका एतद् द्वारा खारिज की जाती है।*
>
> *आरोप के लिए दिनांक 29.7.2004 को इसे अभिलेख पर रखा जाए।''*

3. याची के अनुसार, विरोधी पक्ष के सदस्यों के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 147/323/379/452 के अधीन दिनांक 29.7.2004 को आरोप विरचित किया गया था, जिन्होंने दोषी न होने का अभिवाक् किया और विचारण किए जाने का दावा किया। तत्पश्चात एक गवाह अर्थात् चन्द्रदेव प्रसाद सिन्हा का परीक्षण और प्रति परीक्षण किया गया था और उन्मोचित किया गया था

लेकिन इसी बीच विरोधी पक्ष के सदस्यों ने झारखण्ड उच्च न्यायालय के समक्ष लंबित दांडिक पुनरीक्षण के बारे में विचारण न्यायालय को सूचित किए बिना सी॰ पी॰ केस सं॰ 538 वर्ष 2000 में दर्ज दिनांक 12.7.2004 के आक्षेपित आदेश के विरुद्ध दांडिक पुनरीक्षण सं॰ 34 वर्ष 2005 दाखिल किया। इसी बीच, अभियोजन ने परिवाद मामला के समर्थन में लगभग सारे गवाहों को प्रस्तुत किया और परीक्षण किया जिनका प्रति परीक्षण विरोधी पक्ष के सदस्यों के अधिवक्ता द्वारा बिना यह बताए कि दिनांक 12.7.2004 के आदेश के विरुद्ध इस न्यायालय के समक्ष दांडिक पुनरीक्षण सं॰ 34 वर्ष 2005 निपटाए जाने हेतु लंबित पड़ा था, किया गया था। अभियोजन साक्ष्य की समाप्ति पर, अभियुक्तगण का परीक्षण किया गया था और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन उनके बयान दर्ज किए गए थे लेकिन इस चरण पर भी विरोधी पक्ष के अभियुक्तगण/सदस्यों में से किसी ने भी इस तथ्य को जानबूझ कर छुपाया कि दांडिक पुनरीक्षण सं॰ 34 वर्ष 2005 लंबित था और इन कारणों से उन्होंने विचारण दंडाधिकारी द्वारा उनसे व्यक्तिगत रूप से पूछे गए प्रश्नों का उत्तर नहीं दिया था। बचाव पक्ष के साक्ष्य और अंतिम तर्को के लिए मामला नियत किया गया लेकिन इसी बीच दांडिक पुनरीक्षण सं॰ 34 वर्ष 2005 में दिनांक 3.4.2008 को पारित इस न्यायालय के आदेश की संसूचना दी गयी थी जिसके द्वारा सी॰ पी॰ केस सं॰ 538 वर्ष 2000 में न्यायिक दंडाधिकारी, प्रथम श्रेणी द्वारा पारित दिनांक 12.7.2004 के आदेश को यहाँ इसमें पहले निर्दिष्ट संप्रेक्षण के साथ अपास्त कर दिया गया था। यह निवेदन किया गया था कि दिनांक 3.4.2008 का इस न्यायालय का उक्त आदेश तीन माह बाद दिनांक 28.7.2008 को विचारण दंडाधिकारी को आश्चर्य चकित करते उनके समक्ष रखा गया था क्योंकि दांडिक पुनरीक्षण सं॰ 34 वर्ष 2005 के लंबित रहने के बारे में और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन विरोधी पक्ष के अभियुक्तगण/सदस्यों के बयानों के दर्ज किए जाने के दौरान भी, जो बचाव को स्पष्ट करने हेतु अभियुक्तगण को अवसर देते हुए दांडिक कार्यवाही में ठहराव/पड़ाव का मील का पत्थर माना जाता है, विचारण के किसी भी चरण पर विचारण न्यायालय को इंगित नहीं किया गया था। विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि दांडिक पुनरीक्षण सं॰ 34 वर्ष 2005 के लंबित रहने के दौरान सी॰ पी॰ केस सं॰ 538 वर्ष 2000 में झारखण्ड उच्च न्यायालय द्वारा कोई स्थगन नहीं दिया गया था और इस तरीके से विचारण न्यायालय को पूरी तरह अंधेरे में रखा गया था।

4. विद्वान वरीय अधिवक्ता श्री बबन लाल स्पष्ट करते है कि परिवादी को सुने बिना दांडिक पुनरीक्षण सं॰ 34 वर्ष 2005 में इस न्यायालय द्वारा एकपक्षीय आदेश दर्ज किया गया था और इस कारण ऐसा आदेश अकृत है जिसे अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग करते हुए न्यायिक हित में वापस लिया जा सकता है और इस संबंध में श्री लाल ने **(एम॰ एम॰ थॉमस बनाम केरल राज्य एवं एक अन्य), AIR 2000 सुप्रीम कोर्ट 540** में प्रकाशित मामले में दिए गए निर्णय पर विश्वास किया है जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने संप्रेक्षित किया।

> *"14. उच्च न्यायालय को अभिलेख का न्यायालय होने के तौर पर, जैसा संविधान के अनुच्छेद 215 में परिकल्पित किया गया है, अभिलेखों को सही करने की अंतर्निहित शक्तियाँ होनी चाहिए। अभिलेख का न्यायालय उन सारी शक्तियों को समाविष्ट करता है जिनकी कार्रवाईयों और कार्यवाहियों को अनन्त स्मृति और अभिसाक्ष्य में अन्तर्भुक्त किया जाना है। एक अभिलेख न्यायालय निःसंदेह एक उच्चतर न्यायालय है जो अपनी अधिकारिता के विस्तार को विनिश्चत करने हेतु स्वयं सक्षम है। अभिलेख न्यायालय होने के नाते यह उच्च न्यायालय का कर्तव्य है कि वह अपने सारे अभिलेखों को विधि के अनुरूप सही-सही रखे। अतः यदि इसके द्वारा पारित किसी आदेश के संबंध में किसी प्रकट गलती को उच्च न्यायालय द्वारा ध्यान में लिया जाता है, तब उच्च न्यायालय को इसे सही करने की शक्ति तो है ही यह उसका कर्तव्य भी है। इस संबंध में उच्च न्यायालय की शक्ति सर्वांगीण है। नरेश श्रीधर बनाम महाराष्ट्र राज्य (1966)3 SCR 744; AIR 1967 SC 1 में, इस न्यायालय की नौ न्यायाधीशों की पीठ ने अभिलेख न्यायालय होने के नाते सर्वांगीण अधिकारिता वाले न्यायालय के तौर पर उच्च न्यायालय की पूर्वोक्त उच्चतर हैसियत को मान्यता दी है।''*

उक्त निर्णय में आगे यह संप्रेक्षित किया गया था:–

"17. यदि स्वयं अपने अभिलेख को सही करने की स्वप्रेरित शक्ति उच्च न्यायालय को देने से इंकार किया जाता है जब यह प्रकट गलतियों को ध्यान में लेता है इसका परिणाम यह है कि उच्च न्यायालय की उच्चतर हैसियत कम होती जाएगी। अतः यह सोचना समुचित है कि उच्च न्यायालय की सर्वांगीण शक्तियाँ अभिलेख को देखते ही प्रकट गलतियों से संबंधित पुनरीक्षण की शक्ति को सम्मिलित करेगी।''

5. विद्वान वरीय अधिवक्ता, श्री लाल ने आगे निवेदन किया कि दिनांक 3.4.2008 का आक्षेपित आदेश इस न्यायालय द्वारा परिवादी की अनुपस्थिति में दर्ज किया गया था क्योंकि उसे कोई नोटिस नहीं दी गयी थी। आवश्यक पक्ष होने पर भी परिवादी को सुनवाई का अवसर नहीं दिया गया था और इस तरीके से, विरोधी पक्ष की प्रेरणा पर 'दूसरे पक्ष को भी सुनो' के सिद्धान्त का घोर उल्लंघन किया गया था और इस प्रकार दिनांक 3.4.2008 का आदेश मान्य नहीं जिसे इस न्यायालय की अंतर्निहित अधिकारिता का प्रयोग करके वापस लिया जा सकता है। **रघुराज सिंह रोश बनाम मेसर्स शिवम सुन्दरम प्रोमोटर्स (प्रा॰) लि॰ एवं एक अन्य,** 2009 (1) JLJR 290 (SC) में प्रकाशित मामले में भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने संप्रेक्षित किया कि उच्च न्यायालय का आदेश अपने मामले का बचाव करने हेतु अपीलार्थी को अवसर नहीं दिए जाने के चलते स्पष्टत: विधि में मान्य नहीं है और न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि विद्वान न्यायाधीश ने नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों का और प्रतिकूल आदेश पारित करने के पहले पक्ष को सुनवाई का अवसर देने की विधि की अपेक्षा का भी उल्लंघन किया है।

6. अत: विधि की उक्त प्रतिपादना की दृष्टि में, विद्वान वरीय अधिवक्ता श्री बबन लाल ने निवेदन किया कि इस तथ्य की दृष्टि में कि बिना विरोध किए सारे गवाहों का पहले ही परीक्षण और प्रति परीक्षण किया जा चुका था और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन अभियुक्त के बयानों को भी दर्ज किया जा चुका है और समय के किसी भी बिन्दु पर विरोधी पक्ष के अभियुक्तगण/सदस्यों ने इस न्यायालय के समक्ष किसी दांडिक पुनरीक्षण के लंबित रहने के बारे में विचारण न्यायालय को अवगत नहीं कराया था, न्याय के उद्देश्य हेतु आक्षेपित आदेश वापस लिए जाने योग्य है। ऐसे आचरण द्वारा अभियुक्तगण/विरोधी पक्षकारों ने विचारण के अंतिम चरण पर, जब निर्णय उद्घोषित किया जाना था, इस न्यायालय के आदेश को लाते हुए विचारण न्यायालय को उलझन की स्थिति में डाल दिया है।

7. दूसरी ओर, विरोधी पक्ष सं॰ 1 से 6 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री कौशिक सरखेल ने प्रति शपथ पत्र दाखिल करते हुए निवेदन किया कि याची की याचिका पोषणीय नहीं थी क्योंकि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 362 आज्ञा देती है कि कोई न्यायालय, जब इसने अपने निर्णय अथवा अंतिम आदेश पर हस्ताक्षर किया है अथवा किसी मामले को निपटा दिया है, अभिस्वीकृत सिद्धान्त पर आधारित लिपिकीय अथवा गणितीय गलती को सही करने के सिवाए इसे परिवर्तित अथवा पुनरीक्षित नहीं करेगा क्योंकि एक बार जब मामला अंतिम रूप से निपटा दिया जाता है, किसी विनिर्दिष्ट सांविधिक प्रावधान की अनुपस्थिति में उक्त न्यायालय पद कार्यनिवृत्त हो जाता है और इसी अनुतोष हेतु नयी प्रार्थना ग्रहण करने का हकदार नहीं रहता है, जब तक कि विधि द्वारा विहित तरीके से सक्षम अधिकारिता वाले न्यायालय द्वारा पूर्व आदेश को अपास्त नहीं कर दिया जाता है।

8. अपने तर्क को आगे बढ़ाते हुए श्री सरखेल निवेदन करते है कि यह बिल्कुल गलत और भ्रामक है कि विरोधी पक्ष के सदस्यों ने कभी भी दांडिक पुनरीक्षण सं॰ 34 वर्ष 2005 के लंबित रहने के बारे में विचारण दंडाधिकारी को सूचित नहीं किया था क्योंकि अभियुक्तगण यह कथन करते कि दांडिक पुनरीक्षण सं॰ 34 वर्ष 2005 इस न्यायालय के साप्ताहिक कॉज लिस्ट में चल रहा था और सम्यक क्रम में इसकी सुनवाई की जानी थी। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 317 के अधीन याचिकाएँ

दाखिल किया करते थे। इसके समर्थन में, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 317 के अधीन दाखिल दिनांक 9.2.2005 की याचिका की शपथ पत्र समर्थित प्रमाणित प्रति की छाया प्रतिलिपि अभिलेख पर लायी गयी है।

9. विधि के बिन्दु पर श्री सरखेल ने निवेदन किया कि दांडिक पुनरीक्षण सं० 34 वर्ष 2005 में इस न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 3.4.2008 का आदेश अधिकारिता का प्रयोग करते हुए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 397 के अधीन आदेश था जो आदेश की अवैधता, समुचितता और शुद्धता देखने हेतु न्यायालय को सशक्त करता है और यदि न्यायालय कोई गलती पाता है, तब यह उच्च न्यायालय की सक्षमता के अंतर्गत है कि वह दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 398 के अधीन शक्ति का प्रयोग करते हुए आक्षेपित आदेश को अपास्त करते हुए मामले को विचारण न्यायालय को वापस भेज दे। अंतत: यह निवेदन किया गया है कि अंतिम आदेश पारित किए जाने के पहले राज्य विरोधी पक्ष के रूप में सामने आया था और इस कारण उक्त आदेश को एक पक्षीय रूप से दर्ज आदेश नहीं समझा जा सकता है।

10. तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए मैं पाता हूँ कि यहाँ इसके विरोधी पक्ष के सदस्यों द्वारा दांडिक पुनरीक्षण सं० 34 वर्ष 2005 में परिवादी को विरोधी पक्ष के तौर पर पक्षकार नहीं बनाया गया था यद्यपि राज्य विरोधी पक्ष के रूप में सामने आया था। मैं आगे पाता हूँ कि दिनांक 3.4.2008 को आदेश पारित करने की तिथि पर किसी के भी द्वारा राज्य का प्रतिनिधित्व नहीं किया गया था और याची के अधिवक्ता को सुनने के बाद लगभग चार वर्ष बाद सी० पी० केस सं० 538 वर्ष 2000 में दिनांक 12.7.2004 का आदेश अपास्त करते हुए दिनांक 3.4.2008 को आदेश पारित किया गया था। लेकिन मैं पाता हूँ कि समय की इतनी लम्बी अवधि के अंदर काफी पहले दिनांक 9.2.2005 को एक अवसर पर, के सिवाए सी० पी० केस सं० 538 वर्ष 2000 में दिनांक 12.7.2004 को पारित आदेश के विरुद्ध उक्त दांडिक पुनरीक्षण के लंबित रहने के बारे में विचारण न्यायालय को सूचित नहीं किया गया था लेकिन तत्पश्चात् तीन वर्षों तक वर्तमान विरोधी पक्ष के सदस्यों ने चुप्पी बनायी रखी यद्यपि उन्होंने अपने दांडिक विचारण में सक्रिय रूप से भाग लिया था जिसमे अभियोजन की ओर से गवाहों को प्रस्तुत किया गया था और परीक्षण किया गया था और उनकी ओर से उनका प्रति परीक्षण किया गया था। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन उनके बयानों को दर्ज किए जाने के चरण पर भी वर्तमान विरोधी पक्ष के अभियुक्तगण/सदस्यों में से किसी ने भी इस न्यायालय के समक्ष उनके दांडिक पुनरीक्षण के लंबित रहने के बारे में इंगित नहीं किया था और विचारण के दौरान उनके विरुद्ध संग्रहित अपराध में फँसाने वाले सामग्रियों का सामना करते हुए उन्होंने अपने सामने रखे गए प्रश्नों का उत्तर नहीं दिया था। अत: मेरे पास विश्वास करने का कारण है कि विरोधी पक्ष के सदस्यों ने दांडिक पुनरीक्षण के लंबित रहने के बारे में विचारण न्यायालय के समक्ष समस्त तात्विक तथ्यों और साथ ही इस न्यायालय के समक्ष दांडिक पुनरीक्षण के लंबित रहने के दौरान उनके दांडिक विचारण की अवस्था और प्रगति को आशयपूर्वक दबाया था। मैं आगे पाता हूँ कि दांडिक पुनरीक्षण के निपटाए जाने तक विचारण दंडाधिकारी के समक्ष लंबित दांडिक कार्यवाही के स्थगन हेतु समय के किसी भी बिन्दु पर कोइ भी प्रार्थना नहीं की गयी थी। AIR 2000 सुप्रीम कोर्ट 540 में प्रकाशित मामले में दिये गये निर्णय में भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने प्रतिपादित किया है कि किसी प्रकट गलती, यदि इसे ध्यान में लिया जाता है, को सही करने के लिए अभिलेख न्यायालय के रूप में भारत के संविधान के अनुच्छेद 215 में परिकल्पित और इसके अतिरिक्त दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन इस न्यायालय को अंतर्निहित शक्तियाँ है। विधि की ऐसी प्रतिपादना का अनुसरण करते हुए भारत के संविधान के अनुच्छेद 215 सह-पठित दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन अधिकारिता का प्रयोग करते हुए यह न्यायालय पक्के तौर पर यह पाता है कि दांडिक पुनरीक्षण सं० 34 वर्ष 2005 में दर्ज दिनांक 3.4.2008 के आदेश जिसके द्वारा सी० पी० केस सं० 538 वर्ष 2000 में पारित दिनांक 12.7.2004 का आक्षेपित आदेश अपास्त कर दिया गया था और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 245 के अधीन विरोधी पक्ष के सदस्यों की ओर से दाखिल याचिका पर नया आदेश पारित करने के लिए विचारण

दंडाधिकारी से अपेक्षा करते हुए मामला वापस भेज दिया गया था, में हस्तक्षेप करना अत्यावश्यक है। तथ्यों और परिस्थितियों में दांडिक पुनरीक्षण सं॰ 34 वर्ष 2005 में इस न्यायालय द्वारा दिनांक 3.4.2008 को पारित आदेश को न्यायालय की प्रक्रिया के दुरूपयोग से बचने के लिए वापस लिया जाता है।

11. तद्नुसार, यह दांडिक विविध याचिका अनुज्ञात की जाती है। विचारण दंडाधिकारी को युक्तियुक्त अवधि के भीतर मामले के गुणागुण पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना सी॰ पी॰ केस सं॰ 538 वर्ष 2000 में विधि के अनुरूप आगे बढ़ने और विचारण को पूरा करने करने का निर्देश दिया जाता है।

माननीय प्रदीप कुमार, न्यायमूर्ति

रामधनी हेमरोम एवं अन्य

बनाम

झारखण्ड राज्य

Cr. Appeal No. 286 of 2001. Decided on 7th January, 2010.

सत्र विचारण सं॰ 76 वर्ष 1992 में, धनन्जय प्रसाद सिंह, सत्र न्यायाधीश, दुमका द्वारा पारित दिनांक 2.6.2001 के दोषसिद्धि के निर्णय एवं दंडादेश के विरुद्ध।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धारा 304, भाग-II एवं 148—हत्या की कोटि में न आनेवाला आपराधिक मानव वध—मस्तक और शरीर के अन्य भागों पर कुल्हाड़ी द्वारा प्रहार—दोषसिद्धि और दंडादेश अधिनिर्णीत—धारा 304 भाग-II एवं धारा 148 के अधीन मुख्य हमलावर की दोषसिद्धि बरकरार—मृतक पर प्रहार करने में अपीलार्थी सं॰ 3 और 4 ने भाग नहीं लिया था—अपीलार्थी सं॰ 3 और 4 को उनके विरुद्ध लगाए गए आरोपों से मुक्त किया गया—अपीलार्थी सं॰ 2 जेल में 10 वर्षों से अधिक रहा—विचारण न्यायालय को इसे सत्यापित करने और तब उसकी निर्मुक्ति का आदेश पारित करने का निर्देश दिया गया—अपील अंशतः अनुज्ञात। (पैरा 12 से 15)

अधिवक्तागण.—Mr. N.K. Sahani, For the Petitioner; Mr. I.N. Gupta, For the Respondent.

न्यायालय द्वारा.—यह अपील सत्र विचारण सं॰ 76 वर्ष 1992 में धनन्जय प्रसाद सिंह, सत्र न्यायाधीश, दुमका द्वारा पारित दिनांक 2.6.2001 के दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के विरुद्ध है जिसके द्वारा विद्वान सत्र न्यायाधीश ने चारों अपीलार्थीगण को भारतीय दंड संहिता की धारा 304 भाग-2 और धारा 148 के अधीन दोषी पाया था और अपीलार्थी सं॰ 1 रामधनी हेमरोम को भारतीय दंड संहिता की धारा 304-भाग-2 के अधीन 7 वर्षों और भारतीय दंड संहिता की धारा 148 के अधीन 2 वर्षों का सश्रम कारावास भुगतने का दंड दिया था। उन्होंने अपीलार्थी सं॰ 2 सत्तो हेमरोम को भी भारतीय दंड संहिता की धारा 304-भाग-2 के अधीन 10 वर्षो और भारतीय दंड संहिता की धारा 148 के अधीन 3 वर्षों का सश्रम कारावास भुगतने का दंड दिया था। उन्होंने अपीलार्थीगण सं॰ 3 और 4 अर्थात् रासोमनी हेमरोम और मुन्नी मुर्मु को भी, चूँकि वे महिलाएँ थी और प्रहार में भाग नहीं लिया था, भारतीय दंड संहिता की धारा 304 भाग-2 के अधीन 3 वर्षों और भारतीय दंड संहिता की धारा 147 के अधीन 1 वर्ष का सश्रम कारावास भुगतने का दंड दिया था।

2. अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह निवेदन किया गया है कि मुख्य अभियुक्त सत्तो हेमरोम, जिसके विरुद्ध यह प्रत्यक्ष अभिकथन है कि उसने मृतक के मस्तक और उसके घुटने पर भी

उसकी मृत्यु कारित करते हुए टांगी से प्रहार किया था, पहले से ही 10 वर्षों से अधिक जेल अभिरक्षा में है और इस प्रकार वह दंड की अवधि से अधिक अभिरक्षा में रहा है। जहाँ तक अन्य अपीलार्थीगण का संबंध है, स्वयं विचारण न्यायालय ने यह पाया है कि दो महिला अपीलार्थीगण रासोमनी हेमरोम और मुन्नी मुर्मु ने मृतक श्यामलाल मरांडी पर प्रहार करने में भाग नहीं लिया था और फिर भी विचारण न्यायालय ने उन्हें दोषसिद्ध किया क्योंकि पक्षों के बीच पहले से ही दुश्मनी का साक्ष्य है और मामला एवं विरोधी मामला चल रहा है। उन्होंने आगे निवेदन किया है कि अभिकथन यह है कि दो व्यक्तियों, रामधनी हेमरोम और मिहिलाल हेमरोम द्वारा मृतक पर लाठी से प्रहार किया गया था और उन दोनों को भारतीय दंड संहिता की धारा 304 भाग-2 के अधीन और भारतीय दंड संहिता की धारा 148 के अधीन दोषसिद्ध किया गया है। अंगूठे के सिरे पर उपहति का सकारात्मक साक्ष्य नहीं है। मामले के उस दृष्टि में, अपीलार्थी सं॰ 1, रामधनी हेमरोम, अन्य दो अभियुक्तों वासुदेव भंडारी और हिनोद हेमरोम, जिन्हें विचारण न्यायालय द्वारा दोष मुक्त कर दिया गया है, की तरह संदेह का लाभ पाने का हकदार है।

3. राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने प्रार्थना का विरोध किया है और निवेदन किया है कि अभियोजन गवाहों के साक्ष्य के मुताबिक सारे चारों अभियुक्तों ने श्याम लाल मरांडी पर प्रहार किया था और इस प्रकार भारतीय दंड संहिता की धारा 304 भाग-2 के अधीन और भारतीय दंड संहिता की धारा 148 के भी अधीन सही दोषी पाया गया है।

4. दोनों पक्षों को सुनने और अभिलेख का परिशीलन करने के बाद मैं पाता हूँ कि अभियोजन का मामला सूचक रमनी मरांडी द्वारा दिए गए फर्दबयान के आधार पर शुरू किया गया था जिसे बाद में अ॰ सा॰ 8 के तौर पर परीक्षित किया गया था जिसमें उसने कथन किया कि दिनांक 23.11.1990 को सूचक रमनी मरांडी मौजा बागजोरी, पी॰ एस॰ मिहिजाम, जामतारा स्थित अपने पुराने घर से लकड़ी का दरवाजा लाने गयी थी जब अभियुक्त रासोमनी और मुन्नी मुर्मू द्वारा आपत्ति जतायी गयी थी। उसके कथनानुसार, जब उसने यह प्राख्यान करते हुए विरोध किया कि घर उसका था। इस पर महिला अभियुक्त द्वारा लाठी से सूचक पर प्रहार किया गया था। उसके शोर मचाने पर उसका पति श्यामलाल मरांडी उसे बचाने वहाँ आया। जिस पर अभियुक्त रामधनी, सत्तो, मिहिलाल भिन्न-भिन्न हथियार लेकर घटनास्थल पर आए और उसके पति पर प्रहार करने लगे। उसने आगे कथन किया कि सत्तो हेमरोम ने टांगी से उसके पति के मस्तक और घुटने पर प्रहार किया। जबकि रामधनी और मिहिलाल ने लाठी से प्रहार किया। तत्पश्चात् वे भाग गाए। घायल को अस्पताल ले जाया गया और बाद में उसकी मृत्यु हो गयी।

5. उक्त फर्दबयान के आधार पर पुलिस ने भारतीय दंड संहिता की धारा 147, 148, 149, 341, 323 और 307 के अधीन मामला दर्ज किया और बाद में मृत्यु होने पर भारतीय दंड संहिता की धारा 302 जोड़ी गयी थी। अन्वेषण के बाद पुलिस ने भारतीय दंड संहिता की धारा 147, 148, 149, 324, 323, 379, 307 और 302 के अधीन आरोप पत्र दाखिल किया।

6. चूँकि मामला केवल सत्र न्यायालय द्वारा विचारण योग्य था, विद्वान मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी ने मामले का संज्ञान लेने के बाद इसे सत्र न्यायालय को सुपुर्द कर दिया और सारे अभियुक्तगण के विरुद्ध आरोप विरचित करने के बाद सत्र न्यायालय ने विचारण शुरू किया और अंततः विद्वान सत्र न्यायाधीश ने अपीलार्थीगण को पूर्वोक्तानुसार दोषी पाया और उन्हें दोषसिद्ध किया।

7. यह प्रतीत होता है कि विचारण के क्रम में अभियोजन ने 14 गवाहों का परीक्षण किया है। अ॰ सा॰ 1 सोनालाल मरांडी, अ॰ सा॰ 2 विनोद सोरेन, अ॰ सा॰ 3 सुरु मरांडी, अ॰ सा॰ 4 डॉ॰ अरुण कुमार चक्रवर्ती, अ॰ सा॰ 5 अनिल मुर्मू, अ॰ सा॰ 6 पंचानंद भंडारी, अ॰ सा॰ 7 गुही राम भंडारी, अ॰

सा॰ 8 रमनी मरांडी, सूचक, अ॰ सा॰ 9 गोबर्धन भंडारी, अ॰ सा॰ 10 डॉ॰ तपन कुमार विश्वास जिन्होंने मृतक के मृत शरीर का शव परीक्षण संचालित किया, अ॰ सा॰ 11 शंकर प्रसाद धुया, अ॰ सा॰ 12 लाखी नारायण अ॰ सा॰ 13 जनार्दन सिंह और अ॰ सा॰ 14 प्रदीप कुमार वर्मा हैं।

8. यह ध्यान में लेना महत्वपूर्ण है कि सूचक ने अपने साक्ष्य में अपने मामले का समर्थन किया है और कथन किया है कि घटना की तिथि पर जब वह जलावन के लिए लकड़ी लाने अपने पुराने घर गयी थी, तब महिला अभियुक्त रासोमनी और मुन्नी वहाँ आयीं और आपत्ति की जिस पर दोनों महिलाओं द्वारा उस पर प्रहार किया गया था। हल्ला सुनने पर, उसका पति श्याम लाल मरांडी उसे बचाने वहाँ आया। जिस पर अभियुक्तगण रामधनी, सत्तो, मिहिलाल घटना स्थल पर टांगी और लाठी से लैस होकर आए। अभियुक्त सत्तो हेमरोम के हाथ में टांगी थी जबकि अन्य अभियुक्तों के हाथों में लाठी थी। यह कथन किया गया है कि सत्तो हेमरम ने मृतक श्यामलाल मरांडी के मस्तक पर टांगी से प्रहार किया और पुनः उसके दाएं पैर के घुटने पर टांगी से प्रहार किया जबकि रामधनी, सत्तो, मिहिलाल ने उस पर लाठी बरसायी। अन्यों ने प्रहार में भाग नहीं लिया था।

9. समरुप बयान अन्य चश्मदीद गवाहों द्वारा दिया गया है अर्थात् अ॰ सा॰ 1 से 7 तक ने यही कथन किया है कि सतो हेमरम ने कुल्हाड़ी से एक प्रहार मस्तक पर और दूसरा प्रहार दांए पैर के घुटने पर किया जबकि रामधनी और मिहिलाल ने लाठी से प्रहार किया।

10. डॉक्टर अ॰ सा॰ 4, डॉ॰ अरुण कुमार चक्रवर्ती, जिन्होंने मृतक का परीक्षण किया, ने मृतक के शरीर पर केवल तीन उपहतियाँ पायी:-

(i) पॉपलिटियल के इर्द-गिर्द दाएं घुटने के जोड़ के पश्चातवर्ती पहलू पर मुख्य रक्त नलिकाओं और ढाँचों को काटते हुए मांसपेशी तक गहरा 3" x 1" का तिरछा खून बहता कटा जख्म;

(ii) दाएं अंगूठे के सिरे के हथेली पहलू पर मांसपेशी तक गहरा 3" x 1/2" विदीर्ण जख्म;

(iii) सिर की खाल के मध्य में खाल गहरा x 21/2" x 1/2" आड़ी तिरछी मार्जिन वाला उर्ध्व विदीर्ण जख्म।

डॉक्टर के मतानुसार उपहति सं॰ 1 गंभीर प्रकृति की है और अन्य उपहतियाँ सरल प्रकृति की है। उपहति रिपोर्ट को प्रदर्श-1 के तौर पर प्रमाणित किया गया था।

11. शव परीक्षण के बाद, डॉ॰ तपन कुमार विश्वास, अ॰ सा॰ 10 ने मृतक के मृत शरीर पर निम्नलिखित उपहतियाँ पायी:-

(i) सिर की खाल पर सिला हुआ 2" x1/2" का जख्म;

(ii) बाएं मस्तक पर 8" x 1/2" सिला हुआ जख्म।

डॉक्टर के मतानुसार मृत्यु उपहतियों के कारण हुई थी जो मृत्यु पूर्व प्रकृति की थी।

12. इस प्रकार यह पाया गया है कि केवल एक व्यक्ति जिसने मृतक श्यामलाल मरांडी पर प्रहार किया था, सत्तो हेमरोम है यद्यपि गवाहों द्वारा कथन किया गया है कि रामधनी, मिहिलाल ने लाठी से प्रहार किया था लेकिन यह कहना मुश्किल है कि किसने दाएं अंगूठे के सिरे पर उपहति कारित की थी जिसे डॉक्टर द्वारा शव परीक्षण के दौरान नहीं पाया गया था।

13. मामले के उस दृष्टिकोण में, मेरे मतानुसार भारतीय दंड संहिता की धारा 304 भाग 2 के अधीन और भारतीय दंड संहिता की धारा 148 के अधीन भी अभियुक्त अपीलार्थी सत्तो हेमरोम की दोषसिद्धि बनायी रखी जाती है और वह उन दोनों आधारों पर दोषी पाया गया है।

लेकिन स्वीकृत रूप से, अपीलार्थी सं॰ 3 और 4 रासोमनी हेमरोम और मुन्नी मुर्मू ने मृतक पर प्रहार करने में भाग नहीं लिया था, अत: उनकी दोषसिद्धि विधि की दृष्टि में दोषपूर्ण है और अपीलार्थी सं॰ 1 रामधनी हेमरोम की दोषसिद्धि भी संदेहास्पद है। चूँकि ऐसा कहना मुश्किल है कि क्या उसने अंगूठे पर उपहति कारित की थी। मामले के उस दृष्टिकोण में अपीलार्थी सं॰ 1 रामधनी हेमरोम, अपीलार्थी सं॰ 3 रासोमनी हेमरोम और अपीलार्थी सं॰ 4 मुन्नी मुर्मू को उनके विरुद्ध लगाए गए आरोपों से मुक्त किया जाता है।

14. अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा निवेदन किया गया है कि अपीलार्थी सं॰ 2 सत्तो हेमरोम, जिसे भारतीय दंड संहिता की धारा 304 भाग-2 के अधीन 10 वर्षों का सश्रम कारावास और भारतीय दंड संहिता की धारा 148 के अधीन 3 वर्षों का सश्रम कारावास भुगतने का दंड दिया गया है जिन्हें साथ-साथ चलने का निर्देश दिया गया है, पहले से ही 10 वर्षों से अधिक समय से जेल में बना हुआ है। चूँकि वह दिनांक 24.11.1990 से 5.10.1994 तक विचारण के दौरान अभिरक्षा में था और निर्णय के बाद दिनांक 2.6.2001 से आज की तिथि तक पुन: अभिरक्षा में रह रहा है। मामले के उस दृष्टिकोण में, यदि वह विचारण और अपील के दौरान पहले ही अपना दंड पूरा कर चुका है, विचारण न्यायालय इसे सत्यापित करेगा और यदि उसने दंड पहले ही पूरा कर लिया है, तब विचारण न्यायालय उसे तुरन्त निर्मुक्त किए जाने का आदेश पारित करेगा। अपीलार्थी सं॰ 1, रामधनी हेमरोम, अपीलार्थी सं॰ 3 रासोमनी हेमरोम और अपीलार्थी सं॰ 4 मुन्नी मुर्मू जमानत पर है, उन्हें अपने जमानत पत्र के बंधनों से निर्मुक्त किया जाता है।

15. तद्नुसार, यह अपील अंशत: अनुज्ञात की जाती है।

माननीय प्रदीप कुमार, न्यायमूर्ति

लक्ष्मण गोप उर्फ यादव

बनाम

झारखण्ड राज्य

Criminal Appeal (SJ) No. 226 of 2000. Decided on 3rd February, 2010.

एस॰ टी॰ सं॰ 51/1994/एस॰ टी॰ सं॰ 11/2000 में श्री राम स्नेही ठाकुर, द्वितीय अपर सत्र न्यायाधीश, बेरमो, तेनुघाट द्वारा पारित दिनांक 30.5.2000 के दोषसिद्धि के निर्णय एवं दिनांक 7.6.2000 के दंडादेश के विरुद्ध।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धारा 304, भाग-II—हत्या की कोटि में न आने वाला आपराधिक मानव वध–7 वर्षों के सश्रम कारावास का दंड अधिनिर्णीत–केवल सूचक द्वारा अभियोजन मामला समर्थित–चिकित्सीय साक्ष्य द्वारा अभियोजन मामला संपुष्ट नहीं–स्वयं अपने भ्राता द्वारा सूचक के कथन का खंडन–अन्य गवाह जो उपस्थित थे उनका परीक्षण नहीं किया गया–चश्मदीद गवाहों का टी॰ आई॰ पी॰ संचालित नहीं किया गया–अभियोजन का मामला संदेहास्पद–अपीलार्थी को संदेह का लाभ दिया गया–दोषसिद्धि एवं दंडादेश अपास्त–अपील अनुज्ञात। (पैरा 13 से 16)

अधिवक्तागण.–Mr. Hemant Kumar Shikarwar, For the Appellant; Mr. I.S. Gupta, For the State.

न्यायालय द्वारा.–अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता एवं राज्य के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

2. वर्तमान अपील एस॰ टी॰ सं॰ 51/1994/एस॰ टी॰ सं॰ 11/2000 में श्री राम स्नेही ठाकुर, द्वितीय अपर सत्र न्यायाधीश, बेरमो, तेनुघाट द्वारा पारित दिनांक 30.5.2000 के दोषसिद्धि के आदेश एवं दिनांक 7.6.2000 के दंडादेश के विरुद्ध दाखिल की गयी है जिस निर्णय द्वारा एकमात्र अपीलार्थी को भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 304 (II) के अधीन अपराध का दोषी पाया गया है और 7 वर्षों का सश्रम कारावास भुगतने का दंड दिया गया है।

3. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा निवेदन किया गया है कि अपीलार्थी की दोषसिद्धि केवल सूचक, अ॰ सा॰ 4 कौलेश्वर पासवान के इस साक्ष्य के आधार पर की गयी है कि मृतक द्वारा न्यायिकेतर संस्वीकृति की गयी थी जो संभव नहीं है और जिसका खंडन स्वयं उसके सहोदर भाई अ॰ सा॰ 5 द्वारा किया गया है। आगे, डॉक्टर का बयान कि ऐसी उपहति के साथ पीड़ित को चैतन्य नहीं हो सकता है और बयान नहीं दे सकता है, पर विचारण न्यायालय द्वारा विचार नहीं किया गया था और सूचक का बयान केवल अपीलार्थी को झूठा आलिप्त करने के लिए है जिसपर विश्वास नहीं किया जा सकता है और इसलिए अवर न्यायालय द्वारा पारित दोषसिद्धि के निर्णय एवं दंडादेश विधि की दृष्टि में दोषपूर्ण है और अपास्त करने योग्य है।

4. दूसरी ओर, राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने अभियोजन के मामले का समर्थन किया है और कथन किया है कि सूचक के साक्ष्य जिसका कथन उसने फर्दबयान और न्यायालय में भी किया था कि उसके पिता कुछ समय के लिए होश में आया था और अपीलार्थी का नाम दिया था कि उसने उसपर प्रहार किया था, से यह स्पष्ट है और इस प्रकार दोषसिद्धि पूर्णतः सही है और इस न्यायालय का हस्तक्षेप अपेक्षित नहीं है।

5. दोनों पक्षों को सुनने के बाद और अभिलेख पर लाए गए साक्ष्य के परिशीलन के बाद, मैं पाता हूँ कि अभियोजन का मामला सूचक, अ॰ सा॰ 4, कौलेश्वर पासवान द्वारा दिनांक 16.11.1993 को दोपहर 12 बजे दिए गए फर्दबयान के आधार पर शुरू किया गया था जिसमें कथन किया गया था कि दिनांक 15.11.1993 को दिन में लगभग 11.30 बजे जब वह स्वांग अस्पताल पहुँचा, तब उसे मालूम हुआ कि उनके पिता, मोहन राम, जो स्वांग अस्पताल में चालक था, पर बैंक ऑफ इंडिया, स्वांग शाखा के सामने, उपहति कारित करते दो व्यक्तियों द्वारा प्रहार किया गया था और वह अस्पताल में बेहोश पड़ा हुआ है। उसे देर रात तक होश नहीं आया लेकिन मध्य रात्रि 12 बजे उसके पिता को होश आया और उसने उससे कहा कि लक्ष्मण गोप, जो स्वांग का निवासी और गोविन्द यादव का पुत्र है, एक व्यक्ति के साथ आया और उनके घर में राशन आपूर्त्ति के संबंध में पैसा मांगा और जब उसके पिता ने कहा कि वह बाद में पैसा देगा, तब उक्त लक्ष्मण गोप द्वारा उसपर प्रहार किया गया। वह सड़क पर गिर गया और गंभीर रूप से घायल हो गया। तब वे भाग गए। आज दिनांक 16.11.1993 को जब उसके पिता को उपचार के लिए राँची ले जाया जा रहा था, रास्ते में उसकी मृत्यु हो गयी।

6. उक्त प्राथमिकी के आधार पर, पुलिस ने अभियुक्त के विरुद्ध भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 302/34 के अधीन मामला दर्ज किया और अन्वेषण के बाद आरोप-पत्र दाखिल किया। चूँकि मामला केवल सत्र न्यायालय द्वारा विचारण योग्य था, विद्वान सी॰ जे॰ एम॰ ने मामला सत्र न्यायालय को सुपुर्द कर दिया और अंततः मामला द्वितीय अपर सत्र न्यायाधीश, बेरमो, तेनुघाट द्वारा विचारित किया गया जिन्होंने अपीलार्थी को दोषी पाया और उसे पूर्वोक्तानुसार दोषसिद्ध किया गया और दंड दिया गया।

7. यह प्रतीत होता है कि विचारण के क्रम में, अभियोजन ने अपना मामला सिद्ध करने के लिए 6 गवाहों का परीक्षण किया है।

अ० सा० 1 सब्रा खातुन है।

अ० सा० 2 डॉ० उपेन्द्र प्रसाद है जिन्होंने शव-परीक्षण संचालित किया था।

अ० सा० 3 हरि सिंह है।

अ० सा० 4 कौलेश्वर पासवान, मामले का सूचक है।

अ० सा० 5 ओम प्रकाश पासवान है।

अ० सा० 6 योगेन्द्र प्रसाद, मामले का अन्वेषण अधिकारी है।

8. अ॰ सा॰ 1 ने न्यायालय में कथन किया है कि घटना की तिथि अर्थात् 15.11.1993 को जब वह डाकखाना जा रही थी, तब उसने देखा कि कोई मोहन राम से पूछ रहा था कि क्यों वह उसे हमेशा वापस भेज रहा है और पैसा नहीं दे रहा है। तब मोहन राम ने कहा कि वह अगले महीने पैसा देगा। तब दूसरे व्यक्ति ने मोहन पर दो प्रहार किया, एक उसके 'पंजरा' पर और दूसरा उसके गाल पर जिससे मोहन राम गिर गया। तब हल्ला हुआ। उसने वहाँ उपस्थिति लड़कों से अभियुक्त को पकड़ने को कहा लेकिन दोनों लड़के कार्यालय की ओर भाग गए। तब वह अस्पताल गयी थी और नर्स से कहा कि स्टाफ चालक को कुछ अनजान व्यक्तियों द्वारा पीटा गया है। घायल उन अनजान व्यक्तियों का नाम बतायेगा यदि उसे होश आया। तत्पश्चात् उसने अपनी चिट्ठी डाली और अपना काम करने चली गयी। उसने कथन किया है कि वह उन व्यक्तियों को नहीं पहचान सकी थी जिन्होंने मोहन राम पर प्रहार किया था। वह न्यायालय में उपस्थित अभियुक्त को पहचान नहीं सकी थी। अपने प्रति परीक्षण में उसने कथन किया कि जब अन्य व्यक्तियों ने मोहन राम के पेट पर प्रहार किया तब उसे दौरा पड़ने लगा। तब उसने मोहन राम के गाल पर थप्पड़ मारा जिससे वह जमीन पर गिर गया। अपने प्रति-परीक्षण के पैरा-11 पर उसने कथन किया है कि घटना के समय उसने पाया कि मोहन राम नशे में था।

9. अ॰ सा॰ 2 डॉक्टर उपेन्द्र प्रसाद हैं, जिन्होंने न्यायालय में कथन किया है कि उसने दिनांक 16.11.1993 को सांय 4 बजे मृतक का परीक्षण किया और ऑक्सीपीटल क्षेत्र में 2" x 1/2" x सिर पर के त्वचा तक गहरा विदीर्ण घाव पाया। चीड़-फाड़ करने पर, उसने ऑक्सीपीटल अस्थि में प्रैक्चर और मेनिन्जेस के अंदर ऑक्सीपीटल क्षेत्र में हेमाटोमा पाया। उसने विभिन्न आकारों वाले अनेक घावों के साथ लीवर सिरोसिस पाया। उसके मत में पूर्वोक्त उपहतियाँ तेज धार वाले पत्थर पर गिरने से संभव है। उसने प्रदर्श-1 के तौर पर चिन्हित शव परीक्षण रिपोर्ट को प्रमाणित किया। प्रति-परीक्षण में उसने कथन किया है कि सिरोसिस लीवर की बीमारी है जो लगातार शराब के सेवन से कारित होती है और उनके मत में मृतक शराब का आदी था। उसने प्रति-परीक्षण में स्वीकार किया कि ऑक्सीपीटल क्षेत्र का जख्म सिल दिया गया था और मेनिन्जेस में खून के जमने के संबंध में सर्जरी नहीं की गयी थी जो मृतक की बेहोशी का कारण था। उसके मत में, यदि सर्जरी नहीं की जाती है, मेनिन्जेस में जमे खून वाला मरीज कभी होश में नहीं आएगा और सर्जरी में यांत्रिक विधि द्वारा जमा खून ब्रेन से हटाया जाता है।

10. अ॰ सा॰ 3 हरि सिंह, मृत्यु समीक्षा का गवाह है और उसने प्रदर्श-2 के तौर पर चिन्हित मृत्यु समीक्षा रिपोर्ट पर हस्ताक्षर प्रमाणित किया है।

11. अ॰ सा॰ 4, कौलेश्वर पासवान मामले का सूचक है और उसने कथन किया है कि दिनांक 15.11.1993 को जब वह स्वांग अस्पताल आया तब उसने जाना कि दो व्यक्तियों ने बैंक ऑफ इंडिया शाखा के निकट उसके पिता मोहन राम पर प्रहार किया है और उसका पिता अस्पताल में बेहोश पड़ा

हुआ है। उसने मस्तक पर उपहति पायी है। उसने कथन किया है कि मध्य रात्रि लगभग 12 बजे उसके पिता को होश आया और उसने उसे लक्ष्मण गोप, पुत्र गोविन्द यादव, जो राशन आपूर्ति करता है, ने अन्य व्यक्तियों के साथ उसपर प्रहार किया था, चूँकि वह 200/- रुपया नहीं दे पाया था जो उसपर बकाया था, क्योंकि उसके पास पैसा नहीं था। उसके बाद वह दिनांक 16.11.1993 को फिर बेहोश हो गया और जब वे लोग उसके पिता को उपचार के लिए राँची ले जा रहे थे, रास्ते में उसकी मृत्यु हो गयी। तब उसने पुलिस को अपना बयान दिया। उसने प्रदर्श-3 के तौर पर चिन्हित फर्दबयान पर अपना हस्ताक्षर प्रमाणित किया है। उसने न्यायालय में अभियुक्त को पहचाना। अपने प्रति-परीक्षण में, पैरा 8 पर, उसने कथन किया है कि उसके पिता का इलाज एक डॉक्टर और पाँच नर्सें कर रहे थे और वह उसके पिता के होश में आने की प्रतीक्षा कर रहे थे। उसने कथन किया है कि जब उसके पिता को होश आया, तब वह डॉक्टर को सूचित करने गया, लेकिन डॉक्टर उपलब्ध नहीं था। पैरा 10 पर उसने कथन किया है कि वह स्वयं पुलिस थाना गया था और घटना की सूचना दी थी। अन्वेषण अधिकारी अस्पताल आया था, लेकिन उसके पिता को बेहोश पाकर, वह वापस चला गया। पैरा 14 पर, उसने स्वीकार किया है कि जब उसके पिता को होश आया, तब अन्य नर्स उसके पिता के पास आयी थीं। उसने यह भी स्वीकार किया है कि डॉक्टर सिन्हा भी उस समय ड्यूटी पर थें। उसने यह भी स्वीकार किया कि उसके पिता को अन्य मरीजों के साथ वार्ड में रखा गया था।

12. अ॰ सा॰ 5, ओम प्रकाश पासवान, सूचक का भाई है और मृतक मोहन राम का पुत्र है। उसने कथन किया है कि दिनांक 15.11.1993 को यह सुनकर कि उसका पिता प्रहार के कारण बेहोश हो गया है, वह दोपहर 3.30 बजे अस्पताल आया और अपने पिता को बेहोश पाया। वह अपने पिता के साथ पूरी रात रूका रहा और पैरा 4 में उसने कथन किया कि उसे कभी होश नहीं आया था और दिनांक 16.11.1993 को जब उसे राँची ले जाया जा रहा था, रास्ते में उसकी मृत्यु हो गयी। लेकिन, उसने कथन किया है कि उसने सुना था कि लक्ष्मण गोप द्वारा उसके पिता पर प्रहार किया गया था, क्योंकि उसके विरुद्ध उसके द्वारा आपूर्त्ति किए गए राशन का पैसा बकाया था।

13. अ॰ सा॰ 6 अन्वेषण अधिकारी योगेन्द्र प्रसाद है, जिसने कथन किया है कि उसने दिनांक 16.11.1993 को अ॰ सा॰ 4 सूचक का बयान दर्ज किया था और भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 302/34 के अधीन मामला दर्ज किया था और अन्वेषण के बाद आरोप-पत्र दाखिल किया था। उसने फर्दबयान पर अपना हस्ताक्षर और लेखन प्रमाणित किया है। प्राथमिकी प्रदर्श 3 के तौर पर चिन्हित था। औपचारिक प्राथमिकी प्रदर्श 4 के तौर पर चिन्हित की गयी थी। उसने मृत्यु समीक्षा रिपोर्ट भी प्रमाणित किया है और कथन किया है कि गवाहों के परीक्षण और उच्चतर अधिकारियों द्वारा मामले के पर्यवेक्षण के बाद उसने मामला में आरोप पत्र दाखिल किया था। प्रति-परीक्षण में उसने कथन किया है कि अन्वेषण के दौरान चश्मदीद गवाहों ने कथन किया है कि मृतक के पेट पर प्रहार किया गया था जिसके चलते वह बेहोश हो गया और जमीन पर गिर गया। पैरा 11 में उसने कथन किया है उसने टेलीफोन पर संदेश पाया कि एक व्यक्ति अस्पताल में बेहोश पड़ा है, लेकिन उसने मामले के डॉक्टर और नर्सों का बयान नहीं लिया था। उसने पैरा 12 में स्वीकार किया है कि उसने चश्मदीद गवाह सब्रा खातुन का टी॰ आई॰ पी॰ संचालित नहीं किया था।

14. इस प्रकार, साक्ष्यों से यह प्रतीत होता है कि केवल सूचक अ॰ सा॰ 4 ने अभियोजन मामले का समर्थन किया है कि घायल मृतक को मध्य रात्रि लगभग 12 बजे होश आया था जिसे, डॉक्टर अ॰ सा॰ 2, द्वारा समर्थित नहीं किया गया है जिसने कथन किया है कि चूँकि पीड़ित को ऑक्सीपीटल क्षेत्र में उपहति हुई थी और ऑक्सीपीटल क्षेत्र के मेनिन्जेस में खून जम गया था, उसे तबतक होश नहीं आ सकता था जबतक कि उसकी सर्जरी नहीं की जाती और यांत्रिक विधि से ऑक्सीपीटल क्षेत्र के मेनिन्जेस से जमा खून हटाया नहीं जाता। इसके अतिरिक्त, सूचक का खंडन स्वयं उसके भाई अ॰ सा॰

5 द्वारा किया गया है, जिसने अपने मुख्य परीक्षण के पैरा 4 में कथन किया है कि वह लगातार अस्पताल में था और उसके पिता को होश नहीं आया था। अन्य गवाहों अर्थात् सूचक की माता, जिसे अपने दोनों पुत्रों के साथ पूरी रात उपस्थित बताया जाता है, का इस मामले में परीक्षण नहीं किया गया है और न ही डॉक्टर या अन्य नर्सों, जो वहाँ उपस्थित थे, को परीक्षण किया गया है और न हीं सिद्ध किया गया है कि मृतक को मध्य रात्रि लगभग 12 बजे होश आया था।

15. अत: अभियोजन का मामला संदेहास्पद हो जाता है, और मामले की इस दृष्टि में, अपीलार्थी को संदेह का लाभ दिया जाता है और उसे उसके विरुद्ध लगाए गए आरोप से मुक्त किया जाता है। आगे, एस॰ टी॰ सं॰ 51/1994/ एस॰ टी॰ सं॰ 11/2000 में श्री राम स्नेही ठाकुर, द्वितीय अपर सत्र न्यायाधीश, बेरमो, तेनुघाट द्वारा पारित दिनांक 30.5.2000 के दोषसिद्धि के निर्णय एवं दिनांक 7.6.2000 के दंडादेश को अपास्त किया जाता है।

16. परिणामस्वरूप, अपील अनुज्ञात की जाती है। चूँकि अपीलार्थी जमानत पर है, उसे जमानत पत्र के बंधन से निर्मुक्त किया जाता है।

माननीय डी॰ एन॰ पटेल, न्यायमूर्ति

अरुण कुमार सिंह

बनाम

झारखण्ड राज्य एवं अन्य

WP(C) No. 1608 of 2008. Decided on 9th February, 2010.

छोटानागपुर अभिधृति अधिनियम, 1908—धारा 71-A–प्रत्यावर्तन–धारा 71-A के अधीन विशेष अधिकारी द्वारा पारित आदेश ने अंतिमता प्राप्त की क्योंकि किसी के द्वारा इसके विरुद्ध अपील दाखिल नहीं की गयी थी और याची द्वारा भी इसका सम्यक् रूप से अनुपालन किया गया था–उप-कमिश्नर द्वारा एकमुश्त सामान्य आदेश पारित किया गया जिसके द्वारा विशेष अधिकारी द्वारा पारित समान स्थिति के ऐसे सारे आदेशों को अपास्त कर दिया गया है और राजस्व प्रविष्टियों में याची का नाम नामान्तरित नहीं किया गया था–नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतो का यह घोर उल्लंघन है–उप-कमिश्नर द्वारा पारित आदेश की प्रकृति याची को ज्ञात नहीं है–जब कभी धारा 70A के अधीन किसी अधिकारी द्वारा कोई आदेश अवैधतापूर्वक पारित किया जाता है, तब उसे अपील में अपास्त किया जाना चाहिए अथवा सरकार द्वारा स्वप्रेरणा पर इसका पुनरीक्षण किया जा सकता है–लेकिन, प्रत्येक मामले के लिए प्रभावित पक्षों को सुनवाई का अवसर देते हुए पृथक आदेश देना होगा–S.A.R. मामले में धारा 71A के अधीन पारित आदेश की उपेक्षा उप-कमिश्नर नहीं कर सकता है–नामान्तरण मामले में अंचल अधिकारी द्वारा पारित आक्षेपित आदेश अभिखंडित–याचिका अनुज्ञात।(पैरा 4 एवं 5)

अधिवक्तागण.–Mr. A.K. Sahni, For the Petitioner; Mr. Manjul Prasad, For the Respondents.

आदेश

वर्त्तमान रिट याचिका मुख्य रूप से नामान्तरण केस सं॰ 8075 (R)-27 वर्ष 2006-07 में, दिनांक 28.12.2007 को अंचलाधिकारी, राँची द्वारा पारित आदेश के विरुद्ध दाखिल की गई है।

2. याची की ओर से उपस्थित अधिवक्ता ने निवेदन किया कि वर्तमान याची के पिता ने वर्ष 1961 में प्रश्नगत संपत्ति खरीदी थी। तत्पश्चात, बँटवारा हुआ और प्रश्नगत संपत्ति याची को संयुक्त हिन्दु परिवार के सहदायिक के तौर पर मिली। तत्पश्चात् किसी पत्नु ओरांव द्वारा छोटानागपुर अभिधृति अधिनियम, 1908 की धारा 71A के अधीन याचिका दाखिल की गयी थी और तत्पश्चात् अनुसूचित क्षेत्र विनियमन केस सं॰ 14 वर्ष 1998-99 के तौर पर मामला दर्ज किया गया था जिसे अंतत: अनुसूचित क्षेत्र विनियमन, राँची के अधीन विशेष अधिकारी, सदर राँची द्वारा दिनांक 21.1.2000 के आदेश के तहत विनिश्चित किया गया था। उक्त आदेश याचिका के मेमो के परिशिष्ट-1 पर है। इस आदेश ने अंतिमता प्राप्त कर ली है क्योंकि न तो मूल याची और न हीं किसी अन्य द्वारा कोई अपील दाखिल की गयी है और तत्पश्चात् वर्तमान याची ने राजस्व अभिलेख में अपने नाम में नामान्तरण की प्रविष्टि हेतु आवेदन दिया है जिसे अंचल अधिकारी, राँची द्वारा दिनांक 28.12.2007 के आदेश के तहत मुख्यत: इस आधार पर खारिज कर दिया गया है कि दिनांक 4.11.2004 के पत्र सं॰ 725 में उप-कमिश्नर, राँची द्वारा पारित कोई एकमुश्त सामान्य आदेश है लेकिन इस आदेश की एक प्रति कभी भी याची को नहीं दी गयी थी। याची के अधिवक्ता द्वारा यह भी निवेदन किया गया है यहाँ तक की प्रत्यर्थीगण नहीं जानते हैं कि वह पत्र क्या है, यद्यपि इस मामले में प्रत्यर्थीगण द्वारा जवाब दाखिल किया गया है लेकिन तथाकथित उप-कमिश्नर, राँची, द्वारा पारित पूर्वोक्त एकमुश्त सामान्य आदेश को उपाबद्ध भी नहीं किया गया है। वह आदेश क्या है, कोई नहीं जानता है। याची के अधिवक्ता द्वारा यह भी निवेदन किया गया है, कि अनुसूचित क्षेत्र विनियमन केस सं॰ 14 वर्ष 1998-99 में दिनांक 21.1.2000 को परिशिष्ट-1 के तौर पर पारित आदेश को बिना कोई अपील हुए किसी एकमुश्त आदेश द्वारा दर किनार नहीं किया जा सकता है और ऐसे सारे आदेशों को तथाकथित उप-कमिश्नर, राँची द्वारा अभिखंडित अथवा अपास्त नहीं किया जा सकता है और इसलिए दिनांक 28.12.2007 को अंचल अधिकारी द्वारा पारित आदेश पूर्णत: विवेक रहित है और नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों के घोर उल्लंघन में है और इसलिए यह अभिखंडित किए जाने योग्य है।

3. मैंने प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता को सुना है जिन्होंने निवेदन किया हैं कि अधिकारी, जिसने परिशिष्ट-1 के तौर पर आदेश पारित किया है, जो अनुसूचित क्षेत्र विनियमन के अधीन विशेष अधिकारी है, अनुसूचित क्षेत्र विनियमन मामले को विनिश्चित करने वाला प्राधिकृत अधिकारी नहीं है और इस कारण उप-कमिश्नर, राँची ने दिनांक 4.11.2004 के पत्र सं॰ 725 वाला आदेश पारित किया था कि ऐसे सारे आदेशों को अपास्त किया जाता है और इस कारण याची का नाम राजस्व प्रविष्टियों में नामान्तरित नहीं किया गया है और इस कारण याची द्वारा दी गयी याचिका को अंचल अधिकारी, राँची द्वारा नामान्तरण केस सं॰ 8075 (R)-27 वर्ष 2006-07 में दिनांक 28.12.2007 के आदेश के तहत सही खारिज कर दिया गया है और रिट याचिका खारिज किए जाने योग्य है।

4. दोनों पक्षों के अधिवक्ता को सुनने के बाद और मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए मैं नामान्तरण केस सं॰ 8075 (R)-27 वर्ष 2006-07 (याचिका के मेमो का परिशिष्ट-3) में अंचल अधिकारी, राँची द्वारा दिनांक 28.12.2007 के पारित आदेश को मुख्यत: निम्नलिखित तथ्यों और कारणों से अभिखंडित और अपास्त करता हूँ:-

(i) याची के अधिवक्ता द्वारा प्रतिवाद किया गया है कि याची के पिता ने वर्ष 1961 में प्रश्नगत संपत्ति खरीदी। तत्पश्चात् उक्त संपत्ति पर निर्माण किया गया था। उपरी ढाँचे का निर्माण किए जाने के बाद बँटवारा हुआ और प्रश्नगत संपत्ति को याची को संयुक्त हिन्दु परिवार का सहदायिक होने के नाते आबंटित किया गया है।

(ii) यह भी प्रतीत होता है कि किसी पतरु ओरावँ ने छोटानागपुर अभिधृति अधिनियम, 1908 की धारा 71-A के अधीन याचिका दाखिल की है।

(iii) यह प्रतीत होता है कि पूर्वोक्त याचिका को अनुसूचित क्षेत्र विनियमन केस सं० 14 वर्ष 1998-99 में परिवर्तित कर दिया गया था और इसे विशेष अधिकारी, अनुसूचित क्षेत्र विनियमन, राँची के दिनांक 21.1.2000 के आदेश (याचिका के मेमो का परिशिष्ट-1) द्वारा विनिश्चित किया गया था।

(iv) इस आदेश ने अंतिमता प्राप्त कर ली है क्योंकि मूल याची अथवा किसी अन्य द्वारा पूर्वोक्त आदेश के विरुद्ध कोई अपील दाखिल नहीं की गयी है। दूसरी ओर, आदेश का सम्यक् रूप से अनुपालन किया गया है क्योंकि याची द्वारा मूल याची को 8,000/- रुपये का भुगतान करने का निर्देश था और भुगतान कर भी दिया गया है और राशि की प्राप्ति की अभिस्वीकृति परिशिष्ट-2 पर है। इस प्रकार अनुसूचित क्षेत्र विनियमन केस सं० 14 वर्ष 1998-99 में दिनांक 21.1.2000 को विशेष अधिकारी, राँची द्वारा पारित आदेश न केवल अंतिमता प्राप्त कर चुका है बल्कि इसका सम्यक् रूप से अनुपालन भी किया गया है। याचिका के मेमों के परिशिष्ट-2 को देखते हुए, यह प्रतीत होता है कि तत्पश्चात याची ने राजस्व प्रविष्टियों में अपने नाम को अंतःस्थापित करने के लिए आवेदन दिया था और उसके आवेदन को नामान्तरण केस सं० 8075 (आर०)-27 वर्ष 2006-07 में परिवर्तित कर दिया गया है जिसे अंचल अधिकारी, सदर राँची द्वारा दिनांक 28.12.2007 के आदेश के तहत विनिश्चित किया गया था। इस आदेश और दिए गए कारणों को देखते हुए कि उप-कमिश्नर, राँची ने दिनांक 4.11.2004 के पत्र सं० 725 वाले एकमुश्त सामान्य आदेश पारित किया था कि विशेष अधिकारी, अनुसूचित क्षेत्र विनियमन, राँची द्वारा पारित समान स्थिति के ऐसे सारे आदेशों को अभिखंडित और अपास्त किया जाता है और इस कारण उसका नाम राजस्व प्रविष्टियों में नामान्तरित नहीं किया गया। यद्यपि अंचल अधिकारी, राँची द्वारा दिनांक 28.12.2007 के अपने आक्षेपित आदेश के तहत इस आदेश पर पूर्ण विश्वास किया गया है लेकिन उप-कमिश्नर, राँची द्वारा दिनांक 4.11.2004 को पारित आदेश अथवा पत्र की एक प्रति कभी भी याची को नहीं दी गयी थी। प्रति शपथपत्र में भी, इस पत्र, जिसपर आक्षेपित आदेश में पूर्ण विश्वास किया गया है, को उपाबद्ध नहीं किया गया है। इस प्रकार नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों का घोर उल्लंघन किया गया है। कोई नहीं जानता है कि उप-कमिश्नर, राँची द्वारा पारित दिनांक 4.11.2004 के पत्र सं० 725 वाला आदेश क्या है। उक्त आदेश याची के पक्ष में है या नहीं, याची को यह भी मालूम नहीं है। प्राधिकारियों को ध्यान में रखना चाहिए या कि जब कभी छोटानागपुर अभिधृति अधिनियम, 1908 की धारा 71A के अधीन किसी अधिकारी द्वारा कोई आदेश अवैधतापूर्वक पारित किया जाता है, तब इसे अपील में अभिखंडित अथवा अपास्त किया जाना चाहिए अथवा सरकार द्वारा स्वप्रेरणा पर इसका पुनरीक्षण किया जा सकता है लेकिन प्रत्येक मामले के लिए पृथक आदेश होना चाहिए और प्रभावित पक्षकारों को सुनवाई का अवसर दिए जाने के बाद ही ऐसा किया जाना चाहिए। वर्तमान मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों में, उप-कमिश्नर राँची, अनुसूचित क्षेत्र विनियमन केस सं० 14 वर्ष 1998-99 में छोटानागपुर अभिधृति अधिनियम की धारा 71-A के अधीन दिनांक 21.1.2000 को पारित आदेश की एकतरफा उपेक्षा नहीं कर सकता है। प्रति शपथपत्र को भी देखते हुए, यह भी स्पष्ट नहीं है कि उप-कमिश्नर, राँची द्वारा यह आदेश कैसे, किसके अनुदेश पर पारित किया गया था और क्या प्रासंगिक समय पर पक्षों को सुना गया था।

5. इस प्रकार, इन तथ्यों एवं परिस्थितियों और कारणों की दृष्टि में, मैं नामांतरण केस सं॰ 8075(R)-27 वर्ष 2006-07 में दिनांक 28.12.2007 को अंचल अधिकारी, राँची द्वारा पारित आदेश (याचिका के मेमो का परिशिष्ट-3) को एतद् द्वारा अभिखंडित और अपास्त करता हूँ और स्वतंत्रता दी जाती है कि प्रत्यर्थीगण विधि के अनुरुप कार्रवाई कर सकते हैं।

6. यह रिट याचिका अनुज्ञात की जाती है और निपटायी जाती है।

माननीय आर॰ आर॰ प्रसाद, न्यायमूर्ति

विद्या भूषण कुमार

बनाम

झारखण्ड राज्य एवं एक अन्य

W.P. (Cr.) No. 23 of 2010. Decided on 10th February, 2010.

अनुसूचित जातियाँ एवं अनुसूचित जनजातियाँ (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989—धारा 3(1)(x)–प्रतिष्ठा को कलुषित करते हुए गाली-गलौज और अपमान–प्राथमिकी के अभिखंडन हेतु आवेदन–सार्वजनिक रूप से किसी स्थान पर उसका अपमान करने अथवा उसे नीचा दिखाने के आशय के साथ उसकी जाति के नाम से अनुसूचित जनजाति के सदस्य को बुलाया जाना निश्चय ही धारा 3(1)(x) के अधीन अपराध है–यदि किसी अनुसूचित जाति अथवा अनुसूचित जनजाति के सदस्य को नीचा दिखाने की दृष्टि के साथ कोई टिप्पणी अथवा कथन करता है, वह अभियोजित किए जाने का जिम्मेवार होगा बशर्ते कि ऐसी टिप्पणी अथवा कथन आम जनता को दृश्यमान अथवा श्रव्य हो–यदि ऐसी टिप्पणियाँ अथवा कथन आम जनता को श्रव्य नहीं है, किसी को सार्वजनिक रूप से अपमानित अथवा अभित्रस्त करता हुआ नहीं कहा जा सकता है–कथन अभिकथित तौर पर दूरभाष वार्तालाप के दौरान, न कि सार्वजनिक रूप से, किए गए थे–प्राथमिकी अभिखंडित। (पैरा 14 से 19)

निर्णयज विधि.–(2001) All MR (Cri.) 219; (2008)8 SCC 435 : (2008)4 BLJ 1(SC)—Relied upon.

अधिवक्तागण.–Mr. Ajit Kumar, For the Petitioner; Mr. Jalisur Rahman, For the State; Mr. Sumeet Gadodia, For the Respondent No. 2.

आदेश

यह रिट याचिका याची के विरुद्ध अनुसूचित जातियाँ एवं अनुसूचित जनजातियाँ (अत्याचार निवारण) अधिनियम (यहाँ इसमें इसके बाद 'अधिनियम' के रूप में निर्दिष्ट) की धारा 3(1)(x) के अधीन दर्ज एस॰ सी॰/एस॰ टी॰ पी॰ एस॰ केस सं॰ 2 वर्ष 2010 (जी॰ आर॰ सं॰ 129 वर्ष 2010) की प्राथमिकी के अभिखंडन हेतु दाखिल की गयी है।

2. इस रिट याचिका को दाखिल किए जाने के पीछे तथ्य ये हैं कि प्रत्यर्थी सं॰ 2 ने प्राथमिकी दाखिल किया था जिसमें कथन किया गया था कि जब वह अपने दल के प्रतिनिधियों के साथ काँके रोड स्थित हॉट लिप्स के बैन्क्वेट हॉल में बैठककर रहा था, प्रतिनिधियों में से एक ने शिकायत किया की अंचल अधिकारी, विद्या भूषण कुमार (याची) ने कंबलों के वितरण में अनेक अनियमितताएँ कारित की है। इसपर जब सूचक बन्धु तिर्के, एक भूतपूर्व मंत्री, ने अंचल अधिकारी को दूरभाष पर इस संबंध में सूचना देने को कहा, वह पहले तो सूचना देने से कतराता रहा लेकिन जब सूचक द्वारा उसे यह कहा गया कि जनप्रतिनिधि होने के नाते उसे जनता के कल्याण से संबंधित गतिविधियों को जानने का अधिकार है, अंचल अधिकारी (याची) ने निम्नलिखित शब्द कहे:–

''मैं तुम्हारे जैसे कोल नेता को पहले भी जेलर की हैसियत से ठीक कर चुका हूँ, इसलिए तुम अपनी औकात में रहो और कोल बुद्धि मुझे मत सिखाओ।''

जिसका अर्थ यह है कि वह जेलर की हैसियत से उसके जनजाति के नेता को पहले ही सबक सीखा चुका है और इसलिए तुम अपनी औकात में रहो और मुझे अपनी सोच के मुताबिक चलने को मत कहो।

3. सूचक आगे कथन करता है कि उसकी प्रतिष्ठा को कलुषित करते हुए गाली-गलौज सुनने के बाद, उसने अपमानित महसूस किया और इस कारण मामला दर्ज किया जिसे अधिनियम की धारा 3(1)(x) के अधीन दर्ज किया गया था।

4. मामला दर्ज किए जाने से व्यथित होकर, यह रिट याचिका स्वयं प्राथमिकी के अभिखंडन हेतु दाखिल की गयी है।

5. याची की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि याची द्वारा बोले गए शब्दों को सत्य मानने पर भी यह अधिनियम की धारा 3(1)(x) के अधीन अपराध गठित नहीं करता है, क्योंकि याची कभी भी प्रत्यर्थी सं॰ 2 को अपमानित करना अथवा उसकी प्रतिष्ठा को नीचा दिखाना नहीं चाहता था।

6. आगे यह निवेदन किया गया है कि स्वयं अभियोजन के मामले के मुताबिक कथन सार्वजनिक रूप से कभी नहीं किए गए थे, क्योंकि सूचक के अनुसार वे कथन दूरभाष वार्तालाप के क्रम में किए गए थे और इस प्रकार यह नहीं कहा जा सकता है कि ये कथन सार्वजनिक रूप से किए गए थे और इसलिए अधिनियम की धारा 3 (1)(x) के अधीन अपराध बनने के लिए घटको में से एक की कमी है और इस प्रकार, प्राथमिकी अभिखंडित किए जाने योग्य है।

7. प्रत्यर्थी सं॰ 2 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि पूर्वोक्त कथन निश्चित रूप से अधिनियम की धारा 3(1)(x) के अधीन अपराध गठित करते हैं क्योंकि याची ने सूचक को अपमानित करने, नीचा दिखाने और अभित्रस्त करने के लिए सचमुच वे शब्द कहे थे और इन कथनों को सार्वजनिक रूप से किया गया कहा जा सकता है क्योंकि सूचक सार्वजनिक स्थान पर बैठक कर रहा था और जब वार्तालाप हो रहा था, मोबाइल का स्पीकरमोड चालू था।

8. इस संबंध में विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि विधायक ने आशयपूर्वक 'सार्वजनिक रूप से' शब्द का उपयोग किया है जिसकी अवधारणा सार्वजनिक स्थल से पूर्णत भिन्न है और इस प्रकार, यदि अनुसूचित जाति अथवा अनुसूचित जनजाति के सदस्य को निजी स्थल, जो सार्वजनिक दृष्टि के अंतर्गत है, पर भी अपमानित किया जाता है अथवा नीचे दिखाया जाता है, यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि ऐसा करने वाले ने सार्वजनिक दृष्टि के अंतर्गत अपराध किया है।

9. विद्वान अधिवक्ता ने अपने निवेदन के समर्थन में **स्वर्ण सिंह एवं अन्य बनाम स्थायी अधिवक्ता के माध्यम से राज्य एवं एक अन्य [(2008)8 SCC 435 : 2008(4) BLJ 1(SC)]** मामले में दिए गए निर्णय को निर्दिष्ट किया है।

10. पक्षों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता को सुनने के बाद यह प्रतीत होता है कि हॉट लिप्स के बैंक्वेट हॉल में याची और सूचक के बीच दूरभाष पर वार्तालाप हुआ था जिसमें याची को निम्नलिखित शब्दों को बोलता हुआ बताया जाता है:-

''मैं तुम्हारे जैसे कोल नेता को पहले भी जेलर की हैसियत से ठीक कर चुका हूँ, इसलिए तुम अपनी औकात में रहो और कोल बुद्धि मुझे मत सिखाओ।''

11. यह उपदर्शित करता है कि याची ने सूचक को उसकी जाति के नाम से बोलकर उन शब्दों को कहा है।

12. यह सुनिश्चित किया गया है कि सार्वजनिक दृष्टि के अंतर्गत किसी स्थान में उसे अपमानित करने अथवा नीचा दिखाने के आशय के साथ अनुसूचित जनजाति के किसी सदस्य को उसकी जाति के नाम से बुलाया जाना निश्चित रूप से अधिनियम की धारा 3(1)(x) के अधीन अपराध है लेकिन विवादास्पद प्रश्न यह है कि क्या वे कथन सार्वजनिक दृष्टि के अंतर्गत किए गए थे?

13. इस प्रश्न पर निर्णय करने के लिए अधिनियम की धारा 3(1)(x) में अंतर्विष्ट प्रावधान को ध्यान में लेना आवश्यक है जिसका पठन निम्नलिखित है:–

*"3. **अत्याचार के अपराधों के लिए दंड.**–(1) जो कोई भी, अनुसूचित जाति अथवा अनुसूचित जनजाति का सदस्य नहीं होते हुए–*

(i)-(ix).....

(x) सार्वजनिक दृष्टि के अंतर्गत किसी स्थान में अनुसूचित जाति अथवा अनुसूचित जनजाति के सदस्य को नीचा दिखाने के आशय के साथ आशयपूर्वक अपमानित करता है अथवा अभित्रस्त करता है;

(xi)—(xv).....

उस अवधि, जो छः माह से कम नहीं होगी लेकिन जिसे पाँच वर्षों तक बढ़ाया जा सकता है, के कारावास के साथ और जुर्माने के साथ दंड योग्य होगा।"

14. पूर्वोक्त प्रावधान के परिशीलन से, यह प्रतीत होता है कि यदि अनुसूचित जाति अथवा अनूसूचित जनजाति के सदस्य को नीचा दिखाने के आशय के साथ आशयपूर्वक अपमानित अथवा अभित्रस्त करता है, वह उक्त अपराध के लिए दंडित होने का जिम्मेवार होगा परन्तु यह कि व्यथित व्यक्ति को सार्वजनिक दृष्टि के अंतर्गत उसे नीचा दिखाने की दृष्टि के साथ अपमानित अथवा अभित्रस्त किया गया है।

15. मेरी दृष्टि में; शब्दों 'सार्वजनिक दृष्टि' जोड़ने के पीछे एक उद्देश्य है जो यह सुझाता है कि यदि किसी को सार्वजनिक दृष्टि में अपमानित अथवा अभित्रस्त नहीं किया गया है, तब यह अधिनियम की धारा 3(1)(x) के अधीन अपराध नहीं होगा किन्तु यह अपराध आकृष्ट होगा यदि अनुसूचित जाति अथवा अनुसूचित जनजाति का सदस्य सार्वजनिक दृष्टि के अंतर्गत नीचा दिखाए जाने की दृष्टि के साथ अपमानित अथवा अभित्रस्त किया जाता है अथवा मैं कह सकता हूँ कि सार्वजनिक श्रव्य क्षेत्र के भीतर, यहाँ तक कि किसी निजी स्थान या भवन में ऐसा किया जाता है क्योंकि यदि निजी स्थल पर अथवा भवन में नीचा दिखाए जाने की दृष्टि के साथ अनुसूचित जाति अथवा अनुसूचित जनजाति के सदस्य को अपमानित अथवा अभित्रस्त किया जाता है, उसे उक्त प्रावधान की परिधि के अंतर्गत लाया जा सकता है बशर्ते कि ऐसा अपराध सार्वजनिक दृष्टि के अंतर्गत अथवा सार्वजनिक श्रव्य क्षेत्र के अंतर्गत किया गया है। यह दृष्टिकोण **स्वर्ण सिंह एवं अन्य बनाम स्थायी अधिवक्ता के माध्यम से राज्य एवं एक अन्य (ऊपर) [: 2008 (4) BLJ 1(SC)]** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अभिव्यक्त किया गया है जिसके पैराग्राफ 28 पर निम्नलिखित संप्रेक्षित किया गया है:–

'' .... यह एक भिन्न मामला हो सकता था यदि अभिकथित अपराध किसी भवन के भीतर कारित हुआ होता, एवं सार्वजनिक क्षेत्र में भी नहीं होता। यद्यपि, यदि यह अपराध भवन के बाहर कारित की गयी है जैसे किसी घर के बाहर किसी खुले जगह में, एवं वह स्थान किसी के द्वारा चहारदीवारी के बाहर गली अथवा सड़क से देखा जा सकता है, तो वह खुला स्थान निश्चित रूप से सार्वजनिक क्षेत्र के भीतर कोई स्थान होगा। साथ ही, यदि यह टिप्पणी किसी भवन के भीतर की गयी है, परन्तु कुछ लोग (मात्र रिश्तेदार अथवा दोस्त) भी वहाँ है तब भी यह एक अपराध होगा चूँकि यह सार्वजनिक क्षेत्र में है। इसलिए, हमलोगों को अभिव्यक्ति 'सार्वजनिक क्षेत्र का स्थान' के साथ अभिव्यक्ति 'सार्वजनिक स्थान' से भ्रमित नहीं होना चाहिए...''

16. इस प्रकार, यदि कोई अनुसूचित जाति अथवा अनुसूचित जनजाति के सदस्य को नीचा दिखाने की दृष्टि के साथ भवन के भीतर टिप्पणियाँ अथवा कथन करता है, वह अभियोजित होने का जिम्मेवार होगा बशर्ते ऐसी टिप्पणियाँ अथवा कथन आम जनता को दृश्यमान अथवा श्रव्य हो। यदि ऐसी टिप्पणियाँ अथवा कथन आम जनता को श्रव्य नहीं है, किसी को अनुसूचित जाति अथवा अनुसूचित जनजाति के सदस्य को नीचा दिखाने की दृष्टि के साथ सार्वजनिक दृष्टि के अंतर्गत अपमानित अथवा अभित्रस्त करता हुआ नहीं कहा जा सकता है। उक्त दृष्टिकोण को **बाई उर्फ लक्ष्मीबाई पत्नी निवृत्ति पॉल बनाम महाराष्ट्र राज्य [(2001 ALL MR (Cri) 219]** के मामले में पहले ही अभिव्यक्त किया गया है जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया है कि अभिव्यक्ति सार्वजनिक दृष्टि के अंतर्गत का एक विनिर्दिष्ट अर्थ है और अधिनियम की धारा 3(1)(x) के अधीन विधि के प्रावधान को आकृष्ट करने के लिए अनुसूचित जाति अथवा अनुसूचित जनजाति के सदस्य को अपमानित करने वाला अथवा नीचा दिखाने वाला कृत्य होने के लिए कृत्य को आम जनता को दृश्यमान अथवा श्रव्य होना चाहिए। अन्यथा विधि के उक्त प्रावधान के अधीन यह अपराध नहीं होगा। इस प्रकार, अधिनियम की धारा 3(1)(x) के अधीन अपराध गठित करने के लिए अनुसूचित जाति अथवा अनुसूचित जनजाति के सदस्यों को अपमानित करने अथवा नीचा दिखाने के लिए कृत्य को आम जनता के लिए दृश्यमान अथवा श्रव्य होना चाहिए।

17. मामले के तथ्य पर आते हुए, स्वीकृत तौर पर, जो भी कथन किए गए थे, वे दूरभाष पर याची और सूचक (प्रत्यर्थी सं॰ 2) के बीच वार्तालाप के दौरान किए गए थे जो सामान्यत: अन्य व्यक्ति को श्रव्य नहीं है। लेकिन, प्रति शपथपत्र में दिया गया बयान कि जब वार्तालाप हो रहा था, दूरभाष स्पीकर मोड पर था, यह सुझाता है कि वार्तालाप अन्य व्यक्ति को श्रव्य था लेकिन यह तथ्य प्राथमिकी में दर्ज नहीं था और इस प्रकार, इसे अपराध को अधिनियम की धारा 3(1)(x) की परिधि के अंतर्गत लाने के लिए बाद में सोचा गया विचार आसानी से कहा जा सकता है जिसे स्वीकार नहीं किया जा सकता है।

18. इस स्थिति के अधीन, मैं यह अभिनिर्धारित करने के लिए मजबूर हूँ कि दूरभाष वार्तालाप के दौरान जो भी कथन किए गए थे वे सार्वजनिक रूप से श्रव्य अथवा दृश्यमान नहीं थे और इस प्रकार अधिनियम की धारा 3(1)(x) के अधीन कोई अपराध नहीं बनता है भले ही संपूर्ण अभिकथन को सत्य भी माना जाए।

19. इस कारण एस॰ सी॰/एस॰ टी॰ पी॰ एस॰ केस सं॰ 2 वर्ष 2010 (जी॰ आर॰ सं॰ 129 वर्ष 2010) की प्राथमिकी का समस्त दांडिक मामला एतद् द्वारा अभिखंडित किया जाता है।

20. परिणामस्वरुप, याचिका अनुज्ञात की जाती है।

माननीय डी॰ जी॰ आर॰ पटनायक, न्यायमूर्ति

हीरामणि

बनाम

झारखंड राज्य एवं अन्य

W.P. (C) No. 3038 of 2007. Decided on 22nd March, 2010.

भारत का संविधान, 1950–अनुच्छेद 16 एवं 21—उग्रवादी हिंसा के पीड़ितों के आश्रितों को प्रतिकर एवं अनुकंपा पर नियुक्ति–राज्य सरकार ने वर्ष 1987 में ऐसे व्यक्तियों के आश्रितों को 20,000/- रुपए के प्रतिकर प्रदान करने का एक नीतिगत निर्णय लिया था–उग्रवादी हिंसा के कारण मारे जाने वाले/घायल होने वाले ऐसे सभी व्यक्तियों के नाम एवं

पहचान को तत्परता से अभिलिखित करना और अधिसूचना के अनुसार, मृतक के विधिक प्रतिनिधि को देय प्रतिकर की राशि का भुगतान करना प्रशासन के सम्बद्ध प्राधिकारियों का दायित्व है–वर्तमान मामले में, मृतक के उत्तरजीवी विधवा याची को प्रतिकर की राशि से वंचित करते हुए प्रशासन के सम्बद्ध प्राधिकारी द्वारा ऐसे दायित्व का वहन नहीं किया गया था–प्रतिकर की राशि बाद में बढ़ाकर 50,000/- रुपए कर दी गई है–वर्ष 2003 में, उग्रवादी हिंसा के पीड़ितों के ऐसे आश्रितों को अनुकंपा पर नियुक्ति प्रदान करने के लिए उनके मामले पर विचार करने का भी निर्णय राज्य सरकार ने लिया था–प्रत्यर्थीगण को याची को 1,00,000/- रुपए के प्रतिकर का भुगतान करने का निर्देश दिया गया। (पैरा 4 से 7)

निर्णयज विधि.–W.P.(S) No. 101 of 2005; W.P. (C) No. 3233 of 2002—Referred to.

अधिवक्तागण.–Mr. Atanu Banerjee, For the Petitioner; JC to GP-1, For the Respondents.

आदेश

याची ने इस रिट आवेदन में अपने पति की मृत्यु के लिए उसे प्रतिकर प्रदान करने जो उग्रवादी हिंसा में मारा गया था, और उसके पुत्र को अनुकंपा पर नियुक्ति प्रदान करने के लिए भी प्रत्यर्थीगण को एक निर्देश देने के लिए प्रार्थना की है।

2. याची का मामला यह है कि उसका पति एक सामाजिक कार्यकर्ता था और उग्रवादियों के विरुद्ध तलाशी अभियान में पुलिस की सहायता किया करता था। 23.9.1998 को उग्रवादी हिंसा के कारण ऐसे पुलिस अभियान के अनुक्रम में, याची का पति गम्भीर रूप से घायल हो गया था और वह मृत्यु को प्राप्त हुआ। उग्रवादी हिंसा के कारण हुई ऐसे मृत्यु के बावजूद, प्रत्यर्थी राज्य सरकार के सम्बद्ध प्राधिकारियों ने याची को किसी प्रतिकर की राशि का भुगतान नहीं किया है और उसके द्वारा बार-बार किए गए अभ्यावेदनों के बावजूद, न तो उन्होंने प्रतिकर के लिए याची के दावे पर और न ही उसके पुत्र को अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति प्रदान करने पर विचार किया है।

3. जैसा कि यह प्रतीत होता है प्रति शपथपत्र में, यद्यपि प्रत्यर्थीगण ने माना है कि याची के पति की मृत्यु उग्रवादी हिंसा में हुई थी, प्रतिकर के लिए याची की प्रार्थना को अस्वीकार करने के लिए लिया गया पक्ष यह है कि याची समय रहते प्रत्यर्थीगण के सम्बद्ध प्राधिकारियों के पास नहीं गई और उसने नौ वर्षों से अधिक समय व्यतीत होने के उपरांत वर्तमान रिट आवेदन दाखिल किया है और, अतएव, वह प्रतिकर का दावा करने की अधिकारी नहीं है। प्रत्यर्थीगण द्वारा अतिरिक्त रूप से लिया गया पक्ष यह भी है कि यद्यपि, राज्य सरकार ने काफी पहले 1987 में, ऐसे व्यक्ति के आश्रितों को 20,000/- रुपए का प्रतिकर देने का नीतिगत निर्णय लिया था जिनकी मृत्यु उग्रवादी हिंसा से होती है, परन्तु मृतक के किसी जीवित उत्तराधिकारी/विधिक प्रतिनिधि को कोई अनुकंपा-आधृत नियुक्ति प्रदान करने का नीतिगत निर्णय राज्य सरकार द्वारा नहीं लिया गया था।

4. जैसा कि याची के अधिवक्ता द्वारा इंगित किया गया है, **W.P. (S) No. 101 वर्ष 2005** के माध्यम से **माधुरी देवी बनाम झारखण्ड राज्य एवं अन्य** के मामले में इस न्यायालय की एक पीठ के समक्ष इसी प्रकार का मुद्दा विचार के लिए आया था और इससे पहले भी **डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 3233 वर्ष 2002** के माध्यम से **समेत्री देवी बनाम झारखंड राज्य एवं अन्य** के मामले में उग्रवादी हिंसा के कारण मृतक की मृत्यु के संबंध में प्रतिकर के भुगतान के संबंध में इसी प्रकार का मुद्दा उठाया गया था। इस न्यायालय के पास **माधुरी देवी (ऊपर)** के मामले में राज्य सरकार के दिनांक 21

सितम्बर, 1987 के संकल्प पर विचार करने का अवसर आया था जिसके द्वारा उग्रवादी हिंसा के पीड़ितों को देय प्रतिकर के तौर पर 20,000/- रुपये की एक राशि निर्धारित कर दी गई थी।

5. अधिसूचना की प्रति (प्रति शपथपत्र के परिशिष्ट-A) के परिशीलन से, यह प्रतीत होता है कि नीतिगत निर्णय एवं सरकारी अधिसूचना में अन्तर्विष्ट निर्देशों के अनुसार, उग्रवादी हिंसा के कारण मारे जाने वाले/घायल होने वाले ऐसे सभी व्यक्तियों के नामों एवं पहचानों को तत्परता से अभिलिखित करना और अधिसूचना के अनुसरण में मृतक के विधिक प्रतिनिधि को देय प्रतिकर की राशि का भुगतान करना प्रशासन के सम्बद्ध प्राधिकारियों का दायित्व था।

6. वर्तमान मामले में, जैसा प्रतीत होता है, प्रशासन के सम्बद्ध प्राधिकारियों द्वारा इस दायित्व को पूरा नहीं किया गया है। अगर उन्होंने अधिसूचना में यथानिहित निर्देशों का अनुपालन किया होता और अपने दायित्वों को पूरा किया होता, मृतक के उत्तरजीवी विधवा होने के कारण याची का अता-पता शीघ्रता से अभिलिखित कर लिया गया होता और उसे तत्काल ही प्रतिकर की राशि का प्रस्ताव दिया गया होता। इसके विपरीत, जैसा प्रतीत होता है, प्रत्यर्थी के सम्बद्ध प्राधिकारियों ने निर्गत अधिसूचना के निबंधनों में कोई अभिलेख या अपने दायित्व का वहन करने का कोई कष्ट नहीं उठाया और याची के दावे पर विचार करने से अपनी ओर से विलम्ब के कारण याची को कष्ट उठाने दिया है। यह भी प्रतीत होता है, जो प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता द्वारा स्वीकार भी किया गया है, कि राज्य सरकार ने बाद में वर्ष 2001 में प्रतिकर की राशि यथा संशोधित की है एवं इसे बढ़ाकर 50,000/- रुपए कर दिया था।

माधुरी देवी (ऊपर) के मामले में पारित निर्णय से यह प्रतीत होता है, कि यद्यपि सरकारी अधिसूचना ने केवल उग्रवादी हिंसा के पीड़ितों के आश्रितों को मौद्रिक प्रतिकर के भुगतान की अधिसूचना की थी, परन्तु चतरा नाम के जिले में जिला अनुकंपा नियुक्ति समिति ने ऐसे मृतक व्यक्ति के आश्रितों के मामले पर विचार किया था और अनुकंपा के आधार उनकी नियुक्ति हेतु अनुशंसा की थी।

याची के विद्वान अधिवक्ता सूचित करते हैं कि बाद में वर्ष 2003 में राज्य सरकार ने उग्रवादी हिंसा के पीड़ितों के ऐसे आश्रितों को अनुकंपा पर नियुक्ति देने के लिए उनके मामले पर विचार करने का भी निर्णय लिया था।

7. मामले के समूचे तथ्यों एवं परिस्थितियों पर विचार करते हुए जिसमें यह तथ्य भी शामिल है कि प्रत्यर्थी प्राधिकारियों ने अपनी अकर्मण्यता के कारण इस पूरे घटना क्रम में याची को हानि एवं वित्तीय कठिनाई कारित करते हुए उसे प्रतिकर का भुगतान देने में विलम्ब की थी और **माधुरी देवी (ऊपर)** के मामले में इस न्यायालय द्वारा लिए गए दृष्टिकोण को भी सामने रखते हुए जिसके द्वारा उग्रवादी हिंसा के कारण मृतक की असमय मृत्यु के लिए प्रतिकर के तौर पर दावेदार को एक लाख रुपये की एक राशि का भुगतान किया गया था, प्रत्यर्थी प्राधिकारीगण इस आदेश की तिथि से दो महीनों के भीतर याची को रु॰ 1,00,000/- (एक लाख रुपये) के एक प्रतिकर का भुगतान करेंगे। उपरोक्त निर्धारित समय के भीतर राशि के भुगतान न किए जाने की स्थिति में अनुबद्ध अवधि के पूरा होने की तिथि से अंतिम भुगतान की तिथि तक 9% के वार्षिक ब्याज की दर से ब्याज मिलेगा।

उपरोक्त सम्परीक्षणों के साथ, इस रिट आवेदन का निस्तारण किया जाता है।

इस आदेश की एक प्रति प्रत्यर्थी राज्य के विद्वान अधिवक्ता को दी जाय।

माननीय एम॰ वाई॰ इकबाल, न्यायमूर्ति

हरि नारायण राय

बनाम

भारत संघ एवं एक अन्य

Cr. M.P. No. 46 of 2010. Decided on 26th March, 2010.

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 167(2)—मनी लॉन्ड्रिंग निवारण अधिनियम, 2002—धाराएँ 3, 4, 44 एवं 45—मनी लॉन्ड्रिंग निवारण अधिनियम की धाराएँ 3 एवं 4 के अधीन अभियोजन–धारा 167(2) के अधीन अनिवार्य जमानत हेतु आवेदन की अस्वीकृति–सतर्कता विभाग द्वारा मामला दर्ज–पी॰ एम॰ एल॰ अधिनियम एक विशेष संविधि है–पुलिस रिपोर्ट दाखिल करने हेतु अधिनियम में कोई प्रावधान नहीं है–अन्वेषण पूरा किए जाने के बाद ही प्राधिकृत प्राधिकारी द्वारा परिवाद दाखिल किया जा सकता है जो संज्ञान लेने का आधार होगा–अधिनियम के भिन्न-भिन्न प्रावधानों में अंतर्विष्ट सर्वोपरि खंड जिसका अध्यारोही प्रभाव है, की दृष्टि में, दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 167(2) में अंतर्विष्ट प्रावधान लागू नहीं होगा–याचिका खारिज। (पैरा 13 से 17)

अधिवक्तागण.–Mr. Biren Poddar, For the Petitioner; M/s A.K. Kashyap, A.K. Das, For the Opp. Parties.

एम॰ वाई॰ इकबाल, न्यायमूर्ति.–दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन दाखिल इस आवेदन द्वारा, याची ने अपर न्यायिक कमिश्नर, राँची के मनी लॉन्ड्रिंग निवारण अधिनियम, 2002 के अधीन विशेष न्यायालय होने के नाते उनके द्वारा पारित किए गए दिनांक 22.12.2009 के उस आदेश, जिसके द्वारा उन्होंने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के अधीन दाखिल याची की याचिका को अस्वीकार कर दिया है, के अभिखंडन हेतु और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के प्रावधान के अधीन याची को जमानत देने के लिए विशेष न्यायालय को निर्देश देने हेतु प्रार्थना की गयी है।

2. यह प्रतीत होता है कि श्री कुमार विनोद के परिवाद के आधार पर, एक निगरानी मामला याची एवं अन्यों के विरुद्ध भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 11/13 और भारतीय दंड संहिता की धाराएँ 406, 409, 420, 423, 424, 465, 120B के उल्लंघन के लिए निगरानी विभाग द्वारा निगरानी केस सं॰ 26 वर्ष 2008 तत्सम विशेष केस सं॰ 32 वर्ष 2008 दर्ज किया गया था। उक्त परिवाद के आधार पर मनी लॉन्ड्रिंग निवारण अधिनियम, 2002 की धारा 3 सह-पठित धारा 4 के अधीन याची और अन्यों के विरुद्ध निगरानी निदेशक ने प्रवर्तन मामला सं॰ ECIR/01/PAT/09/AD दर्ज किया था और इसकी एक प्रति अपर न्यायिक कमिश्नर (विशेष न्यायालय), राँची को अग्रसर की गयी थी। यह प्रतीत होता है कि पूर्वोल्लिखित मामला मनी लॉन्ड्रिंग निवारण अधिनियम, 2002 की धाराएँ 3 एवं 4 के अधीन दिनांक 4.9.2009 को सहायक निदेशक-II, प्रवर्तन निदेशालय द्वारा दर्ज किया गया था और उन्होंने मामले के अन्वेषण अधिकारी होने के तौर पर अन्वेषण शुरू किया। इसी बीच, याची को दिनांक

13.10.2009 को न्यायिक अभिरक्षा में भेज दिया गया। दिनांक 22.12.2009 को पूर्वोक्त ECIR केस जिसमें याची को जमानत पर निर्मुक्त किए जाने की प्रार्थना करते हुए विशेष न्यायालय के समक्ष याची द्वारा एक याचिका दाखिल की गयी थी इस आधार पर कि याची को दिनांक 13.10.2009 को न्यायिक अभिरक्षा में भेजा गया था और दिनांक 12.12.2009 को 60 दिन पूरा हो चुका है और अभी भी अन्वेषण अधिकारी ने याची के विरुद्ध दं० प्र० सं० की धारा 173 (2) के अधीन अपेक्षित पुलिस रिपोर्ट प्रस्तुत नहीं किया है। यह अभिनिर्धारित करते हुए कि अन्वेषण अधिकारी ने अन्वेषण पूरा करने के बाद दिनांक 11.12.2009 अर्थात् याची के प्रथम रिमाण्ड की तिथि से 60 दिनों के भीतर, संज्ञान लिए जाने की प्रार्थना के साथ याची के विरुद्ध एक परिवाद दाखिल किया था, विशेष न्यायालय ने उक्त याचिका को खारिज कर दिया था।

3. याची की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता, श्री बीरेन पोद्दार ने आक्षेपित आदेश को गैर कानूनी और पूर्णत: अधिकारिता रहित होने के आधार पर विरोध किया है। विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि याची को दिनांक 13.10.2009 को न्यायिक अभिरक्षा में भेजा गया था और 60 दिन बीत जाने के बावजूद अर्थात् दिनांक 12.12.2009 तक, अन्वेषण अधिकारी ने दं० प्र० सं० की धारा 173 (2) के अधीन अपेक्षित पुलिस रिपोर्ट दाखिल नहीं किया है और इस प्रकार, याची दं० प्र० सं० की धारा 167 की उप-धारा (2) के परन्तुक (a) के अधीन जमानत पर निर्मुक्त होने का हकदार है। विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि अन्वेषण अधिकारी द्वारा दाखिल किया गया पृथक परिवाद, परिवाद केस सं० 1 वर्ष 2009, को संहिता की धारा 173(2) के अधीन अपेक्षित पुलिस रिपोर्ट के तौर पर माना नहीं जा सकता है और माना नहीं जाना चाहिए। विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, पुलिस रिपोर्ट और परिवाद एक दूसरे के पर्यायवाची नहीं है, क्योंकि संहिता के अधीन परिभाषित पुलिस रिपोर्ट का अर्थ संहिता की धारा 173 की उपधारा (2) के अधीन दंडाधिकारी को पुलिस अधिकारी द्वारा अग्रसर किया गया रिपोर्ट है जबकि धारा 173 की उपधारा 2(d) में परिभाषित परिवाद का अर्थ संहिता के अधीन उसके द्वारा कार्रवाई किए जाने हेतु दंडाधिकारी के समक्ष किया गया अभिकथन है। अंत में, विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि स्वीकार्यत: आजतक अन्वेषण अधिकारी द्वारा कोई पुलिस रिपोर्ट/अंतिम फार्म दाखिल नहीं किया गया है और इस प्रकार, संहिता की धारा 167(2) के अधीन जमानत पर निर्मुक्त होने का याची हकदार है।

4. दूसरी ओर, राज्य निगरानी और प्रवर्तन निदेशालय की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता, श्री ए० के० कश्यप एवं श्री ए० के० दास ने निवेदन किया कि विशेष न्यायालय ने इस आधार पर याचिका को सही खारिज किया है कि अन्वेषण एजेन्सी ने अन्वेषण पूरा होने के बाद प्रथम रिमांड की तिथि से 60 दिनों के भीतर परिवाद दाखिल किया था। विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि धारा 167 दं० प्र० सं० के प्रावधान के अधीन परिभाषित शब्द ''अन्वेषण'' का अर्थ केवल पुलिस रिपोर्ट नहीं है। अन्वेषण पूरा होने के बाद दाखिल परिवाद विधि की अपेक्षाएँ पूरी करता है।

5. पक्षों द्वारा किए गए परस्पर विरोधी निवेदनों पर विचार करने से पहले, मैं मनी लॉन्ड्रिंग निवारण अधिनियम, 2002 के प्रासंगिक प्रावधानों को निर्दिष्ट करना चाहूँगा।

6. मनी लॉन्ड्रिंग निवारण अधिनियम, 2002, जो वर्ष 2005 में प्रभाव में आया, संसद द्वारा मनी लॉन्ड्रिन्ग को रोकने और इससे अर्जित संपत्ति की जब्ती प्रावधानित करने और इसके आनुषंगिक या संबंधित मामलों के लिए भी अधिनियमित किया गया था। अधिनियम में वर्ष 2005 और अंत में 2009 में संशोधन किया गया था। यह अधिनियम वर्ष 1999 में आयोजित संयुक्त राष्ट्र संघ साधारण सभा के विशेष सत्र में अपनायी गयी राजनीतिक घोषणा को लागू करने के लिए संसद द्वारा अधिनियमित एक विशेष संविधि है।

7. धारा 2 न्याय निर्णयन प्राधिकारी, सहायक निदेशक, अन्वेषण, सीमा पार अपराध, इत्यादि सहित अनेक शब्दों को परिभाषित करता है। धारा 2(na) ''अन्वेषण'' शब्द को परिभाषित करता है:–

''(na) ''अन्वेषण'' साक्ष्य के संग्रहण हेतु इस अधिनियम के अधीन केन्द्रीय सरकार द्वारा एक प्राधिकृत प्राधिकारी द्वारा अथवा निदेशक द्वारा संचालित इस अधिनियम के अधीन समस्त कार्यवाही को सम्मिलित करता है।

8. धारा 3 एवं 4 मनी लॉन्ड्रिंग के अपराध पर विचार करता है जिनका पठन निम्नलिखित है:–

*"3. **मनी लॉन्ड्रिंग का अपराध.**–जो कोई भी अपराध के आगम से संबंधित और इसे अकलुषित संपत्ति के रूप में दर्शाते हुए किसी प्रक्रिया अथवा गतिविधि में वास्तविक रूप से अंतर्ग्रस्त है अथवा प्रत्यक्षतः अथवा अप्रत्यक्षतः ऐसा करने का प्रयास करता है अथवा जानबूझकर सहायता करता है अथवा जानबूझकर एक पक्ष है, मनी लॉन्ड्रिंग के अपराध का दोषी होगा।*

*4. **मनी लॉन्ड्रिंग के लिए दंड.**–जो कोई भी मनी लॉन्ड्रिंग का अपराध करता है, वह उस अवधि, जो तीन वर्षों से कम नहीं होगी किन्तु जो सात वर्षों तक बढ़ायी जा सकती है, तक के लिए सश्रम कारावास हेतु दंडनीय होगा और जुर्माना, जिसे 5 लाख रुपयों तक बढ़ाया जा सकता है, का दायी होगाः*

परन्तु यह कि जहाँ मनी लॉन्ड्रिंग में अंतर्ग्रस्त अपराध का आगम अनुसूची के भाग A के पैराग्राफ 2 में विनिर्दिष्ट किसी अपराध से संबंधित है, इस धारा के प्रावधानों का प्रभाव ऐसा होगा मानो ''जिसे सात वर्षों तक बढ़ाया जा सकता है'' शब्दों के लिए ''जिसे दस वर्षों तक बढ़ाया जा सकता है'' शब्दों को प्रतिस्थापित किया जा चुका था।

9. अध्याय-III (धाराएँ 5 से 11) कुर्की, न्याय निर्णयन और जब्ती के संबंध में प्रावधानों को अधिकथित करता है।

10. अध्याय-IV बैंकिग कम्पनियों, वित्तीय संस्थानों और बिचौलियों, मध्यवर्तीयों की बाध्यताओं पर विचार करता है। अध्याय V में धाराएँ 16 से 24 सम्मन, तलाशी, अभिग्रहण, आदि प्रक्रिया के संबंध में प्रावधानों को अधिकथित करता है। अध्याय-VI, विभिन्न प्राधिकारियों और अधिकरणों, जिन्हें केन्द्रीय सरकार द्वारा अधिसूचित किया जाएगा, को विहित करता है। अध्याय-VII वर्तमान मामले के उद्देश्य के लिए प्रासंगिक है जो विशेष न्यायालयों की गठन की प्रक्रियाओं और अपराधों की प्रकृति अधिकथित करता है। धारा 43 किसी क्षेत्र विशेष के लिए अथवा किसी वर्ग विशेष अथवा मामलों के समूह विशेष के लिए उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश के परामर्श से अधिसूचना द्वारा एक अथवा अधिक सत्र न्यायालयों अथवा विशेष न्यायालयों को अभिहित करने की शक्ति केन्द्र सरकार को प्रदान करता है। धारा 44 अधिनियम की धारा 4 के अधीन दंडनीय अपराधों के विचारण के लिए ही विशेष न्यायालयों को शक्ति प्रदान करती है। धारा 44 का पठन निम्नलिखित है:–

*"44. **विशेष न्यायालयों द्वारा विचारण योग्य अपराध.**–(1) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (2 वर्ष 1974) में अंतर्विष्ट किसी चीज के बावजूद,–*

(a) अनुसूचित अपराध एवं धारा 4 के अधीन दंडनीय अपराध उस क्षेत्र, जहाँ अपराध किया गया है, के लिए गठित विशेष न्यायालय द्वारा विचारण योग्य होगाः

परन्तु यह कि इस अधिनियम के लागू होने के पूर्व अनुसूचित अपराध का विचारण करने वाला विशेष न्यायालय उस अनुसूचित अपराध का विचारण जारी रखेगा; या

(b) विशेष न्यायालय, इस अधिनियम के अधीन इसकी ओर से प्राधिकृत प्राधिकारी द्वारा की गई शिकायत पर, उस अपराध का संज्ञान ले सकता है, जिसके लिए अभियुक्त को विचारण हेतु लाया गया है।

(2) इस धारा में अंतर्विष्ट कुछ भी दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (2 वर्ष 1974) की धारा 439 के अधीन जमानत के संबंध में उच्च न्यायालय की विशेष शक्तियों को प्रभावित करने वाला नहीं माना जाएगा और उच्च न्यायालय उस धारा की उप-धारा (1) के खंड (b) के अधीन शक्ति सहित ऐसी सारी शक्तियों का उस प्रकार से प्रयोग कर सकता है कि मानो उस धारा में ''दंडाधिकारी'' को किया गया निर्देश धारा 43 के अधीन अभिहित ''विशेष न्यायालय'' को भी निर्दिष्ट करता है।''

11. धारा 45 संज्ञेय और असंज्ञेय अपराधों पर विचार करती है। यह एक अत्यंत प्रासंगिक और महत्वपूर्ण प्रावधान है जो यहाँ नीचे उद्धृत किए जाने योग्य है:-

*"45. **संज्ञेय एवं गैर-जमानती अपराध.**-(1) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (2 वर्ष 1974) में अंतर्विष्ट किसी चीज के बावजूद, अनुसूची के भाग ए० के अधीन तीन वर्षों से अधिक कारावास की अवधि के लिए दंडनीय अपराध का आरोपित व्यक्ति को जमानत अथवा अपने बंधपत्र पर निर्मुक्त नहीं किया जाएगा जबतक-*

(i) ऐसी निर्मुक्ति का विरोध करने हेतु लोक अभियोजक को अवसर न दिया गया हो; एवं,-

(ii) जहाँ लोक अभियोजक याचिका का विरोध करता है, लेकिन न्यायालय संतुष्ट नहीं है कि यह विश्वास करने का युक्तियुक्त कारण है कि वह ऐसे अपराध का दोषी नहीं है और जमानत पर रहते हुए उसके द्वारा ऐसा अपराध किए जाने की संभावना नहीं है:

परन्तु यह कि कोई व्यक्ति, जो 16 वर्ष से कम आयु का है, अथवा महिला है अथवा बीमार अथवा दुर्बल है, जमानत पर निर्मुक्त किया जा सकता है यदि विशेष न्यायालय ऐसा निर्देश देता है;

परन्तु यह भी कि विशेष न्यायालय निम्नलिखित की गई लिखित शिकायत के अलावा धारा 4 के अधीन दंडनीय किसी अपराध का संज्ञान नहीं लेगा-

(1) निदेशक; या

(ii) उस सरकार द्वारा इस सम्बन्ध में किए गए सामान्य अथवा विशेष आदेश द्वारा केन्द्र सरकार द्वारा इस सम्बन्ध में लिखित रूप में प्राधिकृत केन्द्र सरकार अथवा राज्य सरकार के किसी अधिकारी द्वारा।

(1-A) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (2 वर्ष 1974) में, अथवा इस अधिनियम के प्रावधानों में अंतर्विष्ट किसी चीज के बावजूद, सामान्य अथवा विशेष आदेश द्वारा केन्द्र सरकार द्वारा विनिर्दिष्टतः प्राधिकृत होने पर ही और विहित किए गए जाने वाले शर्तों के अधीन कोई पुलिस अधिकारी इस अधिनियम के अधीन अपराध का अन्वेषण करेगा;

(2) जमानत दिए जाने के लिए तत्समय प्रभावी किसी अन्य विधि अथवा दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (2 वर्ष 1974) के अधीन परिसीमाओं के अतिरिक्त उपधारा (1) में विनिर्दिष्ट परिसीमा है।''

12. और अंत में खासकर, धाराएँ 65 एवं 71 ऐसे दो प्रावधान हैं जो अन्य बातों के साथ यह प्रावधानित करते हैं कि तत्समय प्रभावी किसी अन्य विधि में अंतर्विष्ट असंगत किसी भी चीज के

बावजूद इस अधिनियम के प्रावधानों का सर्वोपरि प्रभाव होगा। यह आगे प्रावधानित करता है कि दंड प्रक्रिया संहिता के प्रावधान वहाँ तक लागू होंगे जहाँ तक वे इस अधिनियम के प्रावधानों के साथ असंगत नहीं है। बेहतर अधिमूल्यन के लिए धारा 65 और 71 यहाँ नीचे उद्धृत किये जाने योग्य है:–

"65. दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 का लागू होना.–इस अधिनियम के अधीन गिरफ्तारी, तलाशी, अभिग्रहण, कुर्की, जब्ती, अन्वेषण, अभियोजन और समस्त अन्य कार्यवाहियों के लिए दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (2 वर्ष 1974) के प्रावधान लागू होंगे, जहाँ तक वे इस अधिनियम के प्रावधानों के साथ असंगत नहीं है।

71. अधिनियम का अध्योरोही प्रभाव होना.–तत्समय प्रभावी किसी अन्य विधि में अंतर्विष्ट किसी के साथ असंगत होने के बावजूद इस अधिनियम के प्रावधानों का प्रभाव बना रहेगा।

13. अधिनियम का समग्रता से पठन करने से यह बिल्कुल स्पष्ट है कि मनी लॉन्ड्रिंग निवारण अधिनियम को विशेष संविधि होने के नाते अपराधों पर कार्रवाई किए जाने की प्रक्रिया उक्त अधिनियम में अंतर्विष्ट प्रावधानों द्वारा नियमित होती है। धारा 44(1b) स्पष्टत: प्रावधानित करता है कि अधिनियम के अधीन उसकी ओर से प्राधिकृत प्राधिकारी द्वारा किए गए परिवाद पर ही अधिनियम के अधीन दंडनीय अपराधों का संज्ञान लिया जाएगा। आगे अधिनियम की धारा 45 व्यक्तियों को जमानत पर निर्मुक्त करना तबतक निर्बन्धित करता है जब तक वहाँ उसमें उल्लिखित शर्त पूरी न कर दी जाए। यह आगे प्रावधानित करता है कि विशेष न्यायालय निदेशक अथवा केन्द्र सरकार अथवा राज्य सरकार द्वारा प्राधिकृत किसी अधिकारी द्वारा किए गए परिवाद के अतिरिक्त धारा 4 के अधीन किसी अपराध का संज्ञान नहीं लेगा। धारा 45 की उपधारा (1-A) विनिर्दिष्टत: प्रावधानित करती है कि दंड प्रक्रिया संहिता में अंतर्विष्ट प्रावधानों के बावजूद कोई पुलिस अधिकारी अधिनियम के अधीन अपराध का अन्वेषण तक नहीं करेगा जबतक उसे किसी सामान्य अथवा विशेष आदेश द्वारा केन्द्र सरकार द्वारा प्राधिकृत नहीं किया जाता है। अधिनियम के प्रावधानों को किसी अन्य विधि के ऊपर अध्यारोही प्रभाव दिया गया है और आगे स्पष्ट तौर पर उल्लिखित किया गया है कि दंड प्रक्रिया संहिता का कोई भी प्रावधान जो इस अधिनियम के प्रावधान जो कुर्की, जब्ती, अन्वेषण, अभियोजन आदि पर विचार करता है, के साथ असंगत है लागू नहीं होगा। इस अधिनियम में जो विशेष संविधि है, पुलिस रिपोर्ट दाखिल करने का कोई प्रावधान नहीं है। यह प्राधिकृत प्राधिकारी द्वारा अन्वेषण पूरा किए जाने के बाद ही परिवाद दाखिल कर सकता है जो संज्ञान लेने का आधार होगा।

14. जैसा ऊपर ध्यान में लिया गया है, ''अन्वेषण'' शब्द जैसा इसे धारा 2(na) में परिभाषित किया गया है, उसे संशोधन अधिनियम 20 वर्ष 2005 के फलस्वरूप अंत:स्थापित किया गया है। परिभाषा के अनुसार, ''अन्वेषण'' शब्द साक्ष्य के संग्रहण के लिए अधिनियम के अधीन निदेशक द्वारा अथवा केन्द्र सरकार द्वारा प्राधिकृत प्राधिकारी द्वारा संचालित अधिनियम के अधीन समस्त कार्यवाहियों को सम्मिलित करता है।

15. अधिनियम की धाराएँ 44 एवं 45 में अंतर्विष्ट प्रावधान संज्ञान लिया जाना प्रतिषिद्ध करता है सिवाय समुचित प्राधिकारी द्वारा किए गए परिवाद पर जो अन्वेषण पूरा होने के बाद ही परिवाद दाखिल कर सकता है। मेरे विचारित मत में, अधिनियम के अनेक प्रावधानों में अंतर्विष्ट सर्वोपरि खंड की दृष्टि में, जिनका अध्यारोही प्रभाव है, दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 167(2) में अंतर्विष्ट प्रावधान लागू नहीं होंगे।

16. वर्तमान मामले में, जैसा ऊपर ध्यान में लिया गया है, उक्त अधिनियम के अधीन दिनांक 4.9.2009 को एक मामला दर्ज किया गया था और इस मामले में दिनांक 13.10.2009 को याची अभिरक्षा में भेजा गया था। यह उपधारित करते हुए भी कि धारा 167 (2) में अंतर्विष्ट प्रावधानों का

अनुपालन किया गया था, स्वीकृत तौर पर, अन्वेषण पूरा होने के बाद प्राधिकृत प्राधिकारी ने दिनांक 11.12.2009 अर्थात् 60 दिनों के भीतर परिवाद दाखिल किया था, अत: संहिता की धारा 167 (2) में अंतर्विष्ट प्रावधानों का लाभ याची प्राप्त नहीं कर सकता था।

17. मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों में और ऊपर की गयी चर्चा के मद्देनजर, आक्षेपित आदेश में हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। इस प्रकार, इस याचिका में गुणागुण नहीं है जिसे तद्नुसार खारिज किया जाता है।

माननीय डी॰ जी॰ आर॰ पटनायक, न्यायमूर्ति

आजाद अंसारी एवं अन्य

बनाम

झारखण्ड राज्य एवं अन्य

WP(S) No. 2872 of 2007. Decided on 12th March, 2010.

सेवा विधि–नियुक्ति–पंचायत सेवक का पद–चयन कमिटि द्वारा अनुशंसित आयु शिथिलीकरण का लाभ देते हुए पंचायत सेवक के पद पर नियुक्ति का दावा–नियुक्ति हेतु याचीगण के दावा को स्वीकार अथवा अस्वीकार करते हुए चयन कमिटी द्वारा की गई अनुशंसा के संदर्भ में जारी पत्र कोई सकारात्मक निर्णय अंतर्विष्ट नहीं करता है–जबकि नियुक्ति हेतु दलपतियों के मामलों की अनुशंसा करते हुए, उम्मीदवारों की महत्तम आयु के आकलन हेतु जनवरी, 2002 को कट-ऑफ तिथि नियत करना चयन कमिटी ने समुचित समझा था–चयन कमिटी के रिपोर्ट में स्पष्टीकरण दिया गया है कि अनेक रिट याचिकाओं में उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेशों के आलोक में और इस तथ्य पर भी विचार करते हुए कि उनकी नियुक्ति हेतु दलपतियों के मामलों पर विचार करने में राज्य सरकार के संबंधित विभाग की ओर से अत्याधिक विलम्ब हुआ है, कट-ऑफ तिथि नियत की गयी है–इस तथ्य की दृष्टि में कि यह केवल चयन कमिटी की अनुशंसा थी जिसे राज्य सरकार के ऊपर बाध्यकारी नहीं कहा जा सकता है, इस विवाद्यक पर अंतिम प्राधिकार राज्य सरकार के संबंधित विभाग का था–उनके लिए पाँच वर्षों का शिथिलीकरण करने पर भी याचीगण ने 42 वर्ष की महत्तम आयु सीमा पहले ही पार कर लिया था–पंचायत सेवक के पद पर उनको नियुक्त करने हेतु संबंधित प्राधिकारीगण के इंकार पर याचीगण कोई शिकायत नहीं कर सकते हैं–निर्देशों के साथ याचिका निस्तारित। (पैरा 6, 7 एवं 9 से 11)

अधिवक्तागण.–Mr. Nilendu Kumar, For the Petitioners; G.P.-IV, For the Respondents.

आदेश

पक्षों के अधिवक्ता को सुना गया।

2. इस रिट याचिका में याचीगण ने दिनांक 1.9.2006 के रिपोर्ट में चयन कमिटी द्वारा अनुशंसित आयु शिथिलीकरण का लाभ उनको देते हुए पंचायत सेवक के पद पर उनकी नियुक्ति हेतु प्रत्यर्थीगण को निर्देश देने की प्रार्थना की है।

याचीगण की शिकायत यह है कि यद्यपि ग्रेडेशन सूची में याचीगण से कनीय व्यक्तियों को नियुक्ति प्रदान की गई है, याचीगण को मनमाने ढंग से छोड़ दिया गया है।

इस संदर्भ में याचीगण ने प्रत्यर्थी सं० 2 द्वारा जारी दिनांक 22.3.2007 के पत्र सं० 310 (परिशिष्ट-8), जो याचीगण के अनुसार, याचीगण का दावा अस्वीकार करता तात्पर्यित पत्र है, के अभिखंडन के लिए प्रार्थना की है।

3. मैंने परिशिष्ट-8 का परिशीलन किया है जो निदेशक, पंचायती राज द्वारा उप-कमिश्नर, गोड्डा को संबोधित दिनांक 22.3.2007 के पत्र की प्रति है। यह पत्र चयन कमिटी द्वारा की गयी अनुशंसाओं के संदर्भ में है और यह सूचनाओं को इप्सित करता है कि क्या वैसे दलपति, जो पाँच वर्षों का आयु शिथलीकरण दिए जाने के बाद भी महत्तम आयु सीमा पार कर गए हैं, पंचायत सेवक के पद पर नियुक्त किए जाने योग्य है और इस संदर्भ में पत्र सूचनाएँ इप्सित करता है कि क्या उच्च न्यायालय द्वारा कोई आदेश पारित किया गया है जिसके अधीन ऐसे व्यक्तियों को जो शिथिलीकरण द्वारा पाँच वर्ष जोड़े जाने पर भी महत्तम आयु सीमा पार कर गए हैं, पंचायत सेवक के पद पर नियुक्त करना है।

4. आक्षेपित पत्र के कोरे परिशीलन से यह स्पष्ट है कि यह उनकी नियुक्ति हेतु याचीगण के दावों को स्वीकार अथवा अस्वीकार करते हुए कोई सकारात्मक निर्णय अंतर्विष्ट नहीं करता है और केवल पत्र का अभिखंडन याचीगण की शिकायतों का उत्तर नहीं दे पाएगा।

5. तथापि, याचीगण जिन्होंने पंचायत सेवक के पद पर नियुक्ति इप्सित की है, के दावों पर विचार करने के साथ रिट याचिका के अनेक पैराग्राफ में सामने आए अन्य तथ्यों को भी विचार में लेने की आवश्यकता है।

6. याचीगण को स्वीकृत तौर पर दलपति के पद पर वर्ष 1988 से 1990 के बीच नियुक्त किया गया था। समयक्रम में, याचीगण में से प्रत्येक ने पंचायत सेवक के पद पर उनकी नियुक्ति हेतु पात्रता प्राप्त की है। तथापि यह प्रतीत होता है कि संबंद्ध विभाग ने पंचायत सेवकों के पद पर दलपतियों की नियुक्ति हेतु कोई कदम नहीं उठाया था और इससे व्यथित होकर, दलपतियों ने इस न्यायालय के समक्ष रिट याचिकाएँ दाखिल की थी। जबकि रिट याचिकाओं को निपटाते हुए, इस न्यायालय ने प्रत्यर्थीगण के संबंधित प्राधिकारीगण को तत्परता से नियुक्ति हेतु कदम उठाने का निर्देश दिया था। जब न्यायालय के आदेश के बावजूद मामले में विलम्ब किया जा रहा था, अवमान याचिकाएँ दाखिल की गयी थी। अवमान याचिकाओं के प्रति अपनी प्रतिक्रिया के चलते प्रत्यर्थीगण के संबंद्व प्राधिकारीगण ने दलपतियों के मामलों को चयन कमिटी को निर्दिष्ट कर दिया था। ऐसा संदर्भ वर्ष 2006 में किसी समय किया गया था।

चयन कमिटी ने दलपतियों में से प्रत्येक के मामले पर विचार किया और इनका परीक्षण किया और उनको दो भिन्न समूहों में वगीकृत किया। एक समूह ऐसे दलपतियों का था जो पाँच वर्षों की शिथिल आयु सहित 42 वर्ष की आयु की महत्तम सीमा पार नहीं की थी और द्वितीय समूह उनका था जिन्होंने 42 वर्ष की आयु पार कर ली थी। चयन कमिटी के रिपोर्ट से यह भी प्रतीत होता है कि उनकी नियुक्ति हेतु दलपतियों के मामले की अनुशंसा करते हुए उम्मीदवारों की महत्तम आयु के आकलन हेतु चयन कमिटी ने जनवरी, 2002 को कट-ऑफ तिथि नियत करना समुचित समझा था। चयन कमिटी की रिपोर्ट में स्पष्टीकरण दिया गया है कि अनेक रिट याचिकाओं में इस न्यायालय द्वारा पारित आदेशों

के आलोक में और इस तथ्य पर भी विचार करते हुए कि उनकी नियुक्ति हेतु दलपतियों के मामलों पर विचार करने में राज्य सरकार के संबंधित विभाग की ओर से अत्यधिक विलम्ब किया गया है, कट-ऑफ-तिथि नियत की गयी है।

7. चयन कमिटी की अनुशंसा के प्रत्युत्तर में, निदेशक, पंचायती राज ने उप-कमिश्नर गोड्डा से दिनांक 9.10.2006 के पत्र (प्रति शपथपत्र का परिशिष्ट-C) द्वारा यह सूचना इप्सित किया था कि क्या पहले की रिट याचिकाओं में इस न्यायालय द्वारा पारित ऐसे विनिर्दिष्ट आदेश है जिनके आधार पर कट-ऑफ-तिथि जनवरी, 2002 नियत की गयी थी और यह भी जानना चाहा कि क्या वैसे उम्मीदवारों, जो आयु के शिथिलीकरण के बाद भी 42 वर्ष की आयु की महत्तम सीमा पहले ही पार कर चुके थे, वे अपनी प्रोन्नति के पात्र अभी भी हैं। इप्सित सूचनाएँ उपलब्ध नहीं करायी गयी थी, निदेशक, पंचायती राज ने दिनांक 23.5.2007 के उसके पत्र द्वारा घोषित किया था कि महत्तम आयु सीमा शिथिलीकरण के बाद भी ऐसे उम्मीदबार जो 42 वर्ष की महत्तम आयु सीमा पार कर चुके थे, अपनी नियुक्ति के पात्र नहीं हैं।

8. याचीगण के विद्वान अधिवक्ता निष्पक्षतापूर्वक स्वीकार करते हैं कि जनवरी 2002 को कट-ऑफ-तिथि नियत करने से पहले के किसी रिट याचिकाओं में इस न्यायालय द्वारा कोई विनिर्दिष्ट आदेश पारित नहीं किया गया है। लेकिन, विद्वान अधिवक्ता तर्क करेंगे कि तथ्य की इस दृष्टि में कि राज्य सरकार के संबंद्ध विभाग ने इस मामले में विलंब किया था जिससे दलपति, जो शुरू से ही नियुक्ति चाह रहे थे और यदि विभाग के संबंधित प्राधिकारीगण निष्क्रिय नहीं रहते तो अपनी नियुक्ति द्वारा लाभान्वित होते, पर प्रतिकूल प्रभाव और गंभीर नुकसान कारित हुआ है।

9. अभिलेख पर उपस्थित दस्तावेजों से प्रतीत होता है कि यद्यपि चयन कमिटि ने एक कट-ऑफ-तिथि नियत करना प्रस्तावित किया है और कट-ऑफ-तिथि के आधार पर अपनी अनुशंसाएँ भी की थी और आगे यह कि यद्यपि कट-ऑफ-तिथि नियत करने हेतु अपने कारण भी बताए थे लेकिन जैसा प्रतीत होता है कि इस तथ्य की दृष्टि में कि यह केवल चयन कमिटी की अनुशंसा माना था जिसे राज्य सरकार के ऊपर बाध्यकारी नहीं कहा जा सकता था, इस विवाद्यक पर अंतिम प्राधिकार राज्य सरकार के संबंधित विभाग को था।

10. इन परिस्थितियों के अधीन, चूँकि स्वीकृत तौर पर उस तिथि पर, जब चयन कमिटी द्वारा अनुशंसा की गयी थी और जून 2006 में संबंद्व विभाग द्वारा इसपर विचार किया गया था, याचीगण, पाँच वर्षों का शिथिलीकरण मिलने पर भी, 42 वर्ष की महत्तम आयु सीमा पार कर गए थे। मामले के इस दृष्टिकोण में, पंचायत सेवक के पद पर उनको नियुक्त करने हेतु संबंद्ध प्राधिकारीगण के इंकार पर याचीगण संभवत: कोई शिकायत नहीं कर सकते हैं।

11. लेकिन याची के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह सूचित किया गया है और प्रत्यर्थी राज्य के अधिवक्ता द्वारा अभिपुष्ट किया गया है कि राज्य सरकार के संबंद्ध विभाग ने एक परिपत्र जारी किया है जिसे परिपत्र सं॰ 10 दिनांक 6.1.2010 के तौर पर अधिसूचित किया गया है, जिसके अधीन पंचायत सेवक के पद पर दलपतियों की नियुक्ति के लिए महत्तम आयु सीमा 55 वर्ष नियत करने का निर्णय लिया गया है। यदि ऐसा है, तब याचीगण, यदि उन्होंने आज की तिथि तक 55 वर्ष की आयु पार नहीं

किया है, पंचायत सेवक के पद पर अपनी नियुक्ति हेतु फिर से अपना दावा कर सकते हैं और अपनी नियुक्ति हेतु प्रत्यर्थीगण के संबंद्ध प्राधिकारीगण के समक्ष अपना अभ्यावेदन प्रस्तुत कर सकते हैं। अभ्यावेदन की प्राप्ति की तिथि से तीन माह के भीतर प्रत्यर्थीगण के संबंद्ध प्राधिकारीगण को उनकी नियुक्ति हेतु याचीगण की प्रार्थना पर समुचित निर्णय लेना होगा और इस प्रक्रिया में उन अनुशंसाओं जिसे चयन कमिटी ने पहले ही याचीगण के पक्ष में किया था और महत्तम आयु सीमा तय करने के संबंध में राज्य सरकार के नवीनतम परिपत्र को विचार में लेना होगा। याचीगण के अभ्यावेदनों पर लिए गए निर्णय को प्रभावशाली रूप से याचीगण को संसूचित करना होगा।

इन संप्रेक्षणों के साथ, यह रिट याचिका निपटायी जाती है।

इस आदेश की प्रति प्रत्यर्थी राज्य के अधिवक्ता को दी जाए।

माननीय नरेन्द्र नाथ तिवारी, न्यायमूर्ति

राम चन्द्र कँवर

बनाम

झारखण्ड राज्य एवं अन्य

WP(S) No. 2906 of 2008. Decided on 17th March, 2010.

सेवा विधि–सेवानिवृत्ति लाभ–पूर्ण पेंशन की राशि, जी॰ पी॰ एफ॰ पर ब्याज, पुनरीक्षित वेतनमान में वेतन की भिन्नता के देयों सहित सेवानिवृत्ति पश्चात एवं सेवा समाप्ति देयों के भुगतान हेतु दावा–याची को आरंभ में प्रशिक्षित शिक्षक के तौर पर नियुक्त किया गया था और उसने विद्यालय के अधिग्रहण के बाद हेडमास्टर के तौर पर सेवा दी थी और अधिवर्षिता की आयु प्राप्त करने पर सेवानिवृत्त हुआ था–वर्तमान तिथि तक केवल पेंशन और जी॰ पी॰ एफ॰ का भुगतान किया गया है–बार-बार किए गए प्रार्थनाओं और अभ्यावेदनों के बावजूद वर्तमान तिथि तक विलम्बित भुगतान पर सांविधिक ब्याज और शेष देयों का भुगतान याची को नहीं किया गया है–याची को नया अभ्यावेदन दाखिल करने की छूट दी गयी–ग्राह्य ब्याज के साथ समस्त राशियों का भुगतान किया जाना होगा। (पैरा 2 से 7)

अधिवक्तागण.–Mr. Arbind Kumar Jha, For the Petitioner; Mr. Srijit Choudhary, For the State; JC to Mr. S. Srivastava, For A.G.

आदेश

यह रिट याचिका, याची ने सांविधिक ब्याज और अन्य लाभों के साथ पूर्ण पेंशन राशि, जी॰ पी॰ एफ॰ पर ब्याज, दिनांक 1.3.1989 से दिनांक 31.3.1991 तक की अवधि के लिए पुनरीक्षित वेतनमान में वेतन की भिन्नता के देयों, वेतन के 10% की दर पर वर्ष 1994, 1995 एवं 1996 के लिए अंतरिम अनुतोष एवं दिनांक 1.4.1996 से 31.12.1998 तक की अवधि के लिए 10,000/- रुपयों के लिए देय वेतन के लिए 10 प्रतिशत, दिनांक 1.1.1999 से 31.12.2002 तक की अवधि के लिए प्रोन्नति देयों, दिनांक 1.1.1999 से 31.12.2002 तक की अवधि के लिए आवास किराया भत्ता और नगर भत्ता सहित याची के सेवानिवृत्ति पश्चात और सेवा समाप्ति देयों, जो याची को उसकी सेवा से सेवानिवृत्ति के पश्चात् भुगतान योग्य है, के भुगतान का निर्देश प्रत्यर्थीगण को देने के लिए दाखिल की है।

2. यह कथन किया गया है कि दिनांक 12.2.1968 को अधिसूचित क्षेत्र समिति द्वारा प्रशिक्षित शिक्षक के रूप में आरंभ में याची को नियुक्त किया गया था। उसे फरवरी, 1987 के प्रभाव के साथ हेडमास्टर के पद पर प्रोन्नत किया गया था। दिनांक 1.1.1971 के प्रभाव के साथ सरकार द्वारा विद्यालय का अधिग्रहण किया गया था। तत्पश्चात्, याची ने हेडमास्टर के रूप में सेवा दी और दिनांक 31.12.2002 को अधिवर्षिता की आयु प्राप्त करने पर सेवानिवृत्त हुआ। उसकी सेवानिवृत्ति के बाद, उक्त देय उसको भुगतान योग्य थे, किन्तु बार-बार प्रार्थना किए जाने और अभ्यावेदन किए जाने के बावजूद, इनका भुगतान उसे नहीं किया गया था।

3. आगे यह निवेदन किया गया है कि यद्यपि पूर्वोक्त देय याची को भुगतान योग्य थे, आज की तिथि तक केवल पेंशन एवं जी॰ पी॰ एफ॰ का भुगतान किया गया है। डब्ल्यू॰ पी॰ एस॰ सं॰ 1210 वर्ष 2005 में इस न्यायालय द्वारा पारित आदेश के बाद जी॰ पी॰ एफ॰ की राशि का भुगतान किया गया था। किन्तु, विलम्बित भुगतान पर सांविधिक ब्याज ओर शेष देयों का भुगतान उसके बार-बार प्रार्थना किए जाने और अभ्यावेदन किए जाने के बावजूद भी आज की तिथि तक याची को नहीं किया गया है।

4. राज्य की ओर से विद्वान जी॰ पी॰-I ने निवेदन किया कि याची के दावे पर विचार किया जाएगा और समुचित आदेश पारित किया जाएगा।

5. महालेखाकार झारखण्ड की ओर से उपस्थित, श्री एस॰ श्रीवास्तव के विद्वान जे॰ सी॰ ने निवेदन किया कि उन्होंने अभी तक याची का दावा प्राप्त नहीं किया है और उन्होंने संबंधित प्राधिकारियों को पहले ही इसके लिए लिखा हैं यह आश्वासन दिया गया है कि जैसे ही याची का दावा प्राप्त किया जाता है, इसपर विचार किया जाएगा और समुचित आदेश पारित किया जाएगा।

6. पक्षों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा किए गए उक्त निवेदनों की दृष्टि में, याची को संबंधित प्राधिकारियों के समक्ष अपने दावों का विनिर्दिष्ट करते हुए इस आदेश की प्रति के साथ नया अभ्यावेदन दाखिल करने की छूट देते हुए यह रिट याचिका निपटायी जाती है। यदि ऐसा अभ्यावेदन दाखिल किया जाता है, जिला शिक्षा अधीक्षक, धनबाद प्रत्यर्थी सं॰ 4 और अधिसूचित क्षेत्र समिति प्रत्यर्थी सं॰ 5 और अन्य संबंधित प्राधिकारियों को इसपर विचार करना होगा और अभ्यावेदन की प्राप्ति की तिथि से छः सप्ताह की अवधि के भीतर विधि के अनुरुप समुचित आदेश पारित करना होगा। प्रासंगिक कागजातों की प्राप्ति पर महालेखाकार को तुरन्त समुचित आदेश पारित करना होगा और प्रासंगिक कागजातों की प्राप्ति की तिथि से छः सप्ताह की अवधि के भीतर विधि के अनुरुप भुगतान आदेश जारी करना होगा।

7. यह स्पष्ट किया जाता है कि अनुज्ञेय ब्याज के साथ समस्त राशियों का भुगतान करना होगा।

यदि याची को भुगतान योग्य राशियों का भुगतान उक्त अवधि के भीतर नहीं किया जाता है, अंतिम भुगतान होने तक याची को भुगतान योग्य सांविधिक ब्याज के अतिरिक्त इसपर 10% की वार्षिक दर से ब्याज लगेगा।

माननीय डी॰ जी॰ आर॰ पटनायक, न्यायमूर्ति

सदानन्द सतुआ

बनाम

झारखण्ड राज्य एवं अन्य

WP(C) No. 1442 of 2007. Decided on 26th March, 2010.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908—आदेश XLI, नियम 27— अतिरिक्त साक्ष्य–अपील में अतिरिक्त साक्ष्य प्रस्तुत करने की आवेदन का अस्वीकरण–कब्जे की सम्पुष्टि/वसूली के अतिरिक्त, वाद सम्पत्ति पर अधिकार, अभिधान एवं हित की घोषणा के लिए याची-वादी द्वारा वाद दाखिल किया गया था–दावा मुख्यतः याची के पक्ष में निष्पादित विक्रय-विलेख पर आधृत–विचारण न्यायालय द्वारा वाद खारिज–अतिरिक्त साक्ष्य प्रस्तुत करके प्रतिवादी द्वारा प्रस्तुत मृत्यु प्रमाण-पत्र की विशुद्धता को चुनौती देने के लिए याचीगण द्वारा पहले कोई उपाय नहीं किए गए–मुकदमें का पक्षकार सामान्य अनुक्रम में अतिरिक्त साक्ष्य प्रस्तुत करने का अधिकारी नहीं होते हैं–अतिरिक्त साक्ष्य प्रस्तुत करने को इप्सित करने वाले पक्ष को सिद्ध करना होता है कि सम्यक् तत्परता के बावजूद, ऐसा साक्ष्य उनकी जानकारी में नहीं था या सम्यक तत्परता के उपरान्त उसके द्वारा उस समय प्रस्तुत नहीं किया जा सका था जब वह डिक्री पारित की गई थी जिसके विरुद्ध अपील दाखिल है–अपीलार्थी ने यह नहीं कहा है कि इस सम्बन्ध में यह अभिनिश्चय करने के लिए उसने सम्यक् तत्परता का इस्तेमाल किया था कि प्रतिवादी द्वारा प्रस्तुत मृत्यु प्रमाणपत्र एक जाली दस्तावेज था या नहीं–अपीलीय चरण में अतिरिक्त साक्ष्य प्रस्तुत करने की अनुमति के लिए याची/अपीलार्थी की प्रार्थना को अवर न्यायालय ने उचित ही खारिज कर दिया–याचिका खारिज। (पैरा 3, 4, 7, 9 से 12)

अधिवक्तागण.–Mr. A.K. Das, For the Petitioner; J.C. to S.C. II, For the Respondent-State; Mr. P.A.S. Pati, For the Respondent No. 2.

आदेश

सुना।

2. अभिधान अपील सं॰ 19 वर्ष 2004 में द्वितीय अपर जिला न्यायाधीश, जमशेदपुर द्वारा पारित दिनांक 22.2.2007 के आदेश को भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन इस रिट आवेदन में चुनौती दी गई है जिसके द्वारा अपील में अतिरिक्त साक्ष्य प्रस्तुत करने के लिए याची/अपीलार्थी की प्राथना सि॰ प्र॰ सं॰ के आदेश 41, नियम 27 के अधीन अस्वीकार कर दिया गया है।

3. संक्षेप में कहा गया याची के मामले का तथ्य निम्नांकित रूप से हैं:-

याची/वादी ने वाद सम्पत्ति के अपने कब्जे के सम्पुष्टिकरण एवं वैकल्पिक रूप से, कब्जे की पुनः प्राप्ति के साथ साथ इसका अपने अधिकार, अभिधान एवं हित की घोषणा के लिए एक डिक्री हेतु मुंसिफ न्यायालय, घाटशिला के समक्ष अभिधान वाद सं॰ 13 वर्ष 2000 के माध्यम से एक अभिधान वाद दाखिल किया।

उसका दावा मुख्यतः किसी बादल दोलाई द्वारा उसके पक्ष में तात्पर्यित रूप से निष्पादित एक विक्रय-विलेख पर आधृत था और जिसके बारे में उप-निबंधक, जमशेदपुर के समक्ष 3.6.1998 को इसे पंजीकृत कराने का दावा किया गया था।

प्रतिवादी सं॰ 1 होने के नाते प्रत्यर्थी सं॰ 2 ने वादी के दावा का प्रतिवाद किया है और विक्रय-विलेख को एक विशुद्ध एवं दुरुस्त दस्तावेज न बताते हुए इसपर प्रश्न उठाया है, इस आधार पर कि तात्पर्यित निष्पादक बादल दोलाई की 7.1.1986 को मृत्यु हो गई थी और इसलिए वह 3.6.1998 को ऐसा कोई दस्तावेज निष्पादित करने के लिए जीवित नहीं था।

अभिवाकों के आधार पर, विचारण न्यायालय ने कई मुद्दों को विरचित किए हैं। सुसंगत मुद्दा वर्तमान मामले के न्याय निर्णयन के प्रयोजन के लिए मुद्दा सं॰ (g) है इसको लेकर कि क्या वादी का अभिकथित विक्रय-विलेख वैध, वैधानिक एवं बाध्यकारी है।

जबकि वादी ने अपने मामले के समर्थन में साक्ष्य में दिनांक 3.6.1998 के विक्रय-विलेख को प्रस्तुत किया है, प्रतिवादी ने बदले में अपने लिखित बयानों के साथ-साथ उप-निबंधक जन्म-मृत्यु, जिला मिदनापुर, पश्चिम बंगाल द्वारा निर्गत इस प्रभाव का मृत्यु-प्रमाणपत्र पेश किया है कि उक्त बादल दोलाई, पिता□स्वर्गीय कार्तिक दोलाई, पुरुष आयु□लगभग 68 वर्ष ग्राम-ताराडिहा, डाकघर-पेटविंड, जिला□मिदनापुर, पश्चिम बंगाल के निवासी की मृत्यु 7.11.1986 को तपसिया पी० एच० सी० में हुई थी।

मृत्यु-प्रमाणपत्र पर भरोसा करते हुए और इस तथ्य पर विचार करते हुए प्रमाण-पत्र की विशुद्धता की उप-धारणा का खण्डन करने के लिए वादी ने कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया था, विचारण न्यायालय ने पूर्वोक्त मुद्दे पर अपने निष्कर्ष में प्रतिवादी के पक्ष में और वादी के विरुद्ध अभिलिखित किया और इस आधार पर वाद को खारिज कर दिया गया।

मुंसिफ द्वारा पारित निर्णय एवं डिक्री के विरुद्ध वादी/याची ने प्रथम अपीलीय न्यायालय के समक्ष अपनी अपील दाखिल की।

अपील में याची/अपीलार्थी ने सि० प्र० सं० के आदेश 41, नियम 27 के अधीन एक आवेदन दाखिल किया, यह प्रार्थना करते हुए कि उसे अतिरिक्त साक्ष्य रखने की अनुमति दी जाय और सुसंगत पंजियों को पेश करने के लिए तपसिया पी० एच० सी० के सम्बद्ध प्राधिकारों को सम्मन निर्गत किया जाय, इस आधार पर कि अपीलार्थी ने अपनी स्वयं की जाँच पर बाद में पता लगाया था कि प्रतिवादी द्वारा पेश किया गया और भरोसा किया गया प्रमाण-पत्र वस्तुतः एक कूटरचित एवं मिथ्या दस्तावेज थे और यह की ऐसे दस्तावेज के आधार पर, प्रतिवादी ने विचारण न्यायालय को दिग्भ्रमित किया था।

अपीलार्थीगण के उस साक्ष्य पेश करने की अनुमति के लिए प्रतिवादी/प्रत्यर्थी द्वारा जोरदार रूप से प्रतिवाद किया गया था।

पक्षों की सुनवाई करके और अभिलेख पर मौजूद सामग्रियों पर विचार करके अपीलीय न्यायालय ने अपीलार्थी के प्रार्थना को इस आधार पर खारिज कर दिया कि अपीलीय चरण में अतिरिक्त साक्ष्य पेश करने के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 41, नियम 27 की परिधि के भीतर अपीलार्थी ने कोई आधार नहीं बनाया था।

4. आक्षेपित आदेश की आलोचना करते हुए, याची के विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि अपीलीय न्यायालय द्वारा न्यायिक विवेक के इस्तेमाल किए बगैर और याची द्वारा पेश किए गए इस स्पष्टीकरण के मूल्यांकन किए बगैर आक्षेपित आदेश पारित किया गया है कि सम्यक् तत्परता के बावजूद, उसे इस तथ्य की जानकारी प्राप्त नहीं हो सकी थी कि प्रतिवादी द्वारा पेश किया गया मृत्यु प्रमाण पत्र एक जाली एवं कूटरचित दस्तावेज था और विचारण न्यायालय द्वारा अन्तिम रूप से डिक्री पारित किए जाने के उपरांत ही वादी द्वारा ऐसे तथ्य को अभिनिश्चित किया जा सका था जो सम्बद्ध अस्पताल के अभिलेखों के सत्यापन के उपरांत हो सका था। विद्वान अधिवक्ता तर्क रखते हैं कि अवर न्यायालय को इसपर विचार करना चाहिए था कि याची द्वारा पेश किए जाने के लिए इप्सित साक्ष्य न केवल विक्रय-विलेख की विशुद्धता के संबंध में याची/वादी के मामले का समर्थन करते जिसके आधार पर वादी के दावा किए गए अनुतोषों को वाद में आधृत किया है अपितु तात्विक न्याय प्रदान करने में भी इसे सक्षम बनाया होता।

5. प्रत्यर्थी सं॰ 2 ने अपना प्रति शपथपत्र दाखिल करके याची के दावे का प्रतिवाद किया है और अवर न्यायालय के आक्षेपित आदेश का समर्थन किया है।

6. पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनकर एवं अभिधान वाद में विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय एवं डिक्री की एक प्रति के तौर पर आक्षेपित आदेश का परिशीलन पर, यह प्रतीत होता है कि याची ने तथ्यों की अतिरिक्त अन्वेषण के आधार पर एक नए अभिवाक को रखने के उपाय किया है, उसने अपीलीय चरण में अतिरिक्त साक्ष्य प्राप्त करने के प्रयास किया है।

7. विचारण न्यायालय के समक्ष, प्रतिवादी ने अपने लिखित कथन में, स्पष्टत: घोषित किया था कि विक्रय-विलेख के तात्पर्यित निष्पादक की मृत्यु दस्तावेज को अभिकथित निष्पादन से काफी पहले 7.11.1986 को हो गई थी और उक्त मृतक की मृत्यु सबूत के तौर पर मृत्यु प्रमाण-पत्र भी पेश किया था। प्रतिवादीगण के दावे का उसके मृत्यु प्रमाण पत्र का भी खण्डन करने का विकल्प अपनी ओर से साक्ष्य प्रस्तुत करके वादी के लिए खुला था। प्रतिवादीगण के विनिर्दिष्ट अभिवाकों के आलोक में अगर वादी को मृत्यु-प्रमाण पत्र की विशुद्धता के संबंध में कोई संदेह था वह सम्यक् तत्परता से जाँच कर सकता था और सम्बद्ध अस्पताल से एवं जन्म-मृत्यु के उप निबंधन के कार्यालय से अपने तौर पर सत्यापन कर सकता था, जिसने मृत्यु-प्रमाण पत्र निर्गत किया था। जैसा कि यह प्रतीत होता है, यद्यपि वाद वर्ष 2000 में दाखिल किया गया था और प्रतिवादी के लिखित कथन वाद में उसकी हाजिरी के शीघ्र बाद ही प्राप्त किए गए थे, याची/वादी ने 2004 में विचारण न्यायालय द्वारा निर्णय एवं डिक्री के पारित होने तक प्रतिवादीगण द्वारा पेश किए गए मृत्यु-प्रमाणपत्र की विशुद्धता को खारिज करने हेतु साक्ष्य का सत्यापन करने और इसे प्राप्त करने के लिए कम-से-कम पूरे तीन वर्ष थे। इसके विपरीत यह प्रतीत होता है कि वादी/याची ने अपनी ओर से किसी ऐसे अतिरिक्त अभिवाक को सामने रखकर विचारण न्यायालय के समक्ष मृत्यु-प्रमाण पत्र की विशुद्धता को कभी भी चुनौती नहीं दी थी। उप-निबंधक, जन्म-मृत्यु के कार्यालय द्वारा निर्गत मृत्यु-प्रमाण पत्र की विशुद्धता की उप-धारणा का खण्डन करने के लिए उसके द्वारा कोई साक्ष्य नहीं रखा गया था।

8. सिविल प्रक्रिया संहिता का आदेश 41, नियम 27 निम्नांकित रूप से पठित हैं:-

*"27. **अपीलीय न्यायालय में अतिरिक्त साक्ष्य को प्रस्तुत करना.**-(1) एक अपील के पक्षकारगण अपीलीय न्यायालय में अतिरिक्त साक्ष्य चाहे मौखिक हो या दस्तावेजी रखने के अधिकारी नहीं होगें, परन्तु अगर-*

(a) अगर उस न्यायालय ने जिसकी डिक्री से अपील दाखिल की गई है उस साक्ष्य को स्वीकारने से इन्कार किया हो जो उसे स्वीकार करना चाहिए था, या

[(aa) अतिरिक्त साक्ष्य रखने को इप्सित करने वाला पक्ष सिद्ध करता है कि सम्यक तत्परता का इस्तेमाल करने के बावजूद, ऐसा उसकी जानकारी में नहीं था, या सम्यक् तत्परता के इस्तेमाल के उपरांत, इसे उस समय पेश नहीं किया जा सका जब वह डिक्री पारित की गई थी जिसके विरुद्ध अपील है, या]

(b) अपीलीय न्यायालय किसी दस्तावेज को पेश किया जाना या गवाह का परीक्षित किया जाना आवश्यक बनाता है ताकि यह निर्णय देने में सक्षम हो सके या किसी अन्य तात्विक खण्ड के लिए अपीलीय न्यायालय ऐसे किसी साक्ष्य या दस्तावेज को पेश किया जाना या गवाह को परीक्षित किया जाना अनुमान्य कर सकता है।

(2) जब कभी भी एक अपीलीय न्यायालय द्वारा अतिरिक्त साक्ष्य पर रखा जाना अनुज्ञात किया जाता है, न्यायालय इसके ग्रहण करने के कारणो को अभिलिखित करेगा।"

9. उपरोक्त प्रावधान से यह प्रकट है कि एक मुकदमें के पक्षकार सामान्य अनुक्रम में अतिरिक्त साक्ष्य रखने के अधिकारी नहीं है बल्कि उन्हें अनिवार्यत: उन शर्तों को संतुष्ट करना होगा जैसा कि उप-खण्ड (a) एवं (aa) में यथा विनिर्दिष्ट किया गया है।

10. विद्वान अवर न्यायालय ने पेश किए गए स्पष्टीकरण एवं मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों के संदर्भ में और सि॰ प्र॰ सं॰ के आदेश 41, नियम 27 के प्रावधानों के अधीन अधिकथित शर्तों के संदर्भ में भी याची/अपीलार्थी की प्रार्थना पर विचार किया है और ऊपर यह निष्कर्ष अभिलिखित किया है कि अपीलार्थी/वादी को प्रतिवादी द्वारा पेश किए गए साक्ष्यों के खण्डन करने का पर्याप्त अवसर दिया गया था और विचारण न्यायालय के समक्ष प्रतिवादी द्वारा पेश किए गए साक्ष्य का खण्डन करने के लिए अपीलार्थी ने कोई साक्ष्य इप्सित नहीं किया है।

जो एकमात्र आधार अतिरिक्त साक्ष्य को रखने के लिए याची/अपीलार्थी द्वारा इप्सित किया गया है वह यह है कि सामने रखे जाने वाले तथ्य वाद में डिक्री पारित किए जाने से पहले इसकी जानकारी में नहीं था। सि॰ प्र॰ सं॰ के आदेश 41, नियम 27 के उप-खण्ड (aa) के प्रावधानों के अनुसार, अतिरिक्त साक्ष्य रखने की ईप्सा करने वाले पक्ष को स्थापित करना होता है कि सम्यक् तत्परता के इस्तेमाल के बावजूद ऐसा साक्ष्य उसकी जानकारी में नहीं था। सम्यक् तत्परता के इस्तेमाल के उपरांत उसके द्वारा उस समय पेश नहीं किया जा सकता था जब वह डिक्री पारित की गई थी जिसके विरुद्ध अपील है। अपीलार्थी ने नहीं कहा है कि उसने सम्यक् तत्परता का इस्तेमाल किया था अभिनिश्चित करने के लिए कि प्रतिवादी द्वारा पेश किया गया मृत्यु प्रमाण-पत्र एक जाली दस्तावेज था। वस्तुतः किसी भी समय वादी/याची ने यह अभिवाक नहीं उठाया था कि मृत्यु प्रमाण पत्र एक जाली प्रमाण पत्र था। उपरोक्त तथ्यों से यह प्रकट है कि वह अनिवार्य शर्त जिसके आधार पर अपीलीय चरण में अतिरिक्त साक्ष्य प्रस्तुत किया जा सकता था, याची/अपीलार्थी द्वारा पूरी नहीं की गई है। मामले के इस दृष्टि में, विद्वान अवर न्यायालय ने अपीलीय चरण पर पेश करने के लिए अतिरिक्त साक्ष्य रखने की अनुमति मांगने के याची/अपीलार्थी की प्रार्थना को उचित ही खारिज किया है।

11. एक अन्य पहलू जिसे नोट करना भी सुसंगत होगा, यह अभिवाक् है कि प्रतिवादी द्वारा पेश किया गया मृत्यु-प्रमाण पत्र एक जाली एवं कूटरचित दस्तावेज है, वादी/अपीलार्थी द्वारा पहली बार अपीलीय चरण में उठाया गया अभिवाक् है, जो तात्पर्यित रूप से तथ्यों के उसके अन्वेषण पर आधृत था। सम्बद्ध अस्पताल से एवं जन्म मृत्यु के उप-निबंधक के कार्यालय से भी पंजियो को मंगवाने की प्रार्थना प्रकटतः उसके नए अभिवाक का समर्थन करने के लिए है। ऐसे नए अभिवाक् के समर्थन में अतिरिक्त साक्ष्य प्रस्तुत किया जाना सि॰ प्र॰ सं॰ के आदेश 41, नियम 27 के प्रावधानों के अधीन अनुमान्य नहीं है।

12. मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों और ऊपर की गई परिचर्चाओं के आलोक में, मैं इस रिट आवेदन में कोई गुण नहीं पाता। तद्नुसार, यह रिट आवेदन खारिज किया जाता है। तथापि, व्ययों को लेकर कोई आदेश नहीं होगा।

माननीय जे॰ सी॰ एस॰ रावत एवं जया रॉय, न्यायमूर्तिगण

दिनेश कुमार वर्मा

बनाम

बिहार राज्य (अब झारखण्ड)

Criminal Appeal No. 142 of 1993 (R). Decided on 12th March, 2010.

एस॰ टी॰ सं॰ 23 वर्ष 1990 में तीसरे अपर सत्र न्यायाधीश, हजारीबाग द्वारा पारित दिनांक 31.7.1993 के दोषसिद्धि के निर्णय एवं आदेश के विरुद्ध।

भारतीय दण्ड संहिता, 1860—धाराएँ 302 एवं 201—हत्या–आजीवन कारावास–परिस्थितिजन्य साक्ष्य–शव को जंगल में छुपाया गया–केवल इस कारण कि अपीलार्थीगण मृतक को साइकिल पर ले गए थे, यह उपधारित नहीं किया जा सकता कि अपीलार्थी मृतक को साथ ले गए थे–यह मात्र एक संयोग था–पुलिस के समक्ष अभियुक्त द्वारा दिया गया बयान साक्ष्य में ग्राह्य नहीं है–यह मात्र साईकिल के कुछ भाग की वरामद्गी के सम्बन्ध में ही संगत है–अभियोजन मामला पूर्णतः चिकित्सीय साक्ष्य द्वारा संपोषित नहीं–अभियोजन द्वारा यथा समनुदेशित मंशा अधिसंभाव्य प्रतीत नहीं होता–मात्र यह तथ्य कि अभियुक्त एवं मृतक को अन्तिम बार साथ में देखा गया था, दोषसिद्धि का कोई आधार नहीं है–अपीलार्थी की दोषसिद्धि एवं दण्डादेश अपास्त–अपील अनुज्ञात। (पैरा 9 से 15)

निर्णयज विधि.–AIR 1979 SC 1949—Referred to.

अधिवक्तागण.–M/s Jai Prakash, Yogesh Modi, For the Appellant; Mr. Mukesh Kumar, For the Respondent.

जया रॉय, न्यायमूर्ति.–सत्र विचारण सं॰ 23/1990 में तृतीय अपर सत्र न्यायाधीश, हजारीबाग, श्री सत्येन्द्र कुमार गुप्ता द्वारा पारित दिनांक 31.7.1993 के निर्णय के विरुद्ध यह अपील दाखिल की गई है जिसके द्वारा भारतीय दण्ड संहिता की धारा 302 के अधीन अपीलार्थी की दोषसिद्धि की गई है और उसे आजीवन कारावास भुगतने का दण्डादेश सुनाया गया है। अपीलार्थी को भारतीय दण्ड संहिता की धारा 201 के अधीन भी दोषसिद्धि की गई थी और उसे पाँच वर्षो तक सश्रम कारावास भी भुगतने का आदेश किया गया था। दोनों दण्डादेशों को साथ-साथ चलने का निर्देश किया गया है।

2. अभियोजन मामला, जैसा कि सूचनादाता शंकर रजक की लिखित रिपोर्ट में कथन किया गया है, संक्षेप में यह है कि उसका ममेरा भाई केशो रजक (मृतक) जो मिसरॉल उच्च विद्यालय की दसवीं कक्षा का छात्र था, 31.8.1989 को 10 बजे पूर्वाह्न में विद्यालय गया था। वह अपने विद्यालय से वापस नहीं आया। संध्या में उसके माता-पिता ने उसके बारे में रिश्तेदारों से पूछ-ताछ की परन्तु, उसका अता-पता नहीं मालूम हो सका। उन्होंने उसे पूरी रात खोजा परन्तु वह नहीं मिला। अगले दिन, यानि 1.9.89 को उन्हें केशो रजक, जो भी दसवीं कक्षा का एक छात्र था, के साथियो से जानकारी मिली कि टिफिन के समय के उपरांत, उस विद्यालय में पांच विद्यार्थियों, अर्थात्, दिनेश कुमार वर्मा (अपीलार्थी), अर्जुन कुमार, महेश कुमार वर्मा, चरवा उरांव एवं दिलीप कुमार पाठक को अपने साथ केशो रजक को ले जाते उसे वन कार्यालय की ओर जाते हुए देखा गया था। दिनेश कुमार वर्मा साईकिल पर चढ़ा हुआ था और केशो रजक कैरियर पर बैठा हुआ था। अन्य चार छात्र भी अपनी अपनी साईकिल पर था। यह भी कहा गया है कि दो घंटों के उपरांत उनमें से केवल दिलीप कुमार पाठक लौटा जबकि अन्य छात्र नहीं लौटे। ऐसी सूचना पर, जब वन कार्यालय के पीछे तलाशी की गई थी तब एक छोटे गड्ढे में केशो रजक का शव पाया गया था और उसकी साईकिल उसके शव से पांच सौ गज की दूरी पर पाई गई थी। अतएव, यह संदेह किया गया कि उपरोक्त नाम लिए गए इन्हीं पाँच छात्रो ने केशो रजक की हत्या की थी और उसके शव को जंगल में छुपा दिया था। लिखित रिपोर्ट में यह भी कहा गया है कि केशो रजक के शव को देखकर उनके माता-पिता बहुत परेशान हो गए थे और इस प्रकार सूचना इस सूचनादाता द्वारा दर्ज की गई थी।

3. चूँकि मामला अनन्य रूप से सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय था, इसे सत्र न्यायालय भेज दिया गया था। विचारण न्यायालय ने भा॰ दं॰ सं॰ की धाराएँ 302/201/34 के अधीन सभी पाँच अभियुक्त

व्यक्तियों के विरुद्ध आरोप विरचित किया। विचारण के दौरान, अभियुक्त उमेश कुमार वर्मा, चरवा उरांव एवं दिलीप कुमार पाठक के संबंध में जो अभिकथित घटना के कारित करने के समय 16 वर्ष से कम आयु के किशोर पाए गए थे, मामले को पृथक कर दिया गया था।

4. अभियुक्त व्यक्तियों ने अपने विरुद्ध विरचित आरोपों का दोषी न होने का अभिवाक् किया और मुकदमा चलाए जाने का दावा किया। बचाव-पक्ष का अतिरिक्त पक्ष यह है कि उन्हें इस मामले में झूठ-मूठ फँसाया गया है परन्तु बचाव-पक्ष की ओर से कोई साक्ष्य पेश नहीं किया गया है।

5. अभियोजन ने 13 गवाहों को परीक्षित किया है। ये हैं अ॰ सा॰ 1 प्रेम चन्द राणा, अ॰ सा॰ 2 विजय कुमार रजक, अ॰ सा॰ 3, जय कुमार सिंह जो घटना के समय केशो रजक (मृतक) के सहपाठी थे। अ॰ सा॰ 4 शंकर रजक (सूचनादाता), अ॰ सा॰ 5 वकील रजक, अ॰ सा॰ 6 सरिता कुमारी, अ॰ सा॰ 7 तुलसी रजक, अ॰ सा॰ 8 गया सिंह, अ॰ सा॰ 9 डॉ॰ नन्द किशोर प्रसाद जिन्होंने पोस्ट-मार्टम परीक्षण किया था, अ॰ सा॰ 10 छमन धोबी मृतक का पिता है, अ॰ सा॰ 11 अनुवारूल हक, अ॰ सा॰ 12 बसंत लाल मोदी अन्वेषण पदाधिकारी है, अ॰ सा॰ 13 कमलेश राम।

6. गवाहों के साक्ष्य और अभिलेख पर मौजूद सामग्रियों पर विचार करके, विचारण न्यायालय ने अन्य अभियुक्त अर्जुन कुमार वर्मा के विरुद्ध लगे आरोपों से उसे मुक्त कर दिया और ऊपर बताए गए तरीके से वर्तमान अपीलार्थी दिनेश कुमार वर्मा की दोषसिद्धि की।

7. एकमात्र अपीलार्थी की ओर से उपस्थित होने वाले वरीय अधिवक्ता, श्री जय प्रकाश ने निवेदन किया कि अभिकथित घटना का कोई चश्मदीद गवाह नहीं है। अभियोजन मामला पूर्णतः परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधृत है। अ॰ सा॰ 1, 2 एवं 3 जो केशो रजक के सहपाठी थे, इन सभी ने कहा है कि दिनेश कुमार वर्मा केशो रजक की साईकिल पर उसे ले गया और तत्पश्चात् अर्जुन कुमार वर्मा एवं तीन अन्य साथियों दिलीप कुमार पाठक, उमेश कुमार एवं चरवा उरांव भी साईकिल पर उनके साथ हो लिया। टिफिन के समय के उपरांत केवल दिलीप कुमार पाठक लौटा एवं अन्य नहीं। उन्होंने यह भी कहा कि अगले दिन अ॰ सा॰ 10 अर्थात, छमन धोबी (केशो रजक के पिता) और अन्य ग्रामीणों को खोजने के क्रम में नावाडीह जंगल में केशो रजक का शव मिला और उसकी साईकिल उस स्थान से पाँच सौ गज की दूरी पर जहाँ से केशो रजक का शव पड़ा पाया गया था। उनके अनुसार, शव को पत्थर से कुचल दिया गया था जैसा कि प्रतीत होता था। इस प्रकार, इन तीन गवाहों के साक्ष्य से, यह प्रतीत होता है कि केशो रजक एवं सभी चार पूर्वोक्त व्यक्ति वन-क्षेत्र में साथ गए थे और केशो रजक अपनी साईकिल पर था और उसे दिनेश कुमार वर्मा (अपीलार्थी) द्वारा चलाया जा रहा था। श्री जय प्रकाश ने तर्क दिया है कि इस परिस्थिति से यानि, अपीलार्थी दिनेश कुमार वर्मा एवं मृतक केशो रजक को एक ही साईकिल पर होने की परिस्थिति से यह उपधारित नहीं किया जा सकता कि अपीलार्थी मृतक केशो रजक को अपने साथ ले गया था। यह मात्र एक संयोग है कि चूँकि साईकिल पाँच थी और छात्र छः थे, किसी एक को साईकिल चलाने वाले के कैरियर पर बैठना ही था।

8. अ॰ सा॰ 4 शंकर रजक, अ॰ सा॰ 8 गया सिंह, अ॰ सा॰ 10 चमन धोबी (मृतक का पिता) के साक्ष्य की संवीक्षा करने पर, यह प्रकाश में आया है कि तलाश करने पर, केशो रजक का शव नवाडीह जंगल में पाया गया था और केशो रजक की साईकिल भी उस स्थान से कुछ दूरी पर पाई गई थी जहाँ शव पड़ा हुआ था (अ॰ सा॰ 12) बसंत लाल मोदी इस मामले का अन्वेषण पदाधिकारी है। अन्वेषण पदाधिकारी के अनुसार भी शव जंगल में पाया गया था और केशो रजक की साईकिल भी उन स्थान से पाँच सौ गज की दूरी पर पाई गई थी जहाँ केशो रजक का शव पाया गया था। अ॰

सा॰ 12 ने अपने साक्ष्य में कथन किया है कि घटना-स्थल से 10-15 किलोग्राम का एक रक्तरंजित पत्थर और अन्य चार या पाँच रक्तरंजित पत्थर के छोटा टुकड़ा भी पूर्वोक्त स्थान से मिले थे और इनको भी जब्त किया गया था। इनके लिए अभिग्रहण सूची भी तैयार की गई थी। अन्वेषण पदाधिकारी (अ॰ सा॰ 12) ने अपने साक्ष्य में कहा है कि एक सह-अभियुक्त दिलीप कुमार पाठक ने अपनी गिरफ्तारी के उपरांत, उसके समक्ष अपराध कबूल किया था और किशोर केशो रजक की हत्या की घटना एवं रिकार्ड का एक विस्तृत विवरण दिया था। यह भी प्रतीत होता है कि दिलीप कुमार पाठक के इकबालिया बयानों पर केशो रजक के साईकिल का कुछ भाग जंगल से बरामद किए गए थे।

9. श्री जय प्रकाश ने तर्क दिया है कि पुलिस के समक्ष दिया गया इकबालिया बयान साक्ष्य में ग्राह्य नहीं है। वस्तुत: अभिलेख से यह प्रतीत होता है कि उक्त अभियुक्त के इकबालिया बयानों को किसी दण्डाधिकारी के समक्ष दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 164 के अधीन अभिलिखित नहीं किया गया था। अतएव, पूर्वोक्त इकबालिया बयान किसी महत्व का नहीं है। यह केवल साईकिल के कतिपय भागों की बरामदगी के संबंध में सुसंगत है।

10. अ॰ सा॰ 9 डॉक्टर नन्द किशोर प्रसाद जायसवाल जिसने मृतक केशो रजक के शव का पोस्ट-मार्टम परीक्षण किया था, ने अपने साक्ष्य में कहा है कि उसने शव पर मृत्यु पूर्व की उपहतियाँ पाई थी और राय दी थी कि खोपड़ी एवं मस्तिक पर पूर्वोक्त उपहतियों द्वारा कारित रक्त-स्त्राव एवं कारित आघात के कारण मृत्यु हुई थी जो कठोर एवं भोथरे पदार्थ द्वारा कारित किया गया था और संभवत: पत्थर द्वारा कारित की गई है। अपनी प्रति-परीक्षण में उसने कहा है कि अगर एक व्यक्ति पत्थर पर गिरता है तो ऐसी उपहतियां कारित हो सकती है।

11. अ॰ सा॰ 10 मृतक के पिता ने हत्या की मंशा के संबंध में कहा है कि एक महीने पहले अभियुक्त अपीलार्थी दिनेश कुमार वर्मा एवं अर्जुन कुमार वर्मा एवं तीन अन्य उसे धमकी दिया करते थे क्योंकि वह कक्षा की अगली बेंच पर बैठा करता था। हमारे विचार में, पूर्वोक्त अभियुक्त व्यक्तियों द्वारा केशो रजक की हत्या कारित करने की मंशा यह नहीं हो सकती थी।

12. श्री जय प्रकाश ने तर्क दिया है कि मात्र इस कारण मृतक केशो रजक की अन्तिम बार अभियुक्त अपीलार्थी के साथ देखा गया था, अभियुक्त पर हत्या का आरोप नहीं लगाया जा सकता और घटना-क्रम की कड़ी पूर्ण नहीं है। इस प्रकार यह सही है कि सिवाय इस परिस्थिति के कि अभियुक्त को अन्तिम बार पीड़ित के साथ देखा गया था हत्या, के अपराध के साथ अभियुक्त को जोड़ने के लिए कोई अन्य साक्ष्य नहीं है और यह हत्या के लिए अभियुक्त की दोषसिद्धि करने हेतु पर्याप्त नहीं है। मात्र यह तथ्य कि अभियुक्त एवं मृतक को अन्तिम बार एक साथ देखा गया था, दोषसिद्धि का कोई आधार नहीं हो सकता।

13. राज्य के अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि पोस्ट-मार्टम रिपोर्ट में यह आया है, ''मृत्यु हुए चौवालिस घंटे व्यतीत हो चुके थे''। यह तथ्य दर्शाता है कि केशो रजक 1 सितम्बर, 1989 के लगभग 2.30 अपराह्न में मारा गया था। अ॰ सा॰ 1, 2 एवं 3 के साक्ष्य से यह स्पष्ट है कि मृतक केशो रजक को अपीलार्थी द्वारा अपनी साईकिल पर टिफिन के समय यानि लगभग 1 बजे से डेढ़ बजे अपराह्न में ले जाया गया था। अतएव, परिस्थितियाँ अभियुक्त को अपराध से जोड़ती थी और विचारण न्यायालय ने उसे उचित ही दोषसिद्ध किया है।

14. श्री जय प्रकाश ने अन्त में तर्क दिया कि मृतक केशो रजक को अन्तिम बार अपीलार्थी एवं एक अन्य अभियुक्त अर्जुन कुमार वर्मा के साथ देखा गया था। विचारण न्यायालय ने उक्त अर्जुन कुमार वर्मा को आक्षेपित निर्णय द्वारा दोषमुक्त कर दिया है। इस संबंध में उन्होंने **ए॰ आई॰ आर॰ 1979 एस॰ सी॰ 1949** को उद्धृत किया है जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है:-

"सामान्यतः जब एक व्यक्ति किसी अन्य की हत्या कारित करने का अभियुक्त होता है। यह तथ्य कि अभियुक्त एवं मृतक को अन्तिम बार एक दूसरे के साथ देखा गया था और मृतक के शव गायब होने को लेकर संतोषजनक उतर देने में अभियुक्त की विफलता दोषसिद्ध करने की प्रकृति वाली एक परिस्थिति समझी जाती है। परन्तु जब दो अभियुक्त व्यक्तियों को अन्तिम बार मृतक के साथ देखा गया था और यद्यपि दोनों को मृतक के गायब होने की परिस्थिति में स्पष्टीकरण देना चाहिए एक को हत्या के आरोप से दोषमुक्त कर दिया जाता है और उसकी दोष मुक्ति के विरूद्ध कोई अपील दाखिल नहीं की जाती है, यह परिस्थिति कि मृतक को उनके साथ अन्तिम बार देखा गया था, अब दोषसिद्ध करने वाली एक परिस्थिति नहीं रह जाती है और अन्य अभियुक्त को भी उस आधार पर दोषसिद्ध नहीं किया जा सकता।

16. गवाहों के साक्ष्य और अभिलेख पर मौजूद सामग्रियों पर विचार करके और परिस्थितिजन्य साक्ष्य के परीक्षण को लागू करके एक यथा उपरोक्त सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अधिकथित सिद्धांत पर विचार करके हम विचारण न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय को बरकरार रखने में असमर्थ हैं, अतएव यह अपील अनुज्ञात की जाती है। भा॰ दं॰ सं॰ की धाराएँ 302 एवं 201 के अधीन अपराध के लिए अपीलार्थी की दोषसिद्धि और विचारण न्यायालय द्वारा उसपर अधिरोपित दोनों दण्डादेश अपास्त किए जाते हैं। चूँकि अपीलार्थी जमानत पर है, अपीलार्थी को उसके जमानत बन्धपत्रों की दायिताओं से उन्मोचित किया जाता है।

माननीय एम॰ वाई॰ इकबाल एवं प्रदीप कुमार, न्यायमूर्तिगण

संजीव कुमार देव

बनाम

झारखण्ड राज्य एवं अन्य

LPA No. 208 of 2001. Decided on 16th March, 2010.

बिहार (झारखण्ड) सार्वजनिक भूमि अतिक्रमण अधिनियम, 1956—धारा 3—सार्वजनिक भूमि से अतिक्रमण हटाने का निर्देश–प्रश्नगत भूमि के संबंध में टाइटल की घोषणा के लिए वाद दाखिल करने की स्वतंत्रता याची को देते हुए एकल न्यायाधीश द्वारा रिट याचिका खारिज–जनहित याचिका में जारी सामान्य निर्देश के आधार पर किसी व्यक्ति को उस भूमि से बेदखल नहीं किया जा सकता है जहाँ प्रश्नगत भूमि की प्रकृति के संबंध में गंभीर विवाद है–आक्षेपित निर्णय अपास्त–अपील अनुज्ञात। (पैरा 6 से 8)

निर्णयज विधि.–CWJC No. 819/2001—Set aside.

अधिवक्तागण.–Mrs. Ritu Kumari, For the Appellant; M/s Manjul Prasad, A.K. Jha, For the Respondents.

एम॰ वाई॰ इकबाल, न्यायमूर्ति.–यह अपील सी॰ डब्ल्यू॰ जे॰ सी॰ सं॰ 819/2001 में पारित दिनांक 28.2.2001 के निर्णय एवं आदेश के विरुद्ध है जिसके द्वारा विद्वान एकल न्यायाधीश ने इस संप्रेक्षण के साथ कि याची प्रश्नगत भूमि के संबंध में टाइटल की घोषणा के लिए वाद दाखिल कर सकता है, रिट याचिका को खारिज कर दिया था। पूर्वोक्त रिट याचिका याची द्वारा उप-कमिश्नर, देवघर द्वारा पारित दिनांक 6.1.2000/25.1.2000 के आदेश, जिसके द्वारा याची को सार्वजनिक भूमि से अभिकथित अतिक्रमण हटाने का निर्देश दिया गया था, के अभिखंडन हेतु दाखिल की गयी थी। विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित दिनांक 28.2.2001 के आक्षेपित निर्णय और आदेश के बेहतर अधिमूल्यन हेतु इसे नीचे उद्धृत किया जाता है:–

"28.2.2001:—पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने और अभिलेख पर लाए गए सामग्रियों के परिशीलन के बाद, इस रिट याचिका को ग्रहण के चरण पर ही निपटाया जाता है। याची की मुख्य प्रार्थना उप-कमिश्नर, देवघर द्वारा पारित दिनांक 6.1.2000/25.1.2000 के आदेश, जिसके द्वारा सार्वजनिक भूमि पर पाए गए अतिक्रमण को हटाने का निर्देश याची को दिया गया है, के अभिखंडन हेतु दाखिल की गयी है। शिकायत दूर करने के लिए याची की ओर से यह दूसरा प्रयास है। इसके पहले याची बिहार नगरपालिका अधिनियम की धारा 196 के निबंधनों के अनुसार जारी नोटिस को चुनौती देते हुए इस न्यायालय के समक्ष आया था। विद्वान न्यायाधीश ने रिट याचिका निपटाते हुए प्रत्यर्थी प्राधिकारी को भूमि मापने का निर्देश दिया था और यदि, अंततः यह पाया जाता है कि याची ने सार्वजनिक भूमि का अतिक्रमण किया है, ऐसी स्थिति में याची को पहले वहाँ उसमें उल्लिखित समय के भीतर इसे हटाने का अवसर दिया जाना चाहिए, जिसमें विफल रहने पर प्रत्यर्थी को ऐसा अतिक्रमण हटाने की स्वतंत्रता रहेगी। इसके अनुसरण में, यह प्रकट होता है कि प्रत्यर्थी प्राधिकारी द्वारा भूमि को मापा गया था और अंततः यह पाया गया था कि याची ने सार्वजनिक भूमि का अतिक्रमण किया है। तद्नुसार, आक्षेपित आदेश पारित किया गया है। यहाँ यह उल्लिखित किया जा सकता है कि जनहित याचिका में उच्च न्यायपालिका ने जिला प्रशासन को सार्वजनिक भूमि से अतिक्रमण हटाने का सामान्य निर्देश जारी किया है। उसके अनुसरण में, जिला प्रशासन सार्वजनिक भूमि से अतिक्रमण हटाने का कदम उठा रहा है। तद्नुसार, मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों में, मैं आक्षेपित आदेश में हस्तक्षेप करने का इच्छुक नहीं हूँ। परिणामस्वरुप, यह रिट याचिका खारिज की जाती है। किन्तु, याची को प्रश्नगत भूमि के संबंध में टाइटल की घोषणा के लिए वाद दाखिल करने की स्वतंत्रता रहेगी। यह रिट याचिका को निपटाता है।''

2. पूर्वोक्त निर्णय और आदेश के विरुद्ध, अपीलार्थी ने यह अपील दाखिल किया है जिसे इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा दिनांक 19.4.2001 को सुना गया था। खंडपीठ ने आरंभ में ही इस अपील को खारिज कर दिया और आदेश में हस्तक्षेप करने से इनकार कर दिया।

3. याची ने तब सिविल अपील सं॰ 7172/2002 दाखिल करके सर्वोच्च न्यायालय की शरण ली। सर्वोच्च न्यायालय ने दिनांक 1.4.2009 के निर्णय और आदेश के निबंधनों के अनुसार सिविल अपील अनुज्ञात किया और खंडपीठ द्वारा पारित आदेश को अपास्त किया और विधि के अनुरूप निपटारे के लिए खंडपीठ को मामला वापस भेज दिया। सर्वोच्च न्यायालय ने अपने आदेश में इस तथ्य को ध्यान में लिया कि चूँकि उप-कमिश्नर ने अपने आदेश में यह संप्रेक्षण किया था कि यदि नगरपालिका भूमि का स्वामी नहीं था तो यह रेलवे की संपत्ति थी। सर्वोच्च न्यायालय ने मामला वापस भेजते हुए अपील में प्रत्यर्थी के रूप में रेलवे को भी पक्षकार बनाने का निर्देश अपीलार्थी को दिया था। सर्वोच्च न्यायालय के पूर्वोक्त निर्देश के अनुसरण में, रेलवे को एक पक्ष के रूप में पक्षकार बनाने के लिए अपीलार्थी द्वारा एक मध्यक्षेपी याचिका दाखिल की गयी थी जिसे दिनांक 3.8.2009 को अनुज्ञात किया गया था। दिनांक 9.9.2009 को रेलवे अपने अधिवक्ता के माध्यम से उपस्थित हुआ और प्रति शपथपत्र दाखिल करने के लिए समय मांगा। तद्नुसार, प्रति शपथपत्र दाखिल करने के लिए अपील स्थगित कर दिया गया था। दिनांक 14.10.2009 को मामला पुनः सुना गया और रेलवे की ओर से प्रति शपथपत्र दाखिल करने के लिए और समय देने की प्रार्थना की गयी थी। दिनांक 14.10.2009 को इस न्यायालय ने निम्नलिखित आदेश पारित किया:—

''दिनांक 3.8.2009 को अपील सुनी गयी थी और सर्वोच्च न्यायालय के आदेश के आलोक में भारत संघ, रेल मंत्रालय को पक्षकार बनाने की प्रार्थना अनुज्ञात की

गयी थी। चूँकि चार माह की अवधि के भीतर अपील निपटाने के लिए सर्वोच्च न्यायालय का दिनांक 1.4.2009 का विनिर्दिष्ट आदेश था, मामले को सुनने और निपटाने के लिए आज फिर सूचीबद्ध किया गया है।

किन्तु चूँकि भारत संघ, रेल मंत्रालय की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने अनुदेश इप्सित करने और प्रति शपथपत्र दाखिल करने हेतु कुछ समय और दिए जाने की प्रार्थना की है जिसपर अपीलार्थी के अधिवक्ता को आपत्ति नहीं है, हम उक्त प्रार्थना स्वीकार करते है और प्रति शपथपत्र दाखिल करने के लिए भारत संघ को चार सप्ताह का समय, जैसी प्रार्थना की गयी है, देते हैं। मामले को चार सप्ताह के उपरांत पेश किया जाय।''

4. मामले को दिनांक 16.11.2009 और दिनांक 21.12.2009 को सुना गया था, लेकिन कोई प्रति शपथपत्र दाखिल नहीं किया गया था और अंतत: अपील को दिनांक 18.1.2010 को सुने जाने हेतु सूचीबद्ध किया गया था। इस न्यायालय ने प्रति शपथपत्र दाखिल करने के लिए रेलवे को दोबारा समय अनुज्ञात किया। दिनांक 18.1.2010 के आदेश का पठन निम्नलिखित है:–

''यद्यपि दिनांक 14.10.2009, 16.11.2009 और 21.12.2009 को रेलवे के अधिवक्ता की प्रार्थना पर प्रति शपथपत्र दाखिल करने के लिए मामले को स्थगित कर दिया गया था लेकिन आजतक प्रति शपथपत्र दाखिल नहीं किया गया है।

हम रेलवे की ओर से उपस्थित अधिवक्ता को प्रति शपथपत्र दाखिल करने के लिए आखिरी बार 10 दिन का और अधिक समय देते हैं जिसमें विफल रहने पर रेलवे की अनुपस्थिति में मामले का विनिश्चय कर दिया जाएगा।''

5. रेलवे के अधिवक्ता को पर्याप्त समय दिए जाने के बावजूद दिनांक 17.2.2010 तक, जब मामले को अंतिम बार सुना गया था, उनकी ओर से प्रति शपथपत्र दाखिल नहीं किया गया।

6. जैसा ऊपर ध्यान में लिया गया है, अपीलार्थी-रिट याची ने उप-कमिश्नर द्वारा यह अभिनिर्धारित करते हुए कि विवादग्रस्त भूमि सार्वजनिक भूमि थी, अपीलार्थी को अतिक्रमण हटाने का निर्देश देते हुए पारित किए गए आदेश को चुनौती देते हुए रिट याचिका दाखिल किया। अपीलार्थी ने दिनांक 15.5.1990 के विक्रय विलेख के फलस्वरूप अर्जित देवघर जिला में मौजा श्यामगंज में 1 कट्ठा 7 धूर क्षेत्र वाली भूमि के टुकड़े पर हक, टाइटल, हित और स्वामित्व का दावा किया। देवघर नगरपालिका ने यह अभिकथन करते कि भूमि नगरपालिका की भूमि है जिसका याची द्वारा अभिकथित अतिक्रमण किया गया है, अपीलार्थी को नोटिस जारी किया। अपीलार्थी उच्च न्यायालय के समक्ष आया और आदेश पारित करने के लिए मामला उप-कमिश्नर के पास वापस भेज दिया गया। उप-कमिश्नर ने अपीलार्थी को सुनने के बाद दिनांक 25.1.2001 के अपने आदेश में संप्रेक्षित किया कि यदि नगरपालिका भूमि की स्वामी नहीं थी, तब यह रेलवे की संपत्ति थी।

7. जैसा यहाँ ऊपर चर्चा की गयी है, रेलवे को अनेक अवसर दिए जाने के बावजूद न तो कोई प्रति शपथपत्र दाखिल किया गया है और न ही विवादित भूमि पर कोई दावा किया गया है। विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और आदेश के परिशीलन से यह बिल्कुल स्पष्ट है कि रिट याचिका को मुख्य: इस आधार पर खारिज किया गया था कि जनहित याचिका में, उच्च न्यायालय ने सार्वजनिक भूमि से अतिक्रमण हटाने का सामान्य निर्देश जिला प्रशासन को दिया था। हमारे दृष्टि में, सामान्य निर्देश के आधार पर किसी व्यक्ति को उस भूमि से बेदखल नहीं किया जा सकता है जहाँ भूमि की प्रकृति के संबंध में गंभीर विवाद है। अत: विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय विधि की दृष्टि में पोषणीय नहीं है।

8. पूर्वोक्त कारणों से, यह अपील अनुज्ञात की जाती है और विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय अपास्त किया जाता है। लेकिन यह स्पष्ट किया जाता है कि हमने टाइटल के प्रश्न पर विचार नहीं किया है और इस कारण समुचित अनुतोष के लिए सिविल न्यायालय का शरण लेने की स्वतंत्रता पक्षों को होगी।

प्रदीप कुमार, न्यायमूर्ति.–मैं सहमत हूँ।

माननीय प्रदीप कुमार, न्यायमूर्ति

अर्जुन प्रसाद विश्वकर्मा

बनाम

झारखंड राज्य

Cr. Appeal No. 205 of 2001. Decided on 10th March, 2010.

सत्र विचारण सं॰ 347 वर्ष 1994 में श्री उदय नारायण सिंह, पलामू डालटेनगंज, तृतीय अपर सत्र न्यायाधीश, पलामू, डालटेनगंज द्वारा पारित दिनांक 6.6.2001 के दोषसिद्धि के निर्णय एवं दंडादेश के विरुद्ध।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धारा 304B–दहेज मृत्यु–अपनी पत्नी की हत्या करने के लिए अपीलार्थी दोषसिद्ध–केवल मृतका के भाई के साक्ष्य द्वारा अभियोजन मामले का समर्थन–यह दर्शाने के लिए चिकित्सीय साक्ष्य नहीं है कि हत्या के तुरन्त पहले पीड़ित लड़की को यातना दी गयी थी–ऐसा कोई विनिर्दिष्ट अभिकथन नहीं है कि मांग क्या थी और कौन यातना दिया करता था–ऐसा विनिर्दिष्ट अभिकथन कि मृत्यु के तुरन्त पहले उसे दहेज के लिए यातना दी गयी थी जिससे उसकी मृत्यु कारित हुई, करते हुए कोई साक्ष्य नहीं–हत्या का तरीका भी स्पष्ट नहीं है–धारा 304B के अधीन अपीलार्थी-पति की दोषसिद्धि उचित नहीं–किन्तु अपीलार्थी को भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 498A के अधीन दोषी पाया गया और 2 वर्षों का सश्रम कारावास भुगतने और 10,000/- रुपयों के जुर्माने का भुगतान करने का दंड दिया गया–अपील अंशतः अनुज्ञात। (पैरा 13 से 16)

अधिवक्तागण.–Mr. P.C. Tripathy, For the Appellant; Mr. A.K. Prasad, For the State.

प्रदीप कुमार, न्यायमूर्ति.–यह अपील सत्र विचारण सं॰ 347 वर्ष 1994 में, श्री उदय नारायण सिंह, तृतीय अपर सत्र न्यायाधीश, पलामू, डालटेनगंज द्वारा पारित दिनांक 6.6.2001 के दोषसिद्धि के निर्णय एवं दंडादेश के विरुद्ध है। जिस निर्णय के द्वारा उन्होंने अपीलार्थी अर्जुन प्रसाद विश्वकर्मा को भारतीय दंड संहिता की धारा 304B के अधीन दोषी पाया और उसे 10 वर्षों का सश्रम कारावास भुगतने का दंड दिया।

2. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा निवेदन किया गया है कि ऐसा कोई साक्ष्य नहीं है कि अपीलार्थी-पति अपनी पत्नी की उपेक्षा करता था और उसकी हत्या कर देने का उसका आशय था; ऐसा कोई साक्ष्य नहीं है कि पीड़ित युवती को मृत्यु के ठीक पहले यातना दी गयी थी अथवा दहेज की मांग की गयी थी और इस प्रकार भारतीय दंड संहिता की धारा 304B के अधीन अपीलार्थी की दोषसिद्धि विधि की दृष्टि में दोषपूर्ण है और अपास्त योग्य है।

3. दूसरी ओर, राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने अभियोजन मामले का समर्थन किया है और निवेदन किया है कि इसके पर्याप्त प्रमाण है कि पति-अपीलार्थी पीड़ित-पत्नी को यातना दिया करता था और दहेज के रूप में टी॰ वी॰ और पैसा मांगा करता था और ऐसा वह उसकी मृत्यु तक करता रहा, अतः भारतीय दंड संहिता की धारा 304B के अधीन उसे सही दोषसिद्ध किया गया है और इसमें इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप किए जाने की जरूरत नहीं है।

4. दोनों पक्षों को सुनने और अभिलेख का परिशीलन करने के बाद, मैं पाता हूँ कि अभियोजन का मामला प्रभारी-अधिकारी, बर्वाडीह को गढ़वा में दिनांक 8.1.94 को सायं लगभग 5.30 बजे पीड़िता के पिता कांति किशोर राणा द्वारा दिए गए फर्दबयान के आधार पर शुरू किया गया था जिसमें कथन किया गया था कि उसकी पुत्री का विवाह अभियुक्त अर्जुन प्रसाद विश्वकर्मा के साथ दिनांक 27.5.93 को हुआ था और आज प्रातः 10.30 बजे अभियुक्त के सह-ग्रामीण विजय कुमार विश्वकर्मा ने सूचक को सूचित किया कि उसकी पुत्री गंभीर रूप से बीमार है और उसे तुरन्त आने को कहा। सूचना पाने पर वह अपने पुत्र के साथ मृतका के ससुराल के लिए रवाना हुआ और जब वह बर्वाडीह बस अड्डा पहुँचा तो उसे किसी मदन मोहन विश्वकर्मा द्वारा सूचित किया गया कि उसकी पुत्री की मृत्यु हो गयी है। तब वह अपने दामाद के घर आया और मृत शरीर को देखा। पूछ-ताछ करने पर, उसके दामाद ने कथन किया कि कुएँ में गिरने से उसकी मृत्यु हो गयी। सूचक ने आगे कथन किया कि दहेज के लिए अभियुक्त और उसकी माँ द्वारा उसे यातना दी जाती थी और उसे सूचना मिली कि उसे मारकर कुएँ में फेंक दिया गया था।

5. उक्त फर्दबयान के आधार पर पुलिस ने भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन मामला दर्ज किया और अन्वेषण के बाद भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन आरोप-पत्र दाखिल किया। लेकिन, चूँकि मामला केवल सत्र न्यायालय द्वारा विचारण योग्य था, विद्वान दंडाधिकारी ने संज्ञान लेने के बाद मामला सत्र न्यायालय को सुपुर्द कर दिया और तत्पश्चात् तृतीय अपर न्यायाधीश, पलामू, डालटेनगंज द्वारा मामले का विचारण किया गया जिन्होंने अभियुक्त के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन आरोप विरचित किया और दिनांक 25.7.1996 को विचारण शुरू किया और तत्पश्चात् मामला तृतीय अपर सत्र न्यायाधीश के न्यायालय को अंतरित किया गया था, जिन्होंने यह पाने पर कि अभियुक्त के विरुद्ध धारा 304B के अधीन मामला बनता है, दिनांक 30.3.2000 को आरोपों को पुनः विरचित किया और विचारण जारी रखा और विचारण समाप्त करने के बाद अपीलार्थी को दोषी पाया और उसको दोषसिद्ध किया।

6. यह प्रतीत होता है कि विचारण के क्रम में अभियोजन ने छः गवाहों का परीक्षण किया है। अ॰ सा॰ 1 डॉ॰ पन्नालाल पांडे, अ॰ सा॰ 2 डॉ॰ रमेश प्रसाद, अ॰ सा॰ 3, मदन मोहन विश्वकर्मा, अ॰ सा॰ 4, लक्ष्मण मिस्त्री, अ॰ सा॰ 5 नंदकिशोर राम और अ॰ सा॰ 6, मोती बुल्ला खान।

7. अ॰ सा॰ 1 डॉ॰ पन्नालाल पांडे, जिन्होंने दिनांक 9.1.94 को मृतक के मृत शरीर का शव परीक्षण संचालित किया, ने किसी बाहरी उपहति का कोई साक्ष्य नहीं पाया; उसकी गर्दन के इर्द-गिर्द किसी लीगेचर चिन्ह का साक्ष्य नहीं; पेट में पानी नहीं पाया गया था। उन्होंने पेस्टिफॉयड सामग्री का केवल दो औंस पाया; आंतरिक उपहति का कोई चिन्ह नहीं पाया गया था। गर्भाशय में 32 सप्ताह के आकार वाला गर्भ था और गर्भाशय खोलने पर उन्होंने मृत शिशु पाया। उन्होंने विसरा सुरक्षित रखा और इसे पोस्ट मार्टम परीक्षण के लिए भेज दिया।

अपने बयान के पैरा 5 पर उन्होंने शव परीक्षण रिपोर्ट प्रमाणित किया जो प्रदर्श 1 के रूप में चिन्हित किया गया है और कथन किया कि मृत शरीर पानी अथवा कुएँ में फेंका गया था, अतः पेट में पानी नहीं है और यदि गर्दन के इर्द-गिर्द मुलायम पदार्थ लगाया जाता है, तब लीगेचर का चिन्ह नहीं होगा।

8. अ॰ सा॰ 2, डॉ॰ रमेश प्रसाद ने शव परीक्षण रिपोर्ट पर अपना हस्ताक्षर प्रमाणित किया।

9. अ॰ सा॰ 3, मदन मोहन विश्वकर्मा ने कथन किया कि घटना दो वर्ष पहले हुई थी। हल्ला सुनने पर वह अभियुक्त अर्जुन प्रसाद विश्वकर्मा के घर गया और पाया कि अभियुक्त अर्जुन प्रसाद

विश्वकर्मा की पत्नी का मृत शरीर कुएँ में गिर गया था और हल्ला होने पर मृत शरीर को कुएँ से बाहर निकाला गया था। उन्होंने आगे कथन किया कि ऐसा प्रतीत होता है कि पीड़ित युवती की मानसिक दशा अच्छी नहीं थी और उसे उपचार के लिए राँची ले जाया जाता था।

10. अ॰ सा॰ 4, लक्ष्मण मिस्त्री ने भी कथन किया कि मृत्यु समीक्षा रिपोर्ट उसकी उपस्थिति में तैयार की गयी थी। उसने मृत्यु समीक्षा रिपोर्ट पर अपना हस्ताक्षर प्रमाणित किया जिसे प्रदर्श 2 और 2/1 के तौर पर चिन्हित किया गया है।

11. अ॰ सा॰ 5, नंद किशोर राम, मृतक का भाई ने कथन किया कि मामले का सूचक कांति किशोर राणा उसके पिता है जिसका देहान्त विचारण के लंबित रहने के दौरान दिनांक 30.5.95 को हो गया। उसने आगे कथन किया कि उसकी छोटी बहन का विवाह अभियुक्त अर्जुन प्रसाद विश्वकर्मा के साथ दिनांक 27.5.93 को हुआ था और तत्पश्चात् वह अपने ससुराल में रह रही थी। उसने आगे कथन किया कि उसकी सास और पति उसकी बहन को यातना दिया करते थे और धिक्कारा करते थे और उसे भोजन भी नहीं देते थे। वह उन्हें अपनी यातना के बारे में सूचित करती थी। दिनांक 8.1.1994 को उन्हें सूचना मिली कि उसकी बहन गंभीर रूप से बीमार है। तब वह अपने पिता के साथ बर्वाडीह गया जहाँ उन्हें किसी मदन मोहन विश्वकर्मा द्वारा सूचित किया गया कि उसकी बहन की मृत्यु हो गयी है। तब वह अभियुक्त के घर आया और मृत शरीर को देखा। पूछताछ करने पर अभियुक्त ने बताया कि कुएँ में गिरने के कारण उसकी बहन की मृत्यु हो गयी। उसकी गर्दन और चेहरे पर काला निशान था, अत: उसके भाई को लगा कि यह कुएँ में गिरने से हुई मौत का मामला नहीं है बल्कि दहेज के लिए उसपर प्रहार किया गया था और उसने मामला दर्ज किया। पुलिस ने उसका बयान भी दर्ज किया था। उसने अपने पिता द्वारा दिए गए फर्दबयान और उनके हस्ताक्षर को प्रमाणित किया, जिसे प्रदर्श-4 के तौर पर चिन्हित किया गया है। उसने मृतक द्वारा पिता के घर को भेजे गए तीन पत्रों को भी प्रमाणित किया। उसने अपनी बहन की लिखावट और हस्ताक्षर को प्रमाणित किया। तीनों पत्रों को बरामद किया गया था जिन्हें प्रदर्श 5 से 5/2 तक चिन्हित किया गया है।

अपने प्रति-परीक्षण में, उसने कथन किया कि विवाह के समय उन्होंने दहेज के रूप में 50,000/- रुपया दिया था और विवाह के बाद बहन अभियुक्त के साथ चली गयी थी और अपने ससुराल में रहने लगी थी। उसने आगे कथन किया कि वह अपने ससुराल में प्रसन्नतापूर्वक रह रही थी और अपनी मृत्यु के ठीक 2 माह पहले अपने मायके आयी थी। उस समय वह गर्भवती थी और डॉ॰ शोभा चक्रवर्ती के उपचार में थी। उसका पति भी उसके साथ आया था। उसने यह कथन भी किया कि उपचार का शुल्क उसके पति द्वारा दिया गया था। उसने यह कथन भी किया कि अपीलार्थी द्वारा उसे यातना दी जाती थी और जब कभी वह अपने घर आती थी यातना के बारे में शिकायत किया करती थी लेकिन पुलिस को कोई सूचना नहीं दी गयी थी। उसने यह कथन भी किया कि पत्रों अर्थात् प्रदर्श 5 और 5/2 से प्रकट है कि ससुराल में उसे यातना दी जाती थी।

12. अ॰ सा॰ 6, मोती बुल्ला खान औपचारिक गवाह है जिसने औपचारिक प्राथमिकी को प्रमाणित किया है जो प्रदर्श-6 है।

13. इस प्रकार, साक्ष्यों के परिशीलन से, यह प्रतीत होता है कि केवल अ॰ सा॰ 5 अर्थात् मृतक का भाई के साक्ष्य द्वारा ही अभियोजन के मामले का समर्थन किया गया है जिसने यह कथन भी किया है कि पीड़िता के पिता की मृत्यु हो गयी है और उसने अपने पिता द्वारा दिए गए फर्दबयान और उनके हस्ताक्षर को प्रमाणित किया है जिसे प्रदर्श 4 और (4)/1 के तौर पर चिन्हित किया गया है। अ॰ सा॰ 1 डॉक्टर, जिन्होंने मृतका के मृत शरीर का शव परीक्षण संचालित किया था, के साक्ष्य द्वारा भी अभियोजन का मामला पुष्ट किया गया है लेकिन ऐसा कोई साक्ष्य नहीं है कि मृत्यु के ठीक पहले पीड़ित युवती को यातना दी गयी थी। यद्यपि अ॰ सा॰ 5 नन्द किशोर राम ने कथन किया कि उसकी बहन यातना की शिकायत करती थी, लेकिन उसके बयान में ऐसा कोई विनिर्दिष्ट अभिकथन नहीं है कि दहेज की मांग क्या थी और यातना कौन दिया करता था। पैरा 10 पर उसने स्वीकार किया कि

उसकी बहन अपने पति के साथ प्रसन्नतापूर्वक रह रही थी और अपने पति के साथ उपचार के लिए जाया करती थी, लेकिन अभिकथन ये भी हैं कि उसे दहेज के लिए यातना दी जाती थी। कोई तर्कपूर्ण साक्ष्य नहीं है कि मांग थी, दहेज की क्या मांग थी और न ही विनिर्दिष्ट अभिकथन करते हुए ऐसा कोई साक्ष्य है कि मृत्यु के ठीक पहले उसे दहेज के लिए यातना दी गयी थी जिस कारण उसकी मृत्यु हो गयी। मामले के इस दृष्टिकोण में, भारतीय दंड संहिता की धारा 304B के अधीन एकमात्र अपीलार्थी-पति अर्जुन प्रसाद विश्वकर्मा की दोषसिद्धि उचित नहीं है। नि:संदेह उसकी अप्राकृतिक मृत्यु हुई थी और यह अभिकथन कि मृत्यु के बाद उसे फेंका गया था, सही पाया गया है, चूँकि स्वयं डॉक्टर ने कथन किया कि पेट में पानी नहीं थी, और उसकी मृत्यु के बाद ही मृत शरीर कुएँ में फेंका गया था। कोई विनिर्दिष्ट अभिकथन नहीं है कि उसकी मृत्यु कैसे हुई।

14. मामले के उस दृष्टिकोण में, अपीलार्थी को भारतीय दंड संहिता की धारा 498A के अधीन दोषी पाया जाता है और उसे दो वर्षों का सश्रम कारावास भुगतने और 10,000/- रुपया जुर्माना का भुगतान करने का दंड दिया गया है।

15. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह निवेदन किया गया है कि विचारण के दौरान अभियुक्त-अपीलार्थी दो वर्षों तक अभिरक्षा में रहा है। मामले के इस दृष्टिकोण में, यदि अभियुक्त-अपीलार्थी अवर न्यायालय में 10,000/- रुपयों के जुर्माने का भुगतान करता है, तो उसे निर्मुक्त कर दिया जाएगा अन्यथा 10,000/- रुपए जुर्माने के भुगतान के व्यतिक्रम में उसे एक वर्ष के सश्रम कारावास का दंड और भुगतना होगा।

16. दोषसिद्धि और दंड में पूर्वोक्त परिवर्तन के साथ यह अपील अंशत: अनुज्ञात की जाती है।

17. अपीलार्थी जमानत पर है। विद्वान विचारण न्यायालय को 10,000/- रुपये जुर्माने का भुगतान करने हेतु अपीलार्थी की उपस्थिति के लिए गिरफ्तारी का वारंट जारी करने का निर्देश दिया जाता है।

माननीय सुशील हरकौली, न्यायमूर्ति

लखन साव

बनाम

झारखंड राज्य विद्युत बोर्ड एवं अन्य

W.P. (S) No. 4529 of 2003. Decided on 25th March, 2010.

सेवा विधि–सेवानिवृत्ति आयु–चिकित्सीय बोर्ड द्वारा आकलित आयु के भिन्न मारजिन के आधार पर पुनर्बहाली के लिए दावा–याची द्वारा पहले दाखिल की गयी रिट याचिका खारिज–चिकित्सीय बोर्ड द्वारा याची की आयु 55 वर्ष विनिश्चित की गयी–याची द्वारा दावा की गयी आयु और चिकित्सीय बोर्ड द्वारा पायी गयी आयु के बीच लगभग सात वर्षों का अंतर–उन व्यक्तियों, जिनकी आयु काफी उम्र बीत जाने के बाद विनिश्चित की जाती है, के संबंध में दो वर्ष कम या ज्यादा का सेफ्टी मार्जिन सामान्यत: दिया जाता है–यदि इस मार्जिन को विचार में लिया जाता है, तब भी कम से कम पाँच वर्षों का अंतर बना रहता है जिसे याची द्वारा दावा की गयी आयु के निकट नहीं बताया जा सकता है–याचिका खारिज।

(पैरा 10 से 16)

अधिवक्तागण.–Mr. K.K. Singh, For the Petitioner; Mrs. I. Sen Chowdhary, For the Respondents.

आदेश

मैंने याची के विद्वान अधिवक्ता को सुना है।

2. याची ने पहले एक रिट याचिका सी॰ डब्ल्यू॰ जे॰ सी॰ सं॰ 1624 वर्ष 1999 दाखिल की थी, जिसे दिनांक 23.9.2002 को इस न्यायालय के निर्णय एवं आदेश द्वारा अंतत: विनिश्चित किया गया था।

3. उस निर्णय की प्रति वर्तमान रिट याचिका के परिशिष्ट-9 के रूप में संलग्न की गयी है।

4. प्रत्यर्थीगण की ओर से दिए गए बिन्दुओं को ध्यान में लेने के बाद विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा दिनांक 23.9.2002 के निर्णय एवं आदेश द्वारा रिट याचिका खारिज कर दी गयी थी।

5. आश्चर्यजनक रूप से, रिट याचिका खारिज करते हुए, कतिपय सकारात्मक निर्देश प्रत्यर्थीगण को जारी किए गए थे।

6. इस रिट याचिका में यह न्यायालय विद्वान एकल न्यायाधीश के दिनांक 23.9.2002 के पूर्वोक्त निर्णय पर अपील सुनने नहीं बैठा है। अत: वर्तमान रिट याचिका को विनिश्चित करते हुए, दिनांक 23.9.2002 के निर्णय एवं आदेश द्वारा दिए गए निर्देशों को परिवर्तित करने की स्वतंत्रता न्यायालय को नहीं है। देखना यह है कि इस रिट याचिका में परिशिष्ट-12 के रूप में संलग्न आक्षेपित आदेश द्वारा प्रत्यर्थीगण ने दिनांक 23.9.2002 के अंतिम आदेश, जिसने अंतत: पक्षों के बीच अंतिमता प्राप्त कर ली है, का अनुपालन किया है अथवा उल्लंघन किया है।

7. उस निर्णय का प्रासंगिक पैराग्राफ पैरा 10 है और इसे रेडी रेफरेन्स के लिए नीचे उद्धृत किया जाता है:–

> *''अत: पूर्वोक्त परिस्थितियों में, चूँकि यहाँ तथ्यों के विवादित प्रश्न हैं, यह रिट याचिका इन निर्देशों के साथ खारिज की जाती है कि (i) प्रत्यर्थी बोर्ड उसकी आयु विनिश्चित करने हेतु चिकित्सीय बोर्ड द्वारा याची का वैज्ञानिक परीक्षण करवाएगा और (ii) याची समस्त प्रासंगिक दस्तावेजों जैसे मतदाता सूची, यदि है, राशन कार्ड और ऐसे अन्य दस्तावेज जो आनुषंगिक रूप से अनुमानित आयु दर्ज करते हैं बोर्ड के सचिव को प्रस्तुत करेगा और तत्पश्चात् आयु और अन्य दस्तावेजों यदि प्रस्तुत किए गए हैं, के वैज्ञानिक अवधारण के आधार पर यदि यह पाया जाता है कि याची की जन्मतिथि उसके द्वारा दावा किये गए जन्मतिथि के आस-पास है, उसे पुनर्बहाल किया जाएगा, किन्तु यदि एक बड़ी और अधिमूल्यन योग्य दूरी है, तब उसे कोई अनुतोष नहीं दिया जाएगा। सचिव के द्वारा अथवा उसके समक्ष इस निर्णय की प्राप्ति/प्रस्तुति को तिथि से दो महीने के भीतर इनको पूरा किया जाना है।''*

8. यह ध्यान में लिया जाएगा कि उक्त निर्देश अपेक्षा करते हैं कि यदि नए चिकित्सीय अवधारण पर अभिनिश्चित आयु याची द्वारा दावा किए गए वर्ष 1955 के ''आस-पास'' पायी जाती है, याची को पुनर्बहाल किया जाएगा। आगे निर्देश है कि यदि अब विनिश्चित आयु और याची द्वारा दावा किए गए आयु के बीच बड़ी एवं अधिमूल्यन योग्य अंतर है, तो याची को कोई अनुतोष नहीं दिया जाएगा।

9. दिनांक 28.2.2003 को चिकित्सीय बोर्ड द्वारा विनिश्चित याची की आयु 55 वर्ष पायी गयी है।

10. आक्षेपित आदेश के अनुसार, यह याची द्वारा दावा किए गए आयु और चिकित्सीय बोर्ड द्वारा पाए गए आयु के बीच ''एक बड़ा और अधिमूल्यन योग्य अंतर सृजित करता है।

11. अत: यह प्रकट होगा कि आक्षेपित आदेश सही है और दिनांक 23.9.2002 के निर्णय के अनुरूप है।

12. सात वर्षों जितना अंतर एक बहुत बड़ा अंतर है जिसका उपेक्षा नहीं की जा सकती।

13. याची के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि आयु 55 वर्ष ''दो वर्ष ज्यादा कम'' विनिश्चित की गयी थी।

14. मेरे विचार में यह कोई अधिमूल्यन योग्य भिन्नता नहीं है, प्रथमत: क्योंकि इस प्रकार का सेफ्टी मार्जिन सामान्यत: उस व्यक्ति को दिया जाता है जिसकी आयु काफी अधिक उम्र हो जाने पर विनिश्चित की जा रही है और द्वितीयत: यदि इस मार्जिन को विचार में लिया भी जाए, तो भी कम-से-कम पाँच वर्षों का अंतर बना रहता है, जिसे याची द्वारा दावा किए गए आयु के ''आस-पास'' नहीं कहा जा सकता है।

15. याची के विद्वान अधिवक्ता का अगला तर्क यह है कि अब चिकित्सीय बोर्ड द्वारा पायी गयी आयु याची द्वारा दावा की गयी आयु के ज्यादा निकट है वनिस्पत प्रत्यर्थी विभाग द्वारा दावा की गयी आयु के और इस कारण याची द्वारा दावा की गयी आयु को स्वीकार किया जाना चाहिए।

16. दुर्भाग्यवश, दिनांक 23.9.2002 के न्यायालय के निर्णय द्वारा इसे अनुज्ञात नहीं किया गया था। उस निर्णय के अनुसार यह देखा जाना चाहिए था कि क्या विनिश्चित आयु याची द्वारा दावा की गयी आयु के आस-पास है। निर्णय ने विनिश्चित आयु और याची द्वारा दावा की गयी आयु की निकटता अथवा प्रत्यर्थीगण दावा की गयी आयु से इसकी निकटता के बीच तुलना को अनुध्यात नहीं किया था।

17. अत: मैं इन दोनों प्रतिवादों को स्वीकार करने में अक्षम हूँ।

18. तद्नुसार, यह रिट याचिका खारिज की जाती है।

माननीय प्रदीप कुमार, न्यायमूर्ति

अलाउद्दीन अहमद

बनाम

झारखण्ड राज्य

Criminal Appeal No. 96 of 2005. Decided on 10th March, 2010.

सदर पी॰ एस॰ केस सं॰ 380 वर्ष 1992 से उद्भूत जी॰ आर॰ केस सं॰ 2042 वर्ष 1992; टी॰ आर॰ सं॰ 1 वर्ष 2004 में श्री प्रकाश राय, विशेष न्यायाधीश (एन॰ डी॰ पी॰ एस॰ अधिनियम), हजारीबाग द्वारा पारित दिनांक 23.12.2004 के दोषसिद्धि के निर्णय और 24.12.2004 के दंडादेश के विरुद्ध।

स्वापक औषधि एवं मन:प्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985—धाराएँ 21(b), 22, 41(1)(2) एवं 50—अफीम और ब्राउन सूगर की बरामदगी–10 वर्षों का सश्रम कारावास का दंड और 1,00,000/- रु॰ जुर्माना अधिरोपित–विचारण न्यायालय द्वारा सह-अभियुक्त दोषमुक्त–अभिग्रहण सूची दर्शाती है कि स्वापक पदार्थ अपीलार्थी के कब्जे से न कि उसके घर से बरामद किया गया था–पुलिस निरीक्षक यह चर्चा करने में विफल रहा कि वह धारा 41(1)(2) के अधीन अपीलार्थी के परिसर की तलाशी लेने और अभिग्रहण करने हेतु सशक्त था–अभियोजन कोई दस्तावेजी साक्ष्य प्रस्तुत करने में विफल रहा जो अन्यथा सिद्ध करे कि अभिग्रहण दंडाधिकारी अथवा किसी अन्य राजपत्रित अधिकारी की उपस्थिति में किया गया था–अभिग्रहण गवाहों (अ॰ सा॰) ने भी इस तथ्य का समर्थन नहीं किया है कि उनकी उपस्थिति में कोई अभिग्रहण किया गया था–अपीलार्थी की दोषसिद्धि विधि में पोषणीय नहीं–दोषसिद्धि एवं दंडादेश अपास्त। (पैरा 8 से 11)

अधिवक्तागण.–M/s N.K. Sinha, R.K. Mehthe, For the Appellant; Mr. I.N. Gupta, For the Respondent.

प्रदीप कुमार, न्यायमूर्ति.–यह अपील सदर पी॰ एस॰ केस सं॰ 380 वर्ष 1992 से उद्भूत जी॰ आर॰ केस सं॰ 2042 वर्ष 1992; टी॰ आर॰ सं॰ 1 वर्ष 2004 में, श्री प्रकाश राय, विशेष न्यायाधीश (एन॰ डी॰ पी॰ एस॰ अधिनियम) द्वारा पारित दिनांक 23.12.2004 के दोषसिद्धि के निर्णय और दिनांक 24.12.2004 के दंडादेश के विरुद्ध दाखिल की गयी है जिस निर्णय के द्वारा उन्होंने अपीलार्थी अलाऊद्दीन अहमद को स्वापक औषधि और मन:प्रभावी पदार्थ अधिनियम की धारा 21(b) के अधीन दोषी पाया और उसे 10 वर्षों के सश्रम कारावास भुगतने का और एक लाख रुपया जुर्माना भुगतान करने का दंड दिया और भुगतान के व्यतिक्रम में उसे चार वर्षों का अधिक सश्रम कारावास भुगतना होगा। तथापि उन्होंने सह-अभियुक्त, जावेद अख्तर को दोषमुक्त कर दिया क्योंकि एन॰ डी॰ पी॰ एस॰ अधिनियम की धारा 50 के प्रावधान का पालन नहीं किया गया था।

2. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा निवेदन किया गया है कि अपीलार्थी ने विशेष न्यायाधीश के समक्ष दो विधिक बिन्दुओं को उठाया था कि चूँकि अभिग्रहण पुलिस अधिकारियों द्वारा किया गया था जो तलाशी और अभिग्रहण संचालित करने के लिए विनिर्दिष्टत: सशक्त नहीं थे, अत: समस्त तलाशी और अभिग्रहण विधि की दृष्टि में दोषपूर्ण है और अपास्त किए जाने योग्य है। आगे यह निवेदन किया गया है कि अपीलार्थी के घर में तलाशी लेने एवं अभिग्रहण करने वाले व्यक्ति एन॰ डी॰ पी॰ एस॰ अधिनियम के अधीन तलाशी लेने एवं अभिग्रहण करने हेतु प्राधिकृत व्यक्ति नहीं थे और इस प्रकार तलाशी और अभिग्रहण विधि की दृष्टि में दोषपूर्ण है और इसलिए अपीलार्थी की दोषसिद्धि अपास्त करने योग्य है। अपीलार्थी की ओर से विद्वान अधिवक्ता द्वारा विचारण न्यायालय के समक्ष यह तर्क भी दिया गया था कि राजपत्रित अधिकारी अथवा दंडाधिकारी की उपस्थिति में अभिग्रहण करने के धारा 50 के आज्ञापक प्रावधानों का अनुपालन वर्तमान मामले में नहीं किया गया था और इस प्रकार भी अपीलार्थी की दोषसिद्धि विधि की दृष्टि में दोषपूर्ण है और अपास्त किए जाने योग्य है।

3. दूसरी ओर, राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने अभियोजन मामले का समर्थन किया है और कथन किया है कि एन॰ डी॰ पी॰ एस॰ अधिनियम की धाराएँ 18 एवं 21 के अधीन अपराध के लिए दो व्यक्तियों का विचारण किया गया था और चूँकि अभियुक्त-अपीलार्थी, अलाऊद्दीन अहमद के शरीर से विनिषिद्ध पदार्थ अर्थात् अफीम और ब्राउन सूगर बरामद किया गया था और उसे दोषमुक्त किया गया था क्योंकि न तो दंडाधिकारी को बुलाया गया था और न ही उन्हें यह सूचना दी गयी थी कि दंडाधिकारी अथवा राजपत्रित अधिकारी की उपस्थिति में तलाशी करवाने का उन्हें कोई अधिकार मिला है, किन्तु इस अभियुक्त-अपीलार्थी के घर से 1 किलो 650 ग्राम वजन वाले ब्राउन सूगर के 16 पाउचों की बरामदगी की गयी थी, अत: मामले की इस दृष्टि में, उसकी दोषसिद्धि पर्याप्त है और इस न्यायालय द्वारा किसी हस्तक्षेप की जरूरत नहीं है।

4. दोनों पक्षों को सुनने और अभिलेख का परिशीलन करने के बाद, मैं पाता हूँ कि अभियोजन मामला पुलिस निरीक्षक अ॰ सा॰ 10 द्वारा दर्ज प्राथमिकी के आधार पर शुरू किया गया था जिसमें कथन किया गया था कि दिनांक 9.9.92 को 16:30 बजे आरक्षी-अधीक्षक, हजारीबाग के निर्देश पर गुप्त सूचना मिलने पर उसने सदर थाना, हजारीबाग के पुलिस दस्ते के साथ अभियुक्त-अपीलार्थी के दो मंजिला पक्के भवन पर स्वतंत्र गवाहों, मुकेश कुमार और सतीश कुमार सिन्हा की उपस्थिति में छापा मारा था और अपीलार्थी, अलाऊद्दीन अहमद के कब्जे से पान पराग के डब्बे में रखे ब्राउन सूगर के 16 पाउचों को बरामद किया था। उसी घर में, सह-अभियुक्त मिन्हाज की भी तलाशी ली गयी थी और उसके पॉकेट से ब्राउन सूगर के दो बड़े-बड़े पॉलीथिन के पाउच बरामद किये गए थे और सह-अभियुक्त, कृष्ण कुमार सिंह को भी उसी घर में पाया गया था और उसकी जेब में ब्राउन सूगर वाला एक छोटा पॉलीथिन पाउच भी बरामद किया गया था। तब अलाऊद्दीन अहमद के बयान के मुताबिक घर के उत्तरी-पश्चिमी कोने में रखा कत्था बिस्किटों की उसके घर से बरामद किया गया था।

5. उक्त फर्दबयान के आधार पर, एन० डी० पी० एस० अधिनियम की धाराएँ 8(c), 17/20/21/22/27 के अधीन पुलिस ने मामला दर्ज किया और अन्वेषण के बाद इस मामले में आरोप-पत्र दाखिल किया और विशेष न्यायाधीश (एन० डी० पी० एस० अधिनियम), हजारीबाग द्वारा मामले का विचारण किया गया, जिन्होंने पूर्वोक्तानुसार अपीलार्थी को दोषी पाया।

6. विचारण के क्रम में, अभियोजन ने 11 गवाहों का परीक्षण किया है। अ० सा० 1 राय शेखर, अ० सा० 2 रामनन्दन प्रसाद, अ० सा० 3 अनिल कुमार झा, अ० सा० 4 विनोद कुमार, अ० सा० 5 मुकेश कुमार, अ० सा० 6 संतोष कुमार सिन्हा, अ० सा० 7 बिरेन्द्र कुमार सिंह इस मामले का अन्वेषण अधिकारी, अ० सा० 8 जय नारायण राम, अ० सा० 9 आर० बी० नन्हें, अ० सा० 10 कुमार अमर सिंह, सूचक और अ० सा० 11 सूला बोइपाइ–विशेष शाखा का आई० ओ०।

7. यह स्पष्ट किया जाता है कि अ० सा० 2 और 3 को प्रति-परीक्षण के लिए प्रस्तुत किया गया था किन्तु उनसे कुछ नहीं पूछा गया था। अ० सा० 5 और 6 अभिग्रहण गवाहों ने यद्यपि अभिग्रहण सूची पर अपना हस्ताक्षर स्वीकार किया है लेकिन वे पक्षद्रोही हो गए और कथन किया कि उनकी उपस्थिति में कुछ भी बरामद नहीं किया गया था।

8. चूँकि अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा अभिकथन किया गया है कि अभिग्रहण एन० डी० पी० एस० अधिनियम की धारा 42(1)(2) के अधीन प्राधिकृत व्यक्ति द्वारा नहीं किया गया था, अत: हम सूचक अ० सा० 10 कुमार अमर सिंह के साक्ष्य पर चर्चा करेंगे जिसमें उसने न्यायालय में कथन किया था कि दिनांक 9.9.92 को वह हजारीबाग सदर पुलिस थाना में पुलिस निरीक्षक के तौर पर पदस्थापित था और दिनांक 9.9.1992 को गुप्त सूचना के आधार पर एस० पी०, हजारीबाग के निर्देश पर वह सदर थाना, हजारीबाग के पुलिस दस्ते के साथ आजाद रोड पर स्थित अभियुक्त-अपीलार्थी के घर पर सायं लगभग 4.30 बजे छापा मारा और उसके घर से ब्राउन सूगर, चरस, अफीम, आदि बरामद किया और स्वतंत्र गवाहों, मुकेश कुमार और सतीश कुमार सिन्हा, की उपस्थिति में अभिग्रहण सूची तैयार की। उसने अपने लिखित रिपोर्ट और अभिग्रहण सूची को प्रमाणित किया जिन्हें प्रदर्श-4 और प्रदर्श-5 के तौर पर चिन्हित किया गया है।

अपने प्रति-परीक्षण में, पैरा 7 पर, उसने स्वीकार किया कि उसने सर्च वारन्ट प्राप्त नहीं किया था। उसने यह भी स्वीकार किया कि वह ब्राउन सूगर की रासायनिक विशेषताएँ नहीं जानता है। उससे यह भी पूछा गया कि क्या उसने किसी दंडाधिकारी अथवा राजपत्रित अधिकारी को बुलाया था और उसने कहा कि उसने ऐसी अध्यपेक्षा प्राप्त नहीं की थी और न ही उसने अभियुक्त को बताया था कि दंडाधिकारी की उपस्थिति में ही तलाशी लेने का अधिकार है। अपने प्रति-परीक्षण में पैरा 13 पर उसने यह भी कथन किया कि उसने व्यक्तियों से यह नहीं कहा था कि उन्हें दंडाधिकारी अथवा राजपत्रित अधिकारी की उपस्थिति में ही तलाशी करने देने का अधिकार है।

9. अभिग्रहण सूची, जो प्रदर्श-5 है, दर्शाती है कि अपीलार्थी अलाऊद्दीन अहमद के कब्जे से स्वापक पदार्थ बरामद किए गए थे और उसके कब्जे से अफीम के 16 पाउच बरामद किए गए थे और उसके घर से कोई अभिग्रहण नहीं किया गया है।

10. यह प्रतीत होता है कि विद्वान सत्र न्यायाधीश-सह-विशेष न्यायाधीश, हजारीबाग इस तथ्य से अवगत थे और इसी कारण उन्होंने अपने निर्णय के पैरा 15 में बहुत ही विस्तारपूर्वक चर्चा की है कि यदि एन० डी० पी० एस० अधिनियम की धारा 50 के उल्लंघन में अप्राधिकृत व्यक्तियों द्वारा अभिग्रहण किया गया था तब दोषसिद्धि पारित नहीं किया जा सकता है किन्तु उन्होंने स्वीकार किया कि चूँकि अलाऊद्दीन अहमद के कब्जे से कुछ मात्रा बरामद की गयी थी, अत: उसे दोषसिद्ध किया गया था, लेकिन मैं पाता हूँ कि अपीलार्थी के घर से कोई पृथक अभिग्रहण नहीं किया गया है। इसके अलावा, सूचक के साक्ष्य से यह स्पष्ट है कि सूचक-पुलिस निरीक्षक ने अपने पूरे बयान में यह चर्चा

करने में विफल रहा कि वह एन॰ डी॰ पी॰ एस॰ अधिनियम की धारा 41(1)(2) के अधीन अपीलार्थी अलाऊद्दीन अहमद के परिसर की तलाशी लेने और अभिग्रहण करने के लिए सशक्त है। अभियोजन कोई दस्तावेजी साक्ष्य प्रस्तुत करने में विफल रहा है, जो अन्यथा सिद्ध करे कि दंडाधिकारी अथवा किसी अन्य राजपत्रित अधिकारी की उपस्थिति में अभिग्रहण किया गया था। अभिग्रहण गवाह, अ॰ सा॰ 5 और 6, ने भी तथ्य का समर्थन नहीं किया है कि उनकी उपस्थिति में कोई अभिग्रहण किया गया था।

11. अत: मैं अभिनिर्धारित करता हूँ कि एन॰ डी॰ पी॰ एस॰ अधिनियम की धारा 22 के अधीन अपीलार्थी की दोषसिद्धि विधि में पोषणीय नहीं है और तद्नुसार सदर पी॰ एस॰ केस सं॰ 380 वर्ष 1992 से उद्भूत जी॰ आर॰ केस सं॰ 2042 वर्ष 1992; टी॰ आर॰ सं॰ 1 वर्ष 2004 में श्री प्रकाश राय, विशेष न्यायाधीश (एन॰ डी॰ पी॰ एस॰ अधिनियम) द्वारा पारित दिनांक 23.12.2004 के दोषसिद्धि का निर्णय और दिनांक 24.12.2004 का दंडादेश अपास्त किया जाता है और अपीलार्थी अलाऊद्दीन अहमद को उसके विरुद्ध लगाए गए आरोपों से दोषमुक्त किया जाता है। यदि वह अभिरक्षा में है, तब विचारण न्यायालय इसका सत्यापन करेगा और उसकी निर्मुक्ति के लिए तुरन्त निर्मुक्ति आदेश जारी करेगा।

माननीय जे॰ सी॰ एस॰ रावत एवं जया रॉय, न्यायमूर्तिगण

झिरगा मुण्डा

बनाम

बिहार राज्य

Criminal Appeal (DB) No. 73 of 1992. Decided on 11th March, 2010.

सत्र विचारण सं॰ 258/1986 में सप्तम अपर न्यायिक कमिश्नर, राँची द्वारा पारित दिनांक 28.4.1992 के दोषसिद्धि के निर्णय एवं दंडादेश के विरुद्ध।

(क) भारतीय दंड संहिता, 1860—धारा 302—हत्या–आजीवन कारावास–चिकित्सीय साक्ष्य ने पूर्णत: सिद्ध किया कि मृतक की मृत्यु अभियोजन द्वारा उपदर्शित तिथि, समय और स्थान पर मानववध के चलते हुई–लेकिन अभियोजन ने न्यायालय के समक्ष घटना का एकमात्र चश्मदीद गवाह प्रस्तुत नहीं किया है–न्यायालय के समक्ष बयान का मेमोरेन्डम नहीं है कि यह कैसे पाया गया कि बरामदगी की सूचना पुलिस अधिकारी को अभियुक्त द्वारा प्रकट किया गया था–बरामदगी की समस्त प्रक्रिया केवल आइ॰ ओ॰ द्वारा सिद्ध की जा सकती है और अभियुक्त का प्रति-परीक्षण किया जा सकता है–आइ॰ ओ॰ को प्रस्तुत नहीं करके ऐसा अवसर अपीलार्थी को नहीं दिया गया है जिसने निश्चय ही उसके मामले पर प्रतिकूल प्रभाव डाला है–इस मामले में किया गया बरामद्गी विश्वास उत्पन्न नहीं करता है–अभियुक्त अपीलार्थी को दोषसिद्ध करने के लिए उक्त बरामदगी परिस्थितियों पर विश्वास करके विचारण न्यायालय ने गलती की–ग्रामीणों के समक्ष अभियुक्त द्वारा किया गया न्यायिकेतर संस्वीकृति स्वैच्छिक नहीं था–न्यायिकेतर संस्वीकृति के एकमात्र आधार पर अपीलार्थी को दोषसिद्ध नहीं किया जा सकता है–दोषसिद्धि और दंड अपास्त–अपील अनुज्ञात। (पैरा 9 से 16)

(ख) भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872—धारा 27—प्रकटीकरण बयान–बरामदगी–यदि वस्तु की बरामदगी ऐसे स्थान से की जाती है जो सबों के लिए खुला है और सबकी पहुँच में है, यह धारा 27 के अधीन बरामदगी को दूषित नहीं करेगा क्योंकि एक खुला और पहुँचने योग्य स्थान बरामदगी को अग्राह्य नहीं बना सकता है यदि यह किसी स्थान के भीतर छुपा है

क्योंकि किसी व्यक्ति का ध्यान नहीं जाएगा कि सतह के भीतर कुछ छुपा है भले ही यह खुला और पहुँचने योग्य है–यदि इसे सार्वजनिक स्थान में सामने लाया जाता है तो बरामदगी पर विश्वास नहीं किया जा सकता है–अभियोजन को यह सिद्ध करना होगा कि यह जानकारी अभियुक्त–अपीलार्थी द्वारा पुलिस अधिकारी को दी गयी थी। (पैरा 10 एवं 11)

अधिवक्तागण.–Mr. M.B. Lal, For the Appellant; Mr. H.K. Shikarwar, For the State.

आदेश

यह अपील सत्र विचारण सं॰ 258/86 में सप्तम अपर न्यायिक कमिश्नर/अपर सत्र न्यायाधीश, राँची द्वारा पारित दिनांक 28.4.92 के दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश जिसके द्वारा अपीलार्थी को भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 302 के अधीन दोषसिद्ध किया गया है और आजीवन कारावास का दंड दिया गया है, के विरुद्ध एकमात्र अपीलार्थी द्वारा दाखिल की गयी है।

2. संक्षेप में, मामले के तथ्य ये हैं कि दिनांक 24.9.1984 को सूचक का पुत्र अर्थात् बिरसा लोहरा, आयु 12 वर्ष, (मृतक) सोमरा मुन्डा के साथ गाय चराने जंगल में गया था। यह कहा जाता है कि जब वह सोमरा मुण्डा गायों के साथ लौट रहा था, वे मरगरहा के निकट पहुंचे जहाँ उन्होंने उसके पिता द्वारा उपजाए गए पलास के वृक्ष से लाख काटते पाँच व्यक्तियों को देखा। सूचक के पुत्र बिरसा लोहरा ने लाख को ऐसे काटने अथवा संग्रहित किए जाने पर इस आधार पर आपत्ति की कि यह उसके पिता का है। बिरसा लोहरा ने आगे उन व्यक्तियों को कहा कि वह घर पहुँचने पर अपने पिता को इस तथ्य की सूचना देगा। इसपर, झिंगरा मुण्डा, अपीलार्थी ने चिड़कर और बदला लेने के लिए मृतक बिरसा लोहरा और सोमरा मुण्डा का भी पीछा किया। दस-बीस कदम तक उनका पीछा करने के बाद अपीलार्थी-अभियुक्त द्वारा मृतक बिरसा लोहरा के गर्दन पर टांगी से प्रहार किए जाने का अभिकथन किया गया है जिसके परिणामस्वरूप मृतक को उपहतियाँ प्राप्त हुई जिनके चलते घटना स्थल पर ही उसकी मृत्यु हो गयी। अपीलार्थी सोमरा मुण्डा को पकड़ नहीं पाया और इसलिए सोमरा मुण्डा गाँव वापस आने में सफल रहा और उसने सूचक और गाँववालों को सूचित किया कि अपीलार्थी द्वारा मृतक बिरसा लोहरा की हत्या कर दी गयी है। उसने गाँव वालों को पूरी घटना बतायी। तत्पश्चात् सूचक ने अ॰ सा॰ 2 जैनाथ लोहरा, अ॰ सा॰ 3 बुधु मुण्डा, अ॰ सा॰ 7 बैदा मुण्डा और अन्य के साथ जंगल की ओर गया जहाँ अपीलार्थी द्वारा मृतक की हत्या कर दी गयी थी। जब वह घटना स्थल पर पहुँचे, उन्होंने सह-अभियुक्तो को मृतक बिरसा लोहरा का मृत शरीर घसीटते हुए देखा। जब सह-अभियुक्तों ने इन व्यक्तियों को देखा, मृत शरीर को छोड़ कर घटनास्थल से वे सब भाग गए। अपने चाक्षुष संप्रेक्षणों से यह पाया गया था कि मृतक की गर्दन कट गयी है और उसे मृत पाया गया था। तत्पश्चात्, उन्होंने कुछ व्यक्तियों को स्थल पर छोड़ा और सूचक के साथ कुछ गाँव वाले वापस गाँव आ गए। उन्होंने गाँववालों और गाँव के प्रधान हरिशचन्द्र सिंह मुण्डा को पूरी घटना के बारे में सूचित किया और प्रधान ने उन्हें पुलिस में मामला रिपोर्ट करने को कहा। तब दिनांक 25.9.84 को प्रात: 6.30 बजे पुलिस को मामला रिपोर्ट किया गया था। प्राथमिकी दर्ज की गयी थी और अपीलार्थी एवं सह-अभियुक्तों के विरुद्ध मामला दर्ज किया गया था। मामले का अन्वेषण किया गया था और अन्वेषण पूरा होने पर न्यायालय के समक्ष आरोप-पत्र दाखिल किया गया था। मामला सत्र न्यायालय के सुपुर्द कर दिया गया था। आरोप विरचित किए गए थे। अभियुक्त-अपीलार्थी ने दोषी होने से इन्कार किया और अपना विचारण किए जाने का दावा किया।

3. अभियोजन ने अपने मामले के समर्थन में आठ गवाहों का परीक्षण किया है। अ॰ सा॰ 1 मामले का सूचक और मृतक का पिता बन सिंह लोहरा है। अ॰ सा॰ 2 जयनाथ लोहरा है, जो सहग्रामीण है और जो घटना के बारे में सोमरा मुण्डा से सूचना मिलने के बाद सूचक के साथ गया था। अ॰ सा॰ 3 सह-ग्रामीण बुधु मुण्डा है। अ॰ सा॰ 4 सह-ग्रामीण पैतू ओरावँ है। अ॰ सा॰ 5 सह-ग्रामीण नारायण ओराँव है। अ॰ सा॰ 6 सुकरा लोहरा गाँव का चौकीदार है। अ॰ सा॰ 7 बैदा मुण्डा और अ॰ सा॰ 8 जकरी ओरावँ सह-ग्रामीण है। अ॰ सा॰ 3 बुधु मुण्डा और अ॰ सा॰ 8 जकरी ओरावँ इस तथ्य के गवाह हैं कि अभियुक्त-अपीलार्थी की प्रेरणा पर झाड़ी से टांगी प्राप्त की गयी थी। वे वही गवाह हैं जिनके समक्ष अभियुक्त-अपीलार्थी ने अभिकथित रूप से अपना दोष कबूल किया है। यह अभिकथन किया गया है कि जब अभियुक्त गाँववालों द्वारा पकड़ा गया था, उन्होंने अ॰ सा॰ 6 चौकीदार को पुलिस बुलाने भेजा था। उक्त के अतिरिक्त, डॉ॰ रेणु बाला, जगनाथ राम (पुलिस कांसटेबल) और डॉ॰ योगेन्द्र नाथ, सहायक प्राध्यापक को क्रमशः सी॰ डब्ल्यू॰ 1, 2 और 3 के रूप में न्यायालय गवाह के तौर पर परीक्षित किया गया था। डॉ॰ रेणुबाला ने शव परीक्षण रिपोर्ट द्वितीयक साक्ष्य के रूप में प्रमाणित किया है। डॉ॰ योगेन्द्र नाथ ने मृतक के मृत शरीर का शव परीक्षण किया। सी॰ डब्ल्यू॰ 2 जगन्नाथ राम ने पुलिस द्वारा प्रस्तुत कतिपय दस्तावेजों जैसे, प्राथमिकी, फोरेन्सिक रिपोर्ट, अभिग्रहण मेमो, इत्यादि को प्रमाणित किया है।

4. अभियोजन साक्ष्य पूरा हो जाने के बाद दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 313 के अधीन अभियुक्त-अपीलार्थी का परीक्षण किया गया था जिसने साक्ष्य में किए गए सारे प्रकथनों से इन्कार किया और अपनी निर्दोषिता का अभिवाक् किया। यह प्रतीत होता है कि बाद के चरण पर न्यायालय ने धारा 313 दं॰ प्र॰ सं॰ के अधीन अपीलार्थी के सामने कतिपय अपराध में फँसानेवाली परिस्थितियाँ रखी थी जिन्हें पहले उसके सामने नहीं रखा गया था। अभियुक्त-अपीलार्थी ने न्यायालय द्वारा उसके सामने रखे गए अपराध में फँसाने वाली समस्त परिस्थितियों से इन्कार किया जो साक्ष्य में सामने आए थे।

5. आरम्भ में ही हम उल्लिखित करना चाहेंगे कि यह विवादित नहीं है कि मृतक बिरसा लोहरा की मृत्यु दिनांक 24.9.84 को दोपहर लगभग 3 बजे हो गयी। न्यायालय द्वारा सी॰ डब्ल्यू॰ 1 और 3 अर्थात्, रेणुबाला और योगेन्द्र नाथ को परीक्षित किया गया था जिन्होंने मृतक के शरीर पर निम्नलिखित मृत्यु-पूर्व उपहतियाँ पायी:-

''खरोंच:

1. गर्दन के लेटेरल हिस्से और पार्श्व के स्काल्प पर 8 x ½ सी॰ एम॰

2. बांए क्लेविकल के नीचे 2 x ½ सी॰ एम॰

3. गर्दन के निचले हिस्से के सामने पर 1 x ½ cm., ½ x ½ cm., 2 x ½ cm.

4. अम्बिलकस के नीचे पेट के सामने पर ½ x ¼ cm., ¼ x ¼ cm. ½ x ½ cm.

5. दांए इनग्यूनल क्षेत्र पर 1 x ½ cm., ½ x ½ cm., ½ x ¼ cm.

6. दांए पैर मध्य सामने 1 x ½ cm.

7. बांए इन्ग्यूनल क्षेत्र पर ½ x ½ cm.

8. स्क्रोटल त्वचा पर विभिन्न आकार और आकृति वाले अनेक खरोंच।

कटे हुए जख्म:

(1) अंडर लाइन मैन्डिबल अस्थि और मुलायम टिशू काटते हुए दांए गाल पर मुलायम टिशु 4½ x 2¼ cm.

(2) लेटेरल स्थित थोड़ा पोस्टीरियर गर्दन के दांए हिस्से पर 5cm. x ½ cm. x 1 cm.)

(3) गर्दन के दांए हिस्से के मुख्य रक्त वेसेल और मुलायम टिशू को काटते हुए मैन्डीबल के नीचे दांए गर्दन पर 6cm x 1½ cm. x 2 ½ cm.

डॉक्टर ने मत दिया कि पूर्वोक्त खरोंचें कड़े और भोथरे पदार्थ द्वारा कारित की गयी थी और मृत शरीर को घसीटे जाने से भी ऐसी खरोंचें हो सकती है। डॉक्टर ने आगे मत दिया कि कटे हुए जख्म भारी तेज धार वाले हथियार जैसे टांगी द्वारा कारित किए गए थे। कटे हुए जख्म मृतक के गर्दन पर पाए गए थे जो प्रकृति के सामान्य क्रम में मृत्यु कारित करने के लिए पर्याप्त थे। मृत्यु का काल 18-72 घंटा पाया गया था जो यह पूर्णत: स्थापित करता है कि मृतक की मृत्यु अभियोजन द्वारा उपदर्शित तिथि, समय और स्थान पर मानववध द्वारा हुई थी।

6. यहाँ यह उल्लिखित करना आवश्यक है कि अभियोजन ने चश्मदीद गवाह सोमरा मुण्डा को न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत नहीं किया है। वह घटना का एकमात्र चश्मदीद गवाह था। विचारण न्यायालय ने संप्रेक्षित किया कि समस्त संभव प्रयासों के बावजूद अभियोजन उसकी हाजिरी नहीं करवा सका था। न्यायालय ने यह भी उल्लिखित किया है कि यह गवाह जीवित है और अपने रोजगार के संबंध में गाँव से बाहर गया हुआ था और इसलिए उसे खोजा नहीं जा सका था। उक्त के अतिरिक्त, न्यायालय के समक्ष केवल अभियोजन को ही ज्ञात कारणों के चलते अन्वेषण अधिकारी को प्रस्तुत नहीं किया गया है जो प्राथमिकी, अभिग्रहण मेमो और टांगी की बरामदगी को प्रमाणित कर सकता था। न्यायालय ने अभियोजन शाखा से एक कान्सटेबल को उक्त दस्तावेजों को प्रमाणित करने के लिए समन किया और उसने सी॰ डब्ल्यू॰ 3 के रूप में कथन किया कि उसने आइ॰ ओ॰ को पढ़ते और लिखते देखा था और दस्तावेज आइ॰ ओ॰ की लिखावट में है। अभिलेख से यह स्थापित नहीं किया गया है कि आइ॰ ओ॰ को खोजा नहीं जा सका था अथवा वह सेवा में नहीं था।

7. विचारण न्यायालय समस्त साक्ष्य के मूल्यांकन के बाद इस निष्कर्ष पर आया है कि अभियुक्त-अपीलार्थी ने गवाहों, अ॰ सा॰ 3 और 4, बुधु मुण्डा और पैतू ओरावँ के समक्ष न्यायिकेतर संस्वीकृति किया है और वह संस्वीकृति किसी भी चीज द्वारा अप्रभावित होने के चलते ग्राह्य और विश्वसनीय है। द्वितीय परिस्थिति जिसपर दोषसिद्धि आधारित है, वह यह है कि अपीलार्थी के बताने पर टांगी खोजी गयी थी जिसका प्रयोग अपराध करने में किया गया था। तृतीय परिस्थिति जिसे न्यायालय द्वारा अपीलार्थी के विरुद्ध पाया गया है, वह यह है कि मृत शरीर घटना स्थल पर पाया गया था। विचारण न्यायालय ने पक्के तौर पर संप्रेक्षित किया है कि जब सोमरा मुण्डा ने घटना के बारे में मृतक के पिता को सूचित किया था, सूचक अ॰ सा॰ 1 घटना स्थल पर मरगरहा की ओर तुरन्त गया था। उसने वहाँ अन्य सह-अभियुक्तों को मृत शरीर को घसीटते हुए देखा था लेकिन अपीलार्थी को न तो वहाँ देखा गया था और न ही उसे मृतक का मृत शरीर घसीटते पाया गया था।

8. अब हमें यह परीक्षण करना है कि ये दो परिस्थितियाँ जिनपर अपीलार्थी को दोषसिद्ध करने के लिए विचारण न्यायालय द्वारा विश्वास किया गया था, उनपर कार्रवाई की जा सकती है या नहीं। अपीलार्थी की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने प्रतिवाद किया है कि टांगी की बरामदगी के लिए अभियोजन ने अ॰ सा॰ 3 बुधु ओरावँ और अ॰ सा॰ 8 जकरी ओरावँ का परीक्षण किया है। टांगी की उक्त बरामदगी को प्रमाणित करने के लिए कोई अन्य गवाह प्रस्तुत नहीं किया गया है। अ॰ सा॰ 8 ने अभियोजन के विवरण का समर्थन नहीं किया है। अ॰ सा॰ 3 का केवल यह साक्ष्य, जिसपर विचार

किया जाना शेष है, वह यह है कि क्या उक्त बरामदगी विश्वसनीय और तर्कपूर्ण है या नहीं। अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने प्रतिवाद किया कि विचारण के क्रम में अभियोजन ने यह कहानी विकसित करने की कोशिश की है कि टांगी की बरामदगी अ॰ सा॰ 6 सुकरा लोहरा जो गाँव का चौकीदार भी है, की उपस्थिति में की गयी थी। उन्होंने इंगित किया है कि अभिग्रहण मेमो का परिशीलन स्पष्टत: प्रकट करता है कि उसने अभिग्रहण मेमो पर हस्ताक्षर नहीं किया है। यदि वह वहाँ उपस्थित रहता तब निश्चय ही आइ॰ ओ॰ ने अभिग्रहण मेमो पर उसका हस्ताक्षर लिया होता। आगे यह इंगित किया गया था कि केवल अभियोजन को ज्ञात कारणों के चलते आइ॰ ओ॰ को न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत नहीं किया गया था और इस तरह बरामदगी असिद्ध है। यदि आइ॰ ओ॰ को प्रस्तुत किया जाता, वह बता सकता था कि वे कौन से गवाह थे जिनके सामने बरामदगी की गयी थी और यह कैसे की गयी थी। राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने इस प्रतिवाद का खंडन किया है और प्रतिवाद किया है कि इस मामले में बरामदगी सिद्ध की गयी है और अपीलार्थी को दोषसिद्ध करने के लिए यह परिस्थिति पर्याप्त है।

9. अभिग्रहण मेमो के परिशीलन से यह स्पष्ट है कि उक्त टांगी गोंडिया मुण्डा के घर के निकट से बरामद की गयी थी जिसे झाड़ी पर रखा गया था जबकि अ॰ सा॰ 3 और 4 का साक्ष्य उपदर्शित करता है कि यह झाड़ी के भीतर रखी गयी थी। अब यह अभिग्रहण मेमो, प्रदर्श-6 के परिशीलन से यह सत्य है कि इसे गोंडिया मुण्डा के घर के दक्षिणी हिस्से पर रखा गया था और यह झाड़ी के भीतर नहीं था बल्कि यह झाड़ी के ऊपर था जैसा उसके साक्ष्य के पैरा 2 से स्पष्ट है।

10. भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के अधीन कुछ भी ऐसा नहीं है जो अभियुक्त के बयान को अग्राघ्य बनाता है यदि वस्तु की बरामदगी ऐसे स्थान से की गयी है जो खुला है और सबकी पहुँच में है। यह अधिनियम की धारा 27 के अधीन बरामदगी को दूषित नहीं करेगा क्योंकि एक खुला और पहुँचने योग्य स्थान बरामदगी को अग्राध्य नहीं बनाता है यदि यह किसी स्थान के भीतर छुपा है क्योंकि किसी व्यक्ति का ध्यान नहीं जाएगा कि कुछ सतह के भीतर छुपा है यद्यपि यह खुला और पहुँचने योग्य है। यदि इसे खुले सार्वजनिक स्थान पर सतह के ऊपर रखा जाता है, बरामदगी पर विश्वास नहीं किया जा सकता है। यह किसी भी व्यक्ति द्वारा रखा जा सकता है अथवा यह किसी भी व्यक्ति की जानकारी में हो सकता है। उदाहरणस्वरूप, यदि कोई वस्तु मुख्य सड़क पर किसी स्थान के नीचे दफन की गयी है और यह सड़क के नीचे छुपा है, सामान्य परिस्थितियों में यह अन्य की दृष्टि के बाहर रहेगा जब तक छिपे स्थान से वस्तु को निकाला नहीं जाता है। व्यक्ति जो इसे छुपाता है, वही इसके बारे में जानता है जब तक कि वह इस तथ्य को अन्य को नहीं बताता है। अत: निर्णायक प्रश्न यह है कि क्या स्थान खुला और अन्य की पहुँच में है या नहीं बल्कि निर्णायक प्रश्न यह है कि यह सामान्यत: अन्य की दृष्टि में है या नहीं। यदि यह अन्य को द्रष्टव्य है, इसे वहाँ रखा जा सकता है अथवा यह किसी अन्य व्यक्ति द्वारा किया जा सकता है। यह निष्कर्षित नहीं किया जा सकता है कि अभियुक्त को इस तथ्य की जानकारी थी। इस प्रकार, इस मामले में बरामदगी विश्वास पैदा नहीं करता है।

11. भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 प्रावधानित करती है। कि जब कोई तथ्य किसी अपराध के लिए आरोपित व्यक्ति से प्राप्त सूचना के परिणामस्वरूप पाया जाता है और तब बरामदगी की जाती है, तब यह ग्राह्य होगी। अत: अभियोजन को यह सिद्ध करना होगा कि यह सूचना अभियुक्त अपीलार्थी द्वारा पुलिस अधिकारी को दी गयी थी। इस न्यायालय के समक्ष बयान का मेमोरेन्डम नहीं है जिससे यह पता लगाया जा सके कि बरामदगी की सूचना अभियुक्त द्वारा पुलिस अधिकारी को दी गयी थी। हम यह महसूस नहीं करते हैं कि हमेशा एक पृथक मेमो की आवश्यकता है लेकिन यदि

बरामदगी की जानी है, तब अभिग्रहण मेमों में इस तथ्य को अंतर्विष्ट करना ही चाहिए यदि पृथक मेमो तैयार नहीं किया गया है। समस्त अभिग्रहण मेमो ऐसी कोई सूचना अंतर्विष्ट नहीं करता है। अभिग्रहण मेमो में अंतर्विष्ट ऐसा कुछ भी नहीं है जिससे यह निष्कर्षित किया जा सके कि अभियुक्त से पायी गयी सूचना के परिणामस्वरुप टांगी बरामद की गयी थी। इसके अलावा यह ध्यान में लेना महत्वपूर्ण है कि बरामदगी की समस्त प्रक्रिया को केवल आइ॰ ओ॰ द्वारा सिद्ध किया जा सकता है और अभियुक्त द्वारा प्रति-परीक्षण किया जा सकता था। आइ॰ ओ॰ को प्रस्तुत नहीं करके अपीलार्थी को ऐसा अवसर प्रदान नहीं किया गया है जो निश्चय ही उसके मामले पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है। बरामदगी कार्यवाही पर विचार करने हेतु वह सर्वोत्तम व्यक्ति होता। अभियोजन ने केवल अ॰ सा॰ 3 और 8 को प्रस्तुत किया किन्तु अ॰ सा॰ 8 जकरी ओरावँ का साक्ष्य अभियोजन के किसी काम का नहीं है क्योंकि उसे पक्षद्रोही घोषित किया गया है क्योंकि उसने अभियोजन मामले का समर्थन नहीं किया है। उसने बरामदगी सिद्ध नहीं किया है जैसा अभियोजन द्वारा उपदर्शित किया गया है जबकि अ॰ सा॰ 3 बुधु मुण्डा बरामदगी के तथ्य पर अभिलेख पर बना हुआ है। उसने कथन किया है कि वह उस स्थान पर गया जहाँ से अपीलार्थी की प्रेरणा पर बरामदगी की गयी थी और बरामदगी मेमों में उसने अपना हस्ताक्षर किया है। अभियोजन के साक्ष्य से यह भी स्पष्ट है कि टांगी, जिसे बरामद किया गया बताया जाता है, न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत नहीं किया गया है। इस टांगी को इस गवाह को नहीं दिखाया गया है ताकि वह कह सके कि यह टांगी, जिसे अभिकथित तौर पर झाड़ी से बरामद किया गया कहा जाता है, वही टांगी है या नहीं। यहाँ टांगी का अप्रस्तुतिकरण अभियोजन के लिए घातक है। इस गवाह ने अपने साक्ष्य में स्वीकार किया है कि वह सोमरा मुण्डा द्वारा दिए गए विवरण के आधार पर अपना साक्ष्य देने आया था।

12. समस्त साक्ष्य और भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के प्रावधानों के परिशीलन के बाद, इस मामले में की गयी बरामदगी विश्वास पैदा नहीं करती है और इस प्रकार मेरी दृष्टि में इस परिस्थिति के आधार पर भी अभियुक्त-अपीलार्थी को दोषसिद्ध करने के लिए उक्त बरामदगी परिस्थिति पर विश्वास करके विचारण न्यायालय ने गलती की है।

13. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा अभियुक्त-अपीलार्थी के विरुद्ध दर्शायी गयी अगली परिस्थिति यह है कि अ॰ सा॰ 3 और 4 अर्थात् बुधु मुण्डा और पैतू ओरावँ ने अपने साक्ष्य में कथन किया है कि गाँव वालों द्वारा अपीलार्थी को घटना के दो दिन बाद अर्थात् 27.9.84 को पकड़ा गया था और अपीलार्थी ने गवाहों के समक्ष इस प्रभाव की न्यायिकेतर संस्वीकृति की थी कि उसने मृतक की टांगी से हत्या कर दी थी। अ॰ सा॰ 3 ने कथन किया है कि घटना की तिथि पर सोमरा मुण्डा और बिरसा लोहरा (मृतक) गाय चराने जंगल गये थे और जब वे लौट रहे थे, घटना स्थल पर मृतक बिरसा लोहरा की गर्दन पर टांगी से अपीलार्थी द्वारा प्रहार किया गया था। उक्त सूचना मृतक के पिता, अ॰ सा॰ 1 बन सिंह लोहरा और अन्य सह-ग्रामीणों को दी गयी थी। गाँव वाले अ॰ सा॰ 1 के साथ घटना स्थल पर पहुँचे और उन्होंने कुछ सह-अभियुक्तों को मृतक का शरीर घसीटते देखा लेकिन उन्होंने अपीलार्थी को घटना स्थल पर नहीं देखा था। दो-तीन दिन बाद गाँव वालों ने अपीलार्थी को पकड़ा था जिसने अपना दोष कबूल किया कि उसने मृतक की हत्या टांगी से की थी और उक्त टांगी को गोन्डिया मुण्डा के घर के निकट झाड़ी में छुपा दिया था। तत्पश्चात् गाँव का चौकीदार अ॰ सा॰ 6 को पुलिस थाना भेजा गया था और अभियुक्त-अपीलार्थी को पुलिस के हवाले कर दिया गया था। टांगी बरामद की गयी थी और तत्पश्चात् अभियुक्त अपीलार्थी को न्यायिक अभिरक्षा हेतु दंडाधिकारी के पास भेजा गया था।

14. अब यह देखना है कि अ॰ सा॰ 3 और 4 का साक्ष्य विश्वसनीय है या नहीं। आरंभ में ही हम यह कहना चाहेंगे कि घटना दिनांक 24.9.84 को हुई थी। अ॰ सा॰ 2, जयनाथ लोहरा के अनुसार, घटना के दो दिन बाद गाँववालों द्वारा अपीलार्थी को पकड़ा गया था जिसने अपना जुर्म कबूल किया। अभिलेख से यह पता चलता है कि अभियुक्त-अपीलार्थी को दिनांक 30.9.84 को गिरफ्तार किया गया था और दिनांक 1.10.84 को उसका बयान दर्ज करने और साथ-साथ न्यायिक अभिरक्षा इप्सित करके उसे दंडाधिकारी के पास भेजा गया था। अभिग्रहण मेमो, प्रदर्श-6 भी प्रकट करता है कि ऐसा दिनांक 30.9.84 को किया गया था। अत: 24 घंटे के भीतर दंडाधिकारी के समक्ष अभियुक्त को प्रस्तुत करने के लिए अभियोजन बाध्य था। उक्त से, यह स्पष्ट है कि अभियुक्त-अपीलार्थी तीन दिनों तक गाँव वालों की अभिरक्षा में रहा और गाँव वालो ने पुलिस को सूचना नहीं दी थी कि उनके द्वारा अपीलार्थी को पकड़ लिया गया था। अपीलार्थी का इकबालिया बयान दर्ज करने के लिए इलाका दंडाधिकारी को एक रिपोर्ट भेजी गयी थी जो अभिलेख पर भी है जिससे यह प्रकट होता है कि आइ॰ ओ॰ ने लिखा था कि गाँव वालों की अभिरक्षा में रहने के दौरान अभियुक्त को उपहतियाँ प्राप्त हुई थी। यह रिपोर्ट स्पष्टत: प्रकट करती है कि अपीलार्थी-अभियुक्त को यातना दी गयी थी जिसके चलते गाँववालों द्वारा उसका न्यायिकेतर इकबालिया बयान प्राप्त किया जा सका था। इसके अतिरिक्त, बिना किसी स्पष्टीकरण के अभियुक्त-अपीलार्थी चार दिनों की अवधि तक गाँववालों अथवा गवाहों द्वारा पकड़ रखा गया था, तब सामान्य क्रम में, अभियुक्त को पुलिस को सौंप दिया जाना चाहिए था। यदि अभियुक्त को पुलिस अथवा दंडाधिकारी को सौंपा नहीं गया था और उसे यातना दी गयी थी और उससे कुछ कबूलवाया गया था और यदि इकबाल किया भी गया था, यह स्वैच्छिक नहीं था। इसके अलावा, आइ॰ ओ॰ का रिपोर्ट इस तथ्य को अंतर्विष्ट नहीं करता था कि अपीलार्थी ने पहले ही गवाहों के समक्ष अपना जुर्म कबूल कर लिया था जैसा अभियोजन द्वारा अपने रिपोर्ट में उपदर्शित किया गया है। केवल यह उपदर्शित किया गया है कि अभियुक्त ने अपना जुर्म कबूल कर लिया है और इसलिए उसका बयान सक्षम प्राधिकारी द्वारा दर्ज किया जाना चाहिए। अ॰ सा॰ 4 पैतू ओरावँ ने कथन किया है कि अभियुक्त-अपीलार्थी ने उसके और अन्य गाँववालों के समक्ष अपना न्यायिकेतर इकबालिया बयान किया था कि उसने टांगी से मृतक की हत्या कर दी थी। यह बयान न्यायालय के समक्ष पहली बार आया है। जब उसके अभिसाक्ष्य में पैरा 9 में उसके सामने एक प्रश्न रखा गया था कि क्या उसने दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 161 के अधीन पुलिस को यह बयान दिया था, उसने कहा कि उसने पुलिस को ऐसा कोई बयान नहीं दिया है। अभियोजन ने आइ॰ ओ॰ को प्रस्तुत नहीं किया है जो बता सकता था कि उसने दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 161 के अधीन ऐसा बयान दिया था या नहीं। अत: ये तथ्य उस निष्कर्ष की ओर ले जाते है कि अ॰ सा॰ 4 पैतू ओरावँ न्यायालय के समक्ष पहली बार इस तथ्य का कथन किया है और उसने पहले किसी चरण पर इस तथ्य का कथन नहीं किया था। जहाँ तक अ॰ सा॰ 3 का संबंध है, उसने यह कथन भी किया है कि उसके द्वारा मृतक की हत्या के बारे में अपीलार्थी ने कबूल किया था किन्तु आइ॰ ओ॰ ने रिपोर्ट दाखिल करते हुए यह उपदर्शित नहीं किया है कि अभियुक्त ने किसी व्यक्ति के समक्ष न्यायिकेतर इकबालिया ब्यान था। आइ॰ ओ॰ को प्रस्तुत नहीं किए जाने से अपीलार्थी पर प्रतिकूल प्रभाव कारित हुआ है। यदि उसे न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया जाता, वह बता सकता था कि किस तिथि पर अ॰ सा॰ 3 और 4 का बयान पुलिस द्वारा दर्ज किया गया था। यदि इन दोनों गवाहों का बयान अत्यधिक विलम्ब के बाद दर्ज किया जाता अथवा कोई स्पष्टीकरण दिया जाता, मामला अन्यथा होता। आइ॰ ओ॰ का गैर-प्रस्तुतिकरण निश्चय ही इस निष्कर्ष की ओर ले जाता है कि इन दोनों गवाहों का बयान बाद के चरण पर लिया गया था और इस कारण अभियुक्त द्वारा किए गए इकबाल के संबंध में इन दोनों गवाहों का साक्ष्य विचार में नहीं लिया जा सकता है।

15. ऊपर किए गए चर्चाओं और साक्ष्य के समस्त विवरण का संचित प्रभाव यह है कि केवल उक्त न्यायिकेतर इकबालिया ब्यान के आधार पर अभियुक्त-अपीलार्थी की दोषसिद्धि आधारित करने में इस मामले में अभिकथित न्यायिकेतर इकबालिया ब्यान विश्वास उत्पन्न नहीं करता है।

16. परिणामस्वरुप, यह अपील अनुज्ञात की जाती है। अपीलार्थी के विरुद्ध दर्ज दिनांक 28.4.92 का दोषसिद्धि का निर्णय और दंडादेश अपास्त किया जाता है और उसे मुक्त किया जाता है। अपीलार्थी जमानत पर है। उसे अपने जमानत पत्र की जिम्मेदारी से उन्मोचित किया जाता है। उसे आत्मसमर्पण करने की आवश्यकता नहीं है।

माननीय प्रदीप कुमार, न्यायमूर्ति

किशनदेव प्रसाद एवं एक अन्य (458 में)

मनोज सिन्हा (462 में)

बनाम

झारखण्ड राज्य (दोनों में)

Criminal Appeal Nos. 458, 462 of 2001. Decided on 10th March, 2010.

सत्र विचारण सं॰ 419 वर्ष 1997 और 185 वर्ष 1998 में, श्री देवेन्द्र कुमार लाल, सप्तम अपर न्यायिक कमिश्नर, राँची द्वारा पारित दिनांक 29.9.2001 के दोषसिद्धि के निर्णय एवं दंडादेश के विरुद्ध।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 412 एवं 212 सह-पठित आयुध अधिनियम, 1959 की धारा 25(1-B) एवं 26—चुरायी गयी वस्तुओं का कब्जा—दोषसिद्धि और दंड—अपीलार्थी स्वामी ने अपने किराएदारों द्वारा अपने साथ अपराधियों को रखने और अपने किराए के परिसरों में चुरायी गयी वस्तुओं को रखने के बारे में अनभिज्ञता का अभिवाक्—घर का स्वामी भी दोषसिद्ध—यह निष्कर्षित नहीं किया जा सकता है कि अपीलार्थी-स्वामी को ज्ञात था कि उसने घर ऐसे व्यक्तियों को दिया था जिनका संबंध अपराधियों के साथ है और जो पेशेवर अपराधी हैं और उसके घर में अपना अस्त्र, कारतूस और चुरायी गयी वस्तुएँ रखते हैं—अपीलार्थी-स्वामी का दोषसिद्धि एवं दण्डादेश अपास्त—लेकिन, अपीलार्थीगण-किरायेदार अपराधियों को अपने साथ रख रहे थे एवं अपने कमरे में आयुध तथा हथियार एवं चोरी किए गए सामानों को रखे हुए थे—उनकी दोषसिद्धि और दंड कायम रखा गया—अपील अंशत अनुज्ञात(पैरा 18 से 25)

अधिवक्तागण.—M/s B. M. Tripathy, A.K. Sahani (in both), For the Appellants; Mr. Md. Hatim, For the Respondent.

प्रदीप कुमार, न्यायमूर्ति.—ये अपीलें सत्र विचारण सं॰ 419 वर्ष 1997 और 185 वर्ष 1998 में श्री देवेन्द्र कुमार लाल, सप्तम अपर न्यायिक कमिश्नर, राँची द्वारा पारित दिनांक 29.9.2001 के दोषसिद्धि के निर्णय एवं दंडादेश के विरुद्ध दाखिल की गयी हैं जिस निर्णय के द्वारा उन्होंने दोनों अपीलार्थीगण किशनदेव प्रसाद और शैला देवी (दांडिक अपील सं॰ 458/01 में) को भारतीय दंड संहिता की धारा 412 के अधीन और आयुध अधिनियम की धाराएँ 25 (1-B) एवं 26 के अधीन भी दोषी पाया और उन्हें भारतीय दंड संहिता की धारा 412 के अधीन अपराध के लिए 4 वर्षों का सश्रम कारावास और आयुध अधिनियम की धारा 25(1-B) के अधीन 3 वर्षों का सश्रम कारावास और आयुध अधिनियम की धारा 26 के अधीन 4 वर्षों का सश्रम कारावास भुगतने का दंड दिया। लेकिन, उन्होंने

इन सारे दंडों को साथ-साथ चलने का निर्देश दिया। उन्होंने अभियुक्त-अपीलार्थी मनोज सिन्हा (दांडिक अपील सं॰ 462/01 में) को भारतीय दंड संहिता की धारा 212 के अधीन भी दोषी पाया और उसे 2 वर्षों का सश्रम कारावास भुगतने का दंड दिया।

2. चूँकि ये दोनों अपीलें एक ही निर्णय से उद्‌भूत होती है, अत: इन दोनों अपीलों को साथ सुना गया है और इस सम्मिलित निर्णय द्वारा निपटाया जाता है।

3. अपीलार्थी मनोज सिन्हा के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह निवेदन किया गया है कि ऐसा कोई भी साक्ष्य नहीं है कि अपीलार्थी मनोज सिन्हा को यह ज्ञात था कि अन्य अभियुक्तगण, किशनदेव प्रसाद और शैला देवी, जिन्होंने उसका घर किराए पर लिया था, अपने साथ अपराधियों को रखते है और अपने किराए के परिसरों में चुरायी गयी वस्तुएँ भी रखते है और इस प्रकार भारतीय दंड संहिता की धारा 212 के अधीन उसकी दोषसिद्धि विधि की दृष्टि में दोषपूर्ण है और अपास्त किए जाने योग्य है।

4. अपीलार्थीगण किशुनदेव प्रसाद और शैला देवी के विद्वान अधिवक्ता ने भी कथन किया है कि चुरायी गयी वस्तुएँ और अन्य गैर-कानूनी हथियार और कारतूस दूसरे कमरे से बरामद किए गए थे और इस प्रकार उन्हें ज्ञात नहीं था कि उनके साथ रहे रहे सह-किराएदार अपराधी है और वे चुरायी गयी वस्तुएँ अपने घर में रखते है और इस प्रकार उनकी दोषसिद्धि भारतीय दंड संहिता की धारा 412 के अधीन और आयुध अधिनियम की धारा 25 (1-B) एवं 26 के अधीन भी विधि की दृष्टि में दोषपूर्ण है और अपास्त किए जाने योग्य है।

5. दूसरी ओर, राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने प्रार्थना का विरोध किया है और निवेदन किया है कि अपीलार्थीगण को पूरी जानकारी थी कि वे संगीन अपराधी है और अपने घरों में चुरायी गयी वस्तुएँ रखते हैं और इस प्रकार उन्हें सही दोषसिद्ध किया गया है।

6. दोनों पक्षों को सुनने और अभिलेख का परिशीलन करने के बाद, मैं पाता हूँ कि वर्तमान मामला अरगोरा पुलिस थाना के एस॰ आइ॰ नकुल दूबे द्वारा दाखिल लिखित रिपोर्ट के आधार पर शुरू किया गया था जिसमें उसने कथन किया था कि दिनांक 3.1.1997 को भारतीय दंड संहिता की धाराएँ 302, 307 और 427 और आयुध अधिनियम की धारा 27 के अधीन दर्ज अरगोरा पी॰ एस॰ केस सं॰ 1/97 के अन्वेषण के दौरान दोपहर लगभग 3 बजे उसे सूचना मिली कि अरगोरा पुलिस थाना के अधीन घेला टोली में, मनोज सिन्हा के घर में अभियुक्त किशनदेव प्रसाद अन्य अपराधियों, कदमकुआँ मोहल्ला का सुभाष सिंह, के साथ रह रहा है जो शहर में नियमित रूप से अपराध किया करते हैं और जहाँ अपराधी चुरायी गयी वस्तुएँ और अन्य गैर-कानूनी हथियार एवं कारतूस रखा करते हैं तब वह प्राथमिकी में नामित अन्य पुलिस अधिकारियों के साथ उक्त स्थान जाने के लिए निकला और सांय लगभग 4.15 बजे धेला टोली पहुँचा। पुलिस जीप को देखते ही, घर से दो तीन व्यक्ति भागने लगे। पुलिस ने पीछा किया और एक व्यक्ति को पकड़ लिया जिसने अपना नाम किशनदेव प्रसाद बताया और कथन किया कि उसने मनोज सिन्हा, जो हिनू, राँची में निवास करता है, से घर किराए पर लिया था। तब उक्त मनोज सिन्हा को सूचित किया गया और उसे अपने घर से बुलाया गया और तब वह सांय 6.30 बजे धेला टोली आया। तब, स्थानीय गवाहों की उपस्थिति में, धेला टोली के प्रेम सिंह और सुशील कुमार की तलाशी ली गयी और घर के उत्तर ओर वाले कमरे से, जिसमें किशनदेव प्रसाद रहता है, एक टेपरिकार्डर, एक वी॰ सी॰ पी॰, रेगुलेटर, बेलट्रान टी॰ वी॰, स्टैबलाइजर, गैस बर्नर, सीलिंग फैन और औजार और अन्य चीजें बरामद किया गया। दूसरा कमरा जो इस कमरे से जुड़ा हुआ था जिसके बारे में किशनदेव प्रसाद ने कथन किया कि वहाँ सुशील, पुट्टू उर्फ गुड्डू रहते थे और वे बाहर गए हुए थे। उन्होंने 6 कट्टों, 1 रिवाल्वर, 315 बोर के दो इस्तमाल कारतूस, 380 बोर के चार कारतूस और एक हैन्डग्रेनेड जिस पर OK 1982-10-36MMK1 खुदा हुआ था, चांदी की प्याली, सोनी का स्टीरियो, याशिका कैमरा, 8

चूड़ियाँ, हरी चूड़ी, पायल बरामद किया जिसके बारे में न तो किशनदेव प्रसाद और न ही मनोज सिन्हा स्पष्टीकरण दे पाए। स्वतंत्र गवाहों की उपस्थिति में पुलिस ने वस्तुओं अर्थात् हथियार और कारतूस की अभिग्रहण सूची तैयार की। पूछताछ करने पर किशनदेव प्रसाद ने उसे बताया कि पहले वह अपनी पत्नी और संतानों के साथ न्यू ए॰ जी॰ को-ऑपरेटिव कॉलोनी में दिन में अरविन्द राम के घर में रहता था और रात में वे इस कमरे में आए थे। शैला देवी उसके पास रखी गयी वस्तुओं की देखभाल करती थी। आइ॰ ओ॰ ने कथन किया है कि पटना का अपराधी सुभाष सिन्हा, किशनदेव प्रसाद, शैला देवी, पुट्टू उर्फ गुड्डू के साथ मिलकर शहर में अपराध करते हैं और मनोज सिन्हा के घर में किशनदेव प्रसाद और शैला देवी के संरक्षण में हथियार और कारतूस और लूटी गयी वस्तुएँ रखते है।

7. उक्त लिखित रिपोर्ट के आधार पर, पुलिस ने भारतीय दंड संहिता की धाराएँ 412, 212 एवं आयुध अधिनियम की धाराएँ 25 (1-B), 26 एवं 35 और विस्फोटक पदार्थ अधिनियम की धारा 3/5 के अधीन मामला दर्ज किया और अन्वेषण के बाद पूर्वोक्त धाराओं के अधीन आरोप पत्र दाखिल किया।

8. चूँकि मामला केवल सत्र न्यायालय द्वारा ही विचारणयोग्य था, विद्वान मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी ने संज्ञान लेने के बाद मामला सत्र न्यायालय को सुपुर्द कर दिया और तत्पश्चात् मामला सप्तम अपर न्यायिक कमिश्नर को अंतरित किया गया, जिन्होंने विचारण किया और उक्त निर्णय पारित किया और पूर्वोक्तानुसार अपीलार्थीगण को दोषी पाया।

9. यह प्रतीत होता है कि विचारण के क्रम में अभियोजन ने 7 गवाहों का परीक्षण किया है। अ॰ सा॰ 1 बंशीधर प्रसाद, ए॰ एस॰ आइ॰, अ॰ सा॰ 2 गणेश कुमार सिंह, ए॰ एस॰ आई॰, अरगोरा पुलिस थाना, अ॰ सा॰ 3 सुभाष प्रसाद गुप्ता, अ॰ सा॰ 4 नकुल दूबे सूचक, अ॰ सा॰ 5 प्रेम सिंह अभिग्रहण सूची गवाह, अ॰ सा॰ 6 नरेश कुमार सिन्हा और अ॰ सा॰ 7 कामेश्वर सिंह जो मामले का अन्वेषण अधिकारी है।

10. अ॰ सा॰ 4 सूचक ने अभियोजन मामले का पूरा समर्थन किया है, जैसा उसके द्वारा प्राथमिकी में प्रकट किया गया है और कथन किया है कि घटना की तिथि अर्थात् 3.1.97 को भारतीय दंड संहिता की धाराएँ 302, 307 एवं 427 के अधीन और आयुध अधिनियम की धारा 27 के अधीन दर्ज अरगोरा पी॰ एस॰ केस सं॰ 1/97 का अन्वेषण करते हुए उसने जाना कि धेला टोली में मनोज सिन्हा के घर में अपराधी रह रहे हैं एवं वे लोग उस घर में गैर-कानूनी हथियार और कारतूस और चुरायी गयी वस्तुएँ रखता है। तब वह अन्य पुलिस अधिकारियों और सशस्त्र बल के साथ धेला टोली स्थित मनोज सिन्हा के घर गया। जब वह मनोज सिन्हा के घर के निकट पहुँचा, 2-3 व्यक्ति घर से भागने लगा। पुलिस ने पीछा किया और एक व्यक्ति को पकड़ लिया जिसने अपना नाम किशनदेव प्रसाद बताया और कथन किया कि उसने मनोज सिन्हा, जो हिनू, राँची में रहता है, से घर किराए पर लिया था। तब उक्त मनोज सिन्हा को सूचना दी गयी और उसे उसके घर से बुलाया गया और तब वह सांय 6.30 बजे धेला टोली आया। तब, स्थानीय गवाहों, की उपस्थिति में घर की तलाशी ली गयी थी धेला टोली के प्रेम सिंह एवं सुशील कुमार के समक्ष हथियार और कारतूस एवं चुरायी गयी वस्तुएं अभिग्रहित की गयी थी। स्वतंत्र गवाहों की उपस्थिति में अभिग्रहण सूची तैयार की गयी थी जिसकी प्रति किशनदेव प्रसाद को दी गयी थी। उसने अभिग्रहण सूची पर अपना हस्ताक्षर प्रमाणित किया है जिसे प्रदर्श-1/1 के तौर पर चिन्हित किया गया है। उसने किशनदेव प्रसाद का हस्ताक्षर भी प्रमाणित किया जो प्रदर्श 1/2 के तौर पर चिन्हित है और मनोज सिन्हा का हस्ताक्षर भी प्रमाणित किया जो प्रदर्श-1/3 के तौर

पर चिन्हित है। उन्होंने कथन किया कि उतरी कमरे में मिथिलेश, बच्चा जी, सुशील रहते हैं और अभिग्रहण के समय किशनदेव प्रसाद की पत्नी भी कमरे में उपस्थित थी जिसमें वी॰ सी॰ पी॰, टी॰ वी॰ और अन्य वस्तुएँ बरामद की गयी थी और वी॰ आई॰ पी॰ अटैची से 6-7 देशी पिस्तौल, एक रिवाल्वर और बम बरामद किया गया था। दोनों कमरे एक-दूसरे से जुड़े हुए थे। द्वितीय अभिग्रहण सूची भी सूचक द्वारा प्रमाणित की गयी थी जिसे प्रदर्श-2 के तौर पर चिन्हित किया गया है और उसका हस्ताक्षर जिसे प्रदर्श 2/1 के रूप में चिन्हित किया गया है और मनोज सिन्हा एवं किशनदेव प्रसाद के हस्ताक्षर जिन्हें प्रदर्श-2/2 और 2/3 के तौर पर चिन्हित किया गया है। सूचक ने बंद लिफाफे में अभिग्रहित वस्तुओं को प्राप्त किया जिसे न्यायालय में खोला गया था और मुहरबंद लिफाफे में तात्विक प्रदर्शों अर्थात 6 देशी पिस्तौल एवं रिवॉल्वर, कारतुस एवं बम पाए गए थे। सूचक ने आगे कथन किया कि दो कमरों जिनकी तलाशी ली गयी थी एक-दूसरे से दरवाजे द्वारा जुड़े थे और अभिग्रहण के समय दरवाजा खुला था और यह किशनदेव प्रसाद और उसकी पत्नी के कब्जे में था। यद्यपि किशनदेव प्रसाद ने कथन किया कि दूसरा कमरा मिथिलेश, बच्चा जी का था जो फरार हैं। उसने यह भी कथन किया कि वह अपनी पत्नी के साथ और सुशील सोनार, सरोज, मिथिलेश, बच्चा जी के साथ पहले न्यू ए॰ जी॰ को-ऑपरेटिव कॉलोनी में अरविन्द राम के घर में रहता था और एक माह पहले उसने अपनी पत्नी और संतानों के साथ घर छोड़ दिया और यहाँ आया। उसने अपना लिखित रिपोर्ट प्रमाणित किया जो प्रदर्श-3 है और उसका हस्ताक्षर प्रदर्श-3/1 है। उसने लिखित रिपोर्ट पर लिखावट प्रमाणित किया जिसे डोरन्डा पुलिस थाना भेजा गया था। सारे हथियार और कारतूस बरामद किए गए थे, जिन्हें सामग्री प्रदर्श-II से XXX तक चिन्हित किया गया है।

अपने प्रति-परीक्षण में, उसने कथन किया कि मनोज सिन्हा ने उसे बताया कि मिथिलेश और किशनदेव प्रसाद किराएदार के तौर पर उसके घर में रह रहे हैं। उसने आगे कथन किया कि मनोज सिन्हा घटनास्थल पर उपस्थित नहीं था और फोन करके उसे हिनू स्थित आवास से बुलाया गया था। आस-पड़ोस के गवाहों ने भी कथन किया कि मनोज सिन्हा हिनू में निवास करता है। उसने यह भी कथन किया कि हथियार और कारतूस जाँच के लिए भेजे गए थे और उन्हें कामयाब पाया गया था।

11. अन्य गवाह अ॰ सा॰ 1 बंशीधर प्रसाद, ए॰ एस॰ आई॰ ने कथन किया कि दिनांक 3.1.1997 को वह अरगोरा पुलिस थाना में पदस्थापित था जब प्रभारी-अधिकारी नकुल दूबे को गुप्त सूचना प्राप्त हुई कि हत्या मामले के कुछ अभियुक्त धेला टोली में मनोज सिन्हा के घर में रह रहे हैं। तब वह अन्य पुलिस अधिकारियों के साथ सायं लगभग 4.15 बजे मनोज सिन्हा के घर गया और जब वे मनोज सिन्हा के घर के निकट पहुँचे तब 2-3 व्यक्ति भागने लगे। इस पर पुलिस दल ने पीछा किया और एक व्यक्ति को गिरफ्तार किया जिसने अपना नाम किशनदेव प्रसाद बताया। उसने आगे कथन किया कि वह मनोज सिन्हा, जो हिनू में रहते हैं, का किराएदार है। तब टेलीफोन करके मनोज सिन्हा को बुलाया गया और तब दो स्थानीय गवाहों की उपस्थिति में घर की तलाशी ली गयी जहाँ से एक हैण्ड ग्रेनेड, 6 देशी पिस्तौल .315 बोर के 16 जिन्दा कारतूस, .315 बोर के दो इस्तेमाल कारतूस, आभूषण और वस्त्र बरामद किए गए थे। उसकी उपस्थिति में अभिग्रहण सूची तैयार की गयी थी। गृहस्वामी मनोज सिन्हा अथवा किराएदार किशनदेव प्रसाद पूर्वोक्त हथियार, कारतूस और वस्तुओं का स्पष्टीकरण नहीं दे पाए थे। अभिग्रहण सूची की प्रति अभियुक्तों को न्यायालय में दी गयी थी।

अपने प्रति-परीक्षण में, उसने कथन किया कि मनोज सिन्हा का टेलीफोन नम्बर किशनदेव प्रसाद से लिया गया था। तब उसे उसके हिनू स्थित घर से बुलाया गया था। उसने अपने प्रति-परीक्षण में यह भी कथन किया कि मनोज सिन्हा उस घर, जहाँ से बरामदगी की गयी थी, में नहीं रहता है। उसने अपने

प्रति–परीक्षण में आगे कथन किया कि पश्चिमी भाग पर एक कमरा है जो मकान–मालिक मनोज सिन्हा के कब्जे में है जिसे बन्द पाया गया था और उस कमरे से कुछ भी बरामद नहीं किया गया था और न ही उस उत्तरी कमरे से जो अभियुक्त किशनदेव प्रसाद और उसकी पत्नी शैला देवी के कब्जे में था। उतरी दूसरा कमरा मिथिलेश, बच्चा जी और उनके दोस्तों के कब्जे में बताया जाता है। दोनों कमरे एक दूसरे से जुड़े थे और अभिग्रहण के समय खोल दिए गए थे।

12. अन्य गवाह, अ॰ सा॰ 2 गणेश कुमार सिंह ने भी कथन किया कि घटना के समय वह अरगोरा पुलिस थाना में ए॰ एस॰ आई॰ की ट्रेनिंग ले रहा था जब 3 बजे गुप्त सूचना मिली कि अपराधी धेला टोली स्थित मनोज सिन्हा के घर में रह रहे हैं। तब वह अन्य पुलिस अधिकारियों के साथ सांय लगभग 4.15 बजे मनोज सिन्हा के घर गया जहाँ अन्य के साथ भागते हुए अभियुक्त किशनदेव प्रसाद को गिरफ्तार किया गया था और उसने कथन किया वह मनोज सिन्हा, जो हिनू निवासी है, के घर में किराएदार है। तब टेलीफोन करके मनोज सिन्हा को बुलाया गया और उसकी उपस्थिति में हथियार और कारतूस बरामद किए गए थे। उसकी उपस्थिति में अभिग्रहण सूची तैयार की गयी थी। इसकी एक प्रति उसे और मकान मालिक मनोज सिन्हा को दी गयी थी।

अपने प्रति–परीक्षण में उसने कथन किया कि बरामदगी किशनदेव प्रसाद के कमरे से की गयी थी और दूसरा कमरा दरवाजे से जुड़ा था जो खुला था और शैला देवी ने कथन किया कि दूसरा कमरा सुशील, सरोज और बच्चा जी के कब्जे में है।

13. अन्य गवाह अ॰ सा॰ 3 सुभाष प्रसाद गुप्ता ने भी यही कथन किया और अभियुक्तगण किशनदेव प्रसाद और शैला देवी के कमरे से किए गए अभिग्रहण का समर्थन किया।

अपने प्रति–परीक्षण के पैरा–5 पर, उसने कथन किया कि मकान–मालिक मनोज सिन्हा हिनू में रहता था जहाँ से उसे बुलाया गया था।

14. अन्य गवाह, अ॰ सा॰ 5 प्रेम सिंह ने अभिग्रहण सूची पर अपना हस्ताक्षर प्रमाणित किया है जिसे प्रदर्श–2/4 एवं 1/4 के तौर पर चिन्हित किया गया है।

15. अन्य गवाह अ॰ सा॰ 6 नरेश कुमार सिन्हा ने कथन किया कि वह किशनदेव प्रसाद के पड़ोसी का पुत्र है।

16. अन्य गवाह, अ॰ सा॰ 7 कामेश्वर सिंह मामले का अन्वेषण अधिकारी है जिसने कथन किया कि दिनांक 3.1.1997 को भारतीय दंड संहिता की धाराएँ 302, 306, 426, 34 एवं आयुध अधिनियम की धारा 26 के अधीन दर्ज अरगोरा पी॰ एस॰ केस सं॰ 1/97 का अन्वेषण करते हुए उसे गुप्त सूचना मिली कुछ अपराधी किशनदेव प्रसाद के साथ धेला टोली स्थित मनोज कुमार के घर में रह रहे है। तब उन्होंने एक छापामार दस्ता तैयार किया और घर पर छापा मारा। जब वे वहाँ पहुँचे, तब 2-3 व्यक्ति भागने लगे। तब उनका पीछा किया गया और एक अभियुक्त को पकड़ लिया गया जिसने अपना नाम किशनदेव प्रसाद बताया और उसने कहा कि वह हिनू निवासी मनोज सिन्हा का किराएदार है। तब मनोज सिन्हा को टेलीफोन करके बुलाया गया और तब स्वतंत्र गवाह की उपस्थिति में उसके घर की तलाशी ली गयी थी और उसके कब्जे में एक–दूसरे से दरवाजे से जुड़े दो कमरों से हथियार और कारतूस बरामद किए गए थे जिस आधार पर प्राथमिकी दर्ज की गयी थी। उसने औपचारिक प्राथमिकी प्रमाणित किया जिसे प्रदर्श–4 के तौर पर चिन्हित किया गया है। तब उसे अन्वेषण का जिम्मा दिया गया। उसने घटना स्थल का निरीक्षण किया और गवाहों का बयान दर्ज किया और हथियार एवं कारतूस को एफ॰ एस॰ एल॰ भेजा और एफ॰ एस॰ एल॰ का रिपोर्ट जिसे प्रदर्श–6 के तौर पर प्रमाणित किया गया है, और उच्चतर प्राधिकारी के निरीक्षण के बाद उसने मामले में आरोप पत्र दाखिल किया।

अपने प्रति-परीक्षण में पैरा-9 पर उसने कथन किया कि मनोज सिन्हा एक छात्र है और उसका कोई आपराधिक इतिहास नहीं है और वह अरगोरा में धेला टोली स्थित किराए पर दिए गए अपने घर से 5 किलोमीटर दूर हिनू में रहता है और जब छापामार दस्ता घटना स्थल पर पहुँचा, मनोज सिन्हा उपस्थित नहीं था, और किशनदेव प्रसाद से उसका टेलीफोन नम्बर लेकर उसे हिनू स्थित घर से वहाँ बुलाया गया था। बरामदगी उत्तरी हिस्से वाले दो कमरों से की गयी थी जो किशनदेव प्रसाद और शैला देवी के कब्जे में थे और उन्होंने कथन किया कि दूसरा कमरा जो जुड़ा हुआ था और जिसे खोला गया था, सुशील, सरोज, मिथिलेश, बउआ जी का है।

17. अन्य गवाह, अ॰ सा॰ 8 रविन्द्र प्रसाद ने आयुध अधिनियम के अधीन अभियोजन के लिए मंजूरी आदेश को प्रमाणित किया है जो प्रदर्श-10 के तौर पर चिन्हित है।

18. बचाव पक्ष ने भी ब॰ सा॰, राम अयोध्या सिंह आर्य, सेवानिवृत्त सरकारी अधिकारी और अभियुक्त मनोज सिन्हा का पिता का परीक्षण किया और जिसने कथन किया कि 6 कठ्ठा, 9 छटाँक, 10½ फीट क्षेत्र वाला खाता सं॰ 212, प्लॉट सं॰ 2045E का धेला टोली स्थित घर उसका है और उसने करकट छत वाला छः कमरों के मकान का निर्माण करवाया है और वह अपने संतानों के साथ हिनू में रहता है। उसने धेला टोली स्थित घर किराए पर दिया था उसने अपना विक्रय विलेख प्रमाणित किया जिसे प्रदर्श-A के रूप में चिन्हित किया गया है। उसने कथन किया कि वर्ष 1997 में घटना की तिथि पर उसका पुत्र मनोज सिन्हा छात्र था और घर वास्तविक रूप से उसका है।

19. ऊपर चर्चा किए गए पूर्वोक्त साक्ष्यों से यह स्पष्ट है कि यद्यपि घर मनोज सिन्हा का है और इसे उसके पिता राम अयोध्या सिंह आर्य द्वारा निर्मित किया गया था और उसका पुत्र स्वयं छात्र है। अन्वेषण अधिकारी, जिसने अ॰ सा॰ 7 के तौर पर मामले का अन्वेषण किया, ने कथन किया कि घटना के समय मनोज सिन्हा छात्र था और उसके विरुद्ध आपराधिक इतिहास नहीं है और वह घटनास्थल अर्थात् किराए पर दिया गया मकान, पर उपस्थित नहीं था जो अभियुक्त किशनदेव प्रसाद और शैला देवी के कब्जे में था। अभियुक्त मनोज सिन्हा को कोई जानकारी नहीं थी कि वे घर में चुरायी गयी वस्तुएँ और अपराधियों को भी रखे हुए हैं।

20. यह ध्यान में लेना महत्वपूर्ण है कि समस्त गवाहों ने कथन किया है कि किशनदेव प्रसाद अन्य अभियुक्तगण के साथ न्यू ए॰ जी॰ को-ऑपरेटिव कॉलोनी में रह रहा था और ठीक एक माह पहले उसने घर छोड़ा था। मामले की इस दृष्टि में, यह निष्कर्षित नहीं किया जा सकता है कि मनोज सिन्हा को ज्ञात था कि उसने घर किशनदेव प्रसाद और शैला देवी को दिया है जिनका अपराधियों के साथ संबंध था और जो स्वयं संगीन अपराधी थे और अपने घर में हथियार और कारतूस और चुरायी गयी वस्तुएँ रखते थे। अतः अपीलार्थी मनोज सिन्हा (दांडिक अपील सं॰ 462/01 में) को संदेह का लाभ दिया जाता है और उसे उसके विरुद्ध लगाए गए आरोपों से दोषमुक्त किया जाता है।

21. परिणामस्वरुप, अपीलार्थी मनोज सिन्हा (दांडिक अपील 462/01 में) द्वारा दाखिल अपील अनुज्ञात की जाती है और एस॰ टी॰ सं॰ 419/97 के साथ एस॰ टी॰ सं॰ 185 वर्ष/1998 में श्री डी॰ के॰ लाल, सप्तम अपर न्यायिक कमिश्नर, राँची द्वारा पारित भारतीय दंड संहिता की धारा 212 के अधीन उसकी दोषसिद्धि और दंड को अपास्त किया जाता है।

22. अपीलार्थी मनोज सिन्हा (दांडिक अपील सं॰ 462/01 में) जमानत पर है, उसे अपने जमानत पत्र के बंधनों से निर्मुक्त किया जाता है।

23. जहाँ तक किशनदेव प्रसाद और शैला देवी द्वारा दाखिल अपील का संबंध है, इसका पर्याप्त साक्ष्य है कि हथियार और कारतूस और चुरायी गयी वस्तुओं की बरामदगी उनकी उपस्थिति में उनके कब्जे के कमरों में से की गयी थी। दोनों कमरे आपस में जुड़े हुए थे और अभिग्रहण के समय खोले गए थे और अभियुक्त शैला देवी अंदर उपस्थित थी और कोई अन्य उपस्थित नहीं था, अतः दोनों कमरें अभियुक्त किशनदेव प्रसाद और शैला देवी के कब्जे में थे।

24. मामले के इस दृष्टिकोण में, यह युक्तियुक्त संदेह के परे सिद्ध किया गया है कि ये दोनों अपीलार्थीगण किशनदेव प्रसाद और शैला देवी अपने साथ अपराधियों को रखे हुए थे और उन्होंने अपने कमरे में हथियार और कारतूस और चुरायी गयी वस्तुओं को भी रखा था जो उनके कब्जे में था और अभिग्रहण को गवाहों द्वारा प्रमाणित किया गया था, अत: मैं अपीलार्थीगण किशनदेव प्रसाद और शैला देवी द्वारा दाखिल अपील (दांडिक अपील सं॰ 458 वर्ष 2001) में गुणागुण नहीं पाता हूँ और उनकी दोषसिद्धि और दंड पोषणीय है और अपील खारिज की जाती है।

25. अपीलार्थीगण, किशनदेव प्रसाद और शैला देवी (दांडिक अपील सं॰ 458 वर्ष 2001) जमानत पर है। उनका जमानत पत्र रद्द किया जाता है और उनके द्वारा अपना दंड भुगतने के लिए उनके विरुद्ध गिरफ्तारी का वारन्ट जारी करने का निर्देश विचारण न्यायालय को दिया जाता है।

माननीय जे॰ सी॰ एस॰ रावत एवं जया रॉय, न्यायमूर्तिगण

हेमलाल महतो एवं अन्य

बनाम

बिहार राज्य, अब झारखण्ड

Criminal Appeal (DB) No. 61 of 1992. Decided on 26th March, 2010.

एस॰ टी॰ सं॰ 28 वर्ष 1985 में तृतीय अपर सत्र न्यायाधीश, हजारीबाग द्वारा पारित दिनांक 1.5.1992 के दोषसिद्धि के निर्णय के विरुद्ध।

(क) भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 302/34 एवं 323—हत्या–आजीवन कारावास–खेत पर हल चलाने से उद्भूत विवाद–घटना के तरीके के बारे में चश्मदीद गवाहों का साक्ष्य परस्पर विरोधी–हमलावर जिसने मृतक की हत्या की थी के नाम को लेकर भी गवाहों में भिन्नता है–अ॰ सा॰ के साक्ष्य चिकित्सीय साक्ष्य द्वारा समर्थित नहीं–अपीलार्थीगण की दोषसिद्धि के लिए अ॰ सा॰ के साक्ष्य विश्वसनीय नहीं–प्रश्नगत भूमि अभियुक्त अपीलार्थीगण के कब्जे में है–अभियुक्तों के शरीर पर पायी गयी उपहतियों को अभियोजन द्वारा स्पष्ट नहीं किया गया है–अभियुक्त पक्ष और सूचक पक्ष के बीच भूमि के एक हिस्से के लिए पुराना विवाद था और अभिकथित हत्या को चश्मदीद गवाहों, जिन्हें बिल्कुल अविश्वसनीय पाया गया है, द्वारा सिद्ध किया जाना इप्सित किया गया था–युक्तियुक्त संदेहों के परे अभियोजन अपना मामला सिद्ध करने में विफल रहा–दोषसिद्धि और दंड अपास्त–अपील अनुज्ञात। (पैरा 6 से 14)

(ख) दांडिक विधि–साक्ष्य का अधिमूल्यन–गवाहों के संबंध साक्ष्य पर विश्वास नहीं करने का एक मात्र आधार नहीं हो सकता है यदि उन्हें अन्यथा विश्वसनीय और विश्वास किए जाने लायक पाया जाता है–ऐसे गवाहों के साक्ष्य को तौलने में न्यायालय को बहुत ही सावधान रहना चाहिए–विधि में, इसको स्वीकार करने अथवा इस पर कार्रवाई करने के पहले पूरी सावधानी और सतर्कता के साथ साक्ष्य का विश्लेषण और संविक्षा करने की अपेक्षा की जाती है। (पैरा 7)

अधिवक्तागण.–M/s M.S. Chhabra, B.K. Sinha, For the Appellant; A.P.P., For the Respondent.

निर्णय

जया रॉय, न्यायमूर्ति.–अपीलार्थीगण ने यह अपील एस॰ टी॰ केस सं॰ 26 वर्ष 1985 में तृतीय अपर सत्र न्यायाधीश द्वारा पारित दिनांक 1.5.1992 के निर्णय के विरुद्ध दाखिल की गयी है जिसके

द्वारा अपीलार्थीगण को भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 302/34 और भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 323 के अधीन दोषसिद्ध किया गया है और भारतीय दंड संहिता की धारा 302/34 के अधीन अपराध के लिए आजीवन सश्रम कारावास भुगतने का दंड दिया गया है और भारतीय दंड संहिता की धारा 323 के अधीन कोई पृथक दंड पारित नहीं किया गया है।

2. संक्षेप में, अभियोजन का मामला यह है कि सूचक पति साव (अ॰ सा॰ 5) अपने भाई खिरोधर साव (मृतक) और साला कैला साव (अ॰ सा॰ 4) के साथ दिनांक 15.6.1992 को प्रातः लगभग 7 बजे कटाश टांड के नाम से लोकप्रिय कैला साव के खेत में हल चलाने गया। जब उन्होंने खेत के एक छोटा हिस्सा जोत लिया था, पूर्वोक्त समस्त अभियुक्तगण जीतन महतो की पत्नी और अभियुक्त जुगेश्वर महतो की दो पत्नियाँ एवं अभियुक्त हेमलाल महतो की पत्नी और पुत्री के साथ हाथ में लाठी और डंडा लिए प्रश्नगत भूमि पर आए और उन्हें खेत जोते जाने का विरोध किया। गाली-गलौज के बाद प्रहार किया गया और खिरोधर साव (मृतक) पति साव (अ॰ सा॰ 5), कैला साव (अ॰ सा॰ 4) जमनी देवी (अ॰ सा॰ 2) जो अ॰ सा॰ 5 की पत्नी है, सोमरी देवी (अ॰ सा॰ 1) खिरोधर साव की पत्नी और तेतरी देवी (अ॰ सा॰ 3) अ॰ सा॰ 4 की पत्नी पर अभियुक्तगण द्वारा उपहतियाँ की गयी। अभियुक्त हेमलाल महतो ने उकसाया और अ॰ सा॰ 5 के हाथ और पैर पर प्रहार किया। अभियुक्त जुगेश्वर महतो ने खिरोधर साव के मस्तक और बांए हाथ पर लाठी से प्रहार किया और जब वह गिर गया, अभियुक्त होरिल महतो और जुगेश्वर महतो उसकी छाती और पेट पर कूदे और इन्हें अपने पैरों से दबाया। अभियुक्त महादेव महतो ने अ॰ सा॰ 4 पर लाठियाँ बरसायी। अभियुक्तगण ने अ॰ सा॰ 1, 2 और 3 पर भी प्रहार किया जो शोरगुल सुनकर घटनास्थल पर आए थे। घायल व्यक्तियों को बढ़ही स्टेट डिसपेन्सरी ले जाया गया। जहाँ डाक्टर एम॰ पी॰ सिन्हा (अ॰ सा॰ 7) द्वारा उनका परीक्षण किया गया। खिरोधर साव की उपहतियों की गंभीरता को देखते हुए उसे हजारीबाग सदर अस्पताल भेजा गया किन्तु दुर्भाग्यवश रास्ते में ही उसकी मृत्यु हो गयी। घटना भूमि विवाद के चलते हुई बतायी जाती है।

3. अभियोजन ने अपना मामला सिद्ध करने के लिए आठ गवाहों का परीक्षण किया है। अ॰ सा॰ 1, 2, 3, 4 और 5 मृतक के संबंधी हैं जो घटना के अभिकथित तौर पर चश्मदीद गवाह बताए जाते हैं; इनके अलावा, डॉक्टर एम॰ पी॰ सिन्हा (अ॰ सा॰ 7) जिन्होंने घायल व्यक्तियों का परीक्षण किया था और डॉक्टर एन॰ के॰ वर्मा (अ॰ सा॰ 6) जिन्होंने मृतक के मृत शरीर का शव परीक्षा किया था और अ॰ सा॰ 8 नसीरुद्दीन खान, औपचारिक गवाह जिसने प्राथमिकी (प्रदर्श-3) प्रमाणित किया है।

4. प्रतिवादी ने घटना से पूरी तरह इंकार किया है और झूठा फँसाए जाने का कथन किया है। अभियोजन गवाहों के प्रति-परीक्षण के रुख से एकत्रित विनिर्दिष्ट प्रतिवाद यह था कि प्रश्नगत भूमि अभियोजन पक्ष के कब्जे में नहीं था बल्कि यह अभियुक्तगण के कब्जे में था और अभियोजन पक्ष जबरदस्ती इसपर कब्जा करना चाहता था। अभियुक्तगण ने प्रतिवाद किया और यदुनन्दन प्रसाद (ब॰ सा॰ 1) नामक बचाव गवाह का परीक्षण किया जिसने एक विक्रय विलेख (प्रदर्श-B) प्रमाणित किया। (प्रदर्श-B) के अतिरिक्त, अभियुक्तगण द्वारा अभिलेख पर कतिपय अन्य दस्तावेजों अर्थात् प्रदर्श-C, अभियुक्तगण द्वारा दाखिल प्रति मामला की प्राथमिकी को लाया गया था। दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 313 के अधीन अपने बयान में अभियुक्तगण ने घटना से साफ इन्कार किया।

5. अब यह देखना है कि क्या अभियोजन ने सारे युक्तियुक्त संदेहों के परे अभियुक्त-अपीलार्थीगण के विरुद्ध लगाए गए आरोपों को सिद्ध किया है।

6. अपीलार्थीगण की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता, श्री छाबरा ने निवेदन किया कि अभियोजन ने पाँच गवाहों-अ॰ सा॰ 1 से 5 तक का परीक्षण किया जो अभिकथित तौर पर घटना के चश्मदीद गवाह बताए जाते हैं। उन्होंने इंगित किया है कि अ॰ सा॰ 5 सूचक ने अपने साक्ष्य के पैरा-28 में विनिर्दिष्ट कथन किया है कि हल्ला होने के बाद उसके घर की स्त्रियाँ अर्थात् सोमरी देवी अ॰ सा॰ 1, जमनी देवी अ॰ सा॰ 2 और तेतरी देवी अ॰ सा॰ 3 घटनास्थल पहुँचीं। उक्त बयान अ॰ सा॰ 4 कैला साव के साक्ष्य द्वारा समर्थित किया गया है जिसने अपने साक्ष्य के पैरा 6 में कथन किया है कि प्रहार के बाद उनके घर की महिलाएँ घटनास्थल पहुँची और तत्पश्चात् अभियुक्त पक्ष की महिलाओं ने उनके परिवार की महिलाओं पर प्रहार किया। इस प्रकार यह बिल्कुल स्पष्ट है कि उक्त तीनों गवाहों अर्थात् अ॰ सा॰ 1, 2 और 3 ने वास्तविक घटना को नहीं देखा है। श्री छाबरा ने आगे निवेदन किया कि अ॰ सा॰ 1 सोमरी देवी ने भी अपने साक्ष्य में कथन किया है कि हल्ला सुनने पर वह घटनास्थल पर गयी। उसने आगे कथन किया कि घटनास्थल उसके घर से एक मील की दूरी पर है। इस प्रकार यह बिल्कुल स्पष्ट है कि इन तीनों गवाहों ने वास्तविक घटना नहीं देखा है। अत: केवल अ॰ सा॰ 4 और 5 ही अभिकथित घटना के गवाह हैं।

7. यह सुस्थापित है कि गवाहों का संबंध साक्ष्य पर विश्वास नहीं करने का एकमात्र आधार नहीं हो सकता है यदि अन्यथा इसे विश्वसनीय और विश्वास किए जाने योग्य पाया जाता है। अत: ऐसे गवाहों के साक्ष्य को तौलने में न्यायालय को पूर्ण सावधानी बरतनी चाहिए। विधि में अपेक्षा की जाती है कि इसे स्वीकार करने अथवा इसपर कार्रवाई करने से पहले पूरी सावधानी और सतर्कता से साक्ष्य का विश्लेषण और संवीक्षा किया जाना चाहिए। वर्तमान मामले में अभियोजन के अनुसार अ॰ सा॰ 4 और 5 सर्वाधिक हितबद्ध गवाह हैं और वे मृतक से भी संबंधित है क्योंकि अ॰ सा॰ 4 साला है और अ॰ सा॰ 5 मृतक का भाई है।

8. इन दोनों गवाहों के साक्ष्य की संविक्षा करने पर, मैं पाता हूँ कि अ॰ सा॰ 5, जो सूचक है, ने प्राथमिकी में कथन किया है कि घटना की तिथि पर वह खिरोधर साव और काली साव के साथ उनका खेत अर्थात् प्रश्नगत भूमि जोतने गया था और जब उन्होंने खेत जोतना शुरू किया अभियुक्तगण वहाँ आए और आपत्ति की। उसने आगे कथन किया है कि हेमलाल महतो (अपीलार्थी सं॰ 1) ने उसके पैर और बांए हाथ पर प्रहार किया। जुगेश्वर महतो ने उसके भाई खिरोधर साव के मस्तक और बांए हाथ पर लाठी से प्रहार किया जिसके परिणामस्वरूप वह गिर गया। तत्पश्चात्, जुगेश्वर महतो और होरिल महतो उसकी छाती पर कूदा और इसे अपने पैरो से दबाया। लेकिन अ॰ सा॰ 5 ने अपने साक्ष्य में कथन किया कि होरिल महतो और जुगेश्वर महतो ने खिरोधर के मस्तक और बांए हाथ पर प्रहार किया जिससे उसका हाथ टूट गया। श्री छाबरा ने आगे इंगित किया है कि घटना के अन्य चश्मदीद गवाहों अर्थात् अ॰ सा॰ 4 ने अपने साक्ष्य में कथन किया है कि जुगेश्वर और महादेव ने खिरोधर के मस्तक और पैर पर लाठी से प्रहार किया जिसके परिणामस्वरूप वह नीचे गिर गया और तत्पश्चात् जुगेश्वर महतो और महादेव महतो उसकी छाती पर कूदे और इसे अपने पैरो से दबाया। इस प्रकार दोनों गवाहों ने घटना के तरीके के संबंध में एक दूसरे का खंडन किया है। यद्यपि जुगेश्वर महतों का नाम दोनों गवाहों द्वारा लिया गया है किन्तु होरिल महतो और महादेव महतो के संबंध में यह कहना मुश्किल है कि उनमें से किसने मृतक खिरोधर पर प्रहार किया था।

9. इस प्रकार, दोनों चश्मदीद गवाहों अर्थात् अ॰ सा॰ 4 और अ॰ सा॰ 5 ने न केवल घटना के तरीके बल्कि उन व्यक्तियों, जिन्होंने पीड़ित खिरोधर पर प्रहार किया जिसके परिणामस्वरूप उसकी मृत्यु

हो गयी, के नाम के संबंध में भी एक दूसरे का खंडन किया है। इसके अतिरिक्त, अ॰ सा॰ 4 का साक्ष्य आगे दर्शाता है कि जब खिरोधर गिर गया, जुगेश्वर और महादेव उसकी छाती और पेट पर कूदे और उसे अपने पैरों से दबाया। चिकित्सीय साक्ष्य अ॰ सा॰ 4 के बयानों का समर्थन नहीं करता है। अत: यह कहना मुश्किल है कि अपीलार्थीगण की दोषसिद्धि के लिए अ॰ सा॰ 4 और 5 विश्वसनीय अथवा विश्वास योग्य साक्ष्य है।

10. अपीलार्थीगण के अधिवक्ता ने निवेदन किया कि यद्यपि अभियुक्तगण ने दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 313 के अधीन अपने बयानों में घटना से इन्कार किया है, लेकिन अभियोजन गवाहों के साक्ष्य से सामने आया है कि प्रश्नगत भूमि अभियुक्तगण के कब्जे में थी और उसके लिए सूचक पक्ष ने दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 144 के अधीन मामला दाखिल किया है और उक्त मामले में पारित आदेश अभियुक्तगण के पक्ष में था। इसके अतिरिक्त, अ॰ सा॰ 4 कैला साव ने अपने साक्ष्य में कथन किया है कि उन्होंने भूमि केवल इस कारण से बेच दी थी क्योंकि अभियुक्तगण उन्हें प्रश्नगत भूमि पर कब्जा करने की अनुमति नहीं देता था। अब प्रश्न उठता है कि पूर्वोक्त मारपीट तभी हुई थी जब सूचक पक्ष अभियुक्त अपीलार्थीगण की उक्त भूमि जोतने आए थे। यह स्वीकृत तथ्य है कि सूचक पक्ष पूर्वोक्त भूमि जोतने गया था और जैसे ही उन्होंने जोतना शुरू किया, अभियुक्त अपीलार्थीगण वहाँ पहुँचे और आपत्ति की। श्री छाबरा ने आगे प्रतिवाद किया है कि अभियुक्त अपीलार्थीगण ने भी प्रति मामला दाखिल किया है और उक्त प्रति मामला की प्राथमिकी प्रदर्श-B है। उक्त प्राथमिकी के विषय वस्तु से पता चलता है कि अभियुक्त अपीलार्थीगण ने भी भोथरे और कड़े तेज धारदार हथियार द्वारा कारित उपहतियाँ प्राप्त की है। उन्होंने हमारा ध्यान डॉक्टर अ॰ सा॰ 7 के साक्ष्य की ओर आकृष्ट किया है जिन्होंने उसी दिन गुंजरी देवी, हेमलाल महतो (अपीलार्थी सं॰ 1) की पत्नी, जुगेश्वर महतो (अपीलार्थी सं॰ 2) और होरिल महतो (अपीलार्थी सं॰ 3) का परीक्षण किया था। अ॰ सा॰ 7 डॉक्टर का साक्ष्य स्पष्टत: दर्शाता है कि जुगेश्वर महतो और होरिल महतो दोनों ने तेज धारदार हथियार द्वारा कारित मस्तक पर उपहतियाँ प्राप्त की थी किन्तु सौभाग्यवश ये उपहतियाँ सरल प्रकृति की थी। लेकिन यह आश्चर्यजनक है कि अ॰ सा॰ 4 और 5, जो चश्मदीद गवाह है, ने अभियुक्त अपीलार्थीगण द्वारा प्राप्त उक्त उपहतियों के बारे में पूरी तरह इंकार किया है और अभियोजन भी अभियुक्तगण की उक्त उपहतियों को स्पष्ट करने में विफल रहा है जो सिद्ध करता है कि अभियोजन न्यायालय के समक्ष स्वच्छ मन से नहीं आया है और घटना के वास्तविक तरीके को दबाया है।

11. अंत में, श्री छाबरा ने प्रतिवाद किया है कि बचाव पक्ष ने दिनांक 28.11.1968 का विक्रय विलेख प्रदर्श-B दाखिल किया है जिसे बचाव पक्ष ब॰ सा॰-1 द्वारा प्रमाणित किया गया है जो दर्शाता है कि अभियुक्त अपीलार्थीगण ने प्रश्नगत भूमि के मूल स्वामी अर्थात् मथुरा साव से खरीदी थी और उक्त भूमि का कब्जा अभियुक्तगण को दे दिया गया था।

12. राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने प्रतिवाद किया है कि विचारण न्यायालय ने अभिलेख पर लाए गए सामग्रियों के समुचित अधिमूल्यन पर अपीलार्थीगण को दोषसिद्ध किया है और इसमें हस्तक्षेप अपेक्षित नहीं है और यह इप्सित किया गया शिकायत में गुणागुण नहीं है और अपील में कोई सार नहीं है।

13. गवाहों के समस्त साक्ष्य, अभिलेख पर उपस्थित सामग्रियों पर विचार करने पर यह कहा जा सकता है कि अभियुक्त पक्ष और सूचक पक्ष के बीच भूमि के हिस्से पर लंबा विवाद है और चश्मदीद गवाहों द्वारा अभिकथित हत्या सिद्ध करना इप्सित किया गया था, जिन्हें पूर्णत: अविश्वसनीय पाया गया है।

14. उक्त चर्चा की दृष्टि में, हमारा दृष्टिकोण यह है कि अभियोजन सारे युक्तियुक्त संदेहों के परे अपना मामला सिद्ध करने में विफल रहा है। भा॰ दं॰ सं॰ की धाराएँ 302/34 एवं 323 के अधीन अपीलार्थीगण को दोषी अभिनिर्धारित करने में विचारण न्यायालय ने गलती की है। अतः हम अपील अनुज्ञात करते हैं और विचारण न्यायालय द्वारा अभिलिखित दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश को अपास्त करते हैं। चूँकि अपीलार्थीगण जमानत पर है, अपीलार्थीगण को जमानत पत्र के जिम्मेदारियों से उन्मोचित किया जाता है। उन्हें आत्मसमर्पण करने की जरूरत नहीं है।

माननीय आर॰ आर॰ प्रसाद, न्यायमूर्ति

बिरेन्द्र यादव

बनाम

झारखंड राज्य

W.P.(Cr.) No. 185 of 2010. Decided on 26th April, 2010.

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 167—अनिवार्य जमानत—याचिका का अस्वीकरण —याची डकैती के आरोपों के लिए अभियोजन का सामना करता हुआ—एक विशिष्ट मामले में न्यायालय में अभियुक्त की वास्तविक पेशी की तिथि से 60 दिनों या 90 दिनों की अवधि की गणना करनी चाहिए और एक अन्य मामले में न्यायिक हिरासत की तिथि से नहीं—याचिका इस आधार पर अस्वीकार की गई थी कि यद्यपि पेशी वारंट 14.12.2009 को निर्गत किया गया था परन्तु, याची को वस्तुतः न्यायालय में 21.2.2010 को पेश किया गया था और अगर इस तिथि से गणना की जाती है तो 90 दिनों की सांविधिक अवधि व्यतीत नहीं हुई है— आक्षेपित आदेश में कोई अवैधानिकता नहीं—आवेदन खारिज। (पैरा 2, 4 से 7)

निर्णयज विधि.—(2007)5 SCC 773—Relied on.

अधिवक्तागण.—M/s P.A.S. Pati, Kaushik Sarkhel, Rishav Dev, For the Petitioner; S.C. III, For the State.

आदेश

कोडरमा जी॰ आर॰ पी॰ एस॰ केस संख्या 3 वर्ष 2009 में विद्वान विशेष न्यायिक दण्डाधिकारी (रेलवे), धनबाद, कोडरमा द्वारा पारित दिनांक 23.3.2010 के आदेश के विरुद्ध यह रिट आवेदन निर्दिष्ट है जिसके द्वारा विशेष न्यायिक दण्डाधिकारी (रेलवे), धनबाद ने दिनांक 23.3.2010 की याचिका को खारिज कर दिया है जिसमें दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के निबन्धनों में याची को अनिवार्य जमानत प्रदान करने के लिए प्रार्थना की गई थी।

2. इस केस को दाखिल करने से सम्बन्धित तथ्य ये हैं कि 12.2.2009 को हावड़ा-देहरादून एक्सप्रेस में एक डकैती कारित की गई थी ज्यों ही इसने हजारीबाग रोड स्टेशन छोड़ा था और इसके लिए 7-8 अज्ञात व्यक्तियों के विरुद्ध भारतीय दण्ड संहिता की धारा 395 के अधीन कोडरमा जी॰ आर॰ पी॰ एस॰ केस संख्या 3 वर्ष 2009 के तौर पर एक मामला दर्ज किया गया था। अन्वेषण के अनुक्रम में, इस याची एवं अन्य अभियुक्त व्यक्तियों की संलिप्तता सामने आयी थी, जिसपर दो व्यक्तियों को गिरफ्तार किया गया था जिनके विरुद्ध आरोप-पत्र 22.05.2009 को दाखिल किया गया था और अन्य अभियुक्त व्यक्तियों के लिए अन्वेषण खुला रखा गया था। आरोप-पत्र दाखिल होने पर, अभियुक्त के विरुद्ध अपराध का संज्ञान लिया गया था, जिन्हें विचारण के लिए आगे भेजा गया था और अन्य सह-अभियुक्तों के मामले को पृथक करने के उपरान्त मामला सत्र न्यायालय भेज दिया गया था। तत्पश्चात्, न्यायिक दण्डाधिकारी (रेलवे), धनबाद के समक्ष अन्वेषण पदाधिकारी द्वारा 14.12.2009

को एक याचिका दाखिल की गई थी उसमें याची को प्रतिप्रेषण पर भेजने की प्रार्थना करते हुए जो वर्तमान मामले में मरकाचो पुलिस थाना केस संख्या 68 वर्ष 2009 के सम्बन्ध में न्यायिक हिरासत में था। उक्त आवेदन पर, विद्वान न्यायिक दण्डाधिकारी ने उसी दिन, अर्थात्, 14.12.2009 को याची को कोडरमा जेल से 21.12.2009 को पेश करने के लिए एक पेशी वारंट निर्गत किया परन्तु 21. 12.2009 को याची को पेश करने के स्थान पर उसे न्यायालय में 21.2.2010 को पेश किया गया था और फिर उसे कारागार की हिरासत में भेज दिया गया था। तत्पश्चात् 23.3.2010 को दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के अधीन एक याचिका दाखिल की गई थी उसमें उसे अनिवार्य जमानत प्रदान करने की प्रार्थना करते हुए क्योंकि वे 97 दिनों से हिरासत में था परन्तु आरोप-पत्र दाखिल नहीं किया गया था। याचिका इस आधार पर खारिज कर दी गई थी कि यद्यपि पेशी वारंट 14.12.2009 को निर्गत किया गया था परन्तु, वस्तुतः, याची को न्यायालय में 21.2.2010 को पेश किया गया था और इस तिथि से गणना की जाती है तो 90 दिनों की सांविधिक अवधि का अवसान नहीं हुआ था।

3. याची की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता ने आदेश की आलोचना करते हुए निवेदन किया कि उस तिथि से, अर्थात 14.12.2009 से, जब न्यायालय में याची को पेश करने के लिए आदेश पारित किया गया था, याची को हिरासत में समझा जायेगा, और इस प्रकार, अगर गणना उस तिथि से की जाती है तो याची निश्चित रुप से उस तिथि को जमानत पर निर्मुक्त किये जाने का अधिकारी होगा जब जमानत के लिए आवेदन दाखिल किया गया था, क्योंकि स्वीकार्यतः उस तिथि को कोई आरोप-पत्र दाखिल नहीं किया गया था।

4. याची की ओर से प्रस्तुत किया गया निवेदन आवश्यक रुप से दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(1) एवं (2) के अधीन यथा वर्णित सुसंगत प्रावधानों की ओर ध्यान आकर्षित करता है। धारा 167 की उप-धारा (1) अनुबद्ध करती है कि जब किसी व्यक्ति को गिरफ्तार किया जाता है और हिरासत में रखा जाता है एवं यह प्रतीत होता है कि धारा 57 के अधीन निर्धारित 24 घंटों के भीतर अन्वेषण पूरा नहीं किया जा सकता है और ऐसा विश्वास करने के आधार हों कि आरोप या सूचना सु-आधृत है, पुलिस थाने का प्रभारी पदाधिकारी या अन्वेषण करने वाला पुलिस अधिकारी जो आरक्षी उप-निरीक्षक के दर्जे से नीचे का न हों, अभियुक्त को निकटतम न्यायिक दण्डाधिकारी के समक्ष पेश करेगा। अन्य शब्दों में, दण्ड प्रकिया संहिता की धारा 167 की उप-धारा (1) का अधिदेश यह है कि जब 24 घंटो के भीतर अन्वेषण को पूरा करना संभव नहीं है तब अभियुक्त को दण्डाधिकारी के समक्ष पेश करना पुलिस का दायित्व है। पुलिस किसी व्यक्ति को इस अवधि से अधिक अवधि तक अपनी हिरासत में नहीं रख सकती। अतएव्, उप-धारा (1) उपधारित करती है कि पुलिस को किसी अभियुक्त को कतिपय आरोप के सम्बन्ध में हिरासत में रखना चाहिए जिसके लिए मामले का अन्वेषण किया जा रहा हो। किसी नागरिक को निरुद्ध करने के मामले में यह बन्धन पुलिस पर है। उप-धारा (2) कहती है कि अगर अभियुक्त को दण्डाधिकारी के समक्ष पेश किया जाता है और आरोप का अवलोकन करते हुए अगर दण्डाधिकारी संतुष्ट है तब वे पुलिस को अन्वेषण के लिए एक रिमाण्ड दे सकता है जो एक बार में 15 दिनों से अधिक का नहीं होगा। किन्तु यह परन्तुक दण्डाधिकारी को यह विवेकाधिकार भी देता है कि वह एक अभियुक्त की निरुद्धता को 15 दिनों से अधिक अवधि के लिए भी प्राधिकृत कर सकता है परन्तु कोई भी दण्डाधिकारी 90 दिनों से अधिक की अवधि के लिए पुलिस हिरासत में अभियुक्त की निरुद्धता को प्राधिकृत नहीं करेगा उन अपराधों के लिए जो मृत्यु, आजीवन कारावास या किसी ऐसे कारावास की अवधि से दण्डनीय हो जो 10 वर्षों से कम न हो और कोई भी दण्डाधिकारी किसी अभियुक्त व्यक्ति की निरुद्धता को कुल मिलाकर 60 दिनों से अधिक अवधि के लिए निरूद्ध नहीं करेगा जब अन्वेषण किसी अन्य अपराध से सम्बन्धित हो और 90 दिनों या 60 दिनों के अवधि के अवसान पर, जो भी स्थिति हो, उसे र्निमुक्त कर दिया जायेगा अगर वे जमानत बन्धपत्र उपलब्ध कराने का इच्छुक हो। अतएव् परन्तुक के साथ उप-धारा (1) एवं (2) का पठन स्पष्टतः परिलक्षित करता है कि वस्तुतः अभियुक्त को अन्वेषण के लिए पुलिस हिरासत में रहना होता है।

5. जब लगभग इसी प्रकार का प्रश्न, जो बिल्कुल यही नहीं था, **पश्चिम बंगाल राज्य बनाम दिनेश डालमिया [(2007)5 एस॰ सी॰ सी॰ 773],** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष विचारण के लिए आया था, न्यायाधिशों ने दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 167 के उप-धारा (1) एवं (2) के प्रावधान को ध्यान में रखते हुए अभिनिर्धारित किया था कि पुलिस हिरासत का अर्थ एक विशिष्ट मामले में अन्वेषण के लिए पुलिस हिरासत में रखा जाना होता है और एक अन्य मामले में न्यायिक हिरासत में नहीं।

6. इस प्रकार, यह बिन्दु अब अनिर्नित विषय नहीं रह गया है कि 60 दिनों या 90 दिनों की अवधि की गणना एक विशिष्ट मामले में न्यायालय में अभियुक्त की वास्तविक पेशी की तिथि से की जानी चाहिए और एक अन्य मामले में न्यायिक हिरासत की तिथि से नहीं।

7. तदनुसार, मैं आक्षेपित आदेश में कोई अवैधानिकता नहीं पाता हूँ और इस प्रकार, यह आवेदन खारिज किया जाता है।

माननीय अमरेश्वर सहाय, न्यायमूर्ति

एलबिश गुरिया

बनाम

झारखण्ड राज्य

Criminal Appeal No. 413 of 2004. Decided on 19th April, 2010.

अपर न्यायिक आयुक्त-II खूंटी द्वारा सत्र विचारण सं॰ 236 वर्ष 2001 में पारित क्रमशः दिनांक 24.11.2003 एवं 25.11.2003 के निर्णय एवं आदेश के विरुद्ध।

भारतीय दण्ड संहिता, 1860—धाराएँ 376 एवं 448—बलात्संग एवं गृह अतिचार–दोषसिद्धि एवं दण्डादेश–पीड़िता को अभिकथित रूप से उसके सगे देवर अपीलार्थी द्वारा बलात्संग किया गया–अन्वेषण पदाधिकारी परीक्षित नहीं–घटना के समय पीड़ित महिला को पचास वर्ष का पाया गया–घटना के 11 दिनों के बाद प्राथमिकी दर्ज की गई–पंचायत में मामले की रिपोर्ट देने के कारण हुआ विलम्ब की कहानी संदिग्ध प्रतीत होता है–अभियोक्त्री ने अपने साक्ष्य में स्वीकार किया कि पारिवारिक सम्पतियों के विभाजन को लेकर अपीलार्थी के साथ कुछ विवाद था–चिकित्सीय साक्ष्य द्वारा अभियोक्त्री का कथन समर्थित नहीं–उसके शरीर पर कोई उपहति नहीं पाई गई–अभियोजन ने अतिशयोक्ति करने एवं एक चरण से दूसरे चरण तक कहानी बनाने का प्रयास किया है–दोषसिद्धि एवं दण्डादेश अपास्त–अपील अनुज्ञात। (पैरा 6 से 8)

अधिवक्तागण.–Mrs. Bakshi Vibha, *Amicus Curiae,* For the Appellant; Mr. V.S. Sahay, For the Respondent.

न्यायालय द्वारा.–सत्र विचारण सं॰ 236 वर्ष 2001 में अपर न्यायिक आयुक्त-II, खूँटी द्वारा पारित दिनांक 24.11.2003 के निर्णय के विरुद्ध दोषसिद्ध-अपीलार्थी एलबिश गुरिया द्वारा जेल से यह अपील दाखिल की गई है, जिसके द्वारा और जिसके अधीन विद्वान विचारण न्यायालय ने भारतीय दण्ड संहिता की धाराएँ 376 एवं 448 के अधीन अपराध कारित करने के लिए अपीलार्थी की दोषसिद्धि की और उसे क्रमशः सात वर्षों एवं छः महीनो का सश्रम कारावास भुगतने का दण्डादेश किया। तथापि, दोनों दण्डादेशों को साथ-साथ चलने का आदेश दिया गया था।

2. अभियोजन का मामला संक्षेप में यह है कि पीड़ित महिला मगदाली गुरिया जो लगभग 40/ 50 वर्ष की है, को उसके ही देवर अर्थात् अपीलार्थी द्वारा 29.7.2000 को बलात्संग किया गया बताया गया है जब वह लगभग 5 बजे अपराह्न में अपने घर पर थी। उसके अनुसार, अपीलार्थी उसके घर में घूस गया और तत्पश्चात उसके साथ बलपूर्वक बलात्कार कारित किया। उस समय उसकी पुत्री राहिला गुरिया (अब मृत) भी मौजूद थी और उसने घटना को देखा था। उसने हल्ला मचाया, इसपर उसका पति (अ॰ सा॰ 3) फ्रांसिस गुरिया दौड़ता हुआ आया और अपीलार्थी को पकड़ लिया परन्तु वह भागने में सफल रहा। अभियोजन के अनुसार, घटना की रपट गाँव के मुण्डा बेंजामिन चैम्पीया (परीक्षित नहीं) को दी गई थी और तब एक पंचायति आहूत की गई थी, परन्तु अपीलार्थी ने पंचायत में भाग नहीं लिया था। तत्पश्चात् सूचनादाता ने 9.8.2000 अर्थात् घटना को 11 दिनों के उपरांत मामले की रिपोर्ट पुलिस को दी और तब एक प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई। पीड़ित महिला के डाक्टर (अ॰ सा॰ 2) द्वारा चिकित्सीय परीक्षण किया गया था।

3. पुलिस ने अन्वेषण के समापन के उपरांत आरोप-पत्र दाखिल किया एवं अपीलार्थी को विचारण पर रखा गया। विचारण के दौरान, कुल मिलाकर पांच गवाहों को परीक्षित किया गया। अ॰ सा॰ 1 पीड़ित महिला है। अ॰ सा॰ 2 डॉ॰ उमेश्वर कुमारी है, जिसने पीड़ित महिला का चिकित्सीय परीक्षण किया था। अ॰ सा॰ 3 उसका पति है। अ॰ सा॰ 4 एवं अ॰ सा॰ 5 गवाह हैं, जिन्हें रिपोर्ट के बारे में जानकारी सूचनादाता पीड़ित महिला से मिली। अन्वेषण पदाधिकारी को इस मामले में परीक्षित नहीं किया गया है।

विचारण न्यायालय ने अभिलेख पर मौजूद साक्ष्य एवं सामग्रियों के आधार पर अपीलार्थी की दोषसिद्धि एवं दण्डादेश किया जैसा कि इससे पहले की नोटिस किया जा चुका है।

4. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि यद्यपि अभियोजन अपीलार्थी के विरुद्ध आरोपो को सभी युक्तिसंगत संदेहो से परे सिद्ध करने से पूर्णत: विफल रहा था परन्तु फिर भी विचारण न्यायालय ने पूर्वोक्त आरोपो के लिए गलत रूप से एवं अवैधानिक रूप से अपीलार्थी की दोषसिद्धि की।

5. दूसरी ओर, विद्वान ए॰ पी॰ पी॰ ने विचारण न्यायालय द्वारा पारित दोषसिद्धि एवं दण्डादेश का समर्थन किया यह निवेदन करके कि अभियोजन ने अपीलार्थी के विरुद्ध आरोपों को सिद्ध किया था, अतएव उसे विचारण न्यायालय द्वारा उचित रूप से दोषसिद्ध एवं दण्डादेश किया गया था।

6. सम्बद्ध पक्षों द्वारा रखे गए निवेदन का परीक्षण करने के लिए, मैं ध्यानपूर्वक अभियोजन साक्षियों के साक्ष्य का अवलोकन किया है। अ॰ सा॰ 1 वह पीड़ित महिला है जिसने अपनी आयु 40 वर्ष बताई है जबकि जिस डॉक्टर ने उसे चिकित्सीय रूप से परखा था उसने उसे लगभग 50 वर्ष का पाया था। चिकित्सीय रिपोर्ट के अनुसार, पीड़ित महिला के सिर के बाल सफेद हो चले थे। उसके न तो उपरी एवं न ही निचले जबड़े में कोई दाँत थे। अतएव, यह प्रतीत होता है कि पीड़िता एक वृद्ध महिला थी। उसने अपने साक्ष्य में कहा है कि जब वह अपनी पुत्री के साथ 5 बजे संध्या में अपने घर पर बैठी थी, अपीलार्थी वहाँ आया और उसकी पुत्री की उपस्थिति में उसका बलात्कार किया। तथापि, उक्त पुत्री के मामले में परीक्षित किया जा सके, इससे पहले ही उसकी मृत्यु हो गई। उसने मामले की रिपोर्ट पंचायत को दी, परन्तु अपीलार्थी ने उक्त पंचायत में भाग नहीं लिया, अन्तत: उसने मामले की रिपोर्ट पुलिस को दी। पीड़ित महिला द्वारा प्रस्तुत वृत्तांत विश्वासयोग्य प्रतीत नहीं होता और उसका साक्ष्य भी भरोसे के योग्य नहीं लगता इस तथ्य के कारण कि उसने घटना के लगभग 11 दिनों के उपरांत प्रथम सूचना रपट दर्ज कराने के निर्णय लिया। उसने विलम्ब का स्पष्टीकरण देने का प्रयास किया यह कथित करके कि उसने मामले की सूचना पंचायत को दी परन्तु जब अपीलार्थी ने पंचायत में भाग नहीं

लिया और वहाँ कोई निर्णय नहीं लिया गया, तब उसने मामले की सूचना पुलिस को दी। पंचायत के किसी भी व्यक्ति यहाँ तक कि गाँव के मुण्डा को भी इस मामले में परीक्षित नहीं किया गया है। अतएव, मामले की सूचना पंचायत में देने का वृत्तांत संदिग्ध प्रतीत होता है। द्वितीयत: अपीलार्थी कोई और नहीं स्वयं उसका सगा देवर अर्थात् उसके पति का छोटा भाई है और यह विश्वासयोग्य प्रतीत नहीं होता कि वह अपनी वृद्ध भाभी का बलात्संग करेगा वह भी संध्या के पांच बजे 10 वर्षीय अपनी भतीजी की उपस्थिति में। यह कहानी और भी अविश्वसनीय बन जाती है इस तथ्य की दृष्टि में की अभियोक्त्री ने अपने साक्ष्य में कथन किया है कि पारिवारिक सम्पत्तियों के विभाजन के संबंध में अपीलार्थी के साथ कुछ विवाद था। उसका साक्ष्य इसलिए भी भरोसे योग्य नहीं है क्योंकि चिकित्सीय साक्ष्य उसके वृत्तांत का समर्थन नहीं करती। उसके शरीर पर किसी प्रकार की उपहति का चिन्ह नहीं पाया गया था। अ॰ सा॰ 4 एवं 5 के साक्ष्य पर भी भरोसा नहीं किया जा सकता क्योंकि पीड़ित महिला ने अपने साक्ष्य में यह नहीं कहा था कि उसने इन्हें बलात्संग की बात बताई थी जबकि अ॰ सा॰ 4 एवं अ॰ सा॰ 5 ने अपने साक्ष्य में कहा है कि घटना के बारे में उन्हें पीड़ित महिला द्वारा सूचित किया गया था। अतएव, यह प्रतीत होता है कि अभियोजन ने अतिश्योक्ति के प्रयास किया है और एक चरण से दूसरे चरण तक कहानी तैयार करने का प्रयास किया है।

7. पूर्वोक्त कारणों से, मैं पाता हूँ कि ऐसे अविश्वसनीय एवं गैर-भरोसे के उपरोक्त साक्ष्य पर भारतीय दण्ड संहिता की धाराएँ 376 एवं 448 के अधीन अपराध के लिए अपीलार्थी की दोषसिद्धि करने में विचारण न्यायालय ने गंभीर त्रुटि की है।

8. परिणामत:, यह अपील अनुज्ञात की जाती है। विचारण न्यायालय द्वारा पारित दोषसिद्धि एवं दण्डादेश का निर्णय एतद्द्वारा अपास्त किया जाता है। उपरोक्त नामजद अपीलार्थी को उसके विरुद्ध लगाए गए आरोपों से दोषमुक्त किया जाता है। यह रिपोर्ट किया गया है कि अपीलार्थी दण्डादेश पहले ही पूरा कर चुका है। चाहे जो भी स्थिति हो, अगर अपीलार्थी अभी भी हिरासत में है तो उसे तत्काल रिहा किया जाता है, अगर किसी अन्य मामले में वह वांछित न हो।

माननीय प्रशांत कुमार, न्यायमूर्ति

बीरेन मुर्मू

बनाम

झारखंड राज्य

Criminal Appeal (SJ) No. 801 of 2002. Decided on 16th April, 2010.

श्री पी॰ सी॰ चौधरी, अपर सत्र न्यायाधीश, फास्ट ट्रैक कोर्ट-1 पाकुड़ द्वारा सत्र केस सं॰ 108 वर्ष 2001/122 वर्ष 2002 में पारित दिनांक 30.9.2002 एवं 3.10.2002 के आक्षेपित निर्णय एवं आदेश के विरुद्ध।

भारतीय दण्ड संहिता, 1860—धारा 307—हत्या करने का प्रयास–पांच वर्षों का सश्रम कारावास एवं 500/-रु॰ का जुर्माना का दण्डादेश अधिरोपित–चाकू से हमला–अ॰ सा॰ 3 का बयान घटना की उत्पत्ति पर संदेह उत्पन्न करता है–अ॰ सा॰ 1 एक चश्मदीद गवाह प्रतीत नहीं होता–सूचक द्वारा बताया गया घटना का तरीका चिकित्सीय साक्ष्य द्वारा समर्थित नहीं–अपीलार्थी को भी घटना के ही दिन एवं समय पर उपहतियाँ आई–अपीलार्थी की उपहतियों का अभियोजन द्वारा समर्थन नहीं–न्यायालय यह निष्कर्ष निकाल सकता है कि अभियोजन ने घटना

की उत्पत्ति को छुपाया है–बांस एवं पेड़ों के संबंध में पक्षों के बीच पुरानी शत्रुता थी–अपीलार्थी के शरीर पर उपहतियों का स्पष्टीकरण नहीं देना अभियोजन के मामले पर एक गंभीर संदेह उत्पन्न करता है–आक्षेपित निर्णय तात्विक अवैधानिकता एवं अनियमितता से ग्रस्त–अभियोजन द्वारा आरोप को सभी युक्तियुक्त संदेहो के परे सिद्ध नहीं किया गया–आक्षेपित निर्णय अपास्त–अपील अनुज्ञात। (पैरा 8 से 12)

निर्णयज विधि.–(1976)IV SCC 394—Relied on.

अधिवक्तागण.–Mr. Shree Prakash Jha, For the Appellant; Mr. Azimuddin, For the State.

प्रशांत कुमार, न्यायमूर्ति.–सत्र केस सं॰ 108 वर्ष 2001/122 वर्ष 2002 में अपर सत्र न्यायाधीश, फास्ट ट्रैक कोर्ट-1, पाकुड़ द्वारा पारित क्रमशः दिनांक 30.9.2002 एवं 3.10.2002 के दोषसिद्धि के निर्णय एवं दण्डादेश के विरुद्ध यह अपील निर्दिष्ट है जिसके द्वारा एवं जिसके अधीन अपीलार्थी को भारतीय दण्ड संहिता की धारा 307 के अधीन दोषसिद्धि की गई है और 5 वर्ष का सश्रम कारावास भुगतने का दण्डादेश किया गया है एवं 500/- रुपए का जुर्माना अदा करने का निर्देश किया गया है और जुर्माने के भुगतान के व्यतिक्रम में 2 महीनों की अतिरिक्त सश्रम कारावास भुगतने का दण्डादेश किया गया है।

2. अभियोजन का मामला, संक्षेप में यह है कि 10.6.2001 को 10 बजे अपराह्न में सूचनादाता (अ॰ सा॰ 5) मदिरा खरीदने के लिए वकील राजवार के घर गया था। यह भी अभिकथित किया गया है कि जब वह वहाँ से लौट रहा था और जब वह अपीलार्थी के घर के निकट पहुँचा, अचानक ही अपीलार्थी आया और उसे गालियां दिया। यह भी अभिकथित किया गया है कि अपीलार्थी ने उसपर मुक्कों से वार किया था। यह कहा गया है कि जब उसने विरोध किया, अपीलार्थी ने अपनी कमर से एक चाकू निकाला और उसकी छाती पर चाकू से एक वार कर दिया। यह भी अभिकथित किया गया है कि अपीलार्थी ने उसपर चाकू से बार-बार वार किया। यह कथन किया है कि सूचक द्वारा किए गए संत्रास पर, उसका भाई वकील मुर्मू वहाँ आया और उसे बचाने का प्रयास किया। यह भी अभिकथित किया गया है कि घटना के अनुक्रम में, वकील मुर्मू को भी उपहति आई।

3. पूर्वोक्त सूचना के आधार पर, पाकुड़ (टी॰) पुलिस थाना केस सं॰ 128 वर्ष 2001 दिनांक 11.6.2001 भारतीय दण्ड संहिता की धाराएँ 323/324/341/307 के अधीन संस्थित किया गया एवं पुलिस ने अन्वेषण का कार्य हाथों में लिया। अन्वेषण का कार्य पूरा करने के उपरांत, पुलिस ने भारतीय दण्ड संहिता की धाराएँ 323/324/341 एवं 307 के अधीन आरोप-पत्र दाखिल किया। यह प्रतीत होता है कि संज्ञान के उपरांत, मामला सत्र न्यायालय भेज दिया गया, क्योंकि भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 307 के अधीन अपराध का अनन्य रूप से सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय होता है।

4. सुपुर्दगी के उपरांत, सहायक सत्र न्यायाधीश, पाकुड़ ने दिनांक 7.12.2001 के आदेश के अधीन भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 307 के अधीन आरोप विरचित किया एवं अपीलार्थी को स्पष्ट किया, जिसका उसने दोषी न होने का अभिवाक् किया एवं विचारण किए जाने का दावा किया। तत्पश्चात् अभियोजन ने अपने मामले के समर्थन में कुल आठ गवाहों का परीक्षण किया। अभियोजन मामला बन्द होने के उपरांत दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 313 के अधीन अपीलार्थी का बयान अभिलिखित किया गया, जिसमें उसका बचाब पूर्ण इनकार का था। तत्पश्चात्, विद्वान अवर न्यायालय ने अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों पर विचार करने के उपरांत, उपरोक्त कथित रूप से अपीलार्थी की दोषसिद्धि एवं दण्डादेश किया, जिसके विरुद्ध वर्तमान अपील दाखिल की गई है।

5. आक्षेपित निर्णय की आलोचना करते हुए अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि वर्तमान मामले में, अभियोजन ने घटना का मूल कारण को सिद्ध नहीं किया है। यह भी निवेदन किया गया है कि घटना का तरीका, जैसा कि सूचनादाता द्वारा बताया गया है, डॉक्टर (अ॰ सा॰ 8) द्वारा समर्थित नहीं किया गया है। यह भी निवेदन किया गया है कि उसी दिन एवं उसी समय, सूचनादाता एवं उसके भाई ने अपीलार्थी एवं उसकी पत्नी पर हमला किया था जिसके लिए वर्तमान प्रथम सूचना रिपोर्ट के दर्ज किए जाने के पहले पुलिस थाने में, प्रथम सूचना रिपोर्ट पहले ही दर्ज किया

जा चुका था। यह निवेदन किया गया है कि अभियोजन गवाह ने स्वीकार किया था कि अपीलार्थी एवं उसकी पत्नी को उपहति आई थी परन्तु उक्त उपहतियों का अभियोजन द्वारा स्पष्टीकरण नहीं दिया गया था, जो अभियोजन के मामले पर एक गंभीर संदेह उत्पन्न करता है। तद्नुसार, यह निवेदन किया गया है कि अपीलार्थी की दोषसिद्धि करने में विद्वान अवर न्यायालय ने गंभीर अवैधानिकता एवं अनियमितता कारित की थी।

6. दूसरी ओर, विद्वान ए॰ पी॰ पी॰ ने निवेदन किया कि उपहत (अ॰ सा॰ 5) एवं अन्य अभियोजन साक्षियों ने पूर्णत: अभियोजन के मामले का समर्थन किया है। तब यह निवेदन किया गया है कि चिकित्सीय साक्ष्य से उनलोगों का कथन पूर्ण सम्पोषण पाता है। तदनुसार, यह निवेदन किया गया है कि आक्षेपित निर्णय में कोई अवैधानिकता एवं अनियमितता नहीं है जिससे इस न्यायालय को किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता है।

7. निवेदनों की सुनवाई करके, मैंने मामले के अभिलेख का अवलोकन किया है। वर्तमान मामले में, सूचनादाता मदिरा खरीदने के लिए वकील राजवार के घर गया था। अभियोजन का मामला यह भी था कि जब सूचनादाता वकील राजवार के घर से लौट रहा था और जब वह अपीलार्थी के घर के निकट पहुँचा था, तब वर्तमान घटना घटित हुई थी। वकील राजवार को अभियोजन द्वारा अ॰ सा॰ 3 के तौर पर परीक्षा की गई है। इस गवाह ने अपनी गवाही के पैराग्राफ सं॰ 6 पर कथित किया था कि सूचनादाता उसके घर मदिरा खरीदने के लिए नहीं आया था। वकील राजवार (अ॰ सा॰ 3) का पूर्वोक्त कथन घटना की उत्पत्ति पर एक गंभीर संदेह उत्पन्न करता है।

8. फर्दबयान में, सूचनादाता (अ॰ सा॰ 5) ने कथन किया था कि उसकी छाती पर चाकू से वार करने के उपरान्त, अपीलार्थी ने उसके शरीर पर चाकू से बार-बार वार किया था, परन्तु डॉक्टर (अ॰ सा॰ 8) के साक्ष्य के परिशीलन से, मैं पाता हूँ कि डॉक्टर ने इन सूचनादाता के शरीर पर केवल एक विदिर्ण घाव पाया था। इस प्रकार सूचनादाता (अ॰ सा॰ 5) द्वारा कथित घटना का तरीका चिकित्सीय साक्ष्य से समर्थन नहीं पाता है। अ॰ सा॰ 1 ने कथित किया था कि जब वह घटनास्थल पर पहुँचा था तो उसने अपीलार्थी को सूचनादाता की छाती पर वार करते देखा था। सूचनादाता ने अपने फर्दबयान में कथित किया था कि अपीलार्थी ने अपनी कमर से चाकू निकाला और उसकी छाती पर चाकू से वार किया था और तत्पश्चात् चाकू से बारम्बार वार किया था फिर उसने संत्राश किया और उक्त संत्रास सुनने पर उसका भाई वकील मुर्मू पहुँचा था। अतएव, सूचनादाता के अनुसार, जब उसकी छाती पर वार हुआ था, घटनास्थल पर कोई गवाह मौजूद नहीं था। इस प्रकार यह प्रतीत होता है कि अ॰ सा॰ 1 एक चश्मदीद गवाह नहीं है।

9. अभियोजन साक्षी सं॰ 3 वकील राजवार ने कहा है कि घटना की तिथि को रात के दस बजे उसने हल्ला सुना और अपने घर से बाहर आया और देखा कि सूचनादाता एवं उसका भाई अपीलार्थी (बीरेन मुर्मू) पर वार कर रहे थे। उसने यह गवाही भी दी थी कि उसने अपीलार्थी के शरीर पर उपहतियाँ देखी थी और उसके समूचे शरीर पर रक्त था। उसने यह भी कथन किया था कि वह उसी दिन सूचना दर्ज कराने के लिए अपीलार्थी को पुलिस थाने ले गया था। थाना प्रभारी अ॰ सा॰ 7 ने पैराग्राफ सं॰ 7 पर स्वीकार किया था कि उसने 4:45 पूर्वाहन में बीरेन मुर्मू का बयान दर्ज किया था। अ॰ सा॰ 5 सूचनादाता ने अपनी गवाही के पैराग्राफ सं॰ 13 पर स्वीकार किया था कि उसने बीरेन मुर्मू को अस्पताल में देखा था। इस प्रकार यह एक स्वीकृत स्थिति है कि अपीलार्थी को भी घटना के दिन एवं समय पर ही उपहति आई थी। परन्तु प्रथम सूचना रिपोर्ट और साथ-साथ अभियोजन साक्षी के गवाही से मैं पाता हूँ कि अपीलार्थी की उक्त चोटों का अभियोजन द्वारा स्पटीकरण नहीं दिया गया है।

10. (1976)IV एस॰ सी॰ सी॰ 394 में रिपोर्ट किए गए एक निर्णय में सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया है कि घटना के समय के आसपास/या झगड़े के अनुक्रम में अभियुक्त के शरीर पर आई उपहतियों का स्पष्टीकरण नहीं दिया जाना एक अति महत्वपूर्ण परिस्थिति है जिससे न्यायालय निम्नांकित निष्कर्ष निकाल सकता है:

(i) यह कि अभियोजन ने घटना का मूल एवं उत्पति को छुपाया है और इस प्रकार सही वृत्तांत प्रस्तुत नहीं किया है।

(ii) यह कि जिन गवाहों ने अभियुक्त के शरीर पर उपहतियों की उपस्थिति से इनकार किया है वे तात्विक बिन्दुओं पर झूठ बोल रहे हैं और अतएव उनका साक्ष्य अविश्वसनीय है।

(iii) यह कि उस मामले में जहाँ बचाव-पक्ष का एक वर्णन हो जो अभियुक्त के शरीर पर उपहतियों का स्पष्टीकरण देता है, अधिसंभाव्य बन जाता है जिससे कि अभियोजन के मामले पर संदेह उत्पन्न हो सके।''

वर्तमान मामले में, जैसा कि उपर नोट किया गया है, अ॰ सा॰ 3 ने स्पष्ट रूप से कथित किया था कि घटना के समय, अपीलार्थी पर सूचनादाता एवं उसके भाई द्वारा हमला किया गया था और उसे गंभीर चोटें आई थी, क्योंकि रक्त उसके समूचे शरीर पर फैल गया था। पूर्वोक्त वर्णन अन्वेषण पदाधिकारी से भी समर्थन पाता है जिसने स्वीकार किया था कि उसने प्रात:काल में ही 4:40 पूर्वाह्न में अपीलार्थी के बयान दर्ज कर लिया था। यह एक स्वीकृत स्थिति है कि बाँस एवं पेड़ों के संबंध में पक्षों के बीच पुरानी शत्रुता थी। पूर्वोक्त परिस्थितियों के अधीन अपीलार्थी के शरीर पर उपहतियों के स्पष्टीकरण नहीं दिया जाना अभियोजन के मामले पर एक गंभीर संदेह उत्पन्न करता है।

11. मामले के पूर्वोक्त पहलू पर विद्वान अवर न्यायालय द्वारा विचार नहीं किया गया है, यद्यपि उक्त तथ्य अभिलेख पर उपलब्ध है। इस प्रकार, मैं पाता हूँ कि आक्षेपित निर्णय तात्विक अवैधानिकता एवं अनियमितता से ग्रस्त है। तद्नुसार, मैं निष्कर्ष देता हूँ कि अभियोजन ने अपीलार्थी के विरुद्ध लगे आरोपों को सभी युक्तिसंगत संदेहों से परे करके सिद्ध नहीं किया है।

12. परिणामत:, यह अपील अनुज्ञात की जाती है। अवर न्यायालय का आक्षेपित निर्णय अपास्त किया जाता है। अपीलार्थी को उसके विरुद्ध लगाए गए आरोपों से दोषमुक्त किया जाता है। उसे उसके द्वारा भरे गए जमानत बन्धपत्र की दायिताओं से भी उन्मोचित किया जाता है।

माननीय डी॰ जी॰ आर॰ पटनायक, न्यायमूर्ति

कृष्ण मुरारी सिंह

बनाम

झारखंड राज्य एवं अन्य

W.P. (S) No. 1787 of 2004. Decided on 26th March, 2010.

भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत एक आवेदन के मामले में।

सेवा विधि–बर्खास्तगी–अपीलीय प्राधिकारी द्वारा अपील खारिज–अवचार के आरोप पर याची की सेवा से बर्खास्तगी–याची का निरंतर मामला यह है कि उसे अपने मामले का बचाव करने हेतु युक्तियुक्त अवसर नहीं दिया गया था और उन गवाहों, जिनके बयानों पर जाँच अधिकारी ने विश्वास इप्सित किया है, का प्रति परीक्षण नहीं करने दिया गया था–जाँच अधिकारी ने अपनी जाँच रिपोर्ट में कोई स्पष्टीकरण प्रस्तुत नहीं किया है कि क्यों उसने अन्य गवाहों का परीक्षण करना नहीं चुना–विभागीय कार्यवाही में तात्विक गवाहों का अपरीक्षण प्रोसिडि (जिसपर कार्यवाही की जा रही है) पर प्रतिकूल प्रभाव कारित करता है–अनुशासनिक

प्राधिकारी ने याची द्वारा बताये गये कारणों पर चर्चा किए एवं विचार किए बगैर मात्र जाँच अधिकारी के निष्कर्षों को अपनाया है–विभागीय कार्यवाही संचालित करने के तरीकों में प्रक्रियात्मक गलती है–आक्षेपित आदेश विवेक का इस्तेमाल नहीं किए जाने से ग्रस्त है–आक्षेपित आदेश अभिखंडित–पेंशन के उद्देश्य के लिए सेवा में निरन्तरता के लाभ के साथ याची को पुनर्बहाल करना होगा–बकाया मजदूरी के लिए याची हकदार नहीं है। (पैरा 7 से 9)

निर्णयज विधि.–1996(1) PLJR 401; (2003)3 SCC 633—Relied upon.

अधिवक्तागण.–Mr. Rajiv Nandan Prasad, For the Petitioner; J.C. to S.C. II, For the Respondent-State.

डी॰ जी॰ आर॰ पटनायक, न्यायमूर्ति.–पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

2. याची ने इस रिट याचिका में, आरक्षी अधीक्षक, पश्चिमी सिंहभूम (प्रत्यर्थी सं॰ 4) द्वारा पारित दिनांक 29.4.2003 के आदेश (परिशिष्ट-6) जिसके द्वारा याची को सेवा से बर्खास्तगी का दंड अधिनिर्णीत किया गया था, के अभिखंडन हेतु प्रार्थना की है। याची ने अपीलीय प्राधिकारी द्वारा पारित दिनांक 4.2.2004 के आदेश (परिशिष्ट-8), जिसके द्वारा बर्खास्तगी के आक्षेपित आदेश के विरुद्ध याची द्वारा दाखिल की गयी याचिका को खारिज कर दिया गया था, को भी चुनौती दी है।

3. मुख्य आधार, जिसपर याची ने आक्षेपित आदेशों को चुनौती दी है, निम्नलिखित है:–

(i) याची को गवाहों का प्रति-परीक्षण का अवसर दिए बिना याची के विरुद्ध विभागीय कार्यवाही बिल्कुल गैर-कानूनी और मनमाने तरीके से संचालित की गयी थी और तात्विक गवाहों का भी परीक्षण नहीं किया गया था।

(ii) जाँच अधिकारी द्वारा दर्ज निष्कर्ष अभिलेख पर उपस्थित साक्ष्य के अधिमान के विरूद्ध और अनुचित और अनुमानों एवं अटकलों पर आधारित है और विवेक के इस्तेमाल के बिना है।

अन्यथा भी, याची के दोष के संबंध में जाँच अधिकारी द्वारा दर्ज निष्कर्ष अस्पष्ट और संदेहास्पद है क्योंकि कोई निश्चित निष्कर्ष कि याची के विरुद्ध आरोप को सिद्ध किया गया है, दर्ज नहीं किया गया है।

(iii) याची के विनिर्दिष्ट बचाव कि उसे गवाहों का प्रति-परीक्षण करने का अवसर नहीं दिया गया था और यह कि तात्विक गवाहों, यद्यपि वे अभियोजन मामले में नामित थे, का परीक्षण भी नहीं किया गया है, पर विचार करने में विफल रहकर अनुशासनिक प्राधिकारी ने गंभीर गलती की है।

(iv) सेवा से बर्खास्तगी का दंड याची के विरुद्ध लगाए गए आरोपों की गंभीरता की तुलना में अन्यायोचित, अत्यधिक और अत्यन्त अननुपातिक है।

(v) विवेक का इस्तेमाल किए बिना अनुशासनिक प्राधिकारी और अपीलीय प्राधिकारी ने आक्षेपित आदेशों को पारित किया है।

4. संक्षेप में याची के मामले के तथ्य निम्नलिखित हैं:–

याची चाईबासा में पुलिस केन्द्र में कॉन्सटेबल के रूप में पदस्थापित था।

दिनांक 1.5.2002 को इस अभिकथन पर उस आरोप का मेमोरेन्डम तामील किया गया था कि जब वह दिनांक 8.11.2001 को मध्यरात्रि 12 से 2 बजे के बीच गार्ड ड्यूटी पर था, हवलदार हेड कॉन्सटेबल कपिलदेव शर्मा द्वारा चेकिंग के दौरान याची को सोता हुआ पाया गया था। जब हवलदार हेड कॉन्सटेबल ने याची को उठाना चाहा, याची द्वारा उसे गाली दी गयीं। आगे यह अभिकथन किया गया था कि दिनांक 9.11.2002 को भी सायं 4 बजे से 6 बजे के बीच जब याची गार्ड ड्यूटी पर था, उसे यूनीफॉर्म के बिना पाया गया था और जब गार्ड प्रभारी ने आपत्ति की और याची का आचरण गार्ड रजिस्टर में दर्ज करना चाहा, याची ने रजिस्टर छीनकर प्रतिरोध किया और गार्ड प्रभारी से झगड़ा किया।

आरोपों के आधार पर, याची के विरुद्ध विभागीय कार्यवाही शुरू की गयी। यद्यपि कोई भी प्रेजेन्टिंग अधिकारी नियुक्त नहीं किया गया था, जाँच अधिकारी स्वयं प्रेजेन्टिंग अधिकारी बन गया और जाँच संचालित किया।

कारण बताओ के उत्तरों में, याची ने अभिवाक् किया था कि कतिपय पूर्व में घटी घटनाओं के कारण हेड कॉन्सटेबल उसके प्रति बैरपूर्ण भाव रखता था और उसने यह भी कथन किया था कि एक और गार्ड अर्थात् कॉन्सटेबल ओम प्रकाश राय उस समय याची के साथ ड्यूटी पर था और वह कॉन्सटेबल संपुष्ट करेगा कि याची कर्तव्य का निर्वहन करने में कर्मठ था और उसके द्वारा कोई उपेक्षा अथवा लापरवाही नहीं की गयी थी।

जाँच में शिकायतकर्ता कपिलदेव शर्मा एकमात्र गवाह था जिसे तात्विक गवाह के रूप में परीक्षित किया गया था और उसके बयानों के आधार पर जाँच अधिकारी ने निष्कर्षित किया कि याची के विरुद्ध आरोप ''सिद्ध किए गए प्रतीत होते हैं।''

जाँच रिपोर्ट के आधार पर, अनुशासनिक प्राधिकारी ने याची के विरुद्ध सेवा से बर्खास्तगी के दंड का आक्षेपित आदेश दर्ज किया।

5. आक्षेपित आदेश का विरोध करते हुए, याची के विद्वान अधिवक्ता निवेदन करेंगे कि एकमात्र गवाह, अर्थात कपिलदेव शर्मा के अभिसाक्ष्य की प्रति से भी यह प्रकट होगा कि याची को उसका प्रति-परीक्षण करने का अवसर नहीं दिया गया था। विद्वान अधिवक्ता आगे जोड़ते हैं कि यह तथ्य कि जाँच अधिकारी स्वयं प्रेजेन्टिंग अधिकारी था, कार्यवाही संचालित करने के तरीके को नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों का उल्लंघन बनाता है। आगे, दूसरा गार्ड, जो प्रासंगिक समय पर याची के साथ ड्यूटी पर था, सहित अन्य तात्विक गवाहों का परीक्षण नहीं किए जाने के कारण याची पर गंभीर प्रतिकूल प्रभाव कारित हुआ है।

6. समानान्तर स्तंभ में, प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता का निवेदन यह है कि जाँच अधिकारी आक्षेपित दंडादेश या आक्षेपित अपीलीय आदेश के निष्कर्षों में कोई अनौचित्यता या अवैधता नहीं है क्योंकि याची के विरुद्ध विभागीय कार्यवाही प्रक्रिया के नियमों के अनुरूप संचालित की गयी थी और अपने मामले का बचाव करने का याची को पर्याप्त अवसर दिया गया था और इससे भी ज्यादा, जाँच

अधिकारी ने याची के विरुद्ध दोष के निष्कर्षों पर आने के कारणों को दर्ज किया है। विद्वान अधिवक्ता आगे निवेदन करते हैं कि याची के विरुद्ध सिद्ध कर्तव्य की उपेक्षा और अवहेलना का आरोप के नजर में अवचार का ऐसा कृत्य सेवा से बर्खास्तगी का अत्यधिक दंड आमंत्रित करता है और मामले के इस दृष्टिकोण में, याची का सेवा से बर्खास्तगी का आक्षेपित आदेश पूर्णत: न्यायोचित है।

7. पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने और अभिलेख पर उपस्थित सामग्रियों और गवाह, हेड कॉन्सटेबल कपिलदेव शर्मा के अभिसाक्ष्य की प्रति के परिशीलन से, मैं पाता हूँ कि उसका अभिसाक्ष्य मुख्य परीक्षण में दर्ज बयानों तक सीमित है। उसके प्रति-परीक्षण के रूप में कोई बयान नहीं है।

याची का सुसंगत मामला यह है कि उसे गवाह के प्रति-परीक्षण का अवसर नहीं दिया गया था। यह एक विनिर्दिष्ट आधार है जिसे उसने अनुशासनिक प्राधिकारी को प्रस्तुत अपने द्वितीय कारण बताओं उत्तरों में लिया है। अत:, स्पष्ट निष्कर्ष यह है कि अपने मामले का बचाव करने और गवाहों, जिनके बयानों पर जाँच अधिकारी ने विश्वास करना इप्सित किया है, के प्रति-परीक्षण का अवसर नहीं दिया गया था। इसके आगे, स्वीकृत तथ्यों से यह भी पता चलता है कि दोनों अवसरों पर याची के साथ एक और कॉन्सटेबल ड्यूटी पर पदस्थापित था। अपनी जाँच रिपोर्ट में जाँच अधिकारी ने कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया है कि क्यों उसने अन्य गवाह अर्थात् सह-सेन्ट्री गार्ड का परीक्षण करना नहीं चुना था और अन्य तात्विक गवाहों के बयानों से संपोषण प्राप्त किए बिना हेड कॉन्सटेबल के बयान पर अंतर्निहित विश्वास प्रकट करना चुना था।

उक्त तथ्य पूर्णत: प्रदर्शित करते हैं कि याची के विरुद्ध विभागीय कार्यवाही उसे अपने मामले का बचाव करने का युक्तियुक्त अवसर दिए बिना एवं नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों के उल्लंघन में संचालित की गयी थी। अत: याची के पास ऐसा निष्कर्ष प्राप्त करने के लिए युक्तियुक्त आधार है कि जाँच अधिकारी ने पूर्वकल्पित विवेक से जाँच संचालित किया था।

विधि का यह सुस्थापित सिद्धान्त है कि विभागीय कार्यवाही में तात्विक गवाहों का गैर-परीक्षण प्रोसिडी पर प्रतिकूल प्रभाव कारित करता है।

इसी प्रकार, **भूपिन्दर पाल सिंह बनाम नागरिक उड्डयन, महानिदेशक एवं अन्य, (2003)3 SCC 633** में प्रकाशित मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि गवाहों के प्रति-परीक्षण का अवसर नहीं दिए जाने से कार्यवाही पर गंभीर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

8. अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा पारित आक्षेपित आदेश के परिशीलन से, यह प्रतीत है कि इस आधारों कि तात्विक गवाहों का परीक्षण किया गया है और याची को गवाह के प्रति-परीक्षण का अवसर दिया गया है। सहित अपने कारण बताओ उत्तरों में याची द्वारा कथित आधारों पर चर्चा अथवा विचार किए बिना जाँच अधिकारी के निष्कर्षों को अनुशासनिक प्राधिकारी ने अपना लिया है।

इस मामले में ध्यान दिए जाने योग्य एक अन्य इतना ही महत्वपूर्ण पहलू यह है कि जाँच अधिकारी ने स्वयं प्रेजेन्टिंग अधिकारी के रूप में काम किया है। ऐसे व्यवहार की हमेशा निन्दा की जाती है। **पंचानन कुमार बनाम बिहार राज्य विद्युत बोर्ड एवं अन्य,** 1996 (1) PLJR 401 में प्रकाशित मामले में पारित अपने निर्णय में पटना उच्च न्यायालय ने संप्रेक्षित किया कि ऐसा व्यवहार एक गंभीर प्रक्रियात्मक भूल है जो न्याय-प्रक्रिया पर विपरीत प्रभाव डालता है।

9. उक्त तथ्यों से, मैं संतुष्ट हूँ कि विभागीय कार्यवाही संचालित करने के तरीके में प्रक्रियात्मक गलती है और आरोपों को सिद्ध करने के संबंध में निष्कर्षों पर आने से पहले जाँच अधिकारी ने याची को अपने मामले का बचाव करने का युक्तियुक्त अवसर नहीं दिया था। इन पहलूओं को अनुशासनिक प्राधिकारी अथवा अपीलीय प्राधिकारी द्वारा ध्यान में नहीं लिया गया है। निश्चय ही, आक्षेपित आदेश विवेक के इस्तेमाल न किए जाने के दोष से पीड़ित है। इस रिट आवेदन में गुणागुण होने के कारण इसे अनुज्ञात किया जाता है। दोनों आक्षेपित आदेशों, अर्थात, अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश और अपीलीय प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश को एतद् द्वारा अभिखंडित किया जाता है। प्रत्यर्थीगण को याची को सेवा में तुरन्त पुनर्बहाल करने का निर्देश दिया जाता है। सेवा से याची की बर्खास्तगी की तिथि से सेवा में उसकी पुनर्बहाली की तिथि तक की अवधि को उसके पेंशन की संगणना के उद्देश्य हेतु ड्यूटी पर बितायी गयी अवधि के तौर पर माना जाएगा। लेकिन, इस तथ्य की दृष्टि में कि याची ने अभिवाक् नहीं किया है और विनिर्दिष्ट कथन नहीं किया है कि समस्त अवधि के दौरान, उसकी सेवा समाप्ति की तिथि के बाद, वह बेरोजगार नहीं था, याची बकाया मजदूरी प्राप्त करने का हकदार नहीं होगा।

माननीय सुशील हरकौली, व्यायमूर्ति

विजय शंकर मिश्रा

बनाम

नेशनल प्रोजेक्ट कंस्ट्रक्शन कॉरपोरेशन लि॰ एवं अन्य

WP(C) No. 32 of 2010. Decided on 31st March, 2010.

(क) सरकारी संविदा–निविदा–त्रुटिपूर्ण बैंक गारंटी के आधार पर तकनीकी बोली की अस्वीकृति–सार्वजनिक निविदा आमंत्रित करते हुए लोक प्राधिकारीगण के समक्ष सर्वोपरि ध्यान जनहित होना चाहिए–तकनीकी बोली को खोलते और विचार करते समय अनावश्यक अंशों के संबंध में केवल तकनीकी आधार पर बोली को पूर्णतया अस्वीकार करने का अति-तकनीकी रूख प्राधिकारीगण को नहीं अपनाना चाहिए, जब तकनीकी त्रुटियाँ पात्रता का आवश्यक और अखंडित अंश निर्मित नहीं करती है बल्कि कम महत्व वाली है–यह नहीं दर्शाया जा सका था कि बैंक गारंटी जैसा इसे मूलतः दिया गया था प्रवर्तनीय नहीं था–भले ही गारंटी के बने रहने के दौरान गारंटी जारी करने वाला शाखा बन्द हो जाए, संपूर्ण बैंक के विरुद्ध यह फिर भी प्रवर्तनीय बना रहेगा–यद्यपि, याची ने मामले को इतना विलम्बित किया कि वित्तीय बोली खोलने और तृतीय पक्ष को हस्तक्षेप का अधिकार अनुज्ञात किया जा सके–न्यायालय मामले में हस्तक्षेप करने का इच्छुक नहीं–याचिका खारिज।(पैरा 16 से 19 एवं 22)

(ख) सरकारी संविदा–बोली–सामान्य नियम बतौर बोली जमा करने की अंतिम तिथि के बाद बोली लगाने वाले को पूरक दस्तावेजों को प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है किन्तु सूचना और समर्थक दस्तावेजों जो तकनीकी बोली की पात्रता की शर्तों का अंश निर्मित करते हैं और दस्तावेजों जो ऐसे आवश्यक पात्रता शर्तों को निर्मित नहीं करते हैं किन्तु अन्यथा अपेक्षित है, के बीच सुभेद करना होगा। (पैरा 15)

(ग) भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899—अनुसूची-I का अनुच्छेद 15 (बॉण्ड)–क्या अनुसूची-1 के अनुच्छेद 15 (बॉण्ड) के अधीन स्टाम्प पेपर पर बैंक गारंटी का निष्पादन अपेक्षित है–प्रश्न खुला छोड़ा गया। (पैरा 21)

निर्णयज विधि.–AIR 1993 Gujarat 100; AIR 2009 SC 1204; 2006 AIR SCW 5408; SLP (Civil) No. 14126 of 2009—Distinguished; (2006) 13 SCC 284—Relied upon.

अधिवक्तागण.–M/s M.S. Anwar, Sunil Kumar Sinha, For the Petitioner; M/s R.S.P. Sinha, S.K. Verma (For Resp. Nos.1 to 3), Mr. A. Allam (for Resp. Nos. 4 to 6), Mr. R.N. Sahai (For Resp. No.7), Mr. Chandrajit Mukherjee (For Resp. No. 8), For the Respondents.

आदेश

यह रिट याचिका ऐसे व्यक्ति द्वारा दाखिल की गयी है जिसने निविदा में भाग लिया था किन्तु असफल रहा था क्योंकि उसकी तकनीकी बोली अस्वीकार कर दी गयी थी जिसका परिणाम उसके वित्तीय बोली पर विचार नहीं किए जाने में हुआ। तुरन्त जोड़े गए प्रत्यर्थीगण सं॰ 7 और 8 (यहाँ इसमें इसके बाद संक्षेप में सफल बोली लगाने वाले के रूप में निर्दिष्ट) की निविदाएँ स्वीकार की गयी है और उक्त प्रत्यर्थीगण को संकर्म आदेश जारी किया गया है।

2. नेशनल प्रोजेक्ट कंस्ट्रक्शन कॉरपोरेशन लिमिटेड (यहाँ इसमें इसके बाद संक्षेप में एन॰ पी॰ सी॰ सी॰) ने भारत सरकार का उपक्रम होने के नाते दिनांक 16.9.2009 के विज्ञापन द्वारा तकनीकी बोली और वित्तीय बोली से गठित निविदाओं को आमंत्रित किया था।

3. विहित शर्तों के अनुसार, तकनीकी बोलियों को बोली लगाने वालों की उपस्थिति में दिनांक 22.10.2009 को खोला जाना था और सफल तकनीकी बोली लगाने वालों की वित्तीय बोलियाँ दिनांक 31.10.2009 को खोली जानी थी।

4. स्वीकृत तौर पर, दिनांक 22.10.2009 को याची की उपस्थिति में तकनीकी बोलियाँ खोली गयी। प्राप्त बोलियों के संबंध में, उस दिन तैयार किए गए चार्ट पर याची द्वारा हस्ताक्षर किया गया था जो तकनीकी बोलियाँ खोले जाते समय उसकी उपस्थिति को संपुष्ट करता है।

5. एन॰ पी॰ सी॰ सी॰ और सफल बोली लगाने वालों द्वारा अभिकथन किया गया है कि उसी दिन याची की तकनीकी बोली इस आधार पर अस्वीकार कर दी गयी थी कि इसके साथ संलग्न बैंक गारंटी त्रुटिपूर्ण थी क्योंकि उक्त बैंक गारंटी में जारी करने वाली बैंक शाखा उस शाखा से भिन्न थी जिसे बैंक गारंटी के अधीन भुगतान करने के लिए जिम्मेदार बताया गया था यदि गारंटी को प्रवर्तित करने की जरूरत थी। इस प्रतिवाद के समर्थन में, एन॰ पी॰ सी॰ सी॰ ने दिनांक 17.2.2010 को दाखिल अपने प्रति शपथपत्र में परिशिष्ट 'B' के रूप में पूर्वोक्त चार्ट की प्रतिलिपि दाखिल किया है। उक्त चार्ट में बैंक गारंटी वाले कॉलम में याची द्वारा दिए गए बैंक गारंटी के विवरण के ठीक नीचे एक पृष्ठांकन है जिसका पठन निम्नलिखित है:–

''किन्तु प्लेज बैंक के नाम में त्रुटि पायी गयी''

6. कोरे परिशीलन पर, यह पृष्ठांकन शेष दस्तावेज पर लेखन की तुलना में छोटे अक्षरों में एक भिन्न हस्तलेखन में किया गया प्रतीत होता है।

7. याची का प्रतिवाद यह है कि यह चार्ट में बाद में किया गया प्रक्षेप है।

8. किन्तु, यहाँ बाद में उल्लिखित परिस्थितियाँ याची के प्रतिवाद का समर्थन नहीं करती है। परिस्थितियाँ ये हैं कि बैंक द्वारा भेजा गया भूल-सुधार पत्र, यद्यपि यह दिनांक 22.10.2009 का था, फैक्स द्वारा दिनांक 23.10.2009 को दोपहर 3.25 बजे एन॰ पी॰ सी॰ सी॰ के कार्यालय में प्राप्त किया गया था। इस प्रकार, यह जाहिर होगा कि याची दिनांक 22.10.2009 को बैंक गारंटी में त्रुटि से अवगत हुआ था जिसपर वह शीघ्र बैंक गया और सुधार की व्यवस्था की जिसे फैक्स द्वारा अगले दिन भेजा गया। आगे, एन॰ पी॰ सी॰ सी॰ द्वारा बैंक को दिनांक 23.10.2009 को एक पत्र भेजा गया था और बैंक को सूचित किया गया था कि बोली लगाने के समय के अवसान के बाद प्राप्त किया गया फैक्स स्वीकार नहीं किया जा सकता था। इस पत्र की प्रति दिनांक 17.2.2010 को दाखिल पूर्वोल्लिखित प्रति शपथपत्र के परिशिष्ट-'D' श्रृंखला के द्वितीय पृष्ठ पर है। न तो बैंक ने और न ही याची ने इस पत्र की प्राप्ति से इंकार किया है।

9. बैंक द्वारा फैक्स द्वारा परिशुद्धि जारी करना याची की प्रेरणा पर किया था, इसकी पूरी संभावना है, क्योंकि राष्ट्रीयकृत बैंक इतने दक्ष नहीं है कि यह जानने के लिए अपने सारे पूर्व अभिलेखों की जाँच करें कि क्या कोई गलती की गयी है और फिर स्वयं ऐसी गलतियों की परिशुद्धि करें।

10. अत: बैंक गारंटी की परिशुद्धि की अस्वीकार्यता के बारे में बैंक को सूचित करता एन॰ पी॰ सी॰ सी॰ का पत्र निश्चय ही बैंक द्वारा याची को संसूचित किया गया होगा क्योंकि यह याची का बैंकर था। अन्यथा भी, याची ने परिशुद्धि भिजवाने पर सामान्यक्रम में यह पता लगाने का प्रयास किया होगा कि परिशुद्धि के अनुसरण में उसके तकनीकी बोली का क्या परिणाम हुआ।

11. पूर्वोक्त परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, याची के प्रतिवाद को स्वीकार करना मुश्किल है कि वह अपने तकनीकी बोली की अस्वीकृति और बैंक गारंटी के संबंध में परिशुद्धि फैक्स की अस्वीकार्यता के बारे में अगले दो माह अर्थात् 29.12.2009 तक, जब वित्तीय बोलियाँ खोली गयी थी, बेफिक्र अनभिज्ञ रहा।

12. अपने तकनीकी बोली की अस्वीकृति की जानकारी रहने पर भी याची ने इसे चुनौती देने का कदम तब तक नहीं उठाया जबतक कि वित्तीय बोली खोले जाने और प्रत्यर्थीगण सं॰ 7 और 8 की बोलियाँ स्वीकार किए जाने के बाद दिनांक 6.1.2010 को जबतक वर्तमान रिट याचिका दाखिल नहीं की गयी थी।

13. इन परिस्थितियों में, मैं एन॰ पी॰ सी॰ सी॰ और सफल बोली लगाने वालों से सहमत हूँ कि रिट उपचार का उपयोग करने में याची की ओर से किया गया विलम्ब ढिलाई जैसा है जो तृतीय पक्ष (सफल बोली लगाने वालों) को हस्तक्षेप करने का अधिकार अनुज्ञात करता है और इस प्रकार, याची द्वारा इप्सित अनुतोष के प्रति घातक है। इस क्रम में, यह उल्लिखित किया जा सकता है कि अभी भी याची ने अपनी तकनीकी बोली की अस्वीकृति के निर्णय के अभिखंडन के लिए प्रार्थना नहीं की है।

14. यद्यपि याची यह कहता हुआ सही प्रतीत होता है कि जब ''बोली लगाने वालों के लिए अनुदेश'' के खंड 22.5 के अधीन एन॰ पी॰ सी॰ सी॰ ने सफल तकनीकी बोली लगाने वालों का चार्ट तैयार करने के लिए तकनीकी बोली खोलने के बाद पाँच दिन की अवधि अपने लिए सुरक्षित रखा थी और इस कारण जनहित में और लोक प्राधिकारीगण होने के नाते एन॰ पी॰ सी॰ सी॰ को याची को तकनीकी त्रुटियों, जो इसमें पायी गयी थी, से मुक्त बैंक गारंटी जमा करने के लिए एक-दो दिन का संक्षिप्त समय देना चाहिए था।

15. सामान्य नियम के तौर पर बोलियों को जमा करने की अंतिम तिथि के बाद बोली लगाने वालों को पूरक दस्तावेजों को जमा करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है जैसा **पी॰ एस॰ इ॰ बी॰ बनाम भाटिया इंटरनेशनल, (2006)13 SCC 284** में अभिनिर्धारित किया गया है किन्तु सूचना और समर्थक दस्तावेजों जो तकनीकी बोली की पात्रता के शर्तों का अंश निर्मित करते हैं और दस्तावेजों जो ऐसी आवश्यक पात्रता शर्तों के अंश को निर्मित नहीं करते हैं किन्तु अन्यथा अपेक्षित है, के बीच सुभेद करना होगा।

16. ऐसे सुभेद करने के पीछे कारण यह है कि निविदा आमंत्रित करते लोक प्राधिकारीगण के समक्ष सर्वोपरि ध्यान लोकहित होना चाहिए। तकनीकी बोली को खोलते और विचार करते समय अनावश्यक अंशों के संबंध में केवल तकनीकी आधार पर बोली को पूर्णतया अस्वीकार करने का अति-तकनीकी रुख प्राधिकारीगण को नहीं अपनाना चाहिए जब तकनीकी त्रुटियाँ पात्रता का आवश्यक और अखंडित अंश निर्मित नहीं करती है बल्कि कम महत्व वाली है। वस्तुतः बोली लगाने वालों में से एक के लिए त्रुटि का उपचार अभिकथित रूप से अनुज्ञात किया गया था क्योंकि उसकी बैंक गारंटी की राशि अध्यपेक्षित राशि से कम थी।

17. आगे, इस मामले में यह देखना होगा कि क्या बैंक गारंटी, यद्यपि त्रुटिपूर्ण गारंटी देने वाले बैंक के विरुद्ध प्रवर्तनीय थी। प्रत्यर्थीगण के पक्ष की ओर से किसी के भी द्वारा मुझे कोई विधि नहीं दर्शायी गयी है कि बैंक गारंटी जैसा यह मूलतः दी गयी थी प्रवर्तनीय नहीं थी विशेषतः जब इसे उसी बैंक द्वारा जारी परिशुद्धि पत्र के साथ पढ़ा जाए। दस्तावेज ने बैंक का सही नाम इसके रजिस्टर्ड ऑफिस के साथ उल्लिखित किया। इंगित की गयी त्रुटि यह है कि वहाँ उसमें बैंक की शाखा कार्यालय का नाम भी उल्लिखित था जो दस्तावेज जारी करने वाले शाखा के नाम से भिन्न था। उदाहरणस्वरुप, भले ही गारंटी बने रहने के दौरान गारंटी जारी करती शाखा बन्द हो जाए, यह संपूर्ण बैंक के विरुद्ध फिर भी प्रवर्तनीय होगा।

18. किन्तु, याची को अनुतोष देने के लिए इन सारे कारकों को विचार में लिया जा सकता था यदि तकनीकी बोली की अस्वीकृति के तुरन्त बाद रिट याचिका दाखिल की गयी होती।

19. मेरी राय में, जब याची ने मामले में इतना विलम्ब किया कि वित्तीय बोलियों को खोलने और तृतीय पक्ष को हस्तक्षेप करने की अनुमति दी गयी और उन तृतीय पक्षों अर्थात् सफल बोली लगाने वालों को संकर्म आदेश पहले ही जारी किया जा चुका है और उन्होंने संविदाओं/ठेकों पर काम भी शुरू कर दिया है, विलम्ब की अवधि के दौरान जो कुछ भी घटित हुआ था, उसमें छेड़छाड़ करने हेतु इस रिट याचिका को ग्रहण करना समुचित नहीं होगा।

20. उक्त दिए गए कारणों, जिनपर इस मामले का निर्णय किया जा रहा है, के आलोक में तर्क के दौरान निर्दिष्ट निम्नलिखित निर्णय इस मामले में प्रासंगिक नहीं है:–

(i) सीमेन्स पब्लिक कम्युनिकेशन बनाम भारत संघ ***2009 AIR (SC)-0-1204 (sic ?)***

(ii) गुलाम रसूल बनाम जम्मू-कश्मीर राज्य, एस॰ एल॰ पी॰ (सिविल) सं॰ ***14126 वर्ष 2009,*** *19.7.2009 को विनिश्चित।*

(iii) वादी एवं पटवा बनाम भारत संघ, ***AIR 1993 गुजरात 100.***

(iv) नोबल रिसोर्सेज बनाम उड़ीसा राज्य, ***2006 AIR SCW 5408.***

21. प्रत्यर्थीगण की ओर से तर्क दिया गया एक अन्य प्रश्न यह था कि क्या भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 की अनुसूची-1 के अनुच्छेद 15 (बॉण्ड) के अधीन स्टाम्प पेपर पर निष्पादित किए जाने की अपेक्षा करती बैंक गारंटी को अध्यपेक्षित स्टाम्प के बिना पत्र द्वारा परिशुद्ध किया जा सकता था। इस प्रश्न को छोड़ा जाता है क्योंकि इस मामले में इसे विनिश्चित करना आवश्यक नहीं है।

22. तद्नुसार, भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन इस न्यायालय की साम्यापूर्ण और स्वविवेकी अधिकारिता में इस मामले में हस्तक्षेप करने से मैं इंकार करता हूँ।

23. अत: यह रिट याचिका खारिज की जाती है।

माननीय आर॰ आर॰ प्रसाद, न्यायमूर्ति

हरि नारायण राय

बनाम

झारखंड राज्य एवं अन्य

WP(Cr) No. 15 of 2010. Decided on 5th April, 2010.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 406, 409, 420, 423, 424, 465 एवं 120B सह-पठित भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धाराएँ 11/13—मनी लॉन्ड्रिंग निवारण अधिनियम, 2002—धाराएँ 3/4 एवं 45—न्यास का दांडिक भंग और छल–विधायक का अभियोजन–उक्त धाराओं के अधीन पुलिस द्वारा दाखिल आरोप पत्र अभिखंडित करने के लिए और मनी लॉन्ड्रिंग निवारण अधिनियम, 2002 की धाराएँ 3 और 4 के अधीन मामले के विचारण हेतु विशेष न्यायालय को समुचित निर्देश देने के लिए रिट याचिका दाखिल की गयी–भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के प्रावधानों के अधीन सशक्त केवल विशेष न्यायाधीश ही अन्य अपराधों के साथ भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन आरोप, यदि इन्हें दंड प्रक्रिया संहिता के प्रावधानों के निबंधनों के अनुसार अभियोजित किया गया है, का विचारण कर सकता है–यह कभी नहीं कहा जा सकता है कि मनी लॉन्ड्रिंग निवारण अधिनियम की धारा 44 (1)(a) के अधीन अनुध्यात प्रावधान आज्ञापक हैं, जहाँ तक अन्य अनुसूचित अपराधों के साथ धारा 4 के अधीन अपराध के विचारण का संबंध है बल्कि यह स्थिति पर निर्भर करता है–मनी लॉन्ड्रिंग निवारण अधिनियम के अधीन नियुक्त विशेष न्यायालय धारा 4 के अधीन अपराध के साथ-साथ अनुसूचित अपराध अथवा किसी अन्य अपराध, जिन्हें दंड प्रक्रिया संहिता के प्रावधान के निबंधनों के अनुसार अभियोजित किया जा सकता है, के विचारण हेतु अग्रसर हो सकता है–याचिका खारिज। (पैरा 11 से 15)

अधिवक्तागण.–Mr. Binod Poddar, For the Petitioner; Mr. A.K. Kashyap, For the Vigilance; Mr. A.K. Das, For the Enforcement Directorate.

आदेश

किसी कुमार विनोद ने दिनांक 25.10.2008 को विशेष न्यायाधीश, निगरानी के समक्ष एक परिवाद मामला याची और किसी एनोस एक्का के विरुद्ध दाखिल की गयी जिसमें यह कथन किया गया है कि वर्ष 2005 में जरमुन्डी विधान सभा क्षेत्र से विधायक निर्वाचित होने से पहले याची की आय कर योग्य नहीं थी किन्तु याची ने उस अवधि के दौरान जब वह मंत्री, पर्यटन, झारखंड सरकार

का पद धारित कर रहा था 30 करोड़ रुपयों की संपत्ति जमा की जब अपने ज्ञात आय के स्रोत से वह 15 लाख रुपयों की संपत्ति ही अर्जित कर सकता था और इस प्रकार याची ने अभिकथित रूप से भारतीय दंड संहिता की धाराएँ 406, 409, 420, 423, 424, 465 एवं 120B के अधीन और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 11/13 के अधीन भी अपराध किया है।

2. उक्त परिवाद पाने पर, विशेष न्यायाधीश, निगरानी, राँची ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156(3) के अधीन इसको दर्ज करने और अन्वेषण करने हेतु निगरानी पुलिस थाना, राँची के समक्ष इसे भेज दिया। तद्नुसार, पूर्वोक्त अपराधों के लिए निगरानी पी॰ एस॰ केस सं॰ 26 वर्ष 2008 (विशेष केस सं॰ 32 वर्ष 2008) दर्ज किया गया था और निगरानी द्वारा अन्वेषण हेतु मामला हाथ में लिया गया था।

3. जब उक्त मामले (विशेष केस सं॰ 32 वर्ष 2008) का अन्वेषण चल रहा था, सहायक निदेशक-II, प्रवर्तन निदेशालय, पटना, प्रत्यर्थी सं॰ 4 ने याची और अन्यों के विरुद्ध दिनांक 4.9.2009 को प्रवर्तन मामला सूचना रिपोर्ट (संक्षेप में 'इ॰ सी॰ आइ॰ आर॰') दर्ज किया जिसमें अभिकथन किया गया कि भारतीय दंड संहिता की धाराएँ 420, 423, 424, 120B के अधीन और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 13 के अधीन भी अपराधों, जो अनुसूचित अपराध है, सहित अनेक अपराध करके अपने व्यक्तिगत लाभों के लिए इसका उपयोग करते हुए वस्तुतः वृहत चल और अचल संपत्ति अर्जित की और याची ने एतद्द्वारा मनी लॉन्ड्रिंग निवारण अधिनियम (इसमें इसके पश्चात 'PML' अधिनियम के तौर पर निर्दिष्ट) की धारा 3 के अंतर्गत अपराध कारित किया है जो PML अधिनियम की धारा 4 के अधीन दण्डनीय है। याची का मामला यह है कि दिनांक 4.9.2009 को PML अधिनियम की धारा 3/4 के अधीन मामला दर्ज किए जाने के बावजूद निगरानी ने विशेष केस सं॰ 32 वर्ष 2008 का अन्वेषण जारी रखा और दिनांक 5.10.2009 को आरोप पत्र दाखिल किया यद्यपि प्रवर्तन निदेशालय द्वारा ECIR संस्थापित किए जाने पर PML अधिनियम की धारा 45(1-A) में अंतर्विष्ट प्रावधान के फलस्वरूप मामले का अन्वेषण करने और आरोप पत्र दाखिल करने का प्राधिकार निगरानी खो चुका था और विशेष न्यायाधीश निगरानी ने भी आरोप पत्र दाखिल किए जाने पर भारतीय दंड संहिता की धाराएँ 406, 409, 420, 423, 424, 465/20B के अधीन और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 11/13 (2) सह-पठित धारा 13(1)(e) के अधीन भी अपराध का संज्ञान लिया जिसे पूर्वोक्त संदर्भ में दोषपूर्ण कहा जा सकता है।

4. पूर्वोक्त परिस्थितियों के अधीन, यह रिट याचिका निगरानी पी॰ एस॰ केस सं॰ 26 वर्ष 2008 में पुलिस द्वारा दाखिल आरोप पत्र के अभिखंडन हेतु और विशेष न्यायाधीश, निगरानी, राँची द्वारा पारित दिनांक 5.10.2009 के उस आदेश के अभिखंडन के लिए भी दाखिल की गयी है जिसके द्वारा विशेष न्यायाधीश, निगरानी के न्यायालय में लंबित विशेष केस सं॰ 32 वर्ष 2008 के साथ PML अधिनियम की धाराएँ 3 और 4 के अधीन दर्ज मामले के विचारण हेतु PML अधिनियम के प्रावधान के अधीन गठित विशेष न्यायालय (प्रथम अपर न्यायिक कमिश्नर) को निर्देश देने के लिए समुचित रिट जारी करने के लिए भी यह रिट याचिका दाखिल की गयी है।

5. यह कथन किया गया कि यद्यपि रिट याचिका में उठाया गया मुख्य प्रतिवाद यह है कि जब प्रवर्तन निदेशालय ने ECIR केस दिनांक 4.9.2009 को दर्ज किया, PML अधिनियम, 2002 की धारा 45 (1-A) में अंतर्विष्ट प्रावधान की दृष्टि में निगरानी को निगरानी केस सं॰ 26 वर्ष 2008 (विशेष केस

सं॰ 32 वर्ष 2008) के अन्वेषण को रोक देना चाहिए था क्योंकि PML अधिनियम के अधीन अपराध और अनुसूचित अपराधों को केन्द्रीय सरकार द्वारा विशेषत: प्राधिकृत अधिकारी द्वारा ही अन्वेषित किया जा सकता था और इस प्रकार, निगरानी द्वारा दाखिल आरोप पत्र और संज्ञान का आदेश भी दोषपूर्ण है और अपास्त करने योग्य है।

6. किन्तु सुनवाई के दौरान, याची की ओर से उपस्थित विद्वान वरीय अधिवक्ता, श्री पोद्दार ने निवेदन किया कि PML अधिनियम की धाराएँ 43 एवं 44 के प्रावधान आज्ञापक है कि PML अधिनियम के अधीन विचारण किए जा रहे अभियुक्त का विचारण अनुसूचित अपराधों के लिए भी PML अधिनियम के अधीन गठित विशेष न्यायालय द्वारा किया जाना चाहिए और इस प्रकार अपराधों, जिनके अधीन निगरानी ने आरोप पत्र दाखिल किया है, के लिए याची को विचारण हेतु अग्रसर होने का कोई प्राधिकार निगरानी न्यायालय को नहीं है।।

7. निगरानी की ओर से उपस्थित वरीय अधिवक्ता, श्री ए॰ के॰ कश्यप ने निवेदन किया कि निवेदन और याची की ओर से की गयी प्रार्थना भी पूर्णत: भ्रामक है क्योंकि PML अधिनियम की धारा 45 (1-A) के अधीन कोई मामला, जो PML अधिनियम के अधीन अपराध से संबंधित नहीं है, पर अग्रसर होने के लिए किसी अन्य प्राधिकार/अन्वेषण एजेन्सी पर कोई निर्बंधन अधिरोपित नहीं करता है जो PML अधिनियम के अधीन अपराध का अन्वेषण करने हेतु केन्द्र सरकार द्वारा सशक्त नहीं किया गया है।

8. विद्वान अधिवक्ता ने आगे निवेदन किया कि याची की ओर से किए गए निवेदन भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन अपराध सहित अनुसूचित अपराध PML अधिनियम के अधीन अपराध के साथ PML अधिनियम के अधीन सशक्त विशेष न्यायाधीश द्वारा किया जाए, भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 4 के अधीन प्रतिष्ठापित प्रावधान की दृष्टि में पूर्णत: भ्रामक है क्योंकि भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन अपराध और वैसे अपराध भी जिनका विचारण भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन अपराध के साथ किया जा सकता है का विचारण भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन नियुक्त विशेष न्यायाधीश द्वारा किया जाना चाहिए और इस कारण याची की ओर से किया गया निवेदन किसी भी गुणागुण से रहित है और अस्वीकार किए जाने योग्य है।

9. पक्षों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता को सुनकर और अभिलेख के परिशीलन पर, यह वस्तुत: प्रकट होता है कि ECIR मामला संस्थापित किए जाने के पहले, भारतीय दंड संहिता की धाराएँ 406, 409, 420, 423, 424, 465/120B के अधीन और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 11/13 (2) सह-पठित धारा 13 (1)(e) के अधीन भी निगरानी ने निगरानी पी॰ एस॰ केस सं॰ 26 वर्ष 2008 (विशेष केस सं॰ 32 वर्ष 2008) संस्थापित किया था। निगरानी ने मामला का अन्वेषण करने पर अभिकथन, प्रथम दृष्टया सही पाया था और इसलिए दिनांक 5.10.2009 को आरोप पत्र दाखिल किया जिसपर भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन मामलों को विचारण हेतु भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के प्रावधान के अधीन सशक्त विशेष न्यायाधीश, निगरानी, राँची ने याची के विरुद्ध पूर्वोक्तानुसार अपराधों का संज्ञान लिया किन्तु उसके पहले PML अधिनियम की धारा 3/4 के अधीन अपराध के लिए याची और अन्य के विरुद्ध दिनांक 4.9.2009 को प्रवर्तन निदेशालय ने मामला वस्तुत: दर्ज किया था और इस ताथ्यिक पृष्ठभूमि में यह प्रतिवाद उठाया गया कि PML अधिनियम के अधीन मामला संस्थापित किए जाने पर PML अधिनियम की धारा 45 (1-A) के अधीन प्रतिष्ठापित प्रावधान

की दृष्टि में निगरानी को अन्वेषण रोक देना चाहिए था। किन्तु निगरानी ने विधि के प्रावधान को अनदेखा करते हुए अन्वेषण जारी रखा और आरोप पत्र दाखिल किया जिसपर भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 3 के अधीन नियुक्त विशेष न्यायाधीश द्वारा संज्ञान लिया गया था और इस प्रकार संज्ञान लेते हुए आदेश दोषपूर्ण है किन्तु मैं PML अधिनियम की धारा 45 (1-A) में अंतर्विष्ट प्रावधान के अधीन ऐसे अनुध्यान का कोई सादृश नहीं पाता हूँ जिसका पठन निम्नलिखित है:–

"45. संज्ञान योग्य एवं गैर–जमानती अपराध.–

(1) .....

(1-A) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (2 वर्ष 1974) अथवा इस अधिनियम के किसी अन्य प्रावधान में अंतर्विष्ट किसी चीज के बावजूद कोई पुलिस अधिकारी जब तक उसे केन्द्र सरकार के सामान्य अथवा विशेष आदेश द्वारा, और ऐसी शर्तों जिन्हें विहित किया जा सकता है, के अधीन विनिर्दिष्टतः प्राधिकृत न किया जाए, इस अधिनियम के अधीन अपराध हेतु अन्वेषण नहीं करेगा।''

यह प्रावधान केवल इतना कहता है कि दंड प्रक्रिया संहिता में किए गए प्रावधान को विचार में लिए बिना केन्द्र सरकार द्वारा प्राधिकरण की अनुपस्थिति में कोई पुलिस अधिकारी इस अधिनियम के अधीन अपराध का अन्वेषण नहीं करेगा। इन शब्दों 'इस अधिनियम के अधीन' का प्रयोग करके विधायिका ने पर्याप्त रूप से स्पष्ट किया है कि निर्बंधन, यदि हो तो, केवल PML अधिनियम न कि किसी अन्य अधिनियम के अधीन अन्वेषण के लिए है, और प्रकार ऐसे निवेदन अथवा प्रतिवाद कि निगरानी केस सं॰ 26 वर्ष 2008 (विशेष केस सं॰ 32 वर्ष 2008) में निगरानी द्वारा दाखिल आरोप पत्र बिना किसी प्राधिकार का है और उस आरोप पर लिया गया संज्ञान दोषपूर्ण है, में कोई सार नहीं है।

10. याची की ओर से किए गए अन्य निवेदन पर आते हुए, यह दोहराया जाता है कि PML अधिनियम की धाराएँ 43 एवं 44 के प्रावधान को निर्दिष्ट करके याची की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने न्यायालय को कायल करने की कोशिश की है कि यदि PML अधिनियम के अधीन गठित विशेष न्यायालय द्वारा किसी अपराध के लिए अभियुक्त का विचारण किया जा रहा है, तब केवल विशेष न्यायालय ही, न कि कोई अन्य विशेष न्यायालय, PML अधिनियम के अधीन अपराध के साथ अनुसूचित अपराधों सहित अन्य अपराधों का विचारण कर सकता है। यह निवेदन पूर्वोक्त प्रावधान को निर्दिष्ट करने की अपेक्षा करता है जिसका पठन निम्नलिखित है:–

"43. विशेष न्यायालय.—(1) .....

(2) इस अधिनियम के अधीन अपराध का विचारण करते हुए, विशेष न्यायालय, उपधारा (1) में निर्दिष्ट अपराध को छोड़ते हुए, किसी अन्य अपराध जिसके लिए उसी विचारण में दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (2 वर्ष 1974) के अधीन अभियुक्त पर आरोप लगाया जा सकता है विचारण करेगा।''

44. विशेष न्यायालयों द्वारा विचारण योग्य अपराध.–(1) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (2 वर्ष 1974) में अंतर्विष्ट किसी चीज के बावजूद।

(a) अनुसूचित अपराध और धारा 4 के अधीन दंडनीय अपराध केवल उस क्षेत्र, जिसमें अपराध किया गया है, के लिए गठित विशेष न्यायालय द्वारा विचारण योग्य होगाः

परन्तु यह कि इस अधिनियम के लागू होने के पहले अनुसूचित अपराध का विचारण करता विशेष न्यायालय वैसे अनुसूचित अपराध का विचारण जारी रखेगा; अथवा

(b) इस अधिनियम के अधीन इस बारे में प्राधिकृत द्वारा शिकायत किए जाने पर विशेष न्यायालय अपराध, जिसके विचारण के लिए अभियुक्त को इसे सुपुर्द किया गया है, का संज्ञान ले सकता है।''

11. धारा 43 की उप-धारा (2) और धारा 44 की उप-धारा (1) के खंड (a) को साथ-साथ पढ़ने से यह प्रतीत होता है कि PML अधिनियम के अधीन अपराध के लिए अभियुक्त का विचारण करते हुए PML अधिनियम के अधीन गठित विशेष न्यायालय उक्त अभियुक्त का विचारण कर सकता है, यदि उसपर अनुसूचित अपराध अथवा भारतीय दंड संहिता के अधीन किसी अन्य अपराध के लिए अभियोग लगाया गया है। यद्यपि प्रावधान अनुबद्ध करता है कि इसका विचारण साथ-साथ किया जाना चाहिए किन्तु धारा 44(1)(b) के अधीन अनुध्यात परिस्थितियों में ऐसे अनुबद्धता को आज्ञापक इस कारण से नहीं कहा जा सकता है क्योंकि यह अधिनियम की धारा 44(1)(a) के अधीन अनुध्यात एकमात्र रास्ता नहीं है जिसे विशेष न्यायाधीश को अपनाना होगा बल्कि धारा 44 की उप-धारा (1) के उपखंड (b) में अनुध्यात अन्य रास्ता भी उपलब्ध है, उक्त प्रावधान विहित करता है कि परिवाद दाखिल किए जाने पर अपराध, जिसके अधीन वह संज्ञान लेता है, के विचारण के लिए विशेष न्यायालय अग्रसर हो सकता है। धारा 44 की उप-धारा (1) का उपखंड (a) और धारा 44 की उपधारा (1) का उपखंड (b) शब्द 'अथवा' द्वारा पृथक किया गया है जो धारा 44 की उप-धारा (1) के प्रावधान, जो कहता है कि इस अधिनियम के प्रावधान का केवल दंड प्रक्रिया संहिता के प्रावधान पर अध्यारोही प्रभाव होगा, की दृष्टि में महत्वपूर्ण हो जाता है। उप-धारा (1) किसी अन्य विधि के बारे में नहीं कहता है जबकि भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 4 कहती है कि दंड प्रक्रिया संहिता अथवा तत्समय प्रभावी किसी अन्य विधि में अंतर्विष्ट किसी चीज के बावजूद भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन अपराध का विचारण केवल विशेष न्यायाधीश द्वारा किया जाएगा।

12. बेहतर अधिमूल्यन के लिए मैं धारा 4 उद्धृत करता हूँ जिसका पठन निम्नलिखित है:–

"4. विशेष न्यायाधीशों द्वारा विचारण योग्य मामले.–

(1) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (2 वर्ष 1974) में अथवा तत्समय प्रभावी किसी अन्य विधि में अंतर्विष्ट किसी चीज के बावजूद, धारा 3 की उप-धारा (1) में विनिर्दिष्ट अपराधों का विचारण केवल विशेष न्यायाधीशों द्वारा किया जायेगा।

(2) धारा 3 की उप-धारा (1) में विनिर्दिष्ट प्रत्येक अपराध, उस क्षेत्र के लिए जिसके अंतर्गत इसे किया गया था, विशेष न्यायाधीश द्वारा, अथवा, जैसी स्थिति हो, मामले के लिए नियुक्त विशेष न्यायाधीश द्वारा, अथवा, जहाँ ऐसे क्षेत्र के लिए एक से अधिक विशेष न्यायाधीश हों, उनमें से किसी एक द्वारा जैसा इस बारे में केन्द्र सरकार द्वारा विनिर्दिष्ट किया जा सकता है का विचारण किया जाएगा।

(3) किसी मामले का विचारण करते हुए, धारा 3 में विनिर्दिष्ट अपराध को छोड़कर किसी भी अन्य अपराध, जिसके लिए इसी विचारण में दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (2 वर्ष 1974) के अधीन अभियुक्त पर अभियोग लगाया जा सकता है, का विचारण विशेष न्यायाधीश कर सकता है।

(4) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (2 वर्ष 1974) में अंतर्विष्ट किसी चीज के बावजूद विशेष न्यायाधीश, जहाँ तक व्यवहारिक हो, दैनिक आधार पर विचारण करेगा।''

13. इस प्रकार, PML अधिनियम की धारा 44 की उप-धारा (1) के उपखंड (a) के अधीन प्रावधान कि अधिनियम की धारा 4 के अधीन अपराध के साथ अनुसूचित अपराध का विचारण विशेष न्यायालय द्वारा किया जा सकता है, के बावजूद यह भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 4 के अध्यारोही प्रभाव की दृष्टि में आज्ञापक प्रतीत नहीं होता है। भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के प्रावधान के अधीन सशक्त केवल विशेष न्यायाधीश ही अन्य अपराधों के साथ-साथ भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन अपराध का विचारण कर सकता है यदि दंड प्रक्रिया संहिता के प्रावधान के निबंधनों के अनुसार इसे अभियोजित किया जाता है। शायद ऐसी स्थिति को अनुध्यात करते हुए विधायिका ने PML अधिनियम की धारा 44 की उप-धारा (1) के उपखंड (b) प्रावधानित किया है जिसमें अनुबंधित किया गया है कि विशेष न्यायालय अपराध, जिसके लिए संज्ञान लिया जा चुका है, का विचारण करने हेतु अग्रसर हो सकता है।

14. इस प्रकार, उक्त कथित परिस्थितियों में, यह कभी नहीं कहा जा सकता है कि PML अधिनियम की धारा 44 (1) (a) के अधीन अनुध्यात प्रावधान आज्ञापक है जहाँ तक अन्य अनुसूचित अपराधों के साथ धारा 4 के अधीन अपराध के विचारण का संबंध है बल्कि यह स्थिति पर निर्भर करता है। यदि भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन नियुक्त विशेष न्यायालय अनुसूचित अपराध से संबंधित मामले पर विचार कर रहा है, किसी अन्य अपराधों, जो दंड प्रक्रिया संहिता के अधीन इसी विचारण में विचारण योग्य है, के साथ उक्त अपराधों के विचारण के लिए वह अग्रसर हो सकता है और PML अधिनियम के अधीन नियुक्त विशेष न्यायालय अपराध, जिसके अधीन संज्ञान लिया गया है, के विचारण हेतु अग्रसर हो सकता है। जहाँ भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन विशेष न्यायालय अनुसूचित अपराध अथवा PML अधिनियम की धारा 3/4 के अधीन अपराध से संबंधित मामले को उद्‌भुत करते हुए अपराध से संबंधित मामले पर विचार नहीं कर रहा है, PML अधिनियम के अधीन नियुक्त विशेष न्यायालय धारा 4 के अधीन अपराध और साथ-साथ अनुसूचित अपराध अथवा किसी अन्य अपराध, जिसे दंड प्रक्रिया संहिता के प्रावधान के निबंधनों के अनुसार साथ-साथ अभियोजित किया जा सकता है, के विचारण हेतु अग्रसर हो सकता है।

15. इस प्रकार, इस संबंध में किए गए निवेदन में मैं कोई गुणागुण नहीं पाता हूँ। अतः यह रिट याचिका खारिज की जाती है।

माननीय प्रदीप कुमार, न्यायमूर्ति

चन्द्रिका प्रसाद महतो

बनाम

झारखंड राज्य

Criminal Appeal No. 245 of 2001. Decided on 1st April, 2010.

सत्र विचारण सं॰ 22 वर्ष 2000 में, श्री एस॰ एच॰ काजमी, चतुर्थ अपर सत्र न्यायाधीश, धनबाद द्वारा पारित दिनांक 16.6.2001 के दोषसिद्धि के निर्णय एवं दंडादेश के विरुद्ध।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धारा 376—बलात्कार–दोषसिद्धि एवं दंड–अभियोजन मामला चिकित्सीय साक्ष्य द्वारा समर्थित नहीं–पंचायत को किए गए परिवाद में अभियुक्त-अपीलार्थी के विरुद्ध बलात्कार का कोई अभिकथन नहीं–अभियोजन मामले के समर्थन में पीड़ित युवती के परिवार का कोई सदस्य नहीं आया–चिकित्सीय साक्ष्य के अनुसार, वह पहले से यौन संबंधों

की अभ्यस्त थी–अभियोजन मामला संदेहास्पद प्रतीत होता है–बचाव पक्ष का विवरण है कि अपीलार्थी पीड़िता से विवाह करना चाहता था अथवा पक्षों के बीच दुश्मनी थी जिसकी परिणति इस मामले में हुई–अभियुक्त को संदेह का लाभ जाता है–अपीलार्थी को उसके विरुद्ध लगाए गए आरोपों से मुक्त किया गया। (पैरा 18 एवं 22 से 25)

अधिवक्तागण.–Mr. A.K. Kashyap, For the Appellant; Mr. Smita Mitra, For the Informant; Mr. Md. Hatim, For the State.

प्रदीप कुमार, न्यायमूर्ति.–यह अपील सत्र विचारण सं॰ 22 वर्ष 2000 में श्री एस॰ एच॰ काजमी, चतुर्थ अपर सत्र न्यायाधीश, धनबाद द्वारा पारित दिनांक 16.6.2001 के दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के विरुद्ध दाखिल की गयी है जिस निर्णय द्वारा उन्होंने अपीलार्थी को भारतीय दंड संहिता की धारा 376 के अधीन दोषी पाया और तीन वर्षों के कठोर कारावास की सजा दी।

2. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा निवेदन किया गया है कि अपीलार्थी को इस मामले में झूठा फंसाया गया है और पीड़िता किशोरी के पिता टेसो महतो द्वारा पंचायत से की गयी शिकायत, जिसे बचाव पक्ष द्वारा प्रदर्श-A के तौर पर प्रमाणित किया गया है, से प्रतीत होगा कि मूल शिकायत में बलात्कार का अभिकथन नहीं किया गया था और तीन दिन बाद झूठी प्राथमिकी दर्ज की गयी थी और इस प्रकार अपीलार्थी की दोषसिद्धि विधि की दृष्टि में दोषपूर्ण है और अपास्त किए जाने योग्य है।

3. दूसरी ओर, राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने प्रार्थना का विरोध किया है और निवेदन किया है कि पीड़िता किशोरी, पारू कुमारी, जिसका परीक्षण अ॰ सा॰ 8 के तौर पर किया गया था, सहित समस्त अभियोजन गवाहों ने अभियोजन मामले का पूर्णत: समर्थन किया है और इस प्रकार अपीलार्थी की दोषसिद्धि सही है और इस न्यायालय द्वारा इसमें हस्तक्षेप की कोई गुंजाइश नहीं है।

4. दोनों पक्षों को सुनने और अभिलेख का परिशीलन करने के पश्चात यह प्रतीत होता है कि पीड़िता 14 वर्षीय पारू कुमारी द्वारा दिनांक 25.5.99 को सांय 4.30 बजे बरोरा पुलिस थाना, धनबाद के समक्ष दिए गए फर्दबयान के आधार पर अभियोजन मामला शुरू किया गया था जिसमें कथन किया गया था कि दिनांक 23.5.99 को सांय लगभग 7 बजे जब वह दैनिक क्रियाकर्म से निवृत्त होने के लिए गाँव के पूर्व दिशा की ओर टैंक के निकट जा रही थी, टैंक से लौटते हुए अभियुक्त अपीलार्थी 19 वर्षीय चंद्रिका प्रसाद महतो, पुत्र काली चरण महतो ने उसे पकड़ लिया और उसे अपनी झोपड़ी में ले गया जो टैंक के बगल में अवस्थित थी और जब उसने हल्ला करना चाहा तब अभियुक्त-अपीलार्थी चंद्रिका प्रसाद महतो ने उसका मुँह बन्द कर दिया और झोपड़ी के अंदर ले गया और बिस्तर पर लिटा दिया। तत्पश्चात्, अभियुक्त-अपीलार्थी चंद्रिका प्रसाद महतो ने उसके कपड़े उतारे और उसके साथ बलात्कार किया। बलात्कार करने के बाद उसने उसे बिना हल्ला किए घर जाने को कहा। तब उसने अपने कपड़े पहने और अपने घर गयी और जब उसका पिता रास्ते में उससे मिला तो उसने उसे घटना के बारे में बताया। अगले दिन एक पंचायती बुलायी गयी थी किन्तु अभियुक्त-अपीलार्थी चंद्रिका प्रसाद महतो नहीं आया और इसलिए उसे पुलिस के समक्ष प्राथमिकी दर्ज करने को कहा गया।

5. उक्त फर्दबयान के आधार पर, पुलिस ने भारतीय दंड संहिता की धारा 376 के अधीन मामला दर्ज किया और अन्वेषण के पश्चात आरोप-पत्र दाखिल किया।

6. चूँकि मामला अन्नय तौर पर सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय था अत: विद्वान मुख्य न्यायिक दण्डाधिकारी ने मामले पर संज्ञान लेने के उपरांत इसे सत्र न्यायालय में भेज दिया जहाँ मामलों को अंतिम रूप से सुना गया था और यथा उपरोक्त याची को दोषी पाया गया था तथा दोषसिद्ध किया गया था।

7. अभिलेख से प्रतीत होता है और मैं पाता हूँ कि विचारण के क्रम में अभियोजन ने दस गवाहों का परीक्षण किया है। अ॰ सा॰ 1 माथुर कर्मकार, अ॰ सा॰ 2 गूजर महतो, अ॰ सा॰ 3 भोला कर्मकार, अ॰ सा॰ 4 सुधीर कुमार महतो, अ॰ सा॰ 5 गोपाल महतो, अ॰ सा॰ 6 सूची राम महतो, अ॰ सा॰ 7 टेसू महतो-पीड़िता किशोरी का पिता, अ॰ सा॰ 8 पारू कुमारी पीड़ित किशोरी, अ॰ सा॰ 9 डॉ॰ लक्ष्मी पांडे, जिन्होंने पीड़ित किशोरी का परीक्षण किया और अ॰ सा॰ 10 बिन्देश्वरी सिंह मामले का आइ॰ ओ॰ है।

8. यह ध्यान में लेना महत्वपूर्ण है कि अ॰ सा॰ 1 और 6 पक्षद्रोही हो गये थे और वे दोनों अभियोजन मामले का समर्थन नहीं किया है। पीड़िता किशोरी पारू कुमारी अ॰ सा॰ 8 और उसके पिता टेसू महतो अ॰ सा॰ 7 और अन्य गवाहों के साक्ष्य द्वारा अभियोजन का समर्थन किया गया है।

9. प्रतिवादी ने भी 4 गवाहों ब॰ सा॰ 1 धीरेन्द्र प्रसाद महतो, ब॰ सा॰ 2 सुमरी देवी, ब॰ सा॰ 3 उपसी देवी और ब॰ सा॰ 4 धीरू महतो का परीक्षण किया है।

10. अ॰ सा॰ 1 माथुर कर्मकार ने कथन किया कि वह घटना के बारे में नहीं जानता है और उसे पक्षद्रोही घोषित किया गया था।

11. अ॰ सा॰ 2 गूजर महतो ने कथन किया कि दिनांक 23.5.99 को जब वह अपनी 'कुल्ही' पर उपस्थित था तब वह टेसू महतो (पीड़िता किशोरी का पिता) से मिला और उसने उसे बताया कि अभियुक्त-अपीलार्थी चंद्रिका प्रसाद महतो ने उसकी पुत्री के साथ बलात्कार किया है। उसने न्यायालय में अभियुक्त को पहचाना।

12. अ॰ सा॰ 3 भोला कर्मकार ने भी कथन किया कि दिनांक 23.5.99 को सांय लगभग 7 बजे वह अपने घर पर उपस्थित था तब पीड़िता का पिता रोते हुए आया और बताया कि अभियुक्त-अपीलार्थी चंद्रिका प्रसाद महतो ने गाँव के टैंक के पास उसकी पुत्री पारू कुमारी के साथ जबरदस्ती बलात्कार किया। तब दिनांक 24.5.99 को गाँव में पंचायती की गयी। उक्त पंचायती में अभियुक्त-अपीलार्थी चंद्रिका प्रसाद महतो उपस्थित नहीं हुआ, तब एक मामला दाखिल किया गया। उसने न्यायालय में अभियुक्त को पहचाना।

13. अ॰ सा॰ 4 सुधीर कुमार महतो ने भी कथन किया कि दिनांक 23.5.99 को सांय लगभग 7 बजे जब वह पीड़िता के पिता टेसू महतो की दुकान से राशन ले रहा था, पीड़िता किशोरी पारू कुमारी रोते हुए आयी और बतायी कि अभियुक्त-अपीलार्थी चंद्रिका प्रसाद महतो ने गाँव के टैंक के निकट उसका बलात्कार किया है।

14. अ॰ सा॰ 5 गोपाल महतो ने भी कथन किया कि दिनांक 23.5.99 को वह प्रात: लगभग 8-9 बजे पीड़िता के पिता टेसू महतो के घर गया था। सांय 4 बजे टेसू महतो ने बताया कि अभियुक्त चंद्रिका प्रसाद महतो ने उसकी पुत्री पारू कुमारी के साथ बलात्कार किया है।। तब वे अभियुक्त के पिता के घर गए और उसे घटना के बारे में बताया। उसने भी अभियुक्त को न्यायालय में पहचाना।

15. अ॰ सा॰ 6 सूची राम महतो ने भी कथन किया कि वह टेसू महतो के निवेदन पर पंचायती में गया था और वह घटना के बारे में नहीं जानता है।

16. अ॰ सा॰ 7 पीड़िता किशोरी के पिता टेसू महतो ने अभियोजन के मामले का समर्थन किया है और कथन किया है कि दिनांक 23.5.99 को सांय लगभग 7 बजे वह अपने घर में उपस्थित था और उसकी पुत्री पारू कुमारी दैनिक कर्म से निवृत्त होने गाँव के टैंक के पास गयी थी लेकिन जब नहीं लौटी तब वह अपनी पुत्री को खोजते गाँव के टैंक की ओर गया और रास्ते में वह अपनी पुत्री से मिला जो रोती आ रही थी और उसने बताया कि अभियुक्त-अपीलार्थी चंद्रिका प्रसाद महतो ने टैंक के बगल में बनी झोपड़ी में रखे चारपाई पर लिटा कर उसका बलात्कार किया है। तब वह अन्य लोगों के साथ अभियुक्त के घर गया और उसे खाट पर लेटा पाया। उसने उसको पकड़ लिया किन्तु वह भाग निकला। तब उसने सह-ग्रामीणों को घटना के बारे में बताया और पंचायती बुलायी लेकिन अभियुक्त और उसका पिता पंचायती में नहीं आए। तब वह अपनी पुत्री के साथ पुलिस थाना गया और मामला दर्ज किया। उसने न्यायालय में अभियुक्त को पहचाना। उसने यह कथन भी किया कि वह चार भाई है और उसको एक पुत्र और तीन पुत्रियाँ है। उसने यह कथन भी किया की गाँव में 500 लोग रहते हैं।

अपने प्रति-परीक्षण में, उसने कथन किया कि जब वह अपनी पुत्री को खोजते टैंक की ओर लगभग 150 गज गया था वह अपनी पुत्री से मिला। उसने यह भी स्वीकार किया कि दिनांक 18.5.99 को अभियुक्त-अपीलार्थी चंद्रिका प्रसाद महतो ने उसे अपने टैंक से मछली मारने से रोक दिया था। उसने इंकार किया कि वह अभियुक्त चंद्रिका प्रसाद महतो के साथ अपनी पुत्री के विवाह के लिए अभियुक्त के पिता पर दबाव डाल रहा था।

17. अ॰ सा॰ 8 पीड़िता किशोरी पारू कुमारी ने भी अभियोजन मामले का समर्थन किया है और कथन किया है कि दिनांक 23.5.99 को जब वह दैनिक कर्म से निवृत्त होने गाँव के टैंक की ओर गयी थी, तब अभियुक्त-अपीलार्थी चंद्रिका प्रसाद महतो ने उसे पकड़ लिया और टैंक के बगल बनी अपनी झोपड़ी के अंदर ले गया। वह हल्ला करना चाहती थी तब अभियुक्त ने उसका मुँह बन्द कर दिया और तत्पश्चात् उसे चारपाई पर लिटाकर उसके कपड़े उतारकर उसके साथ बलात्कार किया। बलात्कार करने के बाद उसने उसे अपने घर जाने को कहा और जब वह रोते हुए घर जा रही थी तब उसे उसके पिता मिले और उसने घटना के बारे में बताया। तत्पश्चात् दिनांक 25.5.99 को वह अपने पिता के साथ पुलिस थाना गयी और अपना बयान दिया। डॉक्टर द्वारा उसका परीक्षण भी किया गया था।

अपने प्रति-परीक्षण में उसने कहा कि वह कक्षा-षष्ठम तक पढ़ी है। उसने आगे कथन किया कि उसके चाचा अलग रहते हैं लेकिन उनका आंगन एक है। जब वह अपने घर आ रही थी उसे घटना के बारे में सबको बताया। उसने इंकार किया कि उसके पिता ने पंचायती में कोई लिखित शिकायत की थी। उसने आगे कथन किया कि ग्राम पंचायत निचितपुर में है। वह मुखिया और सरपंच का नाम नहीं जानती है। उसने आगे इंकार किया कि इस घटना के पहले उसका यौन संबंध था। पैरा-23 पर उसने इंकार किया कि घटना की तिथि पर वह सुधीर कुमार महतो से मिली थी। उसने यह कथन भी किया कि वह नहीं कह सकती है कि घटना से पहले कब उसकी मुलाकात गोपाल महतो से हुई थी।

18. अ॰ सा॰ 9 डॉ॰ लक्ष्मी पांडे, जिन्होंने दिनांक 26.5.99 को पीड़िता किशोरी का परीक्षण किया था, ने पीड़ित किशोरी के शरीर और गुप्तांग पर कोई बाहरी या अंदरूनी उपहति नहीं पायी थी; पीड़िता किशोरी के गुप्तांग पर वीर्य का दाग नहीं था। उसका हायमन पहले से ही फटा हुआ था। पैथोलोजिकल परीक्षण पर योनि स्राव में स्पर्मेटोजोआ नहीं पाया गया था। रेडियोलोजिकल परीक्षण के

अनुसार पीड़ित किशोरी की आयु लगभग 16 वर्ष थी और उन्होंने बलात्कार का चिन्ह नहीं पाया और हायमन भी घटना के पहले से ही फटा हुआ था।

19. अ॰ सा॰ 10 बिन्देश्वरी सिंह, मामले का आइ॰ ओ॰, ने प्राथमिकी प्रमाणित किया है जिसे प्रदर्श-3 के रूप में चिन्हित किया गया है। उसने औपचारिक प्राथमिकी को प्रदर्श-4 के तौर पर प्रमाणित किया। उसने घटनास्थल के बारे में विस्तृत विवरण दिया और कथन किया कि गवाहों के परीक्षण और मेडिकल रिपोर्ट प्राप्त करने के बाद उसने इस मामले में आरोप-पत्र दाखिल किया।

20. बचाव साक्षी सं॰ 1 धीरेन्द्र प्रसाद महतो ने कथन किया कि वह निचितपुर का मुखिया है और दिनांक 24.5.99 को पीड़िता किशोरी का पिता टेसू महतो ने उसे लिखित शिकायत दी जिसपर पंचायती बुलायी गयी थी। उसने लिखित शिकायत प्रमाणित किया जिसे प्रदर्श-A के तौर पर चिन्हित किया गया है। उसने कहा कि दिनांक 23.5.99 को ही सांयकाल में टेसू महतो द्वारा लिखित शिकायत की गयी थी।

21. ब॰ सा॰ 2, 3 और 4 ने यह कहने का प्रयास किया कि टेसू महतो अभियुक्त के पिता पर अपनी पुत्री के विवाह के लिए दबाव डाल रहा है और चूँकि उसने इंकार कर दिया अत: यह झूठा मामला दर्ज किया गया है।

22. जैसा ऊपर चर्चा की गयी है, साक्ष्यों पर विचार करने के बाद, मैं पाता हूँ कि अभियोजन गवाहों अर्थात् अ॰ सा॰ 2, 3, 4 और 5 ने कथन किया दिनांक 23.5.99 को ही पीड़िता किशोरी के पिता टेसू महतो ने उन्हें घटना के बारे में बताया था किन्तु घटना कि तिथि पर अर्थात् उसी दिन कोई प्राथमिकी दर्ज नहीं की गयी थी पीड़िता के पिता ने स्वीकार किया कि दिनांक 23.5.99 को ही उसने गाँव के पंचायत को सूचित किया था और घटना के बारे में बताया था। तब अगले दिन अर्थात् दिनांक 24.5.99 को पंचायती बुलायी गयी और जब अभियुक्त उक्त पंचायती में उपस्थित नहीं हुआ तब प्राथमिकी दर्ज की गयी किन्तु पंचायत अर्थात् निचितपुर पंचायत के मुखिया ने कथन किया कि पीड़िता के पिता टेसू महतो द्वारा दिनांक 23.5.99 को सांयकाल में ही उसे लिखित शिकायत दी गयी थी और इसलिए अगली तिथि पर पंचायती बुलायी गयी थी। यह पंचायत के समक्ष पीड़िता के पिता द्वारा दी गयी लिखित शिकायत, प्रदर्श-A से जाहिर है। उसने कथन किया है कि दिनांक 23.5.99 को रात्रि लगभग 9 बजे अभियुक्त अपीलार्थी चंद्रिका प्रसाद महतो, जो अपने ससुराल में रह रही है, पीड़िता किशोरी पारू कुमारी को अपने साथ भाग चलने के लिए फुसलाया और उसकी पुत्री पारू कुमारी अपने घर से फरार थी। उसने यह कथन भी किया कि उसने गाँव के टैंक के निकट उन दोनों को बात करते देखा था और जब उसने उनका पीछा किया तो दोनों भाग गए। उसने यह कथन भी किया था कि बाद में लड़का अपने घर आया और जब वह वहाँ गया और अपनी पुत्री के बारे में पूछा तब अभियुक्त के पिता काली चरण महतो ने उसे जाने और केस करने को कहा, अत: वह पंचायत से न्याय चाहता था।

23. इस प्रकार, पंचायत को किए गए शिकायत-प्रदर्श A से स्पष्ट है कि अभियुक्त अपीलार्थी चंद्रिका प्रसाद महतो के विरुद्ध बलात्कार का अभिकथन नहीं है। इसके अतिरिक्त, उसकी माता, बहन अथवा चाचा-चाची सहित उसके परिवार का एक भी सदस्य अभियोजन मामले कि दिनांक 23.5.99 को उसके साथ बलात्कार किया गया था, के समर्थन में सामने नहीं आया है। डॉक्टर अ॰ सा॰ 9 ने कथन किया है कि पीड़िता पर बलात्कार का चिन्ह नहीं पाया गया था और वह पहले से ही यौन संबंधों की आदी थी। मामले के उस दृष्टिकोण में, अभियोजन मामला संदेहास्पद प्रतीत होता है और बचाव पक्ष का विवरण कि अपीलार्थी पीड़िता से विवाह करना चाहता था अथवा पक्षों के बीच दुश्मनी थी जिसकी परिणति इस मामले में हुई।

24. अत: मेरे राय में, अभियुक्त को संदेह का लाभ जाता है जो उसे दिया जाता है और उसे उसके विरुद्ध लगाए गए आरोपों से मुक्त किया जाता है।

25. अपीलार्थी जमानत पर है। उसे जमानत पत्र की जिम्मेवारी से उन्मोचित किया जाता है।

माननीय डी॰ जी॰ आर॰ पटनायक, न्यायमूर्ति

प्रफुल्ल कुमार झा (140 में)

संजय सिंह (218 में)

बनाम

झारखंड राज्य एवं अन्य (दोनों में)

W.P. (S) No. 140 of 2007 with W.P. (S) No. 218 of 2007. Decided on 26th March, 2010.

भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन एक आवेदन के मामले में।

(क) सेवा विधि–सेवा समाप्ति–आक्षेपित आदेश द्वारा अपील खारिज–ट्रक चालकों से पैसा लेने के लिए याचीगण को पुलिस बल से बर्खास्त किया गया था–जाँच अधिकारी की रिपोर्ट अनुश्रुत साक्ष्य पर आधारित–जाँच अधिकारी के निष्कर्ष अनुचित, भ्रामक है और अभिलेख पर उपस्थित साक्ष्य के निष्पक्ष और युक्तियुक्त अधिमूल्यन पर आधारित नहीं है–आरोपों को प्रत्यक्ष साक्ष्य अथवा ऐसे साक्ष्य, जिनका तथ्यों और विवाद्यक के प्रति निश्चित प्रभाव एवं प्रासंगिकता है, से सिद्ध करना होगा–पक्षों द्वारा अभिलेख पर लाए गए सामग्रियों को विचार में लेने के बाद निष्कर्ष पर आना जाँच अधिकारी का कर्तव्य है और दोष अथवा अन्यथा के संबंध में निष्कर्ष अभिलेख पर उपस्थित साक्ष्य के अधिमान के आधार पर दर्ज किए जाने चाहिए–अपने-अपने कारण बताओ के उत्तरों/स्पष्टीकरणों में याचीगण द्वारा उठाये गये प्रासंगिक विवाद्यकों पर विवेक का प्रयोग किए बगैर अनुशासनिक प्राधिकारी और साथ ही अपीलीय प्राधिकारी ने यांत्रिक तरीके से जाँच अधिकारी के निष्कर्षों को स्वीकार किया कि इन अभिकथनों के निश्चित एवं निश्चायक साक्ष्य की अनुपस्थिति में कि याची ने वाहनों को रोक दिया था और ट्रक चालकों से पैसा वसूला था, जाँच अधिकारी के निष्कर्ष भ्रामक हैं–सेवा से बर्खास्तगी का आदेश याचीगण के विरुद्ध लगाए गए आरोपों की तुलना में अत्यन्त अननुपातिक और कठोर है–आक्षेपित आदेश अभिखंडित–सेवा से बर्खास्तगी के बजाय दंड की अन्य मात्रा पर पुनर्विचार करने के लिए अनुशासनिक प्राधिकारी को मामला वापस भेजा गया। (पैरा 8 से 14)

(ख) सेवा विधि–विभागीय कार्यवाही–विभागीय कार्यवाही में, यद्यपि भारतीय साक्ष्य अधिनियम के प्रावधानों को कठोरतापूर्वक लागू करने की आवश्यकता नहीं है, किन्तु नैसर्गिक न्याय के मूल सिद्धान्तों को अनदेखा नहीं किया जा सकता है–संदेह कितना भी ज्यादा क्यों न हो, विधिक प्रमाणों को प्रतिस्थापित नहीं कर सकता है–विभागीय कार्यवाही एक न्यायिक कल्प कार्यवाही है और जाँच अधिकारी न्यायिक कल्प कृत्य करता है। (पैरा 12)

अधिवक्तागण.–M/s S. N. Pathak, Deepak Kumar, For the Petitioners; Mr. D. K. Dubey, For the Respondents.

डी॰ जी॰ आर॰ पटनायक, न्यायमूर्ति.–समरुप तथ्यों और समान आधारों पर आधारित इन दोनों याचिकाओं को निपटाने हेतु साथ लिया जाता है।

2. याचीगण के अधिवक्ता और प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता को सुना गया।

3. डब्ल्यू॰ पी॰ एस॰ सं॰ 140 वर्ष 2007 में याची प्रफुल्ल कुमार झा ने अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा पारित दिनांक 24.7.2006 के आदेश (परिशिष्ट-7) जिसके द्वारा याची की सेवा समाप्त कर दी गयी थी, के अभिखंडन हेतु प्रार्थना की है। अपीलीय प्राधिकारी द्वारा पारित दिनांक 14.11.2006 के आदेश (परिशिष्ट-5), जिसके द्वारा अनुशासनिक प्राधिकारी के आक्षेपित आदेश के विरुद्ध याची द्वारा दाखिल अपील को खारिज कर दिया गया था, के अभिखंडन हेतु भी आगे प्रार्थना की गयी है।

डब्लयू॰ पी॰ एस॰ सं॰ 218 वर्ष 2007 में याची संजय कुमार सिंह ने अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा पारित दिनांक 19.6.2006 के आदेश, जिसके द्वारा याची की सेवा समाप्त कर दी गयी थी, को चुनौती दी है। अपीलीय प्राधिकारी द्वारा पारित दिनांक 12.9.2006 के आदेश, जिसके द्वारा अनुशासनिक प्राधिकारी के आक्षेपित आदेश के विरुद्ध याची द्वारा दाखिल याचिका खारिज कर दी गयी थी, को भी चुनौती दी गयी है।

4. याचीगण के मामले के तथ्य संक्षेप में निम्नलिखित है:-

दोनों याचीगण पूर्वी सिंहभूम जिला के जमशेदपुर में एम॰ जी॰ एम॰ पुलिस थाना में कॉन्सटेबल के रूप में पदस्थापित थे। कतिपय आरोपों पर और इस अभिकथन पर कि दिनांक 12.11.2005 को अपर आरक्षी अधीक्षक ने राष्ट्रीय राजमार्ग 33 पर एम॰ जी॰ एम॰ पुलिस थाना मोबाइल वैन की तलाशी के क्रम में डिम्मा-बेलाजुडी के बीच बेलाजुडी काली मंदिर के निकट मोबाइल वैन पार्क किया हुआ पाया था। अपर आरक्षी अधीक्षक ने ए॰ एस॰ आई॰ राम कुमार प्रसाद को मोबाइल जीप के पीछे खड़ा देखा जबकि कॉन्सटेबल प्रफुल्ल कुमार झा (याची) और अशोक कुमार चौरसिया ट्रक चालकों से पैसा वसूल रहे थे। दो अन्य कॉन्सटेबल अर्थात् कॉन्सटेबल बहादुर सिंह और कान्सटेबल संजय कुमार सिंह (याची) निकट खड़े थे। यह अभिकथन किया गया था कि यद्यपि इन पुलिस कार्मिकों को उरिया बस्ती के मामले के संबंध में अन्वेषण संचालित करने की ड्यूटी दी गयी थी किन्तु वाहनों की चेकिंग की ड्यूटी नहीं दिए जाने के बावजूद इन याचीगण को अन्य दो कॉन्सटेबल और ए॰ एस॰ आई॰ के साथ ट्रकों को रोकते और ट्रक चालकों से पैसा वसूल करते पाया गया था। इन अभिकथनों के साथ अपर आरक्षी अधीक्षक ने दिनांक 13.11.2005 को आरक्षी अधीक्षक को लिखित शिकायत प्रस्तुत किया।

5. आरोपों के प्रत्युत्तर में याचीगण ने अपना-अपना कारण बताओ उत्तर को प्रस्तुत किया, किन्तु इससे संतुष्ट नहीं होने पर उनके विरुद्ध विभागीय कार्यवाही शुरू की गयी थी।

विभागीय कार्यवाही में, परिवादी सुधीर कुमार झा, अपर आरक्षी अधीक्षक का बयान अभियोजन द्वारा उसके परीक्षण और प्रोसिडी द्वारा प्रति-परीक्षण पर दर्ज किया गया था।

6. एकमात्र गवाह के बयानों के आधार पर, जाँच अधिकारी ने अपना निष्कर्ष दर्ज किया कि प्रोसिडियों के विरुद्ध आरोप सिद्ध किए गए हैं।

जाँच रिपोर्ट के आधार पर, आरक्षी अधीक्षक ने अनुशासनिक प्राधिकारी होने के नाते याचीगण को दूसरा कारण बताओ नोटिस जारी किया जिसका प्रत्युत्तर उन्होंने अपना कारण बताओ उत्तरों को

दाखिल करके दिया, लेकिन इससे संतुष्ट नहीं होने पर, अनुशासनिक प्राधिकारी ने अपने आक्षेपित आदेश द्वारा वर्तमान याचीगण को सेवा से बर्खास्तगी का दंड अभिलिखित किया।

7. अपनी बर्खास्तगी के आक्षेपित आदेश के विरुद्ध याचीगण द्वारा दाखिल की गयी अपील को अपीलीय प्राधिकारी द्वारा अपने आक्षेपित आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया था।

अनुशासनिक प्राधिकारी और अपीलीय प्राधिकारी द्वारा पारित आक्षेपित आदेशों को याचीगण द्वारा निम्नलिखित आधारों पर चुनौती दी गयी है:–

(i) जाँच अधिकारी के निष्कर्ष अनुचित हैं और अनुमानों एवं अटकलों और पूरी तरह अनुश्रुत साक्ष्य पर आधारित हैं और अभिलेख पर उपस्थित साक्ष्य के अधिमान के भी विरुद्ध है।

(ii) अनुशासनिक प्राधिकारी और अपीलीय प्राधिकारी ने अत्यन्त यांत्रिक तरीके से और विवेक का इस्तेमाल किए बिना आक्षेपित आदेशों को पारित किया है।

(iii) बर्खास्तगी का दंड आरोपों की तुलना में अत्यन्त अननुपातिक है और यह देखते हुए विभेदकारी भी है कि अन्य पुलिस कॉन्सटेबल अर्थात् महेन्द्र राय, जिसे भी आरोपों का दोषी पाया गया था, को लघु दंड अधिनिर्णीत किया गया है और ए० एस० आइ० जो उच्चतर अधिकारी हैं जिसके साथ प्रासंगिक समय पर याचीगण जुड़े हुए थे, को बरी कर दिया गया है।

(iv) ट्रक चालकों, जिनसे पैसा वसूला गया था, सहित तात्विक गवाहों का परीक्षण नहीं किया गया है और न ही ऐसे चालक द्वारा परिवाद दाखिल किया है और न ही किसी चालक अथवा किसी ट्रक जिसे अभिकथित तौर पर रोका गया था, का रजिस्ट्रेशन नम्बर प्रकट किया गया है।

8. आधारों को विस्तार देते हुए, याचीगण के विद्वान अधिवक्ता निवेदन किया कि यद्यपि, अपर आरक्षी अधीक्षक, जिसकी शिकायत पर विभागीय कार्यवाही शुरू की गयी थी, का परीक्षण किया गया था लेकिन उनका साक्ष्य अस्पष्ट और अविनिर्दिष्ट है। उनका बयान यह संपुष्ट नहीं करता है कि याचीगण ने किनसे पैसा वसूला था और कितना पैसा वसूल किया गया था, यदि किया गया था, और न ही वह यह सूचित करते हैं कि यदि उन्होंने याचीगण को अवचार के ऐसे कृत्यों में भाग लेते देखा था, उन्होंने तुरन्त कोई कार्रवाई क्यों नहीं की यदि वह घटना स्थल पर उपस्थित थे। गवाह द्वारा कोई स्पष्टीकरण प्रस्तुत नहीं किया गया हैं कि क्यों नहीं उसके द्वारा लिखित शिकायत प्राप्त की गयी थी अथवा मौखिक शिकायत ही प्राप्त की गयी थी और उनके द्वारा इसे घटनास्थल पर अभिलिखित किया गया था। विद्वान अधिवक्ता आगे कहते है कि अभिकथनों के मुताबिक भी, याचीगण ए० एस० आई० के साथ पेट्रोलिंग पार्टी के सदस्यों के रूप में जुड़े हुए थे और पेट्रोलिंग पार्टी की सारी जिम्मेदारी ए० एस० आई० पर थी जो याचीगण के ठीक उपर का नियंत्रण प्राधिकारी समझा जाता है और यदि पेट्रोलिंग पार्टी ने ऐसे अप्राधिकृत कृत्यों को किया था जो उनकी ड्यूटी का हिस्सा नहीं था, सारी जिम्मेदारी सहायक उप-निरीक्षक पर थी। कोई कारण नहीं बताया गया है कि सहायक उप-निरीक्षक को आरोपों से बिल्कुल मुक्त क्यों कर दिया गया है। इसी प्रकार, कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है कि क्यों अन्य कॉन्सटेबल अर्थात महेन्द्र राय, जिसे अभिकथित तौर पर वाहनों की चेकिंग के समय घटना स्थल पर उपस्थित बताया जाता है, को काले निशान का लघु दंड दिया गया है।

9. दूसरी ओर, प्रत्यर्थी राज्य के अधिवक्ता ने याचीगण द्वारा दिए गए समस्त आधारों का खंडन किया और निवेदन किया कि याचीगण के विरुद्ध जाँच निष्पक्ष और न्यायोचित तरीके से संचालित की गयी थी और जिसमें याचीगण को अपने मामलों का बचाव करने का युक्तियुक्त और पर्याप्त अवसर दिया गया था। जाँच अधिकारी द्वारा वर्तमान याचीगण के विरुद्ध दर्ज दोष का निष्कर्ष वरीय पुलिस अधिकारी के साक्ष्यों पर आधारित है जो याचीगण के अवचार के कृत्यों के चश्मदीद गवाह है।

10. पक्षों के अधिवक्ता को सुनने पर और याचीगण के विनिर्दिष्ट आधार कि जाँच अधिकारी के निष्कर्ष अनुचित हैं और अनुश्रुत साक्ष्य पर आधारित है, पर विचार करने पर, मैंने जाँच रिपोर्ट और गवाहों के साक्ष्य का परिशीलन किया है। गवाह के बयान का सार यह है कि दिनांक 12.11.2005 को आरक्षी अधीक्षक से दूरभाषिक अनुदेश प्राप्त करने पर वह निजी गाड़ी में एम॰ जी॰ एम॰ पेट्रोलिंग जीप की तलाश में गए और पेट्रोलिंग जीप को मंदिर के निकट खड़ा पाया। उन्होंने सड़क के किनारे खड़ा किए गए कुछ ट्रकों को देखा। उन्होंने याचीगण प्रफुल्ल कुमार झा और कॉन्सटेबल संजय कुमार सिंह को ट्रक चालकों से पैसा वसूला करते हुए देखने का दावा किया है। तत्पश्चात्, उन्होंने पेट्रोलिंग जीप का पुलिस थाना तक पीछा किया और ए॰ एस॰ आई॰ से पूछताछ की और उसका बयान दर्ज किया। उक्त बयान के परे, गवाह ने ट्रक चालकों जिनसे याचीगण द्वारा पैसा वसूल किए जाने का दावा किया गया था, में से किसी का नाम अथवा पहचान अथवा ट्रकों, जिन्हें याचीगण द्वारा अभिकथित रूप से रोका गया था, के रजिस्ट्रेशन नम्बर की सूचना नहीं दी है। वह यह सूचित करने में सक्षम नहीं है कि उनके ट्रक चालकों में से किसी को लिखित या मौखिक परिवाद प्राप्त नहीं किया है। वह यह सूचित करने में भी समर्थ नहीं है कि याचीगण ने ट्रक चालकों में से किसी से कितनी राशि वसूल की थी। वह यह सूचित करने में भी सक्षम नहीं है कि क्यों उसने अपर आरक्षी अधीक्षक की श्रेणी का वरीय पुलिस अधिकारी होने के नाते घटना स्थल पर ही याचीगण के विरुद्ध तुरन्त कार्रवाई नहीं की थी। वह यह सूचित नहीं करते हैं कि याचीगण के कब्जे से कोई पैसा क्यों नहीं अभिग्रहित किया गया था यदि उन्होंने ट्रक चालकों में से किसी से पैसा वसूल किया था। यदि वरीय पुलिस अधिकारी वस्तुतः घटना स्थल पर उपस्थित थे और वह देखे थे जो उन्होंने देखने का दावा किया है, तब उनसे यह तार्किक और युक्तियुक्त अपेक्षा की जाती थी कि अपने प्राधिकार का प्रयोग करते हुए अपचारी पुलिस कार्मिकों को निरोधित करते और तुरन्त गिरफ्तार करते और उनके कब्जे से उगाही गयी पैसा वसूलते, ट्रक चालकों, जिनसे अभिकथित तौर पर पैसा उगाहा गया था, की शिकायत दर्ज करते, उनका नाम और पहचान और वाहनों का रजिस्ट्रेशन नम्बर नोट करते। यह तथ्य कि उन्होंने ऐसा कोई काम नहीं किया है और ऐसा करने में उनकी विफलता का युक्तियुक्त स्पष्टीकरण भी प्रस्तुत नहीं किया है, निश्चय ही युक्तियुक्त निष्कर्ष की ओर ले जाएगा कि वह स्थल पर मौजूद नहीं थे और यदि वह थे, तब भी उन्होंने दूरी से सड़क के किनारे लगे ट्रकों को और ट्रकों के निकट याचीगण को उपस्थित देखा था और उन्होंने अटकलों और अनुमानों के आधार पर निष्कर्षित किया कि पुलिस कार्मिक ट्रक चालकों से पैसा वसूल रहे थे। गवाह का अस्पष्ट साक्ष्य उत्तरों को अधूरा छोड़ देता है और याचीगण के विरुद्ध विरचित आरोपों के संदर्भ में इससे अधिक अस्पष्ट नहीं हो सकते थे। अटकलों और अनुमानों पर आधारित होने के सिवाय ऐसे अभिसाक्ष्य को यह अभिनिर्धारित करने हेतु निष्कर्षों के किसी विस्तार में पर्याप्त नहीं माना जा सकता है कि याचीगण ने अप्राधिकृत रूप से सड़क पर वाहनों को रोका था और ट्रक चालकों से गैर-कानूनी रूप से पैसा उगाह रहे थे।

इस गवाह के साक्ष्य के आधार पर केवल यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि पुलिस के ए० एस० आई० की अध्यक्षता में वर्तमान याचीगण सहित कान्सटेबलों द्वारा गठित एस्कार्ट पार्टी ने यह देखते हुए ड्यूटी की अवहेलना का कृत्य किया है कि उरिया बस्ती के अन्वेषण की दी गयी ड्यूटी को पूरा करने हेतु अग्रसर होने के बजाय उन्हें एक बिल्कुल भिन्न स्थान पर उपस्थित पाया गया था जिसके लिए उन्होंने कोई स्पष्टीकरण प्रस्तुत नहीं किया था अत: ड्यूटी की अवहेलना के ऐसे कृत्यों की जिम्मेदारी केवल वर्तमान याचीगण पर ही नहीं होगी बल्कि टीम लीडर पुलिस के ए० एस० आई० और दो अन्य कान्सटेबलों सहित समस्त टीम पर होगी।

11. इस तथ्य कि गवाह के समस्त साक्ष्य को मानने पर भी कोई अंतिम निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है कि याचीगण ने किसी वाहन को रोका था और ट्रक चालकों से गैर-कानूनी रूप से पैसा उगाहा था, पर विचार किए बिना उसके साक्ष्य को अनावश्यक अधिमान देते हुए जाँच अधिकारी स्वयं को वरीय पुलिस अधिकारी के बयान से प्रेरित होते प्रतीत होते हैं। ऐसा प्रकट होता है कि यह अभिनिर्धारित करने कि जाँच अधिकारी के निष्कर्ष अनुचित, भ्रामक है और अभिलेख पर उपस्थित निष्पक्ष और युक्तियुक्त अधिमूल्यन पर आधारित नहीं है, हेतु न्यायोचित और पर्याप्त आधार है।

12. विधि का यह स्थापित सिद्धांत है कि विभागीय कार्यवाही में, भले ही भारतीय साक्ष्य अधिनियम के प्रावधानों को कठोरतापूर्वक लागू करने की आवश्यकता नहीं है, किन्तु नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों को अनदेखा नहीं किया जा सकता है। साक्ष्य के मूल सिद्धान्तों में से एक यह है कि प्रत्यक्ष साक्ष्य द्वारा अथवा ऐसे साक्ष्य, जिनका तथ्यों और विवाद्यक के प्रति निश्चित प्रभाव एवं प्रासंगिकता है, से आरोपों को सिद्ध करना होगा। विभागीय कार्यवाही में आरोप के प्रमाण से संबंधित विधि का यह नियम भी है कि भले ही संदेह कितना अधिक हो, यह विधिक प्रमाण को प्रतिस्थापित नहीं कर सकता है। विभागीय कार्यवाही एक न्यायिक कल्प कार्यवाही है और जाँच अधिकारी न्यायिक कल्प कृत्य करता है। जाँच अधिकारी का कर्तव्य पक्षों द्वारा अभिलेख पर लाए गए सामग्रियों को विचार में लेने के बाद किसी निष्कर्ष पर आना है और आरोप के दोष अथवा अन्यथा के संबंध में निष्कर्ष अभिलेख पर उपस्थित साक्ष्य के अधिमान के आधार पर दर्ज किए जाने चाहिए।

13. अनुशासनिक प्राधिकारी के और अपीलीय प्राधिकारी के भी आक्षेपित आदेश से प्रतीत होता है कि दोनों अधिकारियों ने इन आरोपों की कि याचीगण ने वाहनों को रोका था और और ट्रक चालकों से पैसा उगाहा था, के निश्चित और निष्कर्षित प्रमाण की अनुपस्थिति में जाँच अधिकारी के निष्कर्ष भ्रामक है, अपने अपने कारण बताओं उत्तरों/स्पष्टीकरणों में उठाए गए प्रासंगिक विवाद्यकों पर विवेक का इस्तेमाल किए बिना यांत्रिक तरीके से जाँच अधिकारी के निष्कर्षों को स्वीकार कर लिया है। अवचार का एकमात्र कृत्य, यदि इसे विचार में लिया जाए और जिसे ग्रुप लीडर अर्थात ए० एस० आइ० और उससे जुड़े कान्सटेबल सहित पेट्रोलिंग पार्टी को गठित करते हुए समस्त पुलिस कार्मिकों पर समान रूप से लागू किया जाए, यह है कि उन्होंने ड्यूटी की अवहेलना की है। यदि पेट्रोलिंग पार्टी के प्रत्येक सदस्य पर साक्ष्य का स्वीकार योग्य अंश समान रूप से लागू किया जाता है और फिर भी ए० एस० आइ० को आरोपों से मुक्त कर दिया जाता है और दूसरे कान्सटेबल को लघु दंड दिया जाता है, तब कोई कारण नहीं है कि दंड के मामले में याचीगण के साथ क्यों भिन्न व्यवहार किया जाए।

14. मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों पर विचार करते हुए और ऊपर की गयी चर्चाओं के

आलोक में मेरे दृष्टिकोण में याचीगण की सेवा से बर्खास्तगी का दंड उनके विरुद्ध लगाए गए आरोपों की तुलना में अत्यन्त अननुपातिक है और कठोर है।

अत: याचीगण के विरुद्ध अनुशासनिक प्राधिकारी और अपीलीय प्राधिकारी द्वारा पारित आक्षेपित आदेशों को एतद् द्वारा अभिखंडित किया जाता है। उस सीमा तक जहाँ तक दूसरे कान्सटेबल अर्थात् महेन्द्र राय के लिए अधिनिर्णीत किया गया है, सेवा से बर्खास्तगी के बजाय दंड की मात्रा पर पुनर्विचार करने हेतु मामले को अनुशासनिक प्राधिकारी के पास वापस भेजा जाता है। सेवा में तुरन्त पुनर्बहाल होने के दोनों याचीगण हकदार होंगे। उनकी सेवा समाप्ति की तिथि से उनकी पुनर्बहाली की तिथि तक के बीच की अवधि को उनके पेंशन और सेवानिवृत्ति लाभों की संगणना के उद्देश्य के लिए ड्यूटी पर बिताया गया अवधि माना जाएगा। किन्तु ऐसे किसी विनिर्दिष्ट अभिवाक् कि इस समस्त अवधि के दौरान बेरोजगार थे, की अनुपस्थिति में, याचीगण बकाया मजदूरी का दावा करने के हकदार नहीं होंगे।

तद्नुसार, दोनों रिट याचिकाएं निपटायी जाती है।

माननीय ज्ञान सुधा मिश्रा, मुख्य न्यायाधीश एवं आर॰ आर॰ प्रसाद, न्यायमूर्ति

तापसी चौधरी

बनाम

झारखंड राज्य एवं अन्य

WP(PIL) No. 4681 of 2009. Decided on 30th March, 2010.

भारत का संविधान, 1950–अनुच्छेद 226—पी॰ आई॰ एल॰–भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 302 के अधीन प्राथमिकी दर्ज करने के लिए प्रार्थना सूचका के पुत्री की अभिकथित तौर पर हत्या कर दी गयी थी–किन्तु मृतका की माता, जिसने अभिकथन किया कि उसकी पुत्री की हत्या की गयी थी और यह दुर्घटना का मामला नहीं था, के विवरण को अनदेखा करते हुए मृतका के मित्र की प्रेरणा पर भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 287 के अधीन दुर्घटना के मामले के तौर पर पुलिस द्वारा मामला दर्ज किया गया था–जब मृतका की माता ने अभिकथन किया कि अभियुक्तगण द्वारा मृतका के मित्र को अपने पक्ष में कर लिया गया था, उसकी पुत्री की मृत्यु के संबंध में इसे दुर्घटना का रंग देते हुए और इस तथ्य को दबाते हुए कि अभियुक्तगण द्वारा उसकी हत्या कर दी गयी थी, वास्तविक घटना के लिए मामला दर्ज नहीं किया गया था, माता की शिकायत पर स्पष्टत: अन्वेषण किए घटना की आवश्यकता है–मृतका की माता के अभिकथन को अनदेखा करते हुए मामला दर्ज करने से अन्वेषण प्राधिकारी इंकार नहीं कर सकते थे–सूचका-माता के आरोप/विवरण के आधार पर प्रासंगिक धाराओं को सम्मिलित करने के बाद सी॰ बी॰ आई॰, जिसे मामले का अन्वेषण सौंपा गया था, द्वारा मामला का अन्वेषण किया जा सकता था–प्रथमत:, सूचक के विवरण के मुताबिक मामला दर्ज करना होगा–सूचका-माता के मामला/विवरण के बावजूद, अन्वेषण प्राधिकारीगण विधि के न्यायालय की भूमिका उपधारित नहीं कर सकता है और प्राथमिकी दर्ज करने से इंकार नहीं कर सकता है–मृतका की माता के अभिकथन के आधार पर मामला दर्ज करने का अन्वेषण प्राधिकारी को निर्देश।

(पैरा 3 से 5)

अधिवक्तागण.–Mr. P.A.S. Pati, For the Appellant/Petitioner; Mr. Rajesh Kumar; For the Respondent-CBI; Mr. Indrajit Sinha, For the Other Respondent.

आदेश

यह रिट याचिका श्रीमती तापसी चौधरी द्वारा दाखिल पत्र याचिका की दृष्टि में दर्ज की गयी है जिसमें गंभीर प्रकृति का अभिकथन किया गया है कि यद्यपि रहस्यमय परिस्थितियों में उसकी पुत्री, मौसमी चौधरी की हत्या कर दी गयी थी और वह प्राथमिकी दर्ज करने हेतु थाना प्रभारी के सम्मुख गयी थी, उसके अभिवाक् को ठुकरा दिया गया था और प्राथमिकी दर्ज नहीं की गयी थी, जिस कारण वह पत्र याचिका द्वारा इस न्यायालय के समक्ष आयी थी जिसे बाद में रिट याचिका के तौर पर दर्ज किया गया था। तत्पश्चात्, इस न्यायालय ने प्रत्यर्थी-प्राधिकारीगण को श्रीमती तापसी चौधरी की प्राथमिकी दर्ज करने और दर्ज मामले का अन्वेषण करने का निर्देश दिया गया था। आश्चर्यजनक रूप से, श्रीमती तापसी चौधरी के आग्रह पर प्राथमिकी अभी भी दर्ज नहीं की गयी है और माता, जिसने अभिकथन किया कि उसकी पुत्री की हत्या कर दी गयी थी और यह दुर्घटना का मामला नहीं था, के विवरण को अनदेखा करते हुए मृतक को मित्र के आग्रह पर दुर्घटना के मामला के रूप में दर्ज प्राथमिकी के आधार पर केवल भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 287 के अधीन अन्वेषण प्राधिकारी ने आरोप पत्र दाखिल किया।

2. हम यह समझने में विफल रहे हैं कि अभिकथन के बावजूद, कैसे अन्वेषण प्राधिकारी मृतका की माता की प्रेरणा पर प्राथमिकी दर्ज करने में विफल रहा, जब केवल मृतका के मित्र के कहने पर कि यह दुर्घटना का मामला था, पहले मामला दर्ज किया गया था। जब मृतका की माता ने अभिकथन किया है कि मृतका के मित्र को अभियुक्तगण द्वारा मिला लिया गया है और उसकी पुत्री की मृत्यु के संबंध में इसे दुर्घटना का रंग देते हुए और इस तथ्य को दबाते हुए कि अभियुक्तगण द्वारा उसकी हत्या कर दी गयी थी, वास्तविक घटना के लिए मामला दर्ज नहीं किया गया था, स्पष्टत: माता की शिकायत पर अन्वेषण करने की आवश्यकता है।

3. इन परिस्थितियों के अधीन, हम अनदेखा नहीं कर सकते हैं कि मृतका की माता के अभिकथन को अनदेखा करते हुए अन्वेषण प्राधिकारी मामला दर्ज करने से इंकार नहीं कर सकते थे और सूचका-माता के आरोप/विवरण के आधार पर प्रासंगिक धाराओं को सम्मिलित करने के बाद सी॰ बी॰ आई॰, जिसे अन्वेषण के लिए मामला सौंपा गया था, मामले की जाँच कर सकता था। प्रथम दृष्टया, यह नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है कि अन्वेषण प्राधिकारीगण विधि के न्यायालय की भूमिका उपधारित नहीं कर सकते हैं और सूचका-माता के मामला/विवरण के बावजूद प्राथमिकी दर्ज करने से इंकार नहीं कर सकते हैं और इससे भी ज्यादा इस निष्कर्ष पर नहीं आ सकते हैं कि भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 302 के अधीन मामला नहीं बनता है जैसा मृतका की सूचका-माता द्वारा अभिकथन किया गया है। यह एक सुअभिस्वीकृत विधिक स्थिति है कि प्रथमत: सूचक के विवरण के मुताबिक एक मामला दर्ज करना होगा और इसके आधार पर प्रासंगिक अपराध गठित करते हुए धाराओं को प्राथमिकी में सम्मिलित करना होगा जिसके बाद अन्वेषण किया जाएगा। किन्तु यदि पहली बार ही प्राथमिकी दर्ज किए बिना सूचक के विवरण को अनदेखा किया जाता है और सूचक के अभिकथन के मुताबिक प्रासंगिक धाराओं को प्राथमिकी में सम्मिलित नहीं किया जाता है जिसे अजनबी अथवा अहितबद्ध पक्ष द्वारा दर्ज किया गया है, स्पष्टत: प्रतिस्थापित करने का मौका देता है कि किस धारा के अधीन मामला दर्ज किया जाए और आरोपपत्र दाखिल किया जाए जो दंड प्रक्रिया संहिता के मुताबिक निश्चय ही सही और कानूनी नहीं है। अत: हमने, प्राधिकारीगण को निर्देश दिया था कि सबसे पहले भा॰ दं॰ सं॰ की

धारा 302 संहिता के प्रासंगिक धाराओं को सम्मिलित करते हुए मृतका की माता की शिकायत/विवरण के आधार पर मामला दर्ज किया जाए क्योंकि सूचका-माता द्वारा लगाया गया आरोप यह है कि उसकी पुत्री की हत्या की गयी थी और यह दुर्घटना का मामला नहीं था, जैसा इसे बनाया गया था।

4. हम यह समझने में भी विफल है कि विधि के किस प्राधिकार के अधीन अन्वेषण प्राधिकारी इस निष्कर्ष पर आए हैं कि यह दुर्घटना मृत्यु का मामला था और भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 302 के अधीन मामला दर्ज करने से इंकार कर दिया है। हमने प्रत्यर्थी-सी॰ बी॰ आई॰ को यह स्पष्ट करने का मौका दिया था कि क्यों सूचका-माता के विवरण को अनदेखा करते हुए केवल भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 287 के अधीन मामला दर्ज किया गया है जिसके प्रत्युत्तर में केवल इतना कथन किया गया है कि मृतका की हत्या के आरोप के समर्थन में कोई साक्ष्य नहीं पाया गया था और यह बिलकुल दरकिनार कर दिया गया है कि यदि मृतका की माता की शिकायत के बावजूद सी॰ बी॰ आई॰ द्वारा भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 302 के अधीन पहली बार में ही मामला दर्ज नहीं किया जाता है, तब सूचका द्वारा लगाए गए अभिकथन के संबंध में अन्वेषण प्राधिकारीगण द्वारा किस प्रकार का अन्वेषण किया जा सकता था।

5. अत: यह निर्देश देने की एक अनिवार्य विधिक आवश्यकता है कि सबसे पहले प्रत्यर्थी-अन्वेषण प्राधिकारी मृतका की माता के अभिकथन के आधार पर मामला दर्ज करें और तब वे बयानों, जिन्हें अन्वेषण के क्रम में दर्ज किया जाएगा, के आलोक में अन्वेषण करने हेतु स्वतंत्र होंगे और उन्हीं के आधार पर संग्रहित साक्ष्य के आलोक में भा॰ दं॰ सं॰ के प्रासंगिक धाराओं के अधीन आरोप-पत्र दाखिल किया जा सकता है।

6. अत: दर्ज किए जाने वाले मामले की वर्तमान अवस्था के संबंध में इस न्यायालय को सूचित करने के लिए मामला को दिनांक 6.4.2010 को पुन: लाया जाए।

माननीय आर॰ के॰ मेराठिया, न्यायमूर्ति

वीरेन्द्र कुमार

बनाम

मेसर्स जमशेदपुर प्रिंटिंग वर्क्स लि॰

S.A. No. 220 of 2008. Decided on 5th April, 2010.

अभिधृति विधि–बेदखली–बेदखली डिक्री को चुनौती–विचारण न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि किराएदार व्यतिक्रमी नहीं था किन्तु पट्टा के अवसान के आधार पर उसे बेदखल होने का जिम्मेदार अभिनिर्धारित किया–पट्टे की अवधि के दौरान, पक्षों द्वारा पट्टे के निबंधनों का पालन किया गया और पट्टे में विनिर्दिष्ट किराए का भुगतान किया गया था–दोनों पक्षों ने अपने अधिकारों का प्रयोग किया और अपनी बाध्यताओं का पालन किया–जब पक्षों के बीच संविदा का पूरी तरह पालन कर लिया गया था और कार्य कर लिया गया था और जब ऐसे पट्टे के सृजन को पट्टे के जारी रहने के दौरान आपत्ति नहीं की गयी थी, किराएदार को पट्टे की वैधता पर इसके अवसान के बाद विवादित करने की छूट नहीं है। (पैरा 9 एवं 10)

निर्णयज विधि.–(1997)3 SCC 679; AIR 1990 SC 1725—Relied upon; 1989 PLJR 1162; 1994(2) BLJ 754—Referred to.

अधिवक्तागण.–Mr. P.K. Prasad, For the Appellant.

आदेश

यह द्वितीय अपील बेदखली अपील सं॰ 26 वर्ष 2007 में अपील खारिज करते हुए एवं

बेदखली वाद सं॰ 170 वर्ष 1989 में विद्वान अधीनस्थ न्यायाधीश-V, पूर्वी सिंहभूम, जमशेदपुर द्वारा पारित दिनांक 27.9.2007 के निर्णय को संपुष्ट करते हुए विद्वान जिला न्यायाधीश, पूर्वी सिंहभूम, जमशेदपुर द्वारा पारित दिनांक 15.9.2008 के निर्णय और डिक्री के विरुद्ध दाखिल की गयी है।

2. किराएदार-अपीलार्थी की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान वरीय अधिवक्ता, श्री पी॰ के॰ प्रसाद ने निवेदन किया कि वाद को डिक्री नहीं किया जा सकता था क्योंकि 11 माह के लिए नियत अवधि अभिधृति सृजित करते हुए दस्तावेज-प्रदर्श-3 को रजिस्टर किए जाने की अपेक्षा की जाती थी क्योंकि उस तिथि, के प्रभाव से ऐसी अभिधृति सृजित की गयी थी, के पहले से किराएदार निरन्तर कब्जे में था। उन्होंने 1989 PLJR 1162 **राजेन्द्र बहल बनाम देशराज सिंह** पर विश्वास किया।

3. अभिलेख का परिशीलन किया गया।

4. यह प्रतीत होता है कि उक्त बेदखली वाद भूस्वामी-प्रत्यर्थी द्वारा व्यतिक्रम और अभिधृति की अवधि के अवसान के आधार पर दाखिल किया गया था। विचारण न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि किराएदार व्यतिक्रमी नहीं था किन्तु पट्टे के अवसान के आधार पर उसको बेदखल किए जाने का जिम्मेवार अभिनिर्धारित किया गया। किराएदार ने अवर अपीलीय न्यायालय के समक्ष अपील दाखिल की किन्तु इसे भी खारिज कर दिया गया था।

5. विद्वान अवर न्यायालयों ने अन्य बातों के साथ साथ अभिनिर्धारित किया कि दिनांक 1.4.1988 के प्रभाव से 11 माह की अवधि के लिए विद्युत प्रभारों को अपवर्जित करते हुए 400/- रुपया मासिक किराए पर प्रश्नगत दुकान का पट्टा लेने से सहमत होते हुए दिनांक 2.5.1988 के प्रदर्श 3 पर प्रतिवादी-किराएदार ने हस्ताक्षर किया था। आगे यह अभिनिर्धारित किया गया था कि किराएदार ने पट्टे के विषयवस्तु से पूरी तरह अवगत होकर उक्त दस्तावेज पर हस्ताक्षर किया था और यह विश्वास नहीं किया जा सकता है कि इसे दबाव और प्रपीड़न के अधीन हस्ताक्षरित किया गया था। आगे यह अभिनिर्धारित किया गया था कि किराएदार ने किराया बढ़ाने के विरुद्ध अथवा गैर-रजिस्टर्ड दस्तावेज द्वारा 11 माह का नियत अवधि पट्टा के सृजन के विरुद्ध सक्षम प्राधिकारी के समक्ष नहीं गया था और केवल तभी जब पट्टे का अवसान हो गया और भूस्वामी ने किराया लेने से इंकार कर दिया, उसने उस पर दबाव डालने के लिए भूस्वामी के विरुद्ध वाद दाखिल किया।

6. (1997)3 SCC 679, सतीश कुमार बनाम जरीफ अहमद की दृष्टि में, अपीलार्थी **राजेन्द्र बहल (ऊपर)** पर विश्वास नहीं कर सकता है।

7. इसके अतिरिक्त, मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों में, **श्रीमती यमुना मालू बनाम आनन्द स्वरुप, AIR 1990 SC 1725** (पैराग्राफ-21) में प्रकाशित मामले में दिया गया निर्णय लागू करने योग्य है, जिसमें निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया था:-

> *''वोहरा और शिवचन्द्र कपूर दोनों मामलों में, यद्यपि इसमें से कोई भी विनिश्चय हेतु उद्‌भुत नहीं हुआ था, नियम अधिकथित करते हुए यह कथन किया गया है कि सीमित अभिधृति को चुनौती देने की कार्यवाही अभिधृति कायम रहने के दौरान किया जाना होगा, किराएदार द्वारा दाखिल आपत्ति पर विचार करना इतरोक्ति है। हम स्पष्ट करना चाहेंगे कि वोहरा मामले में नियम को विपरीत रूप से कथित किए जाने के चलते, विपरीत स्थितियों को उपदर्शित करना वस्तुतः अपेक्षित नहीं था। शायद संभावित घटनाओं, जो किसी विशेष मामले में उद्‌भुत हो सकती है, का सामना करने के लिए इस न्यायालय की दो पीठों में से कोई भी जाँच का एवेन्यू पूरी तरह बन्द करना नहीं चाहता था और यही कारण है कि समन्वय पीठों द्वारा निर्णीत दोनों मामलों में अपवाद उपदर्शित भी किया गया है। उक्त दोनों निर्णयों और हमारे अब के निर्णय के प्राधिकार पर, यह समझना होगा कि यदि किराएदार को सीमित अभिधृति की वैधता पर आपत्ति करनी है, इसे पट्टे के खत्म होने से पहले करना होगा, न कि भूस्वामी द्वारा पुनः कब्जा प्राप्त करने हेतु दिए गए आवेदन के प्रतिवाद*

में। हम दोहराना चाहेंगे कि भले ही ऐसा प्रयोग उपलब्ध है, इसका उपयोग बहुत सीमितता के साथ किया जाना होगा और आपवादिक स्थितियों पर लागू करना होगा। जबतक किराएदार नियंत्रक को संतुष्ट करने में सक्षम नहीं होता कि उसे पहले सारे तथ्यों की जानकारी प्राप्त करने का अवसर नहीं था और अभी-अभी उसे उनके बारे में पता चला था, ऐसी आपति ग्रहण की जानी चाहिए।''

8. कुलभूषण मलिक बनाम सैयद कमरुज्जमा रिजवी, 1994(2) BLJ 754 में प्रकाशित मामले में इस निर्णय का अनुसरण किया गया था।

9. वर्तमान मामले में, यह विवाद में नहीं है कि प्रदर्श-3 के अधीन सृजित पट्टे की अवधि के दौरान पक्षों द्वारा पट्टे के निबंधनों का पालन किया गया था और पट्टे में विनिर्दिष्ट किराए का भुगतान किया गया था। दोनों पक्षों ने अपने अधिकारों का प्रयोग किया और अपनी बाध्यताओं को पालन किया गया था। दोनों पक्षों ने अपने अधिकारों का प्रयोग किया और अपनी बाध्यताओं का पालन किया; और इस प्रकार दोनों पक्षों के बीच संविदा का पूरी तरह पालन किया गया था और इसपर कार्य किया गया था और जब पट्टा जारी रहने के दौरान ऐसे पट्टे के सृजन पर आपत्ति नहीं की गयी थी, इसके अवसान के बाद पट्टे की वैधता पर विवाद करने की छूट किराएदार को नहीं है।

10. मेरे मत में, द्वितीय अपील में विधि का सारभूत प्रश्न अंतर्ग्रस्त नहीं है जिसे तद्नुसार खारिज किया जाता है।

माननीय एम॰ वाई॰ इकबाल एवं प्रदीप कुमार, न्यायमूर्तिगण

मेघन यादव

बनाम

भारत संघ एवं अन्य

WP(S) No. 5331 of 2009. Decided on 29th March, 2010.

सेवा विधि–पेंशन–सी॰ ए॰ टी॰ द्वारा बकाया और वर्तमान पेंशन के भुगतान की प्रार्थना खारिज–आक्षेपित आदेश पारित करते हुए अधिकरण द्वारा कोई कारण नहीं दिया गया–अधिकरण ने सरकार की प्रासंगिक नीति पर चर्चा नहीं की है और मामले के तथ्य का पूर्ण अधिमूल्यन किए बिना याचिका खारिज कर दी–सेवा शर्तों के अनुसार, ई॰ डी॰ ए॰ के रूप में कार्य करते व्यक्ति को पेंशन लाभ नहीं दिया जाएगा किन्तु वे पाँच वर्ष से अधिक की सेवा के हकदार होंगे–प्रोन्नति देने में विलम्ब के कारण, याची कोटि-डी॰ में 10 वर्ष पूरा नहीं कर सका था और इस कैडर में 10 वर्ष पूरा करने में उसे कुछ माह ही रह गए थे यद्यपि याची ने विभाग में 20 वर्षों से अधिक सेवा दी थी–विभाग को 20 वर्षों से अधिक सेवा देने के नाते उसे अस्थायी अद्ध-स्थायी कर्मचारी मानना अनुचित होगा–आक्षेपित आदेश अपास्त–याची को 10 वर्षों की न्यूनतम अर्हित सेवा पूरा करने के रूप में मानने और उसे पेंशन पाने की अनुमति देने का प्रत्यर्थी को निर्देश दिया गया। (पैरा 5 से 9)

निर्णयज विधि.–(1996)7 SCC 113—Relied upon.

अधिवक्तागण.–Mr. Prashant Pallav, For the Petitioner; Md. Mokhtar Khan, For the Respondents.

आदेश

एम॰ वाई॰ इकबाल, न्यायमूर्ति.–इस याचिका द्वारा याची ने ओ॰ ए॰ सं॰ 49/09 में केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण, पटना पीठ (राँची का सर्किट कोर्ट) द्वारा पारित दिनांक 9.9.2008 के उस

आदेश के अभिखंडन हेतु प्रार्थना की है जिसके द्वारा अधिकरण ने वर्तमान पेंशन और बकाया के भुगतान हेतु याची की प्रार्थना अस्वीकार कर दी थी।

2. मामले के तथ्य संक्षेप में निम्नलिखित है:–

वर्ष 1986 में याची को गिरीडीह जिला में शाखा डाकखाने में इ० डी० ए० के रूप में नियुक्त किया गया था। याची के अनुसार वह वर्ष 1990 में कोटि-डी० कैडर डाक पीयून में प्रोन्नति हेतु पात्र और हकदार बन गया था किन्तु प्रोन्नति का मामला प्रत्यर्थीगण द्वारा लंबित रखा जाता रहा था और डी० पी० सी० संचालित नहीं की गयी थी। किन्तु दिनांक 28.7.96 को की गयी डी० पी० सी० की बैठक में याची को कोटि-डी–कैडर में प्रोन्नत किया गया था। याची का मामला यह है कि प्रत्यर्थीगण द्वारा प्रोन्नति का मामला प्रास्थगित रखा गया था जिसके परिणामस्वरुप अनेक व्यक्तियों जो याची से कनीय थे, की प्रोन्नति पर, याची से काफी पहले विचार किया गया। डाक पीयून के रूप में 9 वर्ष 8 माह पूरा करने के बाद याची अंततः अधिवर्षित हुआ। यदि याची को वर्ष 1990 के प्रभाव से प्रोन्नत किया जाता, वह डाक पीयून के कैडर में 15 वर्षों से अधिक सेवा पूरी करता। अधिवर्षिता के बाद जब याची को पेंशन नहीं दिया गया, वह समुचित अनुतोष हेतु केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण के समक्ष गया। अधिकरण ने आक्षेपित आदेश द्वारा कारण बताए बिना याचिका खारिज कर दी।

3. आदेश के परिशीलन से यह प्रतीत होता है कि अधिकरण ने सरकार की प्रासंगिक नीति पर चर्चा नहीं की है और मामले के तथ्यों का पूर्ण अधिमूल्यन किए बिना याचिका खारिज कर दी है। बेहतर अधिमूल्यन के लिए अधिकरण द्वारा पारित दिनांक 9.9.2009 के आदेश को यहाँ इसमें नीचे उद्धृत किया जाता है:–

''पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

वर्तमान ओ० ए० अनुतोषों (i) मार्च, 2006 से पेंशन के बकाया के भुगतान और (ii) वर्तमान पेंशन के भुगतान इप्सित करते आवेदक द्वारा दाखिल की गयी है।

आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि वर्ष 1986 में गिरिडीह जिला के बारमसिया शाखा डाकखाना में आवेदक को इ० डी० ए० के रूप में नियुक्त किया गया था। तत्पश्चात्, उसको उसकी ड्यूटी से उन्मोचित कर दिया गया था। उनका आगे मामला यह है कि वर्ष 1990 से ही याची कोटि डी० कैडर डाक पीयून में प्रोन्नति हेतु पात्र था। किन्तु उसे वर्ष 1990 के बजाए दिनांक 28.6.96 के प्रभाव से उक्त प्रोन्नति दी गयी थी। सरकार की नीति आवेदक द्वारा भुगती गयी क्षति की पूर्ति करने की थी क्योंकि उसकी प्रोन्नति, जिसका वह वर्ष 1990 से हकदार था, प्रास्थगित रखी गयी थी। ऐसा केवल उसके पेंशन के दावा को अस्वीकार करने हेतु किया गया था क्योंकि कोटि-डी० में उसके विलम्बित प्रोन्नति के कारण, प्रोन्नति हेतु उसकी सेवा 8 माह कम हो गयी थी। अतः ओ० ए० दाखिल किया गया है।

कोई लिखित कथन दाखिल नहीं किया गया है यद्यपि इसे दाखिल करने के लिए प्रत्यर्थीगण को पर्याप्त अवसर दिया गया था। किन्तु प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता का प्रतिवाद यह है कि आवेदक को केवल इ० डी० ए० के रूप में ही नियुक्त किया गया था और इ० डी० ए० के लिए पेंशन का प्रावधान नहीं है।

पक्षों की ओर से विद्वान अधिवक्ता द्वारा किए गए निवेदन की दृष्टि में, हम इप्सित अनुतोषों को अनुज्ञात करने के लिए याची के मामले में गुणागुण नहीं पाते हैं। तद्नुसार गुणागुण रहित होने के कारण यह ओ० ए० खारिज किया जाता है।''

4. जैसा ऊपर ध्यान में लिया गया है, अधिकरण के समक्ष प्रत्यर्थीगण द्वारा कोई लिखित बयान दाखिल नहीं किया गया था। किन्तु इस मामले में अन्य बातों के साथ यह कथन करते हुए कि दिनांक 31.3.1986 को याची ने अतिरिक्त विभागीय स्टाफ डाक पीयून के रूप में योगदान किया था, एक प्रति शपथपत्र दाखिल किया गया है। तत्पश्चात् 50 वर्ष की आयु तक अतिरिक्त विभागीय कैडर में सेवा पूरी करने के बाद उसे दिनांक 12.9.96 के ऑफिस मेमो के तहत वरीयता के आधार पर ग्रुप डी कैडर में प्रोन्नत किया गया था। याची ने दिनांक 1.11.96 को डाक पीयून का पद ग्रहण किया और 9 वर्ष, 3 माह और 27 दिनों की सेवा पूरी करने के बाद सेवा निवृत्त हुआ और चुँकि याची ने अध्यपेक्षित अर्हित सेवा अर्थात् 10 वर्ष पूरा नहीं किया था, वह पेंशन लाभों का हकदार नहीं था।

5. हमने पक्षों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता को सुना है। स्वीकृत तौर पर याची ने वर्ष 1986 से वर्ष 2006 तक अर्थात् लगभग 20 वर्षों तक विभिन्न हैसियत में डाक विभाग को लगातार सेवा दी है। वर्ष 1990 में याची ग्रुप-डी कैडर डाक पियून में प्रोन्नति का पात्र बन गया किन्तु उसके प्रोन्नति के मामले को प्रास्थगित रखा गया। किन्तु वर्ष 1996 में याची को ग्रुप डी कैडर में प्रोन्नति दी गयी थी जहाँ उसे 9 वर्षों से अधिक काम किया। सेवा शर्तों के अनुसार, इ० डी० ए० के रूप में काम करते व्यक्ति को पेंशन का लाभ नहीं दिया जाएगा किन्तु वे पाँच वर्ष अधिक सेवा के हकदार होंगे। दूसरे शब्दों में, पेंशन का भुगतान न किए जाने के कारण कर्मचारी द्वारा उठायी गयी हानि की भरपाई के लिए इ० डी० ए० की अधिवर्षिता की आयु 65 वर्ष है।

6. वर्तमान मामले में प्रोन्नति देने में हुए विलंब के कारण याची कोटि-डी० में 10 वर्षों की सेवा पूरी नहीं कर सका था और उस कैडर में 10 वर्ष पूरा करने हेतु कुछ माह ही रह गये थे यद्यपि याची ने विभाग में लगभग 20 वर्षों की सेवा दी थी। प्रति शपथपत्र में कुछ भी नहीं कहा गया है कि याची को वर्ष 1990 में प्रोन्नति क्यों नहीं दी गयी थी जबकि उसके कनिष्ठ व्यक्तियों को वर्ष 1992 में प्रोन्नति दी गयी थी। इन परिस्थितियों में, यह न्याय का मजाक होगा यदि याची को इस आधार पर पेंशन का लाभ देने से इंकार किया जाता है कि उसने 10 वर्षों की सेवाएँ पूरी नहीं की है। याची द्वारा 20 वर्षों से अधिक सेवा दिए जाने के चलते उसे अस्थायी/अर्द्ध-स्थायी कर्मचारी मानना अनुचित होगा जैसा सर्वोच्च न्यायालय ने **यशवंत हरि कटक्कर बनाम भारत संघ एवं अन्य [(1996)7 SCC 113]** मामले में अभिनिर्धारित किया है।

7. याची की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने तर्क के क्रम में हमारे समक्ष सी० डब्ल्यू० जे० सी० सं० 3893 वर्ष 2009 में पटना उच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय को प्रस्तुत किया है। पटना उच्च न्यायालय ने मामले के समरुप तथ्यों और परिस्थितियों में अभिनिर्धारित किया कि कर्मचारी पेंशन लाभों का हकदार है और प्रत्यर्थीगण को आगे निर्देश दिया कि वे उसे 10 वर्षों की न्यूनतम अर्हित सेवा पूरी किया हुआ माने और इस आधार पर उसे उसका पेंशन अनुज्ञात करें।

8. मामले पर गंभीरतापूर्वक विचार करने के बाद हम निश्चित मत के है कि अधिकरण मामले के इन सारे पहलुओं पर विचार करने में विफल रहा है और गलत रूप से याचिका खारिज कर दिया है।

9. पूर्वोक्त कारणों से, यह याचिका अनुज्ञात की जाती है और अधिकरण द्वारा पारित आक्षेपित आदेश अपास्त किया जाता है। प्रत्यर्थीगण को निर्देश दिया जाता है कि वे याची को 10 वर्षों की सेवा पूरी किया हुआ माने और जितना शीघ्र संभव हो, इस आदेश की प्रति की प्राप्ति की तिथि से दो माह की अवधि के भीतर, उसका पेंशन अनुज्ञात करें।

प्रदीप कुमार, न्यायमूर्ति.–मैं सहमत हूँ।

माननीय आर॰ के॰ मेराठिया, न्यायमूर्ति

रामा शंकर सिंह उर्फ आर॰ एस॰ सिंह एवं अन्य (3362 में)

इलेक्ट्रोस्टील इन्टीग्रेटेड लि॰ एवं एक अन्य (2515 में)

बनाम

झारखंड राज्य एवं अन्य (दोनों में)

WP(C) Nos. 3362, 2515 of 2009. Decided on 29th March, 2010.

बिहार सार्वजनिक भूमि अतिक्रमण अधिनियम, 1956—धारा 3—अतिक्रमण हटाया जाना–कार्यवाहियों के अभिखंडन हेतु प्रार्थना–इन रिट याचिकाओं में अधिकार, टाइटल और हित के बारे में तथ्यों के अनेक विवादित प्रश्न अंतर्ग्रस्त–ऐसे विवादित प्रश्नों को रिट याचिकाओं में न ही बी॰ पी॰ एल॰ इ॰ अधिनियम के अधीन प्रश्नगत संक्षिप्त कार्यवाही में विनिश्चित न तो किया जा सकता है–याची कम्पनी के हित पूर्वाधिकारी और प्रत्यर्थीगण के बीच अधिकार, टाइटल और हित से संबंधित अपील लंबित है–सक्षम प्राधिकारी अथवा न्यायालय के समक्ष समुचित कार्यवाही का सहारा लेने की छूट पक्षों को देते हुए बी॰ पी॰ एल॰ इ॰ कार्यवाही अभिखंडित। (पैरा 6 एवं 7)

निर्णयज विधि.–AIR 1966 SC 1847; AIR 1982 SC 1081; 1994(2) PLJR 731; (1997)2 SCC 267; 2000(1) PLJR 209; 2003(2) JCR 701 (Jhr.); 2004(3) JCR 89 (Jhr.); 2009(2) AIR Jhar. R-332; 2009(1) JLJR 126; 2009(2) JLJR 393; (2009) 5 SCC 373—Referred to.

अधिवक्तागण.–Mr. Delip Jerath (in both), For the Petitioners; Mr. Rajesh Shankar, For the State.

आदेश

डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 3362 वर्ष 2009 में, याचीगण ने इलेक्ट्रो स्टील इन्टीग्रेटेड लि॰ (संक्षेप में कम्पनी) का कर्मचारी होने के नाते बिहार सार्वजनिक भूमि अतिक्रमण अधिनियम (संक्षेप में बी॰ पी॰ एल॰ इ॰ अधिनियम) के अधीन कलक्टर-सह-डिविजनल फॉरेस्ट ऑफिसर, बोकारो फॉरेस्ट डिविजन के न्यायालय में लंबित बी॰ पी॰ एल॰ इ॰ केस सं॰ 2 से 11 वर्ष 2009–2010 में उनको और कम्पनी को प्लॉट सं॰ 1159, 1120 एवं 1389 में वन क्षेत्र में गैर-वन सम्बन्धी कार्य करने से निर्बंधित करते पारित आदेशों सहित उनके विरूद्ध आरम्भ की गयी समस्त कार्यवाहियों के अभिखंडन हेतु प्रार्थना की है।

डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 2515 वर्ष 2009 कम्पनी द्वारा खरीदे गए प्रश्नगत भूमि के कब्जे और उपभोग में हस्तक्षेप करने से प्रत्यर्थीगण को निर्बंधित करने हेतु याची कम्पनी द्वारा दाखिल की गयी है।

2. चूँकि दोनों रिट याचिकाओं में समान प्रश्न अंतर्ग्रस्त हैं, उन्हें साथ सुना जा रहा है और इस आदेश से निपटाया जा रहा है।

3. याचीगण की ओर से किए गए निवेदन निम्नलिखित हैं:-

(i) यह कि बी॰ पी॰ एल॰ इ॰ अधिनियम के अधीन उक्त कार्यवाही संक्षिप्त प्रकृति का होने के चलते अधिकार, अभिधान, हित एवं कब्जे के विवादित प्रश्नों का विनिश्चय नहीं किया जा सकता है विशेषत: तब जब समरूप प्रश्नों को अंतर्ग्रस्त करते वन विभाग द्वारा दाखिल वाद से उद्भूत अपील लंबित है।

यह कि अनुसूची–A एवं B भूमि में वादीगण के स्थायी अधिभोग रैयती अधिकार की घोषणा और कब्जे की संपुष्टि के लिए अभिधान वाद सं॰ 25 वर्ष 1996 वादीगण–हरिपद महतो, कैलाशपति मेहता, सुमित्रा बाला देवी, भागबन्द गाँव के स्व॰ रघुनाथ मेहता के पुत्र और पत्नी द्वारा मुख्य सचिव,

बिहार सरकार; सचिव, वन विभाग, बिहार सरकार; उप-कमिश्नर, बोकारो, डिविजनल फॉरेस्ट ऑफिसर, धनबाद; और रेन्जर, चास रेन्ज वन विभाग, चास, बोकारो के विरूद्ध सब-जज-II, बोकारो के न्यायालय में संस्थापित किया गया था। अनुसूची–A भागबन्द मौजा में प्लॉट सं॰ 1159 में 8.50 एकड़, प्लॉट सं॰ 1389 में 3.05 एकड़, प्लॉट सं॰ 1321 में 5.13 एकड़ और प्लॉट सं॰ 1120 में 1.00 एकड़ से गठित थी।

यह कि प्रत्यर्थीगण–वन विभाग ने वाद का प्रतिवाद किया।

निम्नलिखित विवाद्यक विरचित किए गए:

(i) क्या वर्तमान रूप में वाद पोषणीय है?

(ii) क्या वाद के लिए वाद हेतुक है?

(iii) क्या वाद अधित्यजन, विबंध और उपमति के सिद्धान्त द्वारा वर्जित हैं?

(iv) क्या वाद भूमि का व्यवस्थापन विलेख विधि के अनुरूप है?

(v) क्या वाद भूमि को वादीगण द्वारा गेहूँ पैदा करने वाले खेत में परिवर्तित कर दिया गया है?

(vi) क्या बिहार वन द्वारा प्रत्येक वाद प्लॉट का समस्त क्षेत्र अर्जित कर लिया गया है?

(vii) क्या वादी वाद में प्रार्थित अनुतोषों का हकदार है?

(viii) क्या वादी किसी अन्य अनुतोष अथवा अनुतोषों का हकदार है?

यह कि विवाद्यक सं॰ 4 एवं 5 सकारात्मक विनिश्चित किए गए थे।

विवाद्यक सं॰ 6 के संबंध में, अन्य बातों के साथ साथ यह अभिनिर्धारित किया गया था कि प्रतिवादीगण का दावा कि वाद भूमि को संरक्षित क्षेत्र घोषित किया गया है, मिथक मात्र है और यह अभी तक असिद्ध रहा है और यह कि भारतीय वन अधिनयम, 1927 की धारा 29(3) के अधीन जाँच न होने के कारण रैयतों का दावा अभी तक निर्वापित नहीं हुआ है। आगे यह अभिनिर्धारित किया गया था कि वादीगण वर्ष 1940-42 से, जब बिहार निजी वन अधिनियम अस्तित्व में नहीं था, वाद भूमि के शांतिमय, बेरोक-टोक निरन्तर कब्जे में है और इस प्रकार वादीगण ने 12-30 वर्षों के अपने निरन्तर कब्जे द्वारा भूमि के उपर रैयत अधिकार तो क्या अजेय अधिकार अर्जित किया; और यह कि वादीगण ने सी॰ एन॰ टी॰ अधिनियम के प्रावधानों के अधीन वाद भूमि का अधिभोग अधिकार हासिल कर लिया था जिन्हें तब तक बेदखल नहीं किया जा सकता है जबतक सी॰ एन॰ टी॰ अधिनियम की धारा 22 के अधीन प्रावधानित बेदखली की डिक्री निष्पादित नहीं की जाती है।

यह कि ऐसे निर्णय एवं डिक्री के विरूद्ध डिविजनल फॉरेस्ट ऑफिसर, धनबाद और रेन्ज अधिकारी, चास द्वारा जिला न्यायाधीश, बोकारो के न्यायालय में टाइटल अपील सं॰ 33 वर्ष 2007 नामक अपील दाखिल की गयी थी और यह लंबित है। कि आक्षेपित कार्यवाहियों की शुरूआत गैर-कानूनी, मनमाना और असद्भावपूर्व है।

AIR 1982 SC 1081, आंध्र प्रदेश सरकार बनाम थुम्मल्ला कृष्ण राव; 2009(2) AIR Jhr. R, 332, नवचेतन सहकारी गृह निर्माण समिति लि॰ बनाम झारखंड राज्य; 2009 (1) JLJR 126, **हारनगंज गृह निर्माण सहयोग समिति बनाम झारखंड राज्य; 2004(3) JCR 89 (Jhr.), कमल कुमार सिंघानिया बनाम झारखंड राज्य, 2003(2) JCR 701 (Jhr.), मनोहर लाल जैन बनाम झारखंड राज्य;** 2001(1) PLJR 209, **नागेन्द्र मिस्त्री बनाम बिहार राज्य** एवं 2009(2) JLJR 393, **भरत सिंह बनाम झारखण्ड राज्य** पर विश्वास व्यक्त किया गया था।

(ii) यह कि भारतीय वन अधिनियम, 1972 की धारा 29 के अधीन दिनांक 24.5.1958 को अधिसूचना जारी करने के बाद संबंधित व्यक्तियों के अधिकारों को निर्वापित करते हुए अधिनियम की धारा 29(3) के अधीन अनुध्यात जाँच-पड़ताल और सर्वेक्षण करने के बाद अधिसूचना जारी करना आवश्यक था किन्तु ऐसी कोई अधिसूचना जारी नहीं की गयी थी और इस कारण आक्षेपित कार्यवाहियाँ आरम्भ करने हेतु और यह दावा करने हेतु कि प्रश्नगत भूमि वन भूमि है, प्रत्यर्थीगण दिनांक 24.5.1958 की उक्त अधिसूचना पर विश्वास नहीं कर सकते हैं। कि जब वन विभाग धारा 29(3) के अधीन अधिसूचना प्रस्तुत नहीं कर सका था, वे दावा कर रहे है कि भूमि को ''निजी वन'' घोषित किया गया है। यह कि निजी वन घोषित करते हुए अधिसूचना से यह प्रतीत होगा कि निजी वन के तौर पर घोषित प्लॉटों की सीमा उल्लिखित नहीं की गयी है और इसके अतिरिक्त प्लॉट सं॰ 1389 एवं 1321 उसमें उल्लिखित है ही नहीं।

यह कि प्रश्नगत रैयती–कृषि भूमि रजिस्टर्ड विक्रय-विलेखों के अधीन कम्पनी द्वारा खरीदी गयी थी क्योंकि सरकार के माध्यम से भूमि अर्जन में विलम्ब हो रहा था। कम्पनी का विक्रेताओं और उसके पूर्वाधिकारियों के अधिकार, अभिधान और हित सरकार में निहित नहीं थे और विधि की प्रक्रिया द्वारा निर्वापित नहीं किए गए थे। **AIR 1966 SC 1847, बिहार राज्य बनाम लेफ्टिनेंट कर्नल के॰ एस॰ आर॰ स्वामी** पर विश्वास किया गया था।

(iii) नवीनतम तकनीकों का इस्तेमाल करते हए, भारतीय सर्वेक्षण द्वारा वर्ष 1973-74 में प्रश्नगत समस्त क्षेत्रों का सर्वेक्षण किया गया था और ऐसे सर्वेक्षण नक्शे से यह प्रतीत होगा कि क्षेत्र का कोई हिस्सा, जिस पर कम्पनी का निर्माण कार्य चल रहा था, वन क्षेत्र अथवा निजी संरक्षित वन अंतर्विष्ट नहीं करता है।

(iv) संपोषण योग्य विकास के सिद्धान्तों को ध्यान में रखा जाना चाहिए। उद्योग स्थापित करना और वन सरंक्षण दोनों महत्वपूर्ण है। एन॰ इ॰ इ॰ आर॰ आइ॰ (राष्ट्रीय पर्यावरण अभियन्त्रण शोध संस्थान) भारत का एक अग्रणी और प्रीमियर पर्यावरण अध्ययन संस्थान ने प्लान्ट क्षेत्र के 10 किलोमीटर के रेडियस के लिए-वृहत पर्यावरण अध्ययन संचालित करने के बाद अपना अनुमोदन दिया है। उद्योग राजस्व अर्जित करेगा और बहुत अधिक प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रोजगार उत्पन्न करेगा। कम्पनी ने एक आधुनिक शहर के विकास की योजना बनायी है और 1,50,000 वृक्षों के रोपन का कार्यक्रम हाथ में लिया है।

4. राज्य-प्रत्यथी के निवेदन निम्नलिखित है:-

(i) यह कि कम्पनी को चन्दनक्यारी प्रखंड में अपना इन्टीग्रेटेड स्टील प्लॉन्ट स्थापित करना था जिसके लिए अनुज्ञा दी गयी थी किन्तु इसने वन संरक्षण अधिनियम, 1980 की धारा 2 के अधीन पर्यावरण और वन मंत्रालय, भारत सरकार सहित किसी भी सक्षम प्राधिकारी से चास प्रखंड के भागबन्द गाँव में इसे स्थापित करने की अनुज्ञा नहीं ली है। यह कि कम्पनी और इसके कर्मचारियों ने भागबन्द मौजा के संरक्षित वन पर गैर वन सम्बन्धी कार्य आरंभ कर दिया।

(ii) यह कि अधिसूचना सं॰ सी॰/एफ॰-17014/58-1429-R दिनांक 24.5.1958 के तहत भारतीय वन अधिनियम, 1927 की धारा 29 के अधीन प्रश्नगत भूमि को संरक्षित वन भूमि के तौर पर अधिसूचित और सीमांकित किया गया है। वन व्यवस्थापन अधिकारी नियुक्त किया गया था जिसने सारे हितबद्ध रैयत की ओर से उसके समक्ष प्रस्तुत समस्त प्रासंगिक दस्तावेजों का सत्यापन करने और विचार में लेने के बाद विभिन्न प्लॉटों को संरक्षित वन के तौर पर सीमांकित करते हुए आवश्यक आदेश/जाँच रिपोर्ट पारित किया। उस आधार पर एक विस्तृत कैडेस्ट्रल मैप तैयार किया गया था जिसमें भागबन्द मौजा के विभिन्न प्लॉटों को सीमांकित किया गया था। सीमांकित प्लॉटों का क्षेत्र है: प्लॉट सं॰ 1120 में 51.34 एकड़, प्लॉट सं॰ 1159 में 51.62 एकड़, प्लॉट सं॰ 1389 में 21.64 एकड़ और प्लॉट सं॰

1321 में 8.78 एकड़। उक्त कैडेस्ट्रल नक्शे पर तीन संबंधित अधिकारियों अर्थात वन व्यवस्थापन अधिकारी, डिविजनल फॉरेस्ट ऑफिसर और सर्वेक्षकों का अधीक्षक ने अपना-अपना हस्ताक्षर किया। डब्ल्यू॰ पी॰ एस॰ सं॰ 3362 वर्ष 2009 के प्रति शपथपत्र के परिशिष्ट B एवं C को निर्दिष्ट किया गया था।

यह कि तत्पश्चात्, भारतीय वन अधिनियम की धारा 30 के अधीन अधिसूचना प्रख्यापित की गयी है, और इस प्रकार अधिसूचित सीमांकित वन भूमि के तौर पर क्षेत्र को घोषित करने के लिए धारा 29 के अधीन सारे प्रावधानों को पूरा किया गया है कि सर्वे खतियान में, प्रश्नगत भूमि के दर्जे और प्रकृति का ''गैर-आबाद मालिक-इसमाल मालिक'' और ''जंगल-झाड़ी'' के तौर पर उल्लिखित किया गया है। यह कि कम्पनी ने रजिस्टर्ड विक्रय-विलेखों द्वारा प्रश्नगत प्लॉटों पर अधिकार अर्जित नहीं किया था।

(iii) 1994(2) PLJR 731, **भुनेश्वर पंडित बनाम बिहार राज्य** की दृष्टि में, रिट न्यायालय को तथ्य के विवादित प्रश्नों पर विचार नहीं करना चाहिए।

(iv) **(2009) 5 SCC 373, नेचर लवर्स मूवमेन्ट बनाम केरल राज्य** में निर्णय के पैराग्राफ 39, 47, 48, 52(2) एवं 52(3) पर यह प्रतिवाद करने हेतु विश्वास किया गया था कि वन संरक्षण अधिनियम, 1980 भूतलक्षी प्रभाव से लागू होगा; यह कि वन क्षेत्र में गैर-वन सम्बन्धी कार्य करने के लिए केन्द्र सरकार का पूर्वानुमोदन आवश्यक है, और यह अधिनियम स्वामित्व की प्रकृति अथवा वर्गीकरण को ध्यान में लिए बिना समस्त वनों पर लागू होगा। **(1997)2 SCC 267, टी॰ एन॰ गोदावर्मन थिरूमुल्कपद बनाम भारत संघ एवं अन्य** में प्रकाशित निर्णय के पैराग्राफ 4 पर भी विश्वास किया गया था।

5. याची की ओर से दिया गया जवाब निम्नलिखित है:-

यह कि परिशिष्ट-B एवं C दर्शाते हैं कि ऐसी कार्यवाही भारतीय वन अधिनियम की धारा 29 के अधीन दिनांक 24.5.1958 की अधिसूचना जारी करने के पहले की गयी थी, और यह कि धारा 30 के अधीन अधिसूचना केवल वृक्षों को आरक्षित करने के लिए है। इस प्रकार, अधिनियम की धारा 29(3) के अधीन जारी किसी अधिसूचना को प्रस्तुत करने में प्रत्यर्थीगण विफल रहे हैं और इस कारण वे यह दावा नहीं कर सकते हैं कि प्रश्नगत भूमि संरक्षित वन है। प्रत्यर्थीगण ने डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 3362 वर्ष 2009 में पारित दिनांक 2.12.2009 के आदेश का अनुपालन भी नहीं किया था। किन्तु स्वयं प्रत्यर्थीगण द्वारा उपाबद्ध निम्नलिखित चार्ट से यह प्रतीत होगा कि प्रश्नगत भूमि का अंश वाद-अपील में अंतर्ग्रस्त हैं।

मौजा	प्लॉट संख्या	कुल क्षेत्र	संरक्षित वन के रूप में अधिसूचित क्षेत्र	टी॰/एस॰ के तहत विक्रेता को डिक्री किया गया क्षेत्र	याची द्वारा किया गया अतिक्रमण	सर्वे खतियान में जंगल-झाड़ी के रूप में दर्ज क्षेत्र	वन संरक्षण अधिनियम की धारा 2 के अधीन भारत के केन्द्र सरकार द्वारा प्रदत अनुज्ञा
1	2	3	4	5	6	7	8
भाग-	1120	89.16	51.34	1.00	16.23	89.16	नहीं लिया गया
बन्द	1159	99.84	51.62	8.50	51.62	99.84	नहीं लिया गया
	1389	66.98	21.64	3.05	21.64	66.98	नहीं लिया गया
	कुल	255.98	124.60	12.55	89.49	255.98	

6. पक्षों के पूर्वोक्त निवेदन से यह प्रतीत होगा कि इन रिट याचिकाओं में अधिकार, अभिधान एवं हित के बारे में तथ्यों के अनेक विवादित प्रश्न अंतर्ग्रस्त हैं।

पक्षों द्वारा विश्वास किए गए निर्णयों की दृष्टि में, जैसा उपर ध्यान में लिया गया है, ऐसे विवादित प्रश्नों के न तो इन रिट याचिकाओं में और न ही बी॰ पी॰ एल॰ इ॰ अधिनियम के अधीन प्रश्नगत संक्षिप्त कार्यवाही में विनिश्चित किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त, याची-कम्पनी के हित पूर्वाधिकारियों और प्रत्यर्थीगण के बीच उक्त प्रश्नों को अंतर्ग्रस्त करना वाद से उद्‌भूत अपील-टी॰ एस॰ सं॰ 33 वर्ष 2007 लंबित है। किन्तु, यह संप्रेक्षित किया जाता है कि उक्त अपील को शीघ्रतापूर्वक निपटाया जाना चाहिए।

7. परिणामस्वरूप, प्रश्नगत बी॰ पी॰ एल॰ इ॰ कार्यवाही, पक्षों को सक्षम प्राधिकारी/विधि के न्यायालयों के समक्ष समुचित कार्यवाही का सहारा लेने एवं/या इसका अनुसरण करने की छूट देते हुए, अभिखंडित की जाती है। किन्तु आज की तिथि पर बनी हुई यथास्थिति आज से एक माह तक सक्षम प्राधिकारी/न्यायालय से आदेश प्राप्त करने हेतु पक्षों को सक्षम करने के लिए कायम रखी जाएगी।

किन्तु, यह स्पष्ट किया जाता है कि अन्य कार्यवाही/वाद/अपील आदि में पक्षों के अपने अपने मामलों पर यह आदेश प्रतिकूल प्रभाव नहीं डालेगा।

इन संप्रेक्षणों, छूट और निर्देशों के साथ, ये रिट याचिकाएँ निपटायी जाती है। तथापि, कोई व्यय नहीं।

माननीय अमरेश्वर सहाय, न्यायमूर्ति

चंकू ओराँव

बनाम

बिहार राज्य एवं अन्य

WP(C) No. 4225 of 2002. Decided on 27th March, 2010.

छोटानागपुर अभिधृति अधिनियम, 1908—धारा 71-A–सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908—धारा 11—प्रत्यावर्तन–आक्षेपित आदेशों द्वारा याचिका अनुज्ञात–विवाद्यक कि क्या याची अभिलिखित अभिधारी का वैध उत्तराधिकारी था, धारा 71-A के अधीन पूर्व कार्यवाही में पक्षों के बीच विधि के सक्षम न्यायालय द्वारा पहले ही विनिश्चित किया जा चुका था–इस प्रकार इस बिन्दु को, जिसे पूर्व कार्यवाही में पहले ही विनिश्चित किया जा चुका था, उठाते हुए विवादित भूमि के प्रत्यावर्तन के लिए प्रत्यर्थीगण द्वारा दाखिल द्वितीय याचिका पूर्व न्याय द्वारा वर्जित होने के चलते पोषणीय नहीं है–आक्षेपित आदेश अभिखंडित–याचिका अनुज्ञात।

(पैरा 9 से 11)

निर्णयज विधि.–1987 BLT 332 (Pat.) (RB); 2003(3) JLJR 626; 2003(3) JCR 548; 2004(1) JCR 237 (Jhr.); 2010(1) JCR 130—Relied upon.

अधिवक्तागण.–Mr. Ayush Aditya, For the Petitioner; Mr. M.H. Khuzaima, For the Respondents.

निर्णय

अमरेश्वर सहाय, न्यायमूर्ति.—इस रिट याचिका में याची ने विशेष अधिकारी, राँची द्वारा पारित दिनांक 29.3.2000 के आदेश (परिशिष्ट-3), उप-कमिश्नर, राँची द्वारा पारित दिनांक 3.9.2001 के अपीलीय आदेश (परिशिष्ट-4) और कमिश्नर, दक्षिणी छोटानागपुर डिवीजन, राँची द्वारा पारित दिनांक

14.3.2002 के पुनरीक्षण आदेश, जिसके द्वारा छोटानागपुर अभिधृति अधिनियम की धारा 71-A के अधीन भूमि के प्रत्यावर्तन के लिए प्रत्यर्थी सं० 6 से 8 तक द्वारा दाखिल की गयी याचिका अनुज्ञात की गयी थी, को चुनौती दी गयी है।

2. संक्षेप में तथ्य ये हैं कि 8.29 एकड़ माप वाली खाता सं० 85 की भूमि टोना ओराँव, चरगा ओराँव, लेथो ओराँव और झूबा ओराँव के नामों में दर्ज थी। टोना ओराँव और लेथो ओराँव की मृत्यु नि:संतान हो गयी। चरगा ओराँव को एक पुत्री नगिया ओराँव थी जिसका विवाह जटा ओराँव से हुआ था। उक्त जटा ओराँव को चरगा ओराँव द्वारा ''घर दामाद'' के रूप में अपना लिया गया था। याची के अनुसार, ओराँव पारम्परिक विधि के मुताबिक जटा ओराँव चरगा ओराँव का वैध उत्तराधिकारी और Successor बन गया। याची नगिया ओराँव से जन्मा जटा ओराँव का पुत्र है और इसलिए उसने चरगा ओराँव का वैध उत्तराधिकारी होने का दावा किया है। झूबा ओराँव अपने पीछे दो पुत्रों अर्थात् गंडूरा ओराँव और सुका ओराँव को छोड़कर मृत हो गया। सुका ओराँव की मृत्यु नि:संतान हुई और गंडूरा ओराँव को तीन पुत्र अर्थात् मंगा ओराँव, झूबा ओराँव और घूरन ओराँव अर्थात् प्रत्यर्थी सं० 6 से 8 तक थे। मंगा ओराँव अर्थात यहाँ इसमें प्रत्यर्थी सं० 6, झूबा ओराँव का पोता है।

याची के अनुसार, प्रत्यर्थी सं० 6 मंगा ओराँव ने कार्यवाही के अधीन भूमि के प्रत्यावर्तन हेतु प्रार्थना करते हुए याची के विरुद्ध छोटानागपुर अभिधृति अधिनियम की धारा 71A के अधीन प्रत्यावर्तन के लिए याचिका दाखिल की। उक्त मामला विशेष अधिकारी, राँची के न्यायालय में एस० ए० आर० केस सं० 427/1978 के रूप में दर्ज किया गया था।

आगे, याची के अनुसार, नोटिस दिए जाने पर वह उपस्थित हुआ और अन्य बातों के साथ साथ यह कथन करते हुए कि उसका पिता चरगा ओराँव का ''घर दामाद'' था और इस कारण वह अभिलिखित अभिधारी का वैध उत्तराधिकारी और Successor है, लिखित बयान दाखिल किया। वह कार्यवाही के अधीन भूमि के कब्जे में था और वह इसे उसके नाम में नामांतरित भी किया गया था। वह लगान भी दे रहा था। विशेष अधिकारी ने दिनांक 19.1.1982 के अपने आदेश द्वारा यह अभिनिर्धारित करते हुए कि याची भी अभिलिखित अभिधारी चरगा ओराँव का वैध उत्तराधिकारी था, प्रत्यर्थी सं० 6 द्वारा प्रत्यावर्तन हेतु दाखिल याचिका को अस्वीकार कर दिया। दिनांक 19.1.1982 का पूर्वोक्त आदेश रिट याचिका के परिशिष्ट-1 के तौर पर उपाबद्ध है। यह कथन किया गया है कि उक्त आदेश अंतिम बन गया क्योंकि किसी अन्य उच्चतर न्यायालय में इसे चुनौती नहीं दी गयी थी।

याची का आगे मामला यह है कि तत्पश्चात, प्रत्यर्थी सं० 6 मंगा ओराँव ने खाता सं० 85 के अधीन 825 एकड़ भूमि में से 53 डिसिमल भूमि के संबंध में याची के नाम में की गयी जमाबन्दी के रद्दकरण के लिए याचिका दाखिल की। याची उपस्थित हुआ और मामले का प्रतिवाद किया और पक्षों को सुनने के बाद उप-कलक्टर, भूमि सुधार, सदर, राँची ने दिनांक 24.6.1999 के अपने आदेश (परिशिष्ट-2) द्वारा जमाबन्दी के रद्दकरण हेतु याचिका इस आधार पर अस्वीकार कर दिया अभिधान से संबंधित विवाद को वह सिविल न्यायालय द्वारा विनिश्चित किया जा सकता है। तत्पश्चात् प्रत्यर्थी सं० 6 से 8 तक ने यह प्रतिवाद करते हुए कि प्रत्यर्थी सं० 6 से 8 तक अभिलिखित अभिधारी के उत्तराधिकारी थे और याची नगिया ओराँव अर्थात चरगा ओराँव की पुत्री का पुत्र है और इसलिए चरगा ओराँव की पुत्री का पुत्र होने के नाते वह चरगा ओराँव का वैध उत्तराधिकारी नहीं हो सकता है, खाता सं० 85 के विभिन्न भूखंडों के प्रत्यावर्तन हेतु प्रार्थना करते हुए छोटानागपुर अभिधृति अधिनियम की धारा 71A के अधीन याची के विरुद्ध याचिका दाखिल की। उक्त मामला एस० ए० आर० केस सं० 12/97-98 के तौर पर दर्ज किया गया था। याची ने अपने विरुद्ध दाखिल मामले का प्रतिवाद किया और कथन

किया कि वह चरगा ओराँव का वैध उत्तराधिकारी है क्योंकि चरगा ओराँव ने उसके पिता को घर दामाद के रूप में अपनाया था और चूँकि विवाद/विवाद्यक पहले ही एस० ए० आर० केस सं० 427 वर्ष 1978 में याची के पक्ष में दिनांक 19.1.1982 के आदेश (परिशिष्ट-1) द्वारा न्यायनिर्णित और विनिश्चित किया जा चुका था, जो अंतिम बन गया, और इस कारण प्रत्यर्थीगण द्वारा प्रश्नगत भूमि के प्रत्यावर्तन के लिए दाखिल द्वितीय अपील पूर्व न्याय द्वारा वर्जित है।

3. विशेष अधिकारी ने दिनांक 29.9.1999 के अपने आदेश द्वारा प्रत्यावर्तन याचिका इस आधार पर अस्वीकार कर दिया कि यह पूर्व न्याय द्वारा वर्जित है। विशेष अधिकारी के इस आदेश को प्रत्यर्थीगण द्वारा अपील में चुनौती दी गयी थी। अपीलीय न्यायालय ने विशेष अधिकारी द्वारा पारित आदेश अपास्त कर दिया और नए निर्णय के लिए मामला विशेष अधिकारी के पास वापस भेज दिया। मामला भेजे जाने के बाद विशेष अधिकारी ने यह अभिनिर्धारित करते हुए कि याची चरगा ओराँव की पुत्री का पुत्र होने के चलते उसका वैध उत्तराधिकारी नहीं था, प्रत्यर्थी सं० 6 से 8 तक के पक्ष में दिनांक 29.3.2000 के अपने आदेश (परिशिष्ट-3) द्वारा प्रत्यावर्तन याचिका अनुज्ञात किया।

4. याची ने उप-कमिश्नर, राँची के समक्ष अपील दाखिल करके विशेष अधिकारी के आदेश को चुनौती दी किन्तु इसे परिशिष्ट-4 में अंतर्विष्ट दिनांक 3.9.2001 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया था। तत्पश्चात् याची ने कमिश्नर, दक्षिणी छोटानागपुर डिवीजन, राँची के समक्ष पुनरीक्षण दाखिल किया किन्तु इसे ग्रहण के चरण पर ही दिनांक 8.1.2002 के आदेश (परिशिष्ट-5) द्वारा खारिज कर दिया गया था।

5. याची ने इस रिट याचिका के परिशिष्ट-3, 4 और 5 में अंतर्विष्ट पूर्वोक्त तीनों आदेशों को इस आधार पर चुनौती दी है कि तीनों न्यायालयों ने उसके द्वारा उठाए गए पूर्व-न्याय के बिन्दु को विचार में नहीं लिया था। याची ने निवेदन किया कि प्रत्यर्थी सं० 8 की प्रेरणा पर छोटानागपुर अभिधृति अधिनियम की धारा 71A के अधीन आरम्भ की गयी पूर्व कार्यवाही में यह बिन्दु की याची चरगा ओराँव का वैध उत्तराधिकारी था या नहीं, यह अभिनिर्धारित करते हुए कि याची अभिलिखित अभिधारी का वैध उत्तराधिकारी था, पहले ही विनिश्चित किया जा चुका था। उक्त बिन्दु अब अंतिम बन चुका है क्योंकि छोटानागपुर अभिधृति अधिनियम की धारा 71A के अधीन पूर्व कार्यवाही में पारित आदेश को किसी उच्चतर न्यायालय के समक्ष चुनौती नहीं दी गयी थी और इसलिए तीनों न्यायालयों को यह अभिनिर्धारित करने की याची पुत्री का पुत्र होने के नाते चरगा ओराँव का वैध उत्तराधिकारी नहीं है, की अधिकारिता नहीं थी।

6. परिशिष्ट-3, 4 और 5 में अंतर्विष्ट आक्षेपित आदेशों का समर्थन करते हुए राज्य प्रत्यर्थीगण ने प्रति शपथपत्र दाखिल किया है। याची के दावा का प्रतिवाद करते हुए प्रत्यर्थीगण सं० 6 से 8 तक ने पृथक प्रति शपथपत्र दाखिल किया है।

7. प्रत्यर्थीगण द्वारा यह विवादित नहीं किया गया है कि वर्ष 1978 में पहले ही प्रत्यावर्तन के लिए प्रत्यर्थी सं० 6 मंगा ओराँव ने याचिका दाखिल की थी जिसे एस० ए० आर० केस सं० 427 वर्ष 1978 के तौर पर दर्ज किया गया था और उस कार्यवाही में विशेष अधिकारी, राँची ने दस्तावेजी और अभिलेख पर उपस्थित मौखिक साक्ष्य पर विचार करने के बाद अभिनिर्धारित किया कि याची चन्कू ओराँव अभिलिखित अभिधारी चरगा ओराँव का पौत्र (नाती) था। चूँकि चरगा ओराँव को पुत्र नहीं था और इस कारण वह चंकू के पिता को ''घर दामाद'' के रूप में लाया। चंकू सदैव नाना-नानी के साथ रहा। यहाँ तक कि भूमि के संबंध में बुझारत की चंकू के घर में उसके नाना अर्थात् चरगा ओराँव द्वारा सृजित किया गया था। तद्नुसार, यह अभिनिर्धारित किया गया था कि चंकू अभिलिखित अभिधारी चरगा ओराँव का वैध उत्तराधिकारी था।

8. यह विवाद भी नहीं किया गया है कि इस रिट याचिका के परिशिष्ट-1 में अंतर्विष्ट दिनांक 19.1.1982 को विशेष अधिकारी द्वारा पारित आदेश को प्रत्यर्थीगण द्वारा किसी अन्य उच्चतर न्यायालय के समक्ष चुनौती नहीं दी गयी थी और इस कारण ऐसी स्थिति में दिनांक 19.1.1982 उपरोक्त आदेश अंतिम बन गया था।

9. इस प्रकार, यह विवाद्यक कि याची अभिलिखित अभिधारी चरगा ओराँव का वैध उत्तराधिकारी था या नहीं, सी॰ एन॰ टी॰ अधिनियम की धारा 71A के अधीन पूर्व कार्यवाही में पक्षों के बीच विधि के सक्षम न्यायालय द्वारा पहले ही विनिश्चित किया जा चुका था। ऐसी स्थिति में, प्रश्न कि क्या इसी बिन्दु, जिसे पूर्व कार्यवाही में पहले ही विनिश्चित किया जा चुका था, को उठाते हुए प्रश्नगत भूमि के प्रत्यावर्तन के लिए प्रत्यर्थी सं॰ 6 से 8 तक द्वारा दाखिल द्वितीय याचिका को पोषणीय कहा जा सकता है?

10. निर्णयों की एक श्रृंखला में, इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि समरुप आधार पर प्रत्यावर्तन के लिए द्वितीय याचिका पोषणीय नहीं है क्योंकि यह पूर्व न्याय द्वारा वर्जित है। इस संबंध में, **अश्विनी कुमार राय बनाम बिहार राज्य, 1987 BLT पृष्ठ 332 (Pat. (RB); अनुपमा राय बनाम बिहार राज्य एवं अन्य,** 2003 (3) JLJR 626; **2003(3) JCR 548; गदिया ओराँव एवं अन्य बनाम झारखंड राज्य एवं अन्य, 2004 (1) JCR 237 (Jhr.)** और **शर्मिष्ठा सिन्हा एवं मीरा प्रसाद बनाम झारखंड राज्य एवं अन्य, 2010 (1) JCR 130** में प्रकाशित मामलों को निर्दिष्ट किया है।

11. वर्तमान मामले में भी मैं पाता हूँ कि चूँकि प्रत्यर्थी सं॰ 6 की प्रेरणा पर छोटानागपुर अभिधृति अधिनियम की धारा 71A के अधीन आरम्भ की गयी पूर्व कार्यवाही में पक्षों के बीच विवाद्यक का बिन्दु पहले ही विनिश्चित किया जा चुका था और इस कारण निजी प्रत्यर्थीगण द्वारा दाखिल बाद की याचिका पूर्व न्याय द्वारा वर्जित होने के चलते पोषणीय नहीं है। तद्नुसार, यह रिट याचिका अनुज्ञात की जाती है। परिशिष्ट-3, 4 और 5 में अंतर्विष्ट विशेष अधिकारी, राँची, उप-कमिश्नर, राँची और कमिश्नर, दक्षिण छोटानागपुर डिवीजन, राँची द्वारा पारित आक्षेपित आदेशों को एतद् द्वारा अभिखंडित किया जाता है।

किन्तु, मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों में, व्यय का आदेश नहीं होगा।

माननीय ज्ञान सुधा मिश्रा, मुख्य न्यायाधीश एवं डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति

मुकुन्द मुरारी सिंह उर्फ मंगल सिंह

बनाम

बिहार राज्य

Cr. Appeal No. 396 of 2000(R). Decided on 15th April, 2010.

कोलेबीरा थाना केस सं॰ 19 वर्ष 1995 (G.R. No. 142 वर्ष 1995) से उद्भूत S.T. No. 139 वर्ष 1996 में अपर सत्र न्यायाधीश, सिमडेगा द्वारा पारित क्रमशः दिनांक 28.8.2000 एवं 29.8.2000 के दोषसिद्धि के निर्णय एवं दण्डादेश के विरुद्ध।

भारतीय दण्ड संहिता, 1860—धारा 302—हत्या—आजीवन कारावास—सूचक के माता-पिता की हत्या धारदार हथियार से की गयी—बालक साक्षी का साक्ष्य—किसी प्रत्यक्षदर्शी व्यक्ति का

कथन अभिलिखित करने में कुछ घंटों/दिनों का विलम्ब गम्भीर अशक्तता की कोटि का नहीं हो सकता है परन्तु एक साथ कई वर्षों का दीर्घ विलम्ब अभियोजन वृत्तांत पर संदेह उत्पन्न करता है–अभिकथित घटना के दो वर्षों के उपरांत विचारण के दौरान, कठघरे में साक्षी द्वारा अपीलार्थी की पहचान इसकी विश्वसनीयता पर बड़ा प्रश्न उत्पन्न करता है जो भरोसा उत्पन्न नहीं करता है–भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 302 के अंतर्गत अपीलार्थी की दोषसिद्धि सुनिश्चित करने के लिए विधि की अपेक्षा तथा तात्विक साक्ष्य की वर्तमान मामले में अंतर्निहित रूप से कमी है–सूचक ने घटना का प्रत्यक्षदर्शी होने का दावा नहीं किया–अपने माता-पिता के हत्यारे के तौर पर अपीलार्थी की पहचान कई वर्षों के उपरांत पहली बार कठघरे में करने का दावा करते हुए सूचक के सारवान साक्ष्य में दी गयी सूचना अपनी विश्वसनीयता खो देता है–अपीलार्थी अन्वेषण अधिकारी की परीक्षा न किए जाने से प्रतिकूल प्रभावित हुआ है–अभियोजन अपीलार्थी के विरुद्ध आरोप को सभी युक्तिसंगत संदेहों से परे प्रमाणित करने में विफल रहा–धारा 302 के अंतर्गत आरोप के समान गम्भीर आरोप प्रमाणित करने हेतु अभियोजन पर समानुपातिक रूप से भारी बोझ होता है परन्तु वर्तमान मामले में अभियोजन अपने दायित्व का निर्वहन करने में बुरी तरह विफल रहा–अपीलार्थी दोषमुक्त–अपील अनुज्ञात। (पैरा 13 से 16)

अधिवक्तागण.–Mr. Sunil Kumar, For the Appellants; A.P.P., For the State.

डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति.–वर्तमान अपील सत्र विचारण सं॰ 139 वर्ष 1996 में अपर सत्र न्यायाधीश, सिमडेगा द्वारा पारित दिनांक 29.8.2000 के भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 302 के अधीन आरोप की दोषसिद्धि के आक्षेपित निर्णय एवं दण्डादेश से उद्भूत होता है जिसके द्वारा एकमात्र अपीलार्थी मुकुन्द मुरारी सिंह @ मंगल सिंह को आजीवन कारावास भुगतने से दण्डित किया गया है।

2. सूचक कर्मा साव (अ॰ सा॰ 2) के फर्दबयान (प्रदर्श 3) में कथित अभियोजन कथन यह था कि उसके पिता (मृतक) एवं माता सीता देवी (मृतका) गाँव करमटोली में एक घर बनवाकर अभिकथित घटना से काफी पहले से रह रहे थे जबकि सूचक सहित उनके तीन बेटे एक भिन्न गाँव अर्थात् बोकवा में रह रहे थे। 30.6.1995 को, सूचक को किसी सुलेमान खरिया (अपरीक्षित) से जानकारी मिली कि उसके माता-पिता गाँव करमा टोली में अपने घर में खून से लथपथ मृत पड़े थे एवं दोनों की हत्या धारदार हथियार से की गयी थी। ऐसी सूचना मिलने पर सूचक अपने बड़े भाई नागेश्वर साहू (अ॰ सा॰ 5) एवं छोटे भाई महावीर साव (अ॰ सा॰ 3) के साथ अभिकथित घटनास्थल पर गया और अपने माता-पिता को आँगन में मृत पड़ा हुआ पाया जिनका सिर एवं गर्दन किसी अज्ञात व्यक्ति द्वारा कुल्हाड़ी की मदद से काट डाला गया प्रतीत हुआ। सूचक ने अपना कथन पुलिस के समक्ष उसी दिन अर्थात् 30.6.1995 को लगभग 5.30 बजे साक्षी महावीर साव की उपस्थिति में दिया, अन्य बातों के साथ-साथ यह कथन करते हुए कि लगभग 70 वर्षीय उसके पिता एवं लगभग 65 वर्षीया माता की किसी के भी साथ कोई शत्रुता नहीं थी एवं इसलिए, उनलोगों की हत्या के पीछे की मंशा का अभिनिश्चय नहीं किया जा सका। सूचक ने किसी के भी विरुद्ध संदेह नहीं किया एवं यहाँ तक कि सुलेमान खरिया ने भी किसी हमलावर के देखने की जानकारी नहीं दी। प्राथमिकी अज्ञात लोगों के विरुद्ध दर्ज किया गया था परन्तु पुलिस ने अन्वेषण के उपरांत अपीलार्थी मुकुन्द मुरारी सिंह @ मंगल सिंह के विरुद्ध भारतीय दण्ड संहिता की धारा 302 के अधीन अपराध के लिए आरोप पत्र पेश किया।

मामले के अन्वेषण के दौरान साक्षीगण डटे रहे कि पुलिस द्वारा शवों के निकट से एक पहचान पत्र एवं एक कलाई घड़ी एकत्रित की गयी थी परन्तु इसे विचारण के दौरान न तो अभिलेख पर लाया गया था और न ही इसका अपीलार्थी के साथ कोई सम्बन्ध ही प्रमाणित हो सका था।

3. सर्वप्रथम, अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि यद्यपि कुल 17 गवाह विचारण के दौरान अभियोजन की ओर से पेश किए गए थे परन्तु अपीलार्थी को मात्र एक बालक साक्षी अ॰ सा॰ 4 सुनील कोंडुना के एक असम्पोषित अभिसाक्ष्य पर दोषसिद्ध किया गया था जो अभिकथित घटना के संगत समय पर मात्र 10 वर्ष का ही था।

4. अ॰ सा॰ 1 पांचु नाईक एक संयोगी साक्षी प्रतीत होता है जिसने अभिसाक्ष्य दिया कि घटना की तिथि को जब वह कोलेबीरा बाजार से लौट रहा था उसने लालू साव के घर के निकट भीड़ देखा। वह जिज्ञासापूर्वक वहाँ गया जहाँ उसने लालू साव एवं उसकी पत्नी का शव रक्त से लथपथ पाया। पुलिस द्वारा शवों के पास से एक कलाई घड़ी एवं एक पहचान पत्र अभिग्रहित किया गया था, तद्नुसार, एक अभिग्रहण सूची तैयार किया गया एवं साक्षीयों ने इसपर हस्ताक्षर किए। प्रति-परीक्षण में, उसने मात्र तीन व्यक्तियों अर्थात् कर्मा साव (अ॰ सा॰ 2), बीरू साव (अपरीक्षित) एवं नागेश्वर साहू (अ॰ सा॰ 5) एवं पुलिस कार्मिकों को देखे जाने की बात स्वीकार की। अ॰ सा॰ 2 कर्मा साव मामले का सूचक है। उसने अपने पूर्वतर कथन का समर्थन करके साक्ष्य दिया कि उसने किसी सुलेमान खरिया से कर्मा टोली में अपने पिता एवं माता के हमलावरों के बारे में सूचना प्राप्त की थी एवं ऐसी सूचना मिलने पर वह अपने भाई महावीर साव (अ॰ सा॰ 3) एवं नागेश्वर साहू (अ॰ सा॰ 5) के साथ वहाँ गया। यद्यपि, उसने यह अभिसाक्ष्य देकर जानकारी दी कि हमलावर मुकुन्द मुरारी सिंह @ मंगल सिंह (अपीलार्थी) हत्या कारित करने के उपरांत भाग रहा था जिसे उसने तब पहचाना जब वह अपने भाइयों के साथ घटना स्थल पर पहुँचा। सूचक अ॰ सा॰ 2 ने अपीलार्थी को कठघरे में भी पहचाना। उसने अपने पिता एवं माता के मृत शरीर पर उपहतियाँ भी पायी जो किसी तेज धारवाले हथियार द्वारा कारित की गयी थी एवं पहचाना कि एक कलाई घड़ी और एक पहचान पत्र भी वहाँ पाई गई थी। इस बीच पुलिस पहुँची एवं अपने छोटे भाई की उपस्थिति में अपना कथन अभिलिखित किया। प्रति-परीक्षण में, उसने स्वीकार किया कि वह एवं उसका छोटा भाई गाँव करमा टोली से 1/2 किमी दूरी पर स्थित एक भिन्न गाँव में रह रहे थे जहाँ उसके माता-पिता रहते थे। इस साक्षी ने यह साक्ष्य देकर आगे कथन किया कि उसे सुलेमान खरिया द्वारा अवगत कराया गया था कि वहाँ झगड़ा चल रहा था एवं घटनास्थल से गाँव तक की दूरी तय करने में लगभग 10 से 12 मिनट समय लगा। फिर भी, प्रति-परीक्षण में उसका ध्यान आकृष्ट किए जाने पर साक्षी ने जोर डाला कि यह एक तथ्य नहीं था कि उसने पुलिस के समक्ष नहीं कहा था कि उसने हमलावरों को दूर जाते देखा था परन्तु उसके माता-पिता के हमलावरों को हमला करते नहीं देखने की बात स्वीकार की। अ॰ सा॰ 3 महावीर साव मृतका का छोटा बेटा था जिसने अपने बड़े भाई सूचक के कथन का सम्पोषण किया एवं साक्ष्य दिया कि उसने अपने माता-पिता का शव गाँव करमाटोली के आँगन में रक्त से लथपथ पड़ा देखा था। उसने कलाई घड़ी एवं एक पहचान पत्र घटनास्थल पर अभिग्रहण होने की बात एवं साथ ही पुलिस द्वारा तैयार की गयी अभिग्रहण सूची पर अपने हस्ताक्षर की बात भी स्वीकार की।

5. अ॰ सा॰ 4 सुनील कोंडुना मामले का एक महत्वपूर्ण एवं बालक साक्षी है, जो घटना की अभिकथित तिथि एवं समय पर मात्र 10 वर्ष का था। उसने कठघरे में अपनी उम्र लगभग 12 वर्ष बतायी एवं स्वयं का एक गड़ेरिये के तौर पर परिचय कराया। हमने उल्लेख किया है कि विचारण

न्यायाधीश ने बालक साक्षी की बुद्धिमत्ता, परिपक्वता एवं तार्किकता का परीक्षण किए बगैर अभियोजन को उसकी परीक्षा करने की इजाजत दी। साक्षी ने साक्ष्य दिया कि घटना लगभग दो वर्ष पहले घटित हुई थी। उसने हमलावर को पहचानने का दावा किया एवं साथ ही उसने कटघरे में अपीलार्थी की ओर इंगित किया और कहा कि वही हमलावर था। विचारण न्यायाधीश ने इस प्रभाव का पृष्ठांकन किया। उसका विस्तार से परीक्षण किया गया था तथा साक्षी ने स्वीकार किया कि उसका मकान लालू साव (मृतक) के मकान से 60/70 यार्ड की दूरी पर स्थित था एवं सुसंगत समय पर उसके बैल बाड़े से खेतों की ओर भागे जा रहे थे। साक्षी से पूछे गए एक प्रश्न के उत्तर में उसने कहा कि लालू साव का मकान बांस से घेरा हुआ था जो आंशिक तौर पर क्षतिग्रस्त था। उसने अभिपुष्ट किया कि वह सुसंगत समय पर पशुओं को चरागाह की ओर ले जा रहा था एवं यह कि उसने उसी दिन अपने पिता को घटना के बारे में बताया था एवं यह कि उसने हमला किए जाने का कृत्य देखे जाने का दावा किया।

सावधानीपूर्वक संवीक्षा करने पर, हम पाते हैं कि बालक साक्षी ने घटना को 60/70 यार्ड की दूरी से देखने का दावा किया है यद्यपि मृतक के आंगन का बाड़ा बाँस का बना हुआ था जो आंशिक रूप से क्षतिग्रस्त हो गया था जब उसके पशु चरागाह की ओर दौड़ रहे थे। अगले कथन में साक्षी ने साक्ष्य दिया कि उसने एक व्यक्ति को अपने हाथ में कुल्हाड़ी लिए भागते हुए देखा था एवं इसलिए, हमारे पास यह विश्वास करने का कारण है कि वह उक्त व्यक्ति के केवल पीठ का भाग देख पायेगा यद्यपि उसका ध्यान अपने पशुओं की ओर था जो बाड़े से दूर भाग रहे थे। उसने पहली बार में अपने पिता अ॰ सा॰ 17 को भी उस व्यक्ति के आकार-प्रकार, रंग-रूप के बारे में नहीं बताया था एवं ऐसे कथनों के आधार पर, यह सुरक्षित रूप से कहा जा सकता है कि अभियोजन यह प्रमाणित करने में विफल रहा कि इस साक्षी ने अपीलार्थी को दोनों व्यक्तियों की हत्या कारित करते हुए देखा था। बालक साक्षी ने विचारण न्यायालय के समक्ष स्वीकार किया कि पुलिस ने उससे परिप्रश्न नहीं किया था एवं इसलिए, पहली बार दो वर्षों के उपरांत अभिकथित घटना का विवरण देने वाले उसके कथन को सोच समझ कर एवं मशविरा करके किया गया माना जा सकता है। यह सुस्थापित है कि किसी प्रत्यक्षदर्शी साक्षी का कथन अभिलिखित करने में कुछ घंटो/दिनों का विलम्ब गम्भीर अशक्तता की कोटि का नहीं हो सकता है परन्तु एकसाथ कई वर्षों का अनावश्यक विलम्ब अभियोजन विवरण के सम्पूर्ण भाग की विश्वसनीयता पर संदेह का बादल उत्पन्न करता है। अभिकथित घटना के दो वर्षों के उपरांत कठघरे में साक्षी द्वारा अपीलार्थी की पहचान इसकी विश्वसनीयता पर बड़ा संदेह उत्पन्न करता है जो भरोसा उत्पन्न नहीं करता है। गम्भीर अपराध जैसे भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 302 के अधीन अपराध के मामलों में आरोपों को सभी युक्तिसंगत संदेहों से परे प्रमाणित करने का भारी बोझ अभियोजन पर डालता है।

6. अ॰ सा॰ 5 नागेश्वर साहू, जो मृतक के बेटों में से एक है, ने अ॰ सा॰ 2 कर्मा साव एवं एक अन्य भाई महावीर साव (अ॰ सा॰ 3) द्वारा किए गए कथनों का इस बिन्दु पर सम्पोषण किया कि वह घटनास्थल पर गया था एवं किसी सुलेमान खरिया से सूचना पाकर अपने माता-पिता का शव देखा था।

7. अ॰ सा॰ 7 नारायण मांझी ने औपचारिक प्राथमिकी प्रदर्श 2 को प्रमाणित किया। सूचक के ''फर्दबयान'' पर प्रभारी अधिकारी के हस्ताक्षर को अ॰ सा॰ 7 लोहरू सिंह द्वारा प्रमाणित किया गया है। अ॰ सा॰ 8 बालगोविन्द सिंह ने अभिग्रहण सूची पर अपने हस्ताक्षर को प्रदर्श 1/5 के तौर पर प्रमाणित किया है एवं एक अन्य अभिग्रहण साक्षी मुकुन्द मुरारी सिंह का हस्ताक्षर अभिग्रहण सूची पर प्रदर्श 1/6 है। अ॰ सा॰ 8 अपने साक्ष्य में अड़ा था कि यद्यपि उसने अभिग्रहण सूची पर अपना हस्ताक्षर किया था परन्तु उसकी उपस्थिति में किसी सामग्री का अभिग्रहण नहीं किया गया था एवं यह कि उसने

हस्ताक्षर केवल तभी किया था जब सहायक उप-निरीक्षक द्वारा उसे ऐसा करने को कहा गया था। साक्षी को पक्षद्रोही घोषित किया गया था क्योंकि उसने अपनी उपस्थिति में अपीलार्थी मुकुन्द मुरारी सिंह @ मंगल सिंह के रक्त के धब्बों वाले एक फुलपैंट तथा एक छपी हुई कमीज, किसी कुल्हाड़ी की बरामदगी से इनकार किया था। अंतत: उसने अभिसाक्ष्य दिया कि उसने एक सादे कागज पर हस्ताक्षर किया था। अ॰ सा॰ 9 दूती भोगतैन को पक्षद्रोही घोषित किया गया था तथा उसके कथन से अपीलार्थी को अभिकथित हत्या के साथ सम्बन्ध जोड़ने वाला तथ्य प्राप्त नहीं किया जा सका। अ॰ सा॰ 10 भागीरथी साहू एक संयोगी साक्षी था जिसने मृतक को रक्त से लथपथ देखने का दावा किया एवं अपना हस्ताक्षर अभिग्रहण सूची पर करने की बात स्वीकार की जो घटना स्थल से रक्त मिश्रित मिट्टी के इकट्ठा किए जाने के सम्बन्ध में तैयार की जा रही थी। प्रति-परीक्षण में, उसने स्वीकार किया कि अन्वेषण के दौरान पुलिस द्वारा उससे परिप्रश्न नहीं किया गया था। अ॰ सा॰ 11 लोरे खरिया एवं अ॰ सा॰ 12 सुसेन देवी को भी पक्षद्रोही घोषित किया गया था।

8. अ॰ सा॰ 13 डॉक्टर अरुण कुमार सिंह ने लगभग 70 वर्षीय लालू साव एवं लगभग 65 वर्षीया उसकी पत्नी सीता देवी के शवों का पोस्टमार्टम परीक्षण 1.7.1995 को प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र, सिमडेगा में किया था। उन्होंने दोनों ही पीड़ितों के शरीर पर कई उपहतियाँ पायी थी जो भिन्न-भिन्न आकर के छिन्न प्रकृति के थे और इसे किसी धारदार हथियार जो संभवत: एक कुल्हाड़ी हो सकता था, द्वारा कारित होने का प्राख्यान किया। उन्होंने मृतक के पोस्टमार्टम रिपोर्टों को प्रदर्श 2 तथा 2/1 के तौर पर प्रमाणित किया। अ॰ सा॰ 14 विलियम केरकेट्टा मृतक के उपहति रिपोर्टों का साक्षी था जिसने मृत्यु समीक्षा रिपोर्ट प्रदर्श 4 एवं 5 पर अपने हस्ताक्षर प्रमाणित किए परन्तु प्रति परीक्षण में उसने स्वीकार किया कि मृत्यु समीक्षा रिपोर्ट उसकी उपस्थिति में तैयार नहीं किए गए थे। अ॰ सा॰ 15 अरुण तिर्के भी एक औपचारिक साक्षी था जिसने राजेन्द्र कुमार दास के हस्ताक्षर दो पृथक अभिग्रहण सूचियों पर पहचानने की बात स्वीकार की, जो कोलेबीरा थाना के तत्कालीन प्रभारी थे। परन्तु प्रति-परीक्षण में उसने अभिसाक्ष्य दिया कि अभिग्रहण सूची उसकी उपस्थिति में तैयार नहीं की गयी थी।

9. अ॰ सा॰ 16 डॉ॰ नागेश्वर मांझी ने साक्ष्य दिया कि 4.7.1995 को जब वह कोलेबीरा प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र पर प्रभारी चिकित्सा अधिकारी के तौर पर तैनात था, तो उसने मुकुन्द मांझी @ माकुन मोहन सिंह का परीक्षण किया था एवं उसके बायें मेंडिबुलर क्षेत्र में दर्द एवं सूजन पायी थी। डॉक्टर ने उक्त सूजन को लगभग 72 घंटों के भीतर का बताया था। उनकी राय में, ऐसा सूजन कठोर एवं भोथरे पदार्थ द्वारा कारित हो सकता था, जो सरल प्रकृति की थी परन्तु किसी कठोर सतह पर गिरने के कारण कारित हो सकती थी।

10. अ॰ सा॰ 17 बेनेट्रिक मुंडा, एक महत्वपूर्ण साक्षी, बालक साक्षी सुनील मुंडा के पिता होने के कारण साक्ष्य दिया है कि लगभग 4 वर्ष पहले उसके पुत्र सुनील मुंडा ने कथन किया था कि लातू साव एवं उसकी पत्नी की एक हमलावर द्वारा एक कुल्हाड़ी की मदद से हत्या कर दी गयी थी जिसे उसने पहचान लेने का दावा किया एवं आगे यह कि उसने दोषी को कुल्हाड़ी लेकर भागते हुए देखा था।

11. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने दोषसिद्धि के आक्षेपित निर्णय की आलोचना इस आधार पर की कि विचारण न्यायालय में मामले के अन्वेषण अधिकारी की गैर-परीक्षण ने विभिन्न मुद्दों पर उसकी प्रति-परीक्षा करने के अवसर से वंचित करके अपीलार्थी के बचाव पर प्रतिकूल प्रभाव कारित किया है जिसमें उसके वस्तुपरक निष्कर्ष भी शामिल है जब वह पहली बार घटनास्थल पर गया था, घटनास्थल से पहचान पत्र एवं कलाई घड़ी की बरामदगी इसको लेकर कि क्या सामग्रियों का अपीलार्थी या एक अन्य के साथ कोई सम्बन्ध था एवं वैसी बाध्यकारी परिस्थितियाँ कौन सी थी जिसने बालक साक्षी सुनील कोंडुना का नाम अन्वेषण के उपरांत आरोप पत्र में साक्षियों के कॉलम में शामिल किया गया यद्यपि उक्त साक्षी के अनुसार उसका कथन अन्वेषण अधिकारी द्वारा दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 161

के अधीन अभिलिखित नहीं किया गया था। फिर भी, विचारण न्यायालय ने गलत विचार करके अभिनिर्धारित किया कि अन्वेषण अधिकारी की गैर-परीक्षण, इन तथ्यों एवं परिस्थितियों में परिणामरहित थी, जब प्रत्यक्षदर्शी साक्षी की विश्वसनीयता को प्रमाणित किया गया है एवं कोई तात्विक विरोधाभास इंगित नहीं किया गया है।

12. अपना तर्क पेश करते हुए, विद्वान अधिवक्ता ने पुनरावृत्ति की कि अभिकथित घटना के दो वर्षों के उपरांत बालक साक्षी द्वारा अपीलार्थी की पहचान अपनी विश्वसनीयता खो देता है एवं अनावश्यक विलम्ब के बाद किए गए ऐसे कथन पर भरोसा व्यक्त नहीं किया जा सकता है। इसलिए, विचारण न्यायालय द्वारा अपीलार्थी के विरुद्ध यथा अभिलिखित दोषसिद्धि का निर्णय एवं दण्डादेश विधि में एवं उन तथ्यों पर अनुचित है जो कायम नहीं रखा जा सकता। वास्तव में, विद्वान न्यायाधीश ने आगे कहा कि भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 302 के अंतर्गत आरोप के लिए अपीलार्थी की दोषसिद्धि सुनिश्चित करने के लिए अभिलेख पर कोई विधिक साक्ष्य नहीं थी। इसलिए गलत विचारण पर अपीलार्थी की दोषसिद्धि अपास्त किए जाने योग्य है एवं उसे दोषमुक्त करके छोड़ा जा सकता है।

13. अभिलेख पर मौजूद समस्त तथ्यों एवं सामग्रियों पर विचार करके हम संप्रेक्षित करते हैं कि एक बुजुर्ग पुरुष एवं बुजुर्ग महिला की हत्या अत्यधिक निर्ममतापूर्वक, विचित्रतापूर्वक, पाशविक एवं कायरतापूर्वक कारित की गयी थी ताकि मृतक के बेटों एवं समाज में अत्यधिक रोष उत्पन्न किया जा सके परन्तु जहाँ तक कि भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 302 के अधीन आरोप के लिए अपीलार्थी की दोषसिद्धि सुनिश्चित करने के लिए विधि की अपेक्षा का सम्बन्ध है, तात्विक साक्ष्य की वर्तमान मामले में अंतर्निहित रूप से कमी है। सूचक ने घटना का प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य होने का दावा नहीं किया, जब उसने पुलिस के समक्ष अपना बयान दिया परन्तु अपीलार्थी के विचारण के दौरान अपने साक्ष्य में सारवान सूचना दी यह दावा करते हुए कि उसने अपने भाइयों सहित अपीलार्थी को अपने हाथ में कुल्हाड़ी लेकर भागते हुए देखा था। उसके कथन को उसके अन्य दो भाइयों द्वारा विचारण के दौरान अपने साक्ष्य में सम्पोषण नहीं किया गया है। सूचक द्वारा कई वर्षों के बाद पहली बार कठघरे में अपने माता-पिता के हत्यारों के तौर पर अपीलार्थी की पहचान का दावा करते हुए उसके सारवान साक्ष्य में दी गयी सूचना अपनी विश्वसनीयता खो देता है क्योंकि पहली बार उसने अपने ''फर्दबयान'' में माता-पिता के हत्यारे के तौर पर अपीलार्थी का नाम नहीं बताया था।

14. एकल प्रत्यक्षदर्शी साक्षी सुनील कोंडुना के साक्ष्य की आलोचना करते हुए अपीलार्थी की ओर से कई तर्क पेश किए गए हैं और हम उनके इस निवेदन में दम पाते हैं कि अभिकथित घटना के दो वर्ष बाद कठघरे में बालक साक्षी द्वारा अभियुक्त की पहचान असंगत है क्योंकि यह अपनी विश्वसनीयता खो देता है जब ऐसे साक्षी का कथन पहले अन्वेषण अधिकारी द्वारा अन्वेषण के दौरान दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 161 के अधीन नहीं किया गया था एवं हमने इस पहलू पर शुरू से अंत तक चर्चा की है। हम पुन: सार पाते हैं कि अपीलार्थी वर्तमान मामले में अन्वेषण अधिकारी के गैर-परीक्षण के चलते प्रतिकूल प्रभावित हुआ है, जिससे पूर्वगामी पैराग्राफों में अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यथा इंगित कतिपय पूछे गए प्रश्नों के लिए अपीलार्थी/अभियुक्त को बचाव का अवसर से वंचित किया गया है। नि:संदेह शाम के समय एक बुजुर्ग पुरूष एवं बुजुर्ग महिला की हत्या वीभत्स प्रकृति की थी, परन्तु अभियोजन की ओर से पेश साक्ष्य दोषसिद्धि सुनिश्चित करने के लिए अपर्याप्त पायी गयी है। अन्य

शब्दों में, हम पाते हैं कि अभियोजन सभी युक्तिसंगत संदेहों से परे आरोप को प्रमाणित करने में विफल रहा एवं विचारण न्यायालय ने गलत विचार करके एवं साक्ष्य का उचित अधिमूल्यन किए बिना अपीलार्थी को दोषी अभिनिर्धारित किया जिसे कायम नहीं रखा जा सकता है। यह सुस्थापित है कि भारतीय दण्ड संहिता की धारा 302 के अधीन आरोप के समान गम्भीर आरोप प्रमाणित करने के लिए अभियोजन पर समानुपातिक रूप से बड़ा बोझ होता है परन्तु वर्तमान मामले में अभियोजन अपने कर्त्तव्य का निर्वहन करने में बुरी तरह विफल रहा है।

15. वैसी स्थिति होने के कारण, हम अपील में सार पाते हैं। तद्नुसार, G.R. No. 142 वर्ष 1995 के तत्सम कोलेबीरा थाना केस सं॰ 19 वर्ष 1995 से उद्भूत सत्र विचारण सं॰ 139 वर्ष 1996 में अपीलार्थी मुकुन्द मुरारी सिंह @ मंगल सिंह को भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 302 के अधीन दोषसिद्धि से दोषमुक्त किया जाता है एवं उसे तत्काल निर्मुक्त कर दिया जाय यदि वह किसी अन्य मामले में वांछित न हो।

16. यह अपील अनुज्ञात किया जाता है।

ज्ञान सुधा मिश्रा, मुख्य न्यायाधीश.—मैं सहमत हूँ

माननीय सुशील हरकौली, न्यायमूर्ति

खजाना प्रोजेक्ट्स एण्ड इंडस्ट्रीज प्रा॰ लिमिटेड

बनाम

भारत संघ एवं अन्य

WP(C) No. 258 of 2010. Decided on 19th April, 2010.

सरकारी संविदा–भुगतान का रोका जाना–संविदा की सामान्य शर्तों का खंड 52 एवं 52-A—GCC का खंड 52 इस आधार पर क्रियान्वित किया गया था कि संविदाकार जिसने संविदा के सम्बन्ध में व्यतिक्रम किया था, इस आशंका पर अन्य अविवादित संविदा का कार्य धीमा कर देता है कि अन्य संविदा का उसका चालू विपत्र रोका जायेगा–संविदाकारों के साथ रेलवे के करार में GCC के खंड 52 के समान शर्त समाविष्ट करने का रेलवे का निर्णय दीर्घकालीन लोकहित में होने की संभावना है या नहीं, यह मुख्यतः रेलवे द्वारा विनिश्चित किया जाने वाला नीतिगत प्रश्न है–नीतिगत विषयों में मात्र इस दृष्टिकोण से एक वाणिज्यिक प्रकृति के करार को उपान्तरित करना अनुच्छेद 226 के अंतर्गत उच्च न्यायालय के लिए उचित नहीं है कि एक अन्य नीति बेहतर नीति होती–उच्च न्यायालय द्वारा खंड 52 को इस आधार पर त्यागा नहीं जा सकता है कि यह अंत:करण विरुद्ध है या लोक नीति के विरुद्ध है–विबंध के विवाद्यक पर अभिवचनों की कमी के चलते इसके बारे में कोई निष्कर्ष अभिलिखित नहीं किया जा सकता है कि क्या रेलवे की ओर से कार्रवाई में विलम्ब के चलते खंड 52 के अधीन लियेन का प्रयोग करने से रेलवे को विबंधित किया गया है–यदि याची तर्क करता है कि राशि की वसूली लियेन पर अनुमान्य नहीं थी, तो वह माध्यस्थम कार्यवाहियों में व्यादेश की प्रार्थना में उठाये जाने के लिए एक विषय होगा–याचिका खारिज। (पैरा 19 से 24)

निर्णयज विधि.–(1986)3 SCC 166; (2009)1 SCC 267—Distinguished.

अधिवक्तागण.–M/s Anubha R. Choudhary, For the Petitioner; Mr. Ram Niwas Roy, For the Respondents.

आदेश

याची कंपनी ने वर्ष 2005 में कतिपय 'सिविल कार्य' कराने के लिए रेलवे के साथ एक करार किया। 1.2.2008 को उक्त करार रेलवे द्वारा समाप्त किया गया था। व्यतिक्रम के बारे में पारस्परिक अभिकथन किए गए थे। दिनांक 29.2.2008 के एक पत्र द्वारा माध्यस्थम इप्सित किया गया था। तीन माध्यस्थों के एक पैनल ने 25.7.2008 को एक निर्देश किया। माध्यस्थम अभी भी लंबित है।

2. इस बीच, याची ने रेलवे के साथ चार अन्य संविदायें की जो क्रमशः दिनांक 3.4.2008, 16.6.2008, 26.6.2008 एवं 12.11.2008 की है। 3.11.2009 को रेलवे ने उपरोक्त चार अन्य संविदाओं के सम्बन्ध में याची के चालू विपत्रों से 4,42,35,921/- रु॰ का भुगतान रोकने के लिए निर्देश देते हुए एक नोटिस निर्गत किया। प्रकटतः यह राशि 2005 की संविदा के सम्बन्ध में रेलवे के दावे को अभिव्यक्त करता है।

3. यह सामान्य आधार है कि राशि को संविदा के सामान्य शर्तों (संक्षेप में GCC) के खंड 52 एवं 52A के अधीन अनुमान्य लियेन के माध्यम से अन्य संविदाओं के चालू विपत्रों से रोका गया है जो 2005 के करार के भाग थे।

4. याची रेलवे के दिनांक 4.10.1990 के एक पत्र पर भरोसा करता है, जिसकी एक प्रति रिट याचिका के उपाबंध-6 के तौर पर संलग्न की गयी है। उस पत्र में यह कहा गया है कि GCC के उपरोक्त खंड 52 का क्रियान्वयन समस्यायें उत्पन्न करता है क्योंकि एक संविदाकार जिसने एक संविदा के सम्बन्ध में व्यतिक्रम किया था, इस आशंका पर अन्य अविवादित संविदाओं का कार्य धीमा कर देता है कि अन्य संविदाओं का उसका चालू विपत्र रोका जायगा। इसलिए परिपत्र GCC के खंड 52 में आवश्यक संशोधन के समामेलन का आग्रह करता है।

5. लेकिन, यह विवादित नहीं है कि इस आग्रह को कार्यान्वित नहीं किया गया था क्योंकि 1990 के परिपत्र के बावजूद, 2005 के याची के करार में, GCC का खंड 52 यथापूर्व रहा।

6. इसलिए परिपत्र एक ऐसे आइडिया या विचार की एक पंक्ति का प्रतिनिधित्व करता है जिसे वास्तव में कार्यान्वित नहीं किया गया था। इसलिए न्यायालय को वर्तमान खंड 52 के शर्तों से होकर गुजरना है न कि अक्रियान्वित विचारों से।

7. याची ने दिनांक 12/16.5.2006 के एक अन्य परिपत्र पर भरोसा किया है जो सम्पूरक शपथ पत्र के उपाबंध के तौर पर संलग्न है जो इंगित करता है कि याची के करार के पश्चात्, रेलवे ने बैंक गारंटी के रूप में संविदा मूल्य के 5% तक की सीमा तक ''अनुपालन गारंटी'' उपलब्ध कराने की अपेक्षा करते हुए आगामी करारों में एक खंड समाविष्ट करने का निर्णय लिया, जो व्यतिक्रम की दशा में प्रवर्तनीय था। यह एक पश्चात्वर्ती घटना है एवं अन्य भावी करारों के संगत हो सकता है जिसमें ऐसे एक खंड को वास्तविक रूप से समाविष्ट किया गया है, परन्तु 2005 के करार के लिए संगत नहीं है जो अनुपालन गारंटी के लिए ऐसा प्रावधान अंतर्विष्ट नहीं करता है।

8. इस बिन्दु पर, यह वर्णित किया जा सकता है कि अनुपालन गारंटी से संबंधित शर्तों के समामेलन की अपेक्षा के बावजूद, रेलवे ने GCC के खंड 52 को इसके मूल रूप में प्रतिधारित किया है।

9. याची के अन्य निवेदनों के सम्बन्ध में आगे की कार्यवाही करने से पहले, इस बिन्दु पर यह स्पष्ट किया जा सकता है कि दो भिन्न यद्यपि पारिणामिक मुद्दे अंतर्ग्रस्त हैं।

10. अंतर्ग्रस्त प्रथम प्रश्न यह है कि क्या रेलवे 2005 की संविदा के सम्बन्ध में 4,42,35,921/- रु॰ की राशि वसूल करने का हकदार है अथवा नहीं।

11. दूसरा प्रश्न यह है कि अगर रेलवे उपरोक्त राशि वसूलने का हकदार है तो क्या उक्त राशि के सम्बन्ध में लियेन का प्रयोग इस प्रकार से किया जा सकता है ताकि रेलवे एवं याची के बीच अन्य स्वतंत्र करार के चालू विपत्रों के भुगतान को रोका जा सके।

12. जहाँ तक पहले प्रश्न का सम्बन्ध है, वह प्रत्यक्षत: माध्यस्थम कार्यवाहियों द्वारा आच्छादित है एवं इसलिए, यदि याची का प्रतिवाद यह है कि उक्त राशि 2005 की संविदा के सम्बन्ध में वसूलनीय नहीं है, तो याची का उपचार ऐसी वसूली के विरुद्ध लम्बित माध्यस्थम कार्यवाहियों में व्यादेश की ईप्सा करने में निहित है। इसलिये मैं इस मुद्दे की परीक्षा करने के लिए माध्यस्थम कार्यवाही की व्यादेश अधिकारिता को अग्रक्रय करना इस न्यायालय के लिए उचित नहीं है।

13. जहाँ तक लियेन के तौर पर अन्य करारों के चालू विपत्रों के रोके जाने की अनुमान्यता के बारे में दूसरे प्रश्न का सम्बन्ध है, इसे उपरोक्त खंड 52 के निबंधनों में किया गया है।

14. याची ऐसे कार्रवाई को मुख्यत: दो आधारों पर चुनौती देता है:-

(i) यह कि GCC का खंड 52 अंत:करण विरुद्ध होने के कारण हटाये जाने योग्य है; एवं याची से छपी हुई संविदा शर्तों पर हस्ताक्षर कराया गया था तथा याची एवं रेलवे को सौदेबाजी की असमान शक्ति थी।

(ii) अन्य आधार यह है कि 1.2.2008 से जब 2005 की संविदा 3.11.2009 तक रोकी गयी थी जब अन्य करारों के चालू विपत्रों से भुगतान रोके जाने की नोटिस रेलवे द्वारा दी गयी थी, तो रेलवे द्वारा याची को ऐसी कोई वसूली उपदर्शित नहीं किया गया था और उस आधार पर, याची को 3.4.2008, 16.6.2008, 26.6.2008 एवं 12.11.2008 को चार नई संविदायें करने को उत्प्रेरित किया गया था।

15. जहाँ तक उपरोक्त प्रथम आधार का सम्बन्ध है, याची ने **सेन्ट्रल इनलैण्ड वाटर ट्रांसपोर्ट कॉरपोरेशन बनाम ब्रोजो नाथ गांगुली के (1986)3 SCC 156** में प्रकाशित एवं **नेशनल इन्श्योरेंस कंपनी लि॰ बनाम बोघरा पोलीफैब प्रा॰ लि॰ के (2009)1 SCC 267** में प्रकाशित मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों पर भरोसा व्यक्त किया है।

16. ऊपर के दोनों ही मामले ऐसे थे जहाँ व्यथित पक्षकार परेशान था जिसके पास बिंदुदार रेखा पर हस्ताक्षर करने के सिवाय कोई अन्य विकल्प नहीं था। **सेन्ट्रल इनलैण्ड वाटर ट्रांसपोर्ट कॉरपोरेशन (ऊपर)** के मामले में बिंदुदार रेखा पर हस्ताक्षर करने या नौकरी खो देने का विकल्प था, जबकि **नेशनल इन्श्योरेंस कंपनी लि॰ (ऊपर)** के दूसरे मामले में, बीमीत भारी वर्षा एवं बाढ़ के फलस्वरूप कारोबार की बड़ी क्षति से कुप्रभावित हुआ था एवं इसलिए क्षति को रोकने के लिए निराश था।

17. वर्तमान मामले में, याची कंपनी ऐसे एवं इसी प्रकार की परेशानी में प्रतीत नहीं होता है जब इसने 2005 का करार किया था। बार-बार आग्रह किए जाने के बावजूद, याची के विद्वान अधिवक्ता ऐसा कोई निर्णय दर्शाने में सक्षम नहीं रहे हैं जहाँ **सेन्ट्रल इनलैंड वाटर ट्रांसपोर्ट कॉरपोरेशन** का

सिद्धांत मुक्त निविदा के हेतुक एवं संविदा दिए जाने पर लागू होता हो। वास्तव में सर्वोच्च न्यायालय ने स्वयं **(1986)3 SCC 156 के पैरा 89** में निम्नवत् कहा है:–

> *"लेकिन, यह सिद्धांत वहाँ लागू नहीं होगा जहाँ संविदा करने वाले पक्षों की सर्वोच्च शक्ति समान और लगभग समान है। यह सिद्धांत वहाँ लागू नहीं हो सकता है जहाँ दोनों ही पक्षकार व्यवसायी हैं एवं संविदा एक वाणिज्यिक संव्यवहार है।''*

18. तद्नुसार, मैं वर्तमान मामले के तथ्यों में, वास्तव में एक ऐसे निष्कर्ष पर आने में असमर्थ हूँ, कि जब याची ने 2005 की संविदा की थी, तो ऐसी परेशानी थी जिसकी वजह से याची के पास बिंदुदार रेखा पर हस्ताक्षर करने के सिवाय कोई अन्य विकल्प नहीं था।

19. इसके अतिरिक्त, क्या संविदाकारों के साथ रेलवे के करार में GCC के खंड 52 के समान शर्त समाविष्ट करने के रेलवे के निर्णय में दीर्घकालिक लोकहित होना संभावित है अथवा नहीं, यह मुख्यत: रेलवे द्वारा विनिश्चित की जाने वाली नीति का एक प्रश्न है। 1990 के परिपत्र में पृथक्कृत विचार को खंड 52 को उपयुक्त रूप से उपान्तरित करके कार्यान्वित नहीं किया गया था। हो सकता है, नई सोच और अनुभव ने रेलवे को खंड 52 को अक्षुण्ण रखने को प्रेरित किया हो।

20. नीतिगत मामलों में मात्र इस दृष्टिकोण पर किसी वाणिज्यिक प्रकृति के करार को उपान्तरित करना भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन इस न्यायालय के लिए उचित नहीं है कि दूसरी नीति बेहतर नीति होती।

21. इसलिए, मेरा मत यह है कि खंड 52 को इस न्यायालय द्वारा इस आधार पर त्यागा नहीं जा सकता है कि यह अंत:करण विरुद्ध है या लोक नीति के विरुद्ध है।

22. जहाँ तक दूसरे निवेदन का सम्बन्ध है, यह कुछ प्रकार के विबंध के सिद्धांत पर आधृत है। सारत: याची का तर्क यह है कि वसूली की नोटिस में विलम्ब करके रेलवे ने याची को चारों पश्चातवर्ती करार करने को उत्प्रेरित किया। मैं रिट याचिका में ऐसा कोई अभिवाक् नहीं पाता हूँ कि अगर याची को ज्ञान था कि GCC के खंड 52 को प्रवर्तित कराये जाने की संभावना थी, तो याची ने रेलवे के साथ पश्चातवर्ती चारों करार नहीं किया होता। इस प्रकार, इस विवाद्यक पर तर्कों की कमी के चलते इसके बारे में कोई निष्कर्ष अभिलिखित नहीं किया जा सकता है कि क्या रेलवे की ओर से कार्रवाई में विलम्ब के चलते खंड 52 के अधीन लियेन का प्रयोग करने से रेलवे को विबंधित किया गया है।

23. जहाँ तक लियेन का प्रयोग करने की कार्रवाई दुर्भावनापूर्ण या मनमाना होने के बारे में शेष प्रतिवाद का सम्बन्ध है, यह पहले ही इंगित किया जा चुका है कि अगर याची यह प्रतिवाद करना चाहता है कि राशि की वसूली ऐसे आधारों पर अनुमान्य नहीं थी, तो वह माध्यस्थम कार्यवाहियों में व्यादेश की प्रार्थना में उठाये जाने का एक विषय होगा।

24. तद्नुसार, याची के तर्क असफल होते हैं एवं रिट याचिका खारिज की जाती है।